हदीस सौरभ

(अनुवाद व व्याख्या सहित)

प्रथम भाग

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

विषय-सूची

आध्यात्मिकता और इबादतें

नोट : हदीस सौरभ के इस भाग में मौलिक धारणाओं और इबादतों से सम्बन्धित हदीसें प्रस्तुत की गई हैं। नैतिकता, समाज, शासन एवं राजनीति, अर्थनीति एवं अर्थव्यवस्था, सत्य का आह्वान और सत्य-प्रचार आदि से सम्बन्धित हदीसें पुस्तक के अन्य भागों में प्रस्तुत की जाएँगी।

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान् है।)

प्राक्कथन

इस्लाम में क़ुरआन मजीद के बाद जिस चीज़ को मौलिक महत्व प्राप्त है वह ल्लाह के रसूल (सल्ल०) की 'सुन्नत' और आप (सल्ल०) की 'हदीस' है। रबी के अतिरिक्त उर्दू में भी हदीस के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनका पने स्थान पर बहुत महत्व है, लेकिन हिन्दी भाषा में अभी तक हदीस का कोई ल्लेखनीय संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका था। हिन्दी में हदीस के एक संग्रह की विश्यकता बहुत पहले से महसूस की जा रही थी जिसमें इस्लाम एक पूर्ण वन-दर्शन और जीवन-व्यवस्था के रूप में उभरकर सामने आ सके जैसा कि वास्तव में है भी। हदीस का यह संग्रह जिसे हम 'हदीस सौरभ' के नाम से ठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं, इसी आवश्यकता को व्रते हुए संकलित किया गया है।

इस संग्रह में प्रत्येक अध्याय के आरंभ में अध्याय से सम्बन्धित एक िचयात्मक लेख भी सम्मिलित है जिससे हदीसों को समझने में सुविधा होगी। विश्यकतानुसार हदीसों की व्याख्या भी कर दी गई है। हदीसों की व्याख्या में ारी कोशिश यह रही है कि उनके सम्बन्ध में केवल यही नहीं कि पाठकों को के अपने मन में उभरनेवाले प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँ, बल्कि इसी के साथ में हदीस की समझ और धर्म-ज्ञान की यथार्थ अभिरुचि भी पैदा हो सके और स्तविक रूप से वे धर्म और उसके रूप एवं गुण से परिचित हो सकें।

ग्रन्थ की भूमिका में हदीस के महत्व, उसके संकलन-इतिहास आदि विषयों प्रकाश डाला गया है और हदीस के सम्बन्ध में पैदा होनेवाले सन्देहों और ङ्काओं को दूर करने का प्रयास किया गया है।

हदीस और धर्म से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों और शास्त्रों का उल्लेख भी ग्रन्थ में सम्मिलित किया जा रहा है। यह चीज़ हदीसों के समझने में भी ायक होगी और इससे इस बात का भी भली-भाँति अनुमान लगाया जा सकेगा

कि हदीस के सेवकों और विद्वानों ने केवल यही नहीं कि शोधकार्य और रिस (Rescarch) की नींव डाली है, बल्कि उन्होंने जिस चीज़ को भी हाथ में लिए उसे उन्नति के शिखर तक पहुँचा दिया है।

ग्रन्थ के प्रथम भाग में 'मौलिक धारणाओं' और 'इबादतों' से सम्बन्धि हदीसों को संग्रहीत किया गया है, समाज एवं नैतिक-विधान, शासन औ राजनीति, अर्थनीति एवं अर्थव्यवस्था, सत्य का आह्वान एवं उसके प्रचार-प्रसा आदि से सम्बन्धित हदीसें ग्रन्थ के अन्य भागों में संकलित की जाएँगी।

हदीस सौरभ प्रथम भाग के इस नए संस्करण की तैयारी में जिन व्यक्तिय का योगदान प्राप्त रहा है, हम उन सभी के आभारी हैं, विशेष रूप से श्री ए ख़ालिद निज़ामी साहब ने इस संबंध में जिस मनोयोग से काम लिया है व अत्यन्त सराहनीय है। हम दिल से उनके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि वह इस प्रयत्न को स्वीकार करे और जो लो मानव-जीवन को निर्मल और सफल बनाने की अभिलाषा रखते हैं, उनके लि यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध हो।

विनीत

20 जुलाई, 2002 ई०

(मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ)

हदीस क्या है ?

नुबूवत का प्रतिष्ठित पद

जीवन का सीधा और सच्चा मार्ग पाने के लिए मनुष्य को सदैव ईश्वरीय मार्गदर्शन की आवश्यकता रही है। ईश्वरीय शिक्षा और ईश्वरीय मार्गदर्शन से अलग रहकर मनुष्य कभी भी सीधे मार्ग को पा नहीं सकता। मनुष्य को जीवन का सीधा और सच्चा मार्ग दिखाने के लिए अल्लाह ने किताबें उतारीं और अपने 'रसूल' भेजे। रसूलों ने लोगों के समक्ष ईश्वरीय ग्रन्थों के अर्थ और अभिप्राय को स्पष्ट रूप से बयान किया और 'अल्लाह' के दिए हुए आदेशों के अनुसार आचरण करके उन्हें दिखाया। उन्होंने लोगों के सामने अपना आदर्श जीवन प्रस्तुत किया, ताकि वे अच्छी तरह इस बात को समझ सकें कि ईश्वर की इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का तरीक़ा क्या होता है? अल्लाह की ओर से यदि कोई रसूल न आता, केवल क़िताब का अवतरण होता, तो उस किताब के समझने में लोगों के बीच मतभेद होता; और यह निर्णय न हो पाता कि सत्य किसकी ओर है और किसकी ओर नहीं है? ईश्वरीय आदेशों के वास्तविक अभिप्राय और उद्देश्य को समझने में लोग ग़लतियाँ करते और कोई न होता जो उन्हें ईश्वरीय आदेशों का वास्तविक अर्थ और उद्देश्य बता सकता। इसके अतिरिक्त मनुष्य की यह एक आवश्यकता है कि जीवन के समस्त मामलों में कोई उसके साथ शरीक होकर अपने व्यवहार और वचन से उसको जीवन का सीधा मार्ग दिखाए। विचार और व्यवहार प्रत्येक दृष्टि से उनकी शिक्षा-दीक्षा का उपाय करे और उसमें सत्यानुसरण की भावना पैदा करे। लोगों को बताए कि जीवन के कठिन और पेचीदा मार्गों में वे किस प्रकार सत्य और न्याय के मार्ग को अपनाएँ और उसी पर जीवन भर चलते रहें।

मनुष्य की यह आवश्यकता किसी 'फ़रिश्ते' के द्वारा पूरी नहीं हो सकती थी। 'फ़रिश्तों' को मानवीय आवश्यकताओं से क्या सम्पर्क? 'फरिश्तों' की मनोवृत्ति और प्रकृति मानवों से सर्वथा भिन्न होती हैं। इसलिए वे मानव-जीवन के लिए दृष्टान्त और नमूना नहीं बन सकते। यही कारण है कि अल्लाह ने 'किताब' के साथ जो भी रसूल भेजा वह मनुष्य था, 'फ़रिश्ता' न था।

'रिसालत' और 'नुबूवत' का इतिहास भी उतना ही लम्बा है जितना कि मानव का इतिहास है। 'रिसालत' और 'नुबूवत' का सिलसिला उसी समय से आरम्भ

होता है जबकि पहले मनुष्य ने इस धरती पर क़दम रखा था। प्रत्येक जाति में अल्लाह के रसूल आए। उन्होंने अपनी जातिवालों को स्वयं उन्हीं की भाषा में सम्बोधित किया। अल्लाह के अन्तिम 'रसूल' हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) हैं। आपके बाद अब मानव के मार्गदर्शन के लिए कोई नया 'रसूल' आनेवाला नहीं है। आप पर 'नुबूवत' का सिलसिला समाप्त हो गया है। अल्लाह के अन्तिम 'रसूल' के दायित्व का जो विवरण क़ुरआन में मिलता है वह यह है——

"और याद करो जबकि इबराहीम और इसमाईल इस घर (काबा) की दीवारें उठा रहे थे (तो प्रार्थना करते जाते थे) — ऐ हमारे 'रब'! उन लोगों के बीच उन्हीं में से एक ऐसा 'रसूल' उठाना जो उन्हें तेरी 'आयतें' पढ़कर सुनाए, उन्हें 'किताब' और 'हिकमत' (तत्त्वदर्शिता) की शिक्षा दे और उनकी आत्मा को शुद्ध (और उसके विकसित होने का अवसर प्रदान) करे। निस्संदेह तू अपार शक्ति का मालिक और तत्त्वदर्शी है।"

— क़ुरआन, 2 :127

एक दूसरे स्थान पर कहा गया—

"अल्लाह ने 'ईमानवालों' पर यह बहुत बड़ा एहसान किया है, जबकि उनके बीच उन्हीं में से एक 'रसूल' उठाया जो उन्हें उसकी 'आयतें' सुनाता है, उनकी आत्मा को शुद्ध (और विकसित होने का अवसर प्रदान) करता है, और उन्हें 'किताब' और 'हिकमत' (तत्त्वदर्शिता) की शिक्षा देता है; जबकि इससे पहले वे खुली गुमराही में पड़े हुए थे।"

— क़ुरआन, 3 :164

इन आयतों से स्पष्ट है कि नबी (सल्ल०) की ज़िम्मेदारी जहाँ यह थी कि आप लोगों को क़ुरआन की आयतें पढ़कर सुनाएँ, वहीं आपकी 'नुबूवत' के तीन महत्त्वपूर्ण उद्देश्य और भी थे——

- एक, यह कि आप लोगों को 'किताब' अर्थात ईश्वरीय नियम और क़ानून की शिक्षा दें।
- दूसरे, आप लोगों को 'हिकमत', तत्त्वदर्शिता (Wisdom) और बुद्धिमत्ता की शिक्षा दें ताकि लोगों में यह योग्यता उभर सके कि वे वास्तविकता को समझ सकें और विचार, चिन्तन और कर्म-क्षेत्र में सही नीति अपना सकें।
- और तीसरे, आप लोगों की आत्मा को शुद्ध करें, ताकि वह विकास पा सके। उनकी ऐसी शिक्षा-दीक्षा का उपाय करें कि उनमें उत्तम से उत्तम गुण उभर

सकें, और उनकी व्यक्तिगत और सामाजिक—हर प्रकार की ख़राबियाँ दूर हों।

यही वह महान् कार्य है जिसके द्वारा उत्तम जीवन-व्यवस्था और आदर्श इस्लामी समाज का निर्माण होता है, जो मानव-जाति के लिए पूर्णतः कृपा है।

नबी (सल्ल०) अपने दायित्व की दृष्टि से शिक्षक, दीक्षक, मार्गदर्शक, नियामक, न्यायाधिकारी, नायक, हाकिम आदि सब कुछ थे। आपके जीवन को ईमानवालों के लिए आर्दश-जीवन निर्धारित किया गया :

"(ऐ नबी ! लोगों से) कह दो : यदि तुम (सचमुच) अल्लाह से प्रेम करते हो तो मेरा अनुसरण करो, अल्लाह तुमसे प्रेम करने लगेगा।"

—क़ुरआन, 3 : 31

"(ऐ नबी !) कहो : अल्लाह और रसूल का हुक्म मानो। फिर यदि वे मुँह मोड़ते हैं तो अल्लाह काफ़िरों को पसन्द नहीं करता।"

— क़ुरआन, 3 : 32

स्वयं नबी (सल्ल०) कहते हैं—

"जिसने मुहम्मद की आज्ञा का पालन किया, निस्संदेह उसने अल्लाह के आदेश का पालन किया और जिसने मुहम्मद की अवज्ञा की निश्चय ही उसने अल्लाह की अवज्ञा की, और मुहम्मद लोगों के बीच सीमान्तर की हैसियत रखते हैं।"

— बुख़ारी

क़ुरआन में एक जगह कहा गया—

"निश्चय ही तुम लोगों के लिए अल्लाह के रसूल में एक उत्तम आदर्श है, उस व्यक्ति के लिए जो अल्लाह और अन्तिम दिन की आशा रखता हो।"

— क़ुरआन, 33 : 21

रसूल के रूप में आपको मुक़द्दमों (अभियोगों) के फ़ैसले का अधिकार प्राप्त था :

"(ऐ नबी !) हमने यह 'किताब' हक़ के साथ तुम्हारी ओर उतारी है, ताकि अल्लाह ने जो कुछ प्रकाश तुम्हें दिखाया है उसके अनुसार तुम लोगों के बीच फ़ैसला करो।"

— क़ुरआन, 4 :105

"तो नहीं (ऐ नबी !), तुम्हारे 'रब' की क़सम वे कदापि 'ईमानवाले' नहीं हो सकते जब तक कि यह बात न हो कि इनके बीच जो झगड़ा उठे उसमें ये तुमसे फ़ैसला कराएँ, फिर जो फ़ैसला तुम कर दो उसपर ये अपने दिल

में कोई खटक न पाएँ, और पूरे तरीक़े से मान लें।"

— क़ुरआन, 4 : 65

नबी (सल्ल०) नबी होने के नाते हाकिम और नायक भी हैं। आपकी बात माननी सबके लिए अनिवार्य है—

"और हमने जो भी 'रसूल' भेजा इसी लिए कि अल्लाह के हुक्म से उसके आदेशों का पालन किया जाए।" — क़ुरआन, 4 : 64

"ऐ ईमान लानेवालो ! अल्लाह का हुक्म मानो और रसूल का हुक्म मानो और उनका जो तुममें अधिकारी लोग हैं; फिर यदि तुम्हारे बीच किसी बारे में झगड़ा हो जाए, तो उसे अल्लाह और 'रसूल' की ओर ले जाओ यदि तुम अल्लाह और अन्तिम दिन पर ईमान रखते हो।"

— क़ुरआन, 4 : 59

नबी (सल्ल०) ईश्वरीय ग्रन्थ के व्याख्याकार भी थे। आपकी यह एक ज़िम्मेदारी थी कि आप उन आदेशों को स्पष्ट रूप से बयान करें जो अल्लाह की ओर से अवतीर्ण हों—

"और (ऐ मुहम्मद !) हमने तुमपर अनुस्मारक (क़ुरआन) उतारा है, ताकि तुम लोगों के सामने खोल-खोलकर बयान कर दो जो कुछ उनकी ओर उतारा गया है।" — क़ुरआन, 16 : 44

अल्लाह की ओर से आपको नियम बनाने, व्यवस्था या विधान करने के अधिकार भी प्राप्त थे। क़ुरआन मजीद में नबी (सल्ल०) के बारे में कहा गया है—

"वह उन्हें नेक बातों का हुक्म देता है और बुरी बातों से रोकता है। उनके लिए उत्तम चीज़ हलाल (वैध) और निकृष्ट वस्तुएँ हराम (अवैध) ठहराता है; और उनपर से वह बोझ और बन्धन उतारता है जो उनपर चढ़े हुए थे।" — क़ुरआन, 7 : 157

इससे मालूम हुआ कि हलाल व हराम (वैध-अवैध) के वे आदेश जो नबी (सल्ल०) के फ़ैसलों और आपके कथनों से उद्धृत होते हैं, उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। स्वयं नबी (सल्ल०) ने भी विधान एवं नियम सम्बन्धी अपने अधिकार का उल्लेख किया है। मिक़दाम बिन मअदी करब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा—

"जान रखो ! मुझे क़ुरआन दिया गया और उसके साथ वैसी ही एक और चीज़ भी। ख़बरदार रहो ! ऐसा न हो कि कोई पेट भरा व्यक्ति अपनी

मसनद पर बैठा हुआ कहने लगे कि तुम्हारे लिए बस इस क़ुरआन का पालन आवश्यक है। जो इसमें हलाल पाओ उसे हलाल समझो, और जो कुछ इसमें हराम पाओ उसे हराम समझो, हालाँकि जो कुछ अल्लाह का रसूल 'हराम' निर्धारित करे वह वैसा ही हराम है जैसे अल्लाह का हराम किया हुआ।" — अबू दाऊद, इब्न माजह, दारमी, हाकिम

हज़रत अबू राफ़े (रज़ि०) से उल्लिखित है कि आपने कहा—

"मैं कदापि तुममें से किसी को न पाऊँ कि वह अपनी मसनद पर तकिया लगाए बैठा हो और उसे उन आदेशों में से जिनका मैंने हुक्म दिया है या जिनको मैंने वर्जित किया है, कोई आदेश पहुँचे और वह (सुनकर) कहे कि हम नहीं जानते, हम तो जो कुछ अल्लाह की किताब में पाएँगे उसका पालन करेंगे।"

— अबू दाऊद, अहमद, इब्न माजह, तिरमिज़ी, शाफ़ई, बैहक़ी

इरबाज़ बिन सारियह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ख़ुतबा (भाषण) देने के लिए खड़े हुए और कहा—

"क्या तुममें से कोई व्यक्ति अपनी मसनद पर तकिया लगाए हुए यह समझता है कि अल्लाह ने कोई चीज़ हराम नहीं की है सिवाय उन चीज़ों के जो क़ुरआन में बयान की गई हैं? ख़बरदार! अल्लाह की क़सम, मैंने जिन बातों का हुक्म दिया है और जो उपदेश दिए हैं और जिन बातों से रोका है वे क़ुरआन ही की तरह हैं......।" — अबू दाऊद

इन हदीसों से स्पष्ट है कि अल्लाह के आज्ञाकारी लोगों के लिए रसूल के आदेशों का अनुपालन उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार क़ुरआन में वर्णित आदेशों का पालन करना उनके लिए आवश्यक है। और जिन बातों से रसूल ने उन्हें रोका है उनसे बचना भी उनके लिए उसी तरह ज़रूरी है जिस तरह उन चीज़ों से बचना ज़रूरी है जिनसे क़ुरआन में रोका गया है।

नबी की असाधारण योग्यता

अल्लाह ने सदैव 'नबियों' को असाधारण योग्यताएँ प्रदान कीं। वे अपनी असाधारण विशेषताओं और योग्यताओं के बिना उस महान् कार्य को कर ही नहीं सकते थे जो अल्लाह की ओर से उन्हें सौंपा जाता रहा है। 'नबी' वास्तव में 'नुबूवत' ही के लिए पैदा किए गए। उन्हें अत्यन्त पवित्र स्वभाव और प्रकृति प्रदान

की गई। स्वभावत: वे ऐसे थे कि बिना किसी विशेष सोच-विचार के अप
अन्तर्ज्ञान (Intuition) से ही सही निष्कर्ष तक पहुँच जाते थे। 'नबी' इनसान ही
परन्तु उन्हें इनसानियत का सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। सत्य-असत्य में अन्तर करन
उनका स्वभाव था। वे शारीरिक और आत्मिक प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण थे। अल्लाह
उनकी स्वाभाविक क्षमता को उन्नति दी और उन्हें वह चीज़ प्रदान की जिसके लि
क़ुरआन में इल्म (ज्ञान), हुक्म (निर्णय-शक्ति), हिदायत (मार्गदर्शन, Guidance)
बैयिनह (स्पष्ट प्रमाण) आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। हज़रत मूसा (अ०) के बारे
कहा गया है—

"और जब वह अपनी युवावस्था को पहुँचा और भरपूर हो गया, तो हमने उसे 'हुक्म' (निर्णय-शक्ति, तत्त्वदर्शिता) और 'ज्ञान' प्रदान किया।"

— क़ुरआन, 28 : 14

हज़रत सालेह (अ०) ने अपनी जातिवालों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"ऐ मेरी जातिवालो ! सोचो तो सही, यदि मैं अपने 'रब' की एक बैयिनह (स्पष्ट प्रमाण) पर हूँ और उसने मुझे अपनी दयालुता ('नुबूवत') प्रदान की है, तो (इसके बाद) अल्लाह के मुक़ाबले में कौन मेरी सहायता करेगा यदि मैं उसकी अवज्ञा करूँ ? अत: तुम घाटे में डालने के सिवा और मुझे कुछ नहीं दे सकते।" — क़ुरआन, 11 : 63

हज़रत यूसुफ़ (अ०) के बारे में कहा गया—

"और जब वह अपनी प्रौढ़ता (युवावस्था) को प्राप्त हुआ, तो हमने उसे 'हुक्म' (निर्णय-शक्ति) और 'इल्म' (ज्ञान) प्रदान किया।"

— क़ुरआन, 12 : 22

यह असाधारण ज्ञान और बुद्धिमत्ता हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को भी प्रदान क
गई—

"(ऐ नबी !) कहो : मैं अपने 'रब' की ओर से एक खुली दलील (अथवा स्पष्ट मार्ग) पर हूँ।" — क़ुरआन, 6 : 57

"(ऐ नबी !) कहो : मेरी राह तो यह है कि मैं पूरी सूझ-बूझ के साथ अल्लाह की ओर बुलाता हूँ, और जो मेरे अनुयायी हैं वे भी।"

—क़ुरआन, 12 : 108

"और अल्लाह ने तुमपर 'किताब' और 'हिकमत' (Wisdom) उतारी, और उसने तुम्हें वह कुछ बताया जो तुम नहीं ज़ानते थे।" — क़ुरआन, 4 : 113

कुरआन के इन शब्दों से स्पष्ट है कि अल्लाह ने 'नबी' को किताब ही प्रदान नहीं की बल्कि इसके साथ ऐसा प्रकाश एवं ज्योति भी प्रदान की जिससे नबी की हैसियत वास्तविकताओं के प्रत्यक्षदर्शी की हो जाती है। इस कारण वे सत्य और असत्य में अन्तर करते और मामलों का सही निर्णय करते और जीवन की जटिल और पेचीदा राहों में सत्य की ओर मार्गदर्शन करते हैं। यह आन्तरिक सूझ-बूझ और अन्तः प्रकाश उन्हें प्रतिक्षण प्राप्त रहता है। जिन बातों को दूसरे लोग गहरे सोच-विचार और चिन्तन के बाद भी नहीं समझ पाते, नबी की दृष्टि उसे क्षण भर में पा लेती है। इसके लिए पारिभाषिक शब्द 'वह्य-ख़फ़ी' (सूक्ष्म दैवी प्रकाशन) प्रयुक्त करते हैं। 'नबी' एक दैवीज्ञान के वातावरण में होता है जहाँ वास्तविकता निगाहों से ओझल नहीं होती। उसके मुख से जो कुछ निकलता है सत्य होता है, उसके क़दम सत्य-मार्ग की ओर ही उठते हैं। उसके स्वभाव की पवित्रता किसी असत्य चीज़ को पसन्द नहीं कर सकती। नबी को इसका पूरा ज्ञान होता है कि ईश्वरीय मार्गदर्शन प्रत्येक समय उसके साथ है। यही वह बात है जिसे आपने अपनी जिह्वा की ओर संकेत करके इन शब्दों में स्पष्ट किया—

"उस सत्ता की क़सम जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं, इससे जो कुछ निकलता है, सत्य ही होता है।"

अल्लाह की ओर से नबी को यह योग्यता और अन्तः प्रकाश इसलिए प्रदान किया जाता है, कि वह 'नुबूवत' के कार्य को ठीक तौर पर निभा सके, वह अल्लाह की किताब का अभिप्राय लोगों को बता सके और अल्लाह की इच्छा के अनुसार चरित्र और आदर्श समाज का निर्माण कर सके और लोगों को उस मार्ग पर लगा सके जो उन्हें अल्लाह से मिलाता और 'दुनिया' और 'आख़िरत' में उन्हें सफल बनाता है।

नबी का शुद्ध और निष्कलंक जीवन

जिस प्रकार अल्लाह अपने 'नबी' को असाधारण योग्यता प्रदान करता और उसे ज्ञान, तत्त्वदर्शन, प्रकाश और मार्गदर्शन से सम्मानित करता और 'वह्य' के द्वारा उसे सत्य-मार्ग दिखाता है उसी प्रकार वह अपने नबी की हर समय देख-भाल और रक्षा करता है। एक ओर वह 'नबी' के पालन-पोषण, दीक्षा आदि की विशेष व्यवस्था करता है तो दूसरी ओर वह उसे हर प्रकार की गुमराहियों और ग़लत कामों से बचाता है। यही कारण है कि 'नबियों' का 'नुबूवत' मिलने से पहले का जीवन भी निष्कलंक होता है। 'नुबूवत' के उच्च पद पर नियुक्त होने के बाद

'नबियों' को असाधारण ज्ञान, सूझ-बूझ और तत्त्वदर्शिता प्रदान की जाती है; तारि
वे सत्य-मार्ग पर दृढ़ रह सकें और लोगों को सत्य की ओर बुला सकें। मनुष्य हो
के कारण यदि कभी नबियों से सोचने-समझने में कोई ग़लती या सूक्ष्म 'वह्य' :
सूक्ष्म संकेतों को समझने में कोई भूल-चूक हो भी जाती है, तो तुरन्त ही अल्ला
उसे सुधार देता है।

हज़रत नूह (अ०) ने अपने बेटे को पानी में डूबते देखा तो पुकार उठे—

> "ऐ 'रब' ! मेरा बेटा मेरे घरवालों में से है ! और निश्चय ही तेरा वादा सच्चा है।"
>
> — क़ुरआन, 11 : 45

अल्लाह ने उसी समय बताया—

> "ऐ नूह ! वह तेरे घरवालों में से नहीं ; वह तो अशिष्ट कर्म है।"
>
> — क़ुरआन, 11 : 46

अल्लाह की 'वह्य' नबी (सल्ल०) की भी संरक्षक रही है। यदि कहीं आप
साधारण-सी भूल-चूक हुई तो तुरन्त अल्लाह की 'वह्य' ने उसका सुधार कर दिया
एक मुहिम के मौक़े पर नबी (सल्ल०) ने उन लोगों को मुहिम पर न चलने व
इजाज़त दे दी; जिन्होंने आपसे इसके लिए इजाज़त चाही थी। इसपर अल्लाह
इन शब्दों में सचेत किया—

> "(ऐ नबी !) अल्लाह तुम्हें क्षमा करे ! तुमने उन्हें (पीछे रह जानेवालों को) अनुमति क्यों दे दी (तुम उन्हें इजाज़त न देते) यहाँ तक कि वे लोग खुलकर तुम्हारे सामने आ जाते जो सच्चे हैं, और तुम झूठों को भी जान लेते ? जो लोग अल्लाह पर और अन्तिम दिन पर 'ईमान' रखते हैं वे कभी तुमसे इसकी अनुमति न चाहेंगे कि अपने धन और अपने प्राणों के साथ 'जिहाद' न करें। अल्लाह उन लोगों को जानता है जो उसका डर रखते हैं।"
>
> — क़ुरआन, 9 : 43-44

नबी (सल्ल०) के मुँह बोले बेटे हज़रत ज़ैद (रज़ि०) का हज़रत ज़ैनब (रज़ि०
से विवाह हुआ, परन्तु जब दोनों में निबाह मुश्किल हो गया तो हज़रत ज़ैद (रज़ि०
ने आपसे कहा कि मैं उन्हें तलाक़ देना चाहता हूँ। उस समय आपने हज़रत ज़ै
(रज़ि०) को ऐसा करने से रोका, हालाँकि आपको इशारा मिल चुका था कि हज़र
ज़ैद (रज़ि०) तलाक़ दे देंगे और हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) आपकी धर्म-पत्नियों
सम्मिलित होंगी; परन्तु आपने हज़रत ज़ैद (रज़ि०) से यही कहा कि अपनी पत
को तलाक़ न दो, अल्लाह से डरो। आपको डर था कि लोग कीचड़ उछालेंगे ि

देखो इस व्यक्ति ने अपने मुँह बोले बेटे की तलाक़ पाई हुई पत्नी से विवाह कर लिया। इस सम्बन्ध में क़ुरआन में कहा गया —

"(ऐ नबी !) याद करो जब तुम उस व्यक्ति से जिसपर अल्लाह ने एहसान किया और तुमने भी जिसपर एहसान किया (अर्थात् ज़ैद से) कह रहे थे : अपनी पत्नी को अपने पास रहने दो (उसे तलाक़ न दो) और अल्लाह से डरो। तुम अपने जी में वह बात छिपाए हुए थे जिसे अल्लाह खोलनेवाला था, तुम लोगों से डर रहे थे, जबकि अल्लाह इसका ज़्यादा हक़ रखता है कि तुम उससे डरो।" — क़ुरआन, 33 : 37

नबी (सल्ल०) की किसी धर्मपत्नी को या आपकी कुछ धर्म-पत्नियों को कोई चीज़ थी, जो पसन्द न थी। कुछ उल्लेखों से मालूम होता है कि वह मधु था। कुछ मधु ऐसे होते हैं जो अपने स्वाद और गन्ध की दृष्टि से कुछ लोगों को नापसन्द हो सकते हैं। नबी (सल्ल०) को मधु बहुत प्रिय था, परन्तु जब आपको मालूम हुआ कि आपकी पत्नियों में से कुछ को मधु पसन्द नहीं है तो आपने इस विचार से कि उन्हें तकलीफ़ न हो, मधु प्रयोग न करने की क़मस खा ली। इसपर अल्लाह ने क़सम तोड़ने का हुक्म दिया। अल्लाह ने इस बात को पसन्द नहीं किया कि एक हलाल (वैध) और उत्तम वस्तु का प्रयोग आप और आपके साथी छोड़ दें, इसलिए कि आपका तरीक़ा बाद में आनेवालों के लिए उदाहरण बन सकता था। क़ुरआन में स्पष्ट शब्दों में कहा गया—

"ऐ नबी ! जिस चीज़ को अल्लाह ने तुम्हारे लिए 'हलाल' किया है उसे अपनी पत्नियों को ख़ुश करने के लिए क्यों 'हराम' करते हो ? और अल्लाह अत्यन्त क्षमाशील और दयामय है। अल्लाह ने तुमपर तुम्हारी क़समों को खोलना ज़रूरी कर दिया है। अल्लाह तुम्हारा कर्त्ता-धर्त्ता है। और वह ज्ञानवाला और तत्त्वदर्शी है।" — क़ुरआन, 66 : 1-2

इन उदाहरणों से यह बात भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है कि किस प्रकार अल्लाह ने अपने नबी पर ख़ास निगाह रखी है और उसे किसी साधारण से साधारण भूल-चूक पर भी क़ायम नहीं रहने दिया। कभी कोई साधारण-सी भूल हुई भी तो तुरन्त उसे सचेत कर दिया गया।

क़ुरआन के अतिरिक्त अन्य प्रकार की 'वह्य' (वह्य ग़ैर मतलू)

असाधारण सूझबूझ और योग्यता के अतिरिक्त नबी को सदैव ईश्वरीय मार्गदर्शन भी प्राप्त रहता है। नबी का अल्लाह से सदैव सम्पर्क एवं सम्बन्ध बना

रहता है। अल्लाह की 'वह्य' सदैव नबी की ओर प्रवृत्त रहती है। अल्लाह की अ
से केवल 'किताब' ही का अवतरण नहीं होता बल्कि किताब के अतिरिक्त दूस
'वह्य' भी अल्लाह की ओर से आती है। कितने ही ऐसे नबी हुए हैं जिन पर व
किताब नहीं उतरी, फिर भी 'वह्य' ने उन्हें सम्बोधित किया। 'वह्य' के द्वारा अल्ल
ने उन्हें सत्य-मार्ग दिखाया। उनकी जाति के लोगों के लिए भी आवश्यक था
वे उनकी शिक्षाओं पर 'ईमान' लाएँ। हज़रत मूसा (अ०) को 'तौरात' उस सम
प्रदान की गई जब फ़िरऔन विनष्ट हो गया और 'बनी इसराईल' को लेकर हज़
मूसा (अ०) 'तूर' के मैदान में पहुँचे।[1] जब तक वे मिस्र में रहे, उनपर कोई कित
नहीं उतरी; परन्तु इस बीच भी हर उस व्यक्ति के लिए जिसे उन्होंने सम्बोधि
किया, उनकी शिक्षाओं और उनकी पेश की हुई बातों पर ईमान लाना आवश्य
था। क़ुरआन में ऐसे स्पष्ट संकेत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि किताब
अतिरिक्त भी नबियों के मार्गदर्शन के लिए अल्लाह की ओर से 'वह्य'
अवतरण होता था। हज़रत मूसा (अ०) फ़िरऔन के दरबार में जादूगरों के साँपो
डर जाते हैं; अल्लाह की ओर से 'वह्य' आती है—

"मत डरो, तुम्हारा ही बोलबाला होगा।" — क़ुरआन, 20 : 68

हज़रत मूसा (अ०) अल्लाह के हुक्म से 'बनी इसराईल' को लेकर रात ही
चल पड़ते हैं। दरिया पर पहुँचे तो 'वह्य' आई—

"अपनी लाठी दरिया पर मारो।" — क़ुरआन, 26 :63

ज़ाहिर है कि यह 'वह्य' वह न थी जो किताब के रूप में लोगों के मार्गदर्शन
लिए अवतीर्ण होती है।

क़ुरआन से मालूम होता है कि इस प्रकार की 'वह्य ख़फ़ी' (सूक्ष्म वह्य) स्व
नबी (सल्ल०) पर भी अवतीर्ण होती रहती थी। नबी (सल्ल०) पहले 'बैत
मक़दिस' की ओर मुख करके 'नमाज़' पढ़ा करते थे, बाद में आपको 'बैतुल हरा
को 'क़िबला' बनाने का आदेश मिला। इस आदेश में इस बात की पुष्टि की गई
प्रथम क़िबला को भी अल्लाह ही ने निश्चित किया था। कहा गया—

"और (अब तक) तुम जिस (क़िबला) पर थे उसे तो हमने केवल इसी लिए
'क़िबला' ठहराया था, ताकि हम जान लें कि कौन 'रसूल' का अनुसरण
करता है और कौन उल्टे पाँव फिर जाता है।" — क़ुरआन, 2 : 143

---

1. देखिए क़ुरआन सूरः 7, आ० 138-147, सू० 28, आ० 4-43

कुरआन की कोई ऐसी आयत नहीं पेश की जा सकती जिसमें पहले क़िबला की ओर मुँह करके 'नमाज़' पढ़ने का आदेश दिया गया हो। इससे स्पष्ट है कि नबी (सल्ल०) पर कुरआन के अतिरिक्त भी वह्य आती थी, जिसके द्वारा आपको बहुत-से ऐसे आदेश भी मिलते थे जो कुरआन में बयान नहीं किए जाते थे।

नबी (सल्ल०) ने एक बार अपनी किसी पत्नी से गुप्त रूप से कोई बात कही, उन्होंने उसे दूसरों को बता दिया। नबी (सल्ल०) को वह्य द्वारा इसकी सूचना मिल गई—

> "और जब 'नबी' ने अपनी पत्नियों में से किसी से चुपके से एक बात कही फिर जब उसने उसकी ख़बर (दूसरों को) कर दी और अल्लाह ने नबी पर उसको ज़ाहिर कर दिया, तो उसने उसका कुछ हिस्सा जता दिया और कुछ को टाल दिया। तो जब नबी ने उसे (पत्नी को) इसकी ख़बर की तो उसने कहा : आपको इसकी सूचना किसने दी? नबी ने कहा : मुझे सूचना दी ज्ञान और ख़बर रखनेवाले (अल्लाह) ने ।"
>
> — कुरआन, 66 : 3

कुरआन में कहीं कोई ऐसी 'आयत' नहीं है जिसमें नबी (सल्ल०) को सूचित किया गया हो कि तुम्हारी पत्नी ने चुपके से कही हुई बात दूसरों से कह दी।

'उहुद' संग्राम के दूसरे दिन नबी (सल्ल०) ने मुसलमानों को एकत्र करके कहा कि हमें दुश्मनों का पीछा करना चाहिए, कहीं वे दोबारा हमपर आक्रमण न कर दें। इस अवसर पर भी जबकि मुसलमान ज़ख़्मों से चूर थे, दुश्मनों का पीछा करने के लिए तैयार हो गए। कुरआन से इस बात का प्रमाण मिलता है कि दुश्मनों का पीछा करने का आदेश अल्लाह की ओर से था; जबकि कुरआन में कहीं भी कोई ऐसी आयत नहीं है जिसमें मुसलमानों को दुश्मनों का पीछा करने का हुक्म दिया गया हो। कुरआन के शब्द देखिए—

> "जिन लोगों ने अल्लाह और रसूल की पुकार सुनी (और लड़ने के लिए तैयार हो गए); जबकि वे (अभी-अभी लड़ाई में) ज़ख़्म खा चुके थे।"
>
> — कुरआन, 3 : 172

इससे स्पष्ट है कि कुरआन के अतिरिक्त भी नबी (सल्ल०) पर अल्लाह की ओर से आदेश और 'वह्य' का अवतरण होता था।

'बद्र' संग्राम (जंगे बद्र) के समाप्त होने पर सूरा 'अल-अनफ़ाल' का अवतरण हुआ। इस 'सूरा' में अल्लाह ने बद्र संग्राम की पूर्ण रूप से विवेचना की है।

विवेचना का आरम्भ करते हुए कहा गया है—

"और (याद करो) जब अल्लाह तुमसे वादा कर रहा था कि दो गिरोहों (अर्थात तिजारती क़ाफ़िला और कुरैश की सेना) में से एक तुम्हारे हाथ आ जाएगा, और तुम चाहते थे कि निर्बल गिरोह (निरस्त्र गिरोह) तुम्हारे हाथ आए और अल्लाह चाहता था कि अपने वचनों द्वारा हक़ (सत्य) को हक़ कर दिखाए, और 'काफ़िरों' की जड़ काटकर रख दे।"

— क़ुरआन, 8 : 7

यह आयत बताती है कि अल्लाह ने नबी के द्वारा यह वादा किया था कि 'ईमानवालों' को दो गिरोहों में से एक पर अधिकार प्राप्त होगा; परन्तु क़ुरआन में कहीं कोई ऐसी आयत नहीं दिखाई जा सकती जिसमें मुसलमानों से युद्ध से पूर्व यह वादा किया गया हो। इससे स्पष्ट है कि यह वादा क़ुरआन के अतिरिक्त किसी और 'वह्य' के द्वारा किया गया था।

इस बद्र संग्राम ही के सिलसिले में कहा गया है—

"(याद करो) जब तुम अपने 'रब' से फ़रियाद कर रहे थे, तो वह तुम्हारी फ़रियाद को पहुँचा कि मैं एक हज़ार लगातार आनेवाले 'फ़रिश्तों' से तुम्हारी मदद करूँगा।" — क़ुरआन, 8 : 9

मुसलमानों की फ़रियाद का उत्तर क़ुरआन की किसी 'आयत' में नहीं मिलता। इस प्रकार के दूसरे और उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि क़ुरआन के अलावा भी नबी (सल्ल०) के पास 'वह्य' आती थी।

क़ुरआन से यह भी मालूम होता है कि 'वह्य' कई प्रकार की होती है। एक 'वह्य' तो वह है जिसके द्वारा क़ुरआन का अवतरण हुआ। क़ुरआन अल्लाह के 'फ़रिश्ते' के द्वारा नबी (सल्ल०) के हृदय पर अवतरित हुआ है।[1] दूसरे प्रकार की 'वह्य' वह है जिसे 'इलक़ा' और 'इलहाम' (दैवी प्रेरणा) कहा जाता है। इसमें बात सीधे प्रत्यक्षत: मन में डाल दी जाती है। तीसरे प्रकार की 'वह्य' वह है, जिसमें परदे के पीछे से आवाज़ आए; परन्तु सामने कोई दिखाई न पड़े, जैसे—'तूर' पर्वत पर हज़रत मूसा (अ०) से अल्लाह ने कलाम (बातचीत) किया था। एक वृक्ष से सहसा आवाज़ आने लगी, परन्तु बोलनेवाला निगाहों से ओझल था।[2] इसके अतिरिक्त

1. देखिए क़ुरआन-2 : 97-98, 26 : 192-194
2. देखिए क़ुरआन-43 : 51

स्वप्न (ख़्वाब) द्वारा भी अल्लाह अपने नबी को आदेश देता है। इसकी पुष्टि भी क़ुरआन से होती है। नबी (सल्ल०) ने मदीना में स्वप्न देखा कि आप मक्का में दाख़िल हुए हैं और 'काबा' का 'तवाफ़' (परिक्रमा) कर रहे हैं। आपका यह स्वप्न पूरा हुआ। क़ुरआन ने इस बात की पुष्टि भी की कि यह स्वप्न आपको अल्लाह ने दिखाया था, जैसाकि क़ुरआन में कहा गया—

> "निस्सन्देह अल्लाह ने अपने रसूल को स्वप्न सच्चा दिखाया जिसमें 'हिकमत' थी। तुम 'मस्जिदे हराम' (काबा) में अवश्य दाख़िल होगे।"
>
> — क़ुरआन, 48 : 27

स्पष्ट हुआ कि क़ुरआन एवं हदीस दोनों का अनुपालन अनिवार्य है। हाफ़िज़ इब्न कसीर कहते हैं——

> "सुन्नत भी आप पर (नबी सल्ल० पर) 'वह्य' द्वारा अवतरित हुई जिस प्रकार कि क़ुरआन उतरा। अन्तर बस इतना है कि क़ुरआन 'वह्य मतलू' (पाठ्य दैवी संकेत) है और 'सुन्नत' वह्य ग़ैर-मतलू (अपाठ्य दैवी प्रकाशन)।"

इमाम हाज़िमी 'नासिख़ व मंसूख़' में कहते हैं—

> "हज़रत जिबरील 'हदीस' लेकर उतरते थे और आपको (नबी सल्ल० को) सिखाते थे। अतः अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का हर वह आदेश जो प्रामाणिक रूप में हम तक पहुँचा हो वह भी अवतरण में सम्मिलित है।"

नबी (सल्ल०) से जब कोई बात पूछी जाती, तो यदि आपको मालूम होती तो उत्तर देते, नहीं तो 'वह्य' की प्रतीक्षा करते और 'वह्य' आ जाने के बाद उसका उत्तर देते। इसकी मिसालें हदीस की किताबों में बहुत मिलती हैं। उदाहरणार्थ इब्न मसऊद कहते हैं—

> "नबी (सल्ल०) से आत्मा के बारे में पूछा गया, तो आप चुप रहे यहाँ तक कि 'आयत' उतरी।"
>
> — बुख़ारी

हज की हालत में ख़ुशबू लगाना वर्जित है। एक 'सहाबी' ने न जानने के कारण 'इहराम' में ख़ुशबू लगा ली और चुग़ा भी पहन लिया। उन्होंने नबी (सल्ल०) से पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिए? नबी (सल्ल०) को जवाब मालूम न था। आपके पास 'वह्य' आई, तब आपने उत्तर दिया कि ख़ुशबू धो डालो और चुग़ा निकाल दो।

क़ुरआन और सुन्नत

क़ुरआन मजीद की सम्पूर्ण वर्णन-शक्ति जिस चीज़ में व्यय होती दीख पड़ती है, वह वास्तव में ईमान, धारणा और धर्म के मौलिक सिद्धान्तों की शिक्षा है। नैतिकता, इबादत (उपासना), आचार-व्यवहार, आदि से सम्बन्धित आदेशों के अधिकतर सिद्धान्त और उनकी मौलिक बातें ही क़ुरआन में बयान की गई हैं। उन आदेशों का विस्तार और उनसे सम्बन्धित आनुषंगिक एवं गौण बातों का ज्ञान हमें नबी (सल्ल०) के कथनों और व्यवहार द्वारा मालूम होता है। नबी (सल्ल०) ने वास्तव में क़ुरआन के आदेशों को स्पष्ट किया और उनको जीवन में व्यावहारिक रूप दिया। क़ानून और नियम को विस्तृत रूप देना वास्तव में नबी का दायित्व था। क़ुरआन में कहा गया है—

"और (ऐ नबी !) हमने तुमपर अनुस्मारक (अर्थात क़ुरआन) उतारा है, ताकि तुम लोगों के लिए उस शिक्षा को स्पष्ट रूप से बयान कर दो जो कुछ उनकी ओर उतारी गई है।" — क़ुरआन, 16 : 44

नबी (सल्ल०) का वचन और कर्म क़ुरआन के सिद्धान्तों और आदेशों से भिन्न कोई चीज़ नहीं है बल्कि वह क़ुरआन की ही व्याख्या और उसका अंग है। इमाम शातबी के शब्दों में—

"मानो 'सुन्नत' को ईश्वरीय ग्रन्थ के आदेशों के अभिप्राय और अर्थ की टीका और व्याख्या का स्थान प्राप्त है।"—अल-मुवाफ़िक़ात, भाग-4, पृ० 10

यही बात ख़ाज़िन और मआलिमुत्तंज़ील आदि क़ुरआन की टीकाओं में टीकाकारों ने लिखी है। इमाम सियूती (रह०) ने लिखा है—

"कुछ स्थानों पर क़ुरआन का बयान इतना संक्षिप्त है कि 'हदीस' के बिना उसका अनुपालन कठिन है।" — मिफ़ताहुलजन्नह

इमाम औज़ाई (रह०) कहते हैं—

"किताब (क़ुरआन) को 'सुन्नत' की उससे कहीं अधिक आवश्यकता है जितनी कि 'सुन्नत' को किताब की आवश्यकता है।"

हाफ़िज़ अबू उमर इस वाक्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं। —

"उनका आशय यह है कि 'सुन्नत' क़ुरआन का अभिप्राय व्यक्त करती है।"

इमाम शातबी (रह०) ने इमाम औज़ाई (रह०) के शब्दों की व्याख्या करते हुए लिखा है—

"क़ुरआन की इबारत (उद्धरण) में कभी दो बातों और कभी इससे अधिक की संभावना होती है। हदीस उनमें से एक को निश्चित कर देती है, फिर वही क़ुरआन का अभिप्राय माना जाता है, दूसरी सम्भावनाओं को छोड़ दिया जाता है।" — अल-मुवाफ़िक़ात, भाग-4, पृष्ठ 108

हाफ़िज़ इब्न कसीर (रह०) कहते हैं—

"तुम्हारे लिए 'सुन्नत' का अनुपालन अनिवार्य है, क्योंकि वह क़ुरआन की व्याख्या और उसकी टीका है।"

इमाम शाफ़ई (रह०) कहते हैं—

"अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जो फ़ैसला किया है वह क़ुरआन से समझकर किया है। क़ुरआन में है : (ऐ नबी !) हमने हक़ के साथ यह किताब तुम्हारी ओर उतारी है, ताकि अल्लाह ने जो कुछ तुम्हें दिखाया है उसके अनुसार तुम लोगों के बीच निर्णय करो।" — क़ुरआन, 4 : 105

इमाम हज़्म ज़ाहिरी (रह०) कहते हैं—

"सम्पूर्ण 'फ़िक़्ह' (नियम एवं धर्मशास्त्र) सम्बन्धी वार्ताओं और समस्याओं का मूल आधार क़ुरआन में मौजूद है। 'सुन्नत' केवल उसे उजागर करती है जैसाकि अल्लाह ने क़ुरआन में कहा है : हमने किताब (क़ुरआन) में किसी (आवश्यक) चीज़ को नहीं छोड़ा।" — क़ुरआन, 6 : 38

यहाँ कुछ मिसालें दी जा रही हैं, जिनसे इसका भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है कि नबी (सल्ल०) ने किस प्रकार अपने कर्म और वचन द्वारा क़ुरआन की व्याख्या की और क़ुरआन के आदेशों को स्पष्ट किया और उनका वास्तविक अर्थ एवं अभिप्राय बताया।

(क) क़ुरआन में हुक्म दिया गया—

"नमाज़ के लिए उठो तो अपना मुँह और कुहनियों तक हाथ धो लिया करो, और अपने सिरों का 'मस्ह' (wiping) कर लो और अपने पाँव टखनों तक (धोओ या उनका मस्ह करो)।" — क़ुरआन, 5 : 6

नबी (सल्ल०) से मालूम हुआ कि मुँह धोने में कुल्ली करना और नाक साफ़ करना भी सम्मिलित है और सिर के 'मस्ह' के साथ कान का 'मस्ह' भी करना चाहिए। कान भी सिर ही का अंग है। पाँव पर मोज़े हों तो 'मस्ह' किया जाए, नहीं तो पाँव को धोना चाहिए। साथ ही आपने यह भी बताया कि 'वुज़ू' (clarity) किन हालतों में टूट जाता है और किन हालतों में नही टूटता।

(ख) क़ुरआन में 'नमाज़' क़ायम करने का आदेश दिया गया, परन्तु 'नमाज़' का अभिप्राय क्या है और उसके क़ायम करने का क्या अर्थ होता है ? ये समस्त बातें हमें नबी (सल्ल०) के कर्मों एवं कथनों द्वारा मालूम होती हैं। नबी (सल्ल०) की 'सुन्नत' (तरीक़ा, रीति, आचरण आदि) ही से हमें 'नमाज़' का समय, रूप, रक्अतों की संख्या, सामूहिक रूप से 'नमाज़' पढ़ने का ढग और नमाज़ से सम्बन्धित दूसरी बातों का ज्ञान होता है।

(ग) जब 'रोज़े' के बारे में यह आयत उतरी—

"(खाते-पीते रहो) यहाँ तककि सफ़ेद धागा तुम्हें काले धागे से स्पष्टतः अलग दिखाई देने लगे।" — क़ुरआन, 2 : 187

——तो अदी बिन हातिम (रज़ि०) ने दो धागे सफ़ेद और काले अपने पास रख लिए और जबतक उनमें अन्तर मालूम न हुआ, खाते-पीते रहे। सुबह को नबी (सल्ल०) से कहा कि मैंने रात को काले और सफ़ेद दो धागे अपने तकिया के नीचे रख लिए थे। आपने अदी (रज़ि०) की बात सुनकर हँसते हुए कहा कि तुम्हारा तकिया बड़ा लम्बा-चौड़ा है कि जिसमें रात और दिन दोनों समाविष्ट हो जाते हैं इससे अभिप्रेत तो रात की कालिमा और दिन का प्रकाश है। इसके पश्चात् इसके स्पष्टीकरण के लिए 'मिनल फ़ज्र' (अर्थात प्रभात की सफ़ेद धारी) का शब्द भी अवतीर्ण हुआ।

(घ) क़ुरआन से यह तो मालूम होता है कि 'हज' करना अनिवार्य है (3 : 97), परन्तु क़ुरआन ने इसको स्पष्ट नहीं किया कि जीवन में केवल एक बार 'हज' करना ज़रूरी है या प्रत्येक वर्ष 'हज' करना होगा। नबी (सल्ल०) के कथन से ज्ञात हुआ कि यदि कोई जीवन में एक बार 'हज' कर ले तो अल्लाह के आदेश का अनुपालन उसने कर लिया।

(ङ) क़ुरआन में सोने-चाँदी के एकत्र करने पर सख़्त धमकी दी गई है (9:34)। इस धमकी से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अब इसका अवसर नहीं रहा कि कोई व्यक्ति ख़र्च से अधिक एक पैसा भी अपने पास रख सके या कोई स्त्री साधारण आभूषण भी अपने पास रखे, परन्तु नबी (सल्ल०) ने स्पष्ट किया कि सोने-चाँदी का 'निसाब' (धन की वह मात्रा जिसपर 'ज़कात' देनी ज़रूरी हो) क्या है और 'निसाब' के बराबर या उससे अधिक सोना-चाँदी रखनेवाला व्यक्ति यदि ढाई प्रतिशत 'ज़कात' अदा कर दे तो क़ुरआन का डरावा और धमकी उसपर लागू नहीं होगी।

(च) क़ुरआन में खाने-पीने की कुछ चीज़ों को हराम (अवैध) और कुछ चीज़ों

को हलाल (वैध) होने का उल्लेख करके इस विषय में एक सामान्य आदेश दिया गया है—

"तुम्हारे लिए शुद्ध चीज़ें हलाल और अशुद्ध चीज़ें हराम की गई हैं।"

— क़ुरआन, 5 : 4

कौन-सी चीज़ें शुद्ध हैं जिनको हम खा सकते हैं और कौन-सी चीज़ें अशुद्ध हैं जिनको खाना हमारे लिए वैध नहीं है? इन सबका विस्तृत ज्ञान हमें नबी (सल्ल०) के व्यवहार और आदेशों के द्वारा होता है।

(छ) क़ुरआन में विरासत (उत्तराधिकार, तरका) के क़ानून का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि मरनेवाले का कोई पुत्र न हो और एक लड़की हो, तो वह तरका के आधे की हक़दार होगी (4 :11) और अगर दो से ज़्यादा लड़कियाँ हों तो उन्हें विरासत का दो तिहाई हिस्सा मिलेगा । इस आदेश में यह बात स्पष्ट न थी कि यदि दो लड़कियाँ हों तो उन्हें कितना हिस्सा मिलेगा। नबी (सल्ल०) ने बताया कि दो लड़कियों का हिस्सा भी उतना ही है जितना दो से अधिक लड़कियों के लिए निर्धारित किया गया है।

(ज) क़ुरआन में दो ऐसी लड़कियों से, जो बहनें हों, एक साथ विवाह करने से रोका गया है (4:23)। इस हुक्म से वास्तव में उस प्रेम की रक्षा अभीष्ट है जो दो बहिनों में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। नबी (सल्ल०) ने बताया कि उन दो स्त्रियों से एक साथ विवाह करना भी इसी आदेश के अन्तर्गत अवैध है जो आपस में फूफी-भतीजी या ख़ाला-भानजी हों, क्योंकि परिवर्जन का जो कारण वहाँ पाया जाता है वह यहाँ भी मौजूद है।

(झ) क़ुरआन में शराब को हराम बताया गया है। शराब के हराम होने का कारण यह है कि वह मादक और नशा लानेवाली होती है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने बताया कि प्रत्येक नशा लानेवाली चीज़ हराम है, किन्तु कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं कि यदि थोड़ी पी जाएँ तो नशा नहीं होता। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ऐसी चीज़ों का थोड़ी मात्रा में पीना कैसा है? 'हदीस' में बता दिया गया—

"जो चीज़ें अधिक मात्रा में होने पर नशा लाएँ उनकी थोड़ी मात्रा भी हराम (अवैध) है।"

(ञ) क़ुरआन में दूध के रिश्ते के कारण जिन स्त्रियों से विवाह अवैध कहा गया है वे माँ और बहिनें हैं (4 : 23)। नबी (सल्ल०) ने माँ-बहिन के साथ दूसरे रिश्तों को भी सम्मिलित किया। जिस किसी स्त्री का भी किसी व्यक्ति ने दूध पिया

है वह माता के सदृश है और उसका पति, पिता के सदृश है। इस रिश्ते से भी वे सभी रिश्ते हराम ठहरेंगे जो माता-पिता के रिश्ते से हराम होते हैं।

(ट) क़ुरआन नें चोरी की सज़ा हाथ काटना बताया गया है। परन्तु यह नहीं बताया गया कि यह सज़ा कितने माल की चोरी करने पर दी जाएगी? इसी प्रकार क़ुरआन में यह बात भी नहीं बताई गई कि चोर का कितना हाथ काटा जाएगा। ये सारी बातें हमें 'सुन्नत' से मालूम होती हैं।

(ठ) क़ुरआन में कहा गया है—

"तलाक़ पाई हुई स्त्रियाँ तीन 'क़ुरूअ' तक अपने आपको इन्तिज़ार में रखें।" — क़ुरआन, 2 : 228

'क़ुरूअ' शब्द से अभिप्रेत स्त्रियों के मासिक धर्म (माहवारी) और शुद्धावस्था (पाकी) दोनों ही हो सकते हैं। 'सुन्नत' से यह बात स्पष्ट हुई कि यहाँ 'क़ुरुअ' से अभिप्रेत मासिक धर्म है। हदीस में है "लौण्डी की तलाक़ दो हैं और उसकी 'इद्दत दो माहवारी।"[1] इससे स्पष्ट हुआ कि 'क़ुरूअ' से अभिप्रेत 'हैज़' (माहवारी) है, न कि पाकी की हालत 'तुहर'। यदि ऐसा होता तो कहा जाता कि लौंडी की 'इद्दत' दो 'तुहर' (पाकी की हालत) है।

(ड) जब यह आयत उतरी—

"जो लोग 'ईमान' लाए और अपने ईमान को कुछ ज़ुल्म के साथ मिश्रित नहीं किया, उन्हीं लोगों के लिए निश्चिन्तता है और वही राह पाए हुए लोग हैं।" — क़ुरआन, 6 : 82

——तो 'सहाबा' घबरा गए। नबी (सल्ल०) की सेवा में पहुँचे, निवेदन किया : ऐ अल्लाह के रसूल! हममें कौन है जिससे ईमान लाने के पश्चात् ज़ुल्म या पाप का कोई कर्म न हुआ हो। आपने कहा यहाँ ज़ुल्म से अभिप्रेत 'शिर्क' (बहुदेववाद) है। जैसाकि दूसरी 'आयत' में 'शिर्क' को ज़ुल्म शब्द से अभिव्यंजित किया गया है—

"निस्सन्देह 'शिर्क' बहुत बड़ा ज़ुल्म (घोर अन्याय है)।"

— क़ुरआन, 31 : 13

यह उत्तर सुनकर 'सहाबा' (रज़ि०) का संशय जाता रहा और उनकी घबराहट दूर हो गई।

एक बार नबी (सल्ल०) ने कहा कि 'क़ियामत' के दिन जिस किसी से हिसाब

---

1. नस्बुर्राय-भाग-3, पृ० 326

लिया गया समझ लो वह विनष्ट हुआ। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल ! क़ुरआन में तो कहा गया है—

"तो जिस किसी को उसका (कर्म) पत्र उसके दाहिने हाथ में दिया गया, उससे आसान हिसाब लिया जाएगा।" — क़ुरआन, 84 : 7-8

नबी (सल्ल०) ने कहा : 'आसान हिसाब' का अर्थ तो बस पेश करना है। अर्थात् ब्योरा उसके सामने रखकर उसे बता दिया जाएगा कि तूने ये-ये कर्म किए हैं, परन्तु उससे पूछताछ न होगी। यदि किसी से यह प्रश्न कर लिया गया कि यह कर्म क्यों किया, तो निश्चय ही उसकी ख़ैर नहीं। — बुख़ारी, मुस्लिम

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि 'सुन्नत' (नबी सल्ल० के कर्म एवं कथन) वास्तव में क़ुरआन के आदेशों का ही विस्तार है। क़ुरआन की आयत है—

"और (ऐ नबी !) हमने तुमपर यह अनुस्मारक (क़ुरआन) उतारा है ताकि तुम लोगों के सामने खोल-खोलकर (उस शिक्षा आदि को) बयान कर दो, जो कुछ उनकी ओर उतारा गया है।" — क़ुरआन, 16 : 44

इस 'आयत' से स्पष्ट होता है कि 'हदीस' या 'सुन्नत' वास्तव में क़ुरआन की टीका या बयान है। बयान के बहुत-से भेद किए जा सकते हैं, प्रत्येक पहलू से 'हदीस 'या 'सुन्नत' को क़ुरआन का बयान ही कहेंगे। यहाँ हम बयान (स्पष्टीकरण) के कुछ भेदों का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे—

1. बयाने तफ़सील (विस्तार सम्बन्धी बयान)

'आयत' के किसी संक्षिप्त संकेत को 'हदीस' खोल देती हो उसे बयाने तफ़सील कहेंगे।

2. बयाने तअयीन (निश्चय सम्बन्धी बयान)

'आयत' में अर्थ सम्बन्धी विभिन्न सम्भावनाओं में से हदीस किसी एक को निश्चित करती हो।

3. बयाने ताकीद

'आयत' और 'हदीस' का विषय एक ही हो। 'हदीस' से केवल आयत का समर्थन एवं पुष्टि होती हो।

4. बयाने तक़रीर (निर्धारण सम्बन्धी बयान)

'हदीस' क़ुरआन की किसी 'आयत' के प्रति होनेवाले अर्थ सम्बन्धी संदेह को दूर करके उसके अर्थ को स्पष्टतः व्यक्त करती हो।

5. बयाने इलहाक़ (संहिता सम्बन्धी बयान)

किसी 'आयत' के छोड़े हुए विषय या मज़मून के साथ मिलकर हदीस उसे पूरा करती या उसे कुछ विस्तृत करती हो।

6. बयाने तख़सीस (विशेषत्व सम्बन्धी बयान)

'आयत' का अर्थ देखने में सामान्य हो; परन्तु 'हदीस' उसे किसी विशेष व्यक्ति से सम्बद्ध करती हो।

7. बयाने तौजीह (स्पष्टीकरण सम्बन्धी बयान)

'आयत' में उल्लिखित आदेश या शिक्षा का कारण 'हदीस' से मालूम होता हो।

8. बयाने तअलील (हेतु सम्बन्धी बयान)

'आयत' में उल्लिखित शिक्षा या आदेश का हेतु एवं उद्देश्य 'हदीस' से व्यक्त होता हो।

9. बयाने तासीर (गुण एवं प्रभाव सम्बन्धी बयान)

'आयत' के प्रभाव और गुण को 'हदीस' व्यक्त करती हो।

10. बयाने तहदीद (सीमा निर्धारण सम्बन्धी बयान)

किसी 'आयत' के हुक्म की सीमाएँ 'हदीस' से स्पष्ट होती हों।

11. बयाने तमसील (उदाहरण सम्बन्धी बयान)

'आयत' के किसी सार्विक सिद्धान्त के किसी आनुषंगिक प्रसंग का उल्लेख 'हदीस' में हुआ हो।

12. बयाने तफ़रीअ (निष्कर्ष सम्बन्धी बयान)

'आयत' के किसी सार्विक सिद्धान्त से 'हदीस' कोई आनुषंगिक या गौण प्रसंग निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करती हो।

13. बयाने क़यास (अनुमान सम्बन्धी बयान)

'हदीस' किसी उभयनिष्ठ हेतु के आधार पर 'आयत' के किसी आनुषंगिक प्रसंग के अनुरूप कोई आनुषंगिक प्रसंग प्रस्तुत करती हो।

14. बयाने इसतिख़राज (उद्धरण सम्बन्धी बयान)

'आयत' के किसी आनुषंगिक प्रसंग से 'हदीस' ने कोई सार्विक सिद्धान्त उद्धृत करके प्रस्तुत किया हो।

कुरआन और हदीस से यहाँ प्रत्येक बयान के उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं, परन्तु हम यहाँ केवल संक्षिप्त संकेतों पर बस करते हैं।

अब यह बात स्पष्ट हो गई कि 'सुन्नत' (नबी सल्ल० का व्यवहार और वचन) वास्तव में क़ुरआन के आदेशों का विस्तार है। 'सुन्नत' से क़ुरआन के अभिप्राय का स्पष्टीकरण होता है। बहुत-सी हदीसें ऐसी भी हैं जिनसे क़ुरआन की आयतों का केवल समर्थन होता है। उदाहरणार्थ एक हदीस है—"चाँद देखकर रोज़ा रखना शुरू करो और चाँद देखकर रोज़ा रखना बन्द करो।" यह हदीस क़ुरआन की इस आयत के आदेश की पुष्टि करती है—

> "रमज़ान का महीना वह है जिसमें कुरआन (पहले-पहल) उतारा गया, जो लोगों के लिए एक मार्गदर्शन है, और (जिसमें) मार्गदर्शन की खुली निशानियाँ हैं और जो (सत्य और असत्य को अलग कर देनेवाली) कसौटी है, तो तुममें से जो कोई इस महीने को पाए, उसे चाहिए कि उसके रोज़े रखे।" — क़ुरआन, 2 : 185

सुन्नत का अनुसरण

नबी (सल्ल०) के कर्म, वचन और आपके तरीक़े का अनुपालन हमारे लिए अनिवार्य है। आपकी 'नुबूवत' और 'रिसालत' किसी विशेष युग तक सीमित नहीं। आप (सल्ल०) 'नबी' होने के समय से लेकर 'क़ियामत' तक सारे ही लोगों के रसूल हैं :

> "(ऐ नबी !) हमने तो तुम्हें समस्त इनसानों के लिए शुभ सूचना देनेवाला और सचेतकर्त्ता बनाकर भेजा है, परन्तु अधिकतर लोग जानते नहीं हैं।"
>
> — क़ुरआन, 34 : 28

एक दूसरे स्थान पर कहा गया—

> "और (कहो :) यह क़ुरआन मेरी ओर 'वह्य' किया गया है, ताकि मैं इससे तुम्हें और जिस किसी को यह पहुँचे सबको सचेत कर दूँ।"
>
> —क़ुरआन, 6 : 19

एक दूसरे स्थान पर कहा गया—

> "और (ऐ मुहम्मद !) हमने तुम्हें सारे संसार के लिए 'रहमत' (दयालुता) ही बनाकर भेजा है।" — क़ुरआन, 21 : 107

मालूम हुआ कि आप (सल्ल०) की 'रिसालत' केवल आपके अपने ही समय

के लिए न थी। 'क़ियामत' तक अल्लाह के आदेशों के अनुपालन के साथ आप आदेशों का पालन करना भी आपके अनुयायियों का कर्त्तव्य है। क़ुरआन की य शिक्षा 'क़ियामत' तक के लिए है।

"ऐ ईमान लानेवालो! अल्लाह का हुक्म मानो, और 'रसूल' का हुक्म मानो और उनका जो तुममें अधिकारी लोग हैं, फिर यदि तुम्हारे बीच किसी बारे में झगड़ा हो जाए तो उसे अल्लाह और रसूल की ओर ले जाओ।"
— क़ुरआन, 4 : 59

अधिकारी लोग जो आदेश देंगे उनका पालन करना भी मुसलमानों के लि आवश्यक है। शर्त यह है कि वे 'अल्लाह' और 'रसूल' के आदेश के प्रतिकूल हों, बल्कि मौलिक रूप से वे उनके अनुरूप हों। मतभेद की दशा में सदैव अल्ल और रसूल की ओर रुजू करना चाहिए। मुस्लिम व्यक्ति के लिए केवल क़ुरअ के आदेशों ही का अनुपालन काफ़ी नहीं है, 'सुन्नत' का अनुसरण भी उसके लि अनिवार्य है। यही कारण है कि नबी (सल्ल०) कहते हैं—

"तुम जिस तरह मुझे नमाज़ पढ़ते देखते हो उसी तरह नमाज़ अदा करो।"
— बुख़ारी

अपने अन्तिम 'हज' के अवसर पर नबी (सल्ल०) ने कहा—

"लोगो! तुम हज से सम्बद्ध रीतियाँ मुझसे सीख लो, कदाचित् मैं तुम्हें इस वर्ष के बाद न देखूँ।"

नबी (सल्ल०) कहते हैं—

"जिस किसी ने मेरी सुन्नत से इनकार किया उसका मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं।"[1]

नबी (सल्ल०) की वसीयत है—

"मैंने तुम्हारे पास दो चीज़ें छोड़ी हैं, जब तक तुम उन्हें मज़बूती से पकड़े रहोगे, कदापि गुमराह न होगे—अल्लाह की 'किताब' और अल्लाह के रसूल की 'सुन्नत'।"

नबी (सल्ल०) के बाद किसी दूसरे नए 'नबी' के आने की सम्भावना भी न है, इसलिए कि 'नुबूवत' का सिलसिला आपपर समाप्त कर दिया गया है :

"(लोगो!) मुहम्मद तुम्हारे मर्दों में से किसी के बाप नहीं हैं, परन्तु वे

1. बुख़ारी, मुस्लिम—हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित।

अल्लाह के 'रसूल' और 'नबियों' के समापक हैं, और अल्लाह को हर चीज़ का ज्ञान है।" — क़ुरआन, 33 : 40

स्वयं नबी (सल्ल०) के कथनों से भी यही मालूम होता है कि 'नुबूवत' का सिलसिला आपपर समाप्त हो गया है।[1] उदाहरणार्थ नबी (सल्ल०) ने कहा है—

"मैं नबियों का समापक हूँ, मेरे बाद कोई 'नबी' नहीं।" — मुस्लिम

अब 'क़ियामत' तक नबी (सल्ल०) ही के अनुसरण में मानव-कल्याण और मुक्ति है। आपके द्वारा अल्लाह ने अपने 'दीन' को पूर्ण कर दिया[2] और उसके सदा सुरक्षित रहने का वादा किया है।[3] अल्लाह की किताब के साथ रसूल (सल्ल०) की 'सुन्नत' का अनुपालन मुस्लिमों के लिए आवश्यक है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। सहाबा (रज़ि०) और 'दीन' के दूसरे महान, योग्य और विद्वान व्यक्तियों ने क़ुरआन के साथ 'सुन्नत' के अनुपालन को अपने लिए अनिवार्य समझा। 'सुन्नत' की उपेक्षा या उसका इनकार उस पद्धति के सर्वथा प्रतिकूल है जिसपर नबी (सल्ल०) अपने अनुयायियों को छोड़कर गए थे। 'सहाबा' का तरीक़ा यह था कि उन्हें हर अवसर पर नबी (सल्ल०) की 'सुन्नत' की तलाश होती थी। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के सामने कोई मामला आता तो वे पहले उसका हुक्म अल्लाह की किताब और रसूल (सल्ल०) की सुन्नत ही में तलाश करते थे। किसी मामले में वे इजतिहाद[4] (Initiation) उसी समय करते थे जब अल्लाह की किताब और रसूल की सुन्नत में उसके लिए कोई हुक्म और आदेश न पाते।[5] हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने अपने सर्वप्रथम 'ख़ुत्बे' (भाषण) में कहा था—

"मेरा हुक्म मानो जब तक मैं अल्लाह और उसके रसूल का हुक्म मानता रहूँ, किन्तु यदि मैं अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा करूँ तो मेरा कोई आज्ञापालन तुम्हारे लिए अनिवार्य नहीं।"

एक औरत अपने पोते की मीरास की माँग कर रही थी, जिसकी माँ मर चुकी

---

1. हदीस-सौरभ प्रथम भाग, अध्याय 'रिसालत पर ईमान' में 'नुबूवत' की समाप्ति से सम्बद्ध हदीसें देखिए।
2. देखिए क़ुरआन, 5 : 3
3. देखिए क़ुरआन, 22 : 9
4. नए मामलों में क़ुरआन, 'सुन्नत' और धर्म के मौलिक नियमों के प्रकाश और सोच-विचार करके धर्म का आदेश निर्धारित करना।
5. एअलामुल मुवक़्क़िईन, भाग-1, पृ० 54

थी। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) कहते हैं—

"अल्लाह की किताब में कोई ऐसा आदेश नहीं जिसकी दृष्टि से तुझे हक़ पहुँचता हो, और रसूल की 'सुन्नत' की दृष्टि से तेरा कोई हक़ मुझे मालूम नहीं, अतः इस समय वापस जा, यहाँ तककि मैं लोगों से मालूम करूँ।"

इसके बाद उन्होंने लोगों से पूछा तो हज़रत मुग़ीरह बिन शोअ्बह (रज़ि०) और मुहम्मद बिन मसलेमा (रज़ि०) ने खड़े होकर गवाही दी कि उनकी मौजूदगी में नबी (सल्ल०) ने दादी को छठा हिस्सा दिलाया है। इसके बाद हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने इसी के अनुसार उस औरत को छठा हिस्सा दिलाया।[1]

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने अपनी बेटी हज़रत आइशा (रज़ि०) को कुछ माल देने को कहा था, परन्तु उन्हें याद नहीं रहा कि यह माल उन्होंने आइशा को दिया या नहीं। मृत्यु के समय उन्होंने हज़रत आइशा (रज़ि०) से कहा कि यदि तुमने वह माल ले लिया है तब तो वह तुम्हारे पास रहेगा (वह तुम्हें हिबा हो चुका), परन्तु यदि अभी तक तुमने उसे अपने क़बज़े में नहीं लिया है, तो अब वह मेरे सब वारिसों में तक़सीम होगा। यह बात उन्होंने इसलिए कही कि यदि माल अभी तक क़बज़े में नहीं लिया गया है तो उसकी हैसियत केवल वसीयत की रहती है, और 'हदीस' में है—

"वारिस के लिए कोई वसीयत नहीं।"

इसके अनुसार मरनेवाले की संपत्ति में किसी वारिस के लिए वसीयत करना उचित नहीं हो सकता था।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) 'ज़कात' रोकनेवालों से लड़ने का निश्चय करते हैं। हज़रत उमर (रज़ि०) को इस निश्चय के सही होने में संदेह होता है। वे कहते हैं कि आप उनसे किस तरह लड़ेंगे जबकि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा है कि मुझे हुक्म दिया गया है कि मैं लोगों से लड़ूँ यहाँ तककि वे इसको मान लें कि अल्लाह के सिवा कोई 'इलाह' (उपास्य) नहीं। जब वे इसे मान लेगें तो वे मुझसे अपने माल और अपने प्राण को बचा लेंगे, किन्तु हक़ के साथ (यदि उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई करनी पड़ी तो वह दूसरी बात है), और उनका हिसाब अल्लाह के ज़िम्मे है। (अब जबकि वे इसको मानते हैं कि अल्लाह के सिवा कोई उपास्य नहीं तो आप उनसे किस तरह लड़ेंगे ?) हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने कहा—

---

1 मुवत्ता, बुख़ारी, मुस्लिम।

"अल्लाह की क़सम मैं उनसे अवश्य लड़ूँगा जो 'नमाज़' और 'ज़कात' के बीच अन्तर करते हैं। 'ज़कात' माल का हक़ है (जिस प्रकार 'नमाज़ आत्मा का हक़ है)। अल्लाह की क़सम यदि वे ऊँट बाँधने की रस्सी भी रोक लेंगे जो वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के समय में देते थे, तो मैं उनसे लड़ूँगा।" —बुख़ारी, मुस्लिम

हज़रत उमर (रज़ि०) का मसलक और तरीक़ा भी वही था जो हज़रत अबू बक्र सद्दीक़ (रज़ि०) का था। जब मजूस का देश इस्लामी राज्य में सम्मिलित हुआ तो ह़ज़रत उमर (रज़ि०) को संकोच हुआ कि मजूस से 'जिज़या' लिया जाए या न लिया जाए। क़ुरआन में केवल 'किताबवालों' से 'जिज़या' लेने का उल्लेख है और क़ुरआन की भाषा में 'किताबवालों' से अभिप्रेत 'यहूद' और 'नसारा' हैं। अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) ने इस बात की गवाही दी कि नबी (सल्ल०) ने हजर के 'मजूस' से 'जिज़िया' लिया है। इसके बाद हज़रत उमर (रज़ि०) को उनसे 'जिज़या' लेने में कोई संकोच नहीं हुआ।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने क़ाज़ी शुरैह के नाम अपने एक पत्र में लिखा था कि यदि कोई मामला ऐसा सामने आए जिसके बारे में अल्लाह की किताब में कोई आदेश न हो, तो उसका फ़ैसला उस हुक्म के अनुसार करें जो उसके बारे में 'रसूल' की 'सुन्नत' में मिलता हो। और यदि कोई ऐसा मामला हो कि उसके बारे में अल्लाह की किताब और 'रसूल' की 'सुन्नत' दोनों ही ख़ामोश हों, तो उस क़ानून का अनुसरण करें जिसपर 'इजमाअ' (unanimity) हो चुका हो।[1] और यदि उसके बारे में कोई इजमाअ न हुआ हो तो फिर 'इज्तिहाद'[2] (Initiation) से काम लेने का अधिकार है या फिर प्रतीक्षा करें कि उस बारे में कोई 'इजमाअ' हो जाए। हज़रत उमर (रज़ि०) ने उन्हें यह भी लिखा था कि मेरी दृष्टि में प्रतीक्षा करना ज़्यादा अच्छा है।[3]

हज़रत उमर (रज़ि०) का विचार था कि पति की 'दियत'[4] से पत्नी को विरासत

---

1. अर्थात मुस्लिम समुदाय का कोई निर्णय हो चुका हो।
2. नए विषयों में 'क़ुरआन' और 'सुन्नत' और इस्लाम के मौलिक नियमों के प्रकाश में सोच-विचार का हुक्म मालूम करना।
3. एलामुल मुवक़्क़िईन
4. क़त्ल और ख़ून के बदले का धन। वह धन जो किसी की हत्या करने पर उसके घरवालों को दिलाया जाए।

न मिलनी चाहिए, परन्तु जब उन्हें इस बात की सूचना मिली कि नबी (सल्ल०) पति की 'दियत' से पत्नी को विरासत दिलाई है तो उन्होंने अपने क़ौल से रुजू क लिया।

एक बार हज़रत उमर (रज़ि०) ने एलान किया कि किसी व्यक्ति ने नब (सल्ल०) से इसके बारे में कुछ सुना है कि यदि झगड़े में किसी औरत का गर्भपा हो जाए तो उसकी 'दियत' क्या है? हमल बिन मालिक (रज़ि०) ने खड़े होक कहा कि एक बार दो औरतों में लड़ाई हो गई। एक औरत ने दूसरी औरत को ख़े की लकड़ी से मारा जिसकी चोट से उसका गर्भपात हो गया। नबी (सल्ल०) वे सामने मामला लाया गया तो आपने उसपर दियत के पाँच सौ दिरहम ज़रू ठहराए। यह सुनकर हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा कि यदि हम यह 'हदीस' सुनते और अपनी राय से फ़ैसला करते तो शायद इसके विरुद्ध फ़ैसला कर जाते।

हज़रत उमर (रज़ि०) के बाद हज़रत उसमान (रज़ि०) 'ख़लीफ़ा' हुए। उन्हों स्पष्ट रूप से कहा कि वे 'किताब' (क़ुरआन) और 'सुन्नत' के पाबन्द होंगे औ भूतपूर्व 'ख़लीफ़ा' हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) के उ फ़ैसलों और तरीक़ों का अनुसरण करेंगे जो मुसलमानों के मतैक्य और सहमति न नियत हो चुके होंगे। और स्वयं उनके अपने समय में जो बातें भले लोगों वे मतैक्य से तय होंगी उन्हें व्यवहार में लाएँगे।[1]

हज़रत अली (रज़ि०) ने ख़लीफ़ा होने के बाद मिस्रवालों को जो सरका आदेश क़ैस बिन सअद बिन उबादह के हाथ भेजा था उसमें लिखा था कि हमप तुम्हारा यह हक़ है कि अल्लाह की किताब और उसके रसूल की 'सुन्नत' वे अनुसार कार्य करें, और तुमपर वह हक़ क़ायम करें जो 'किताब' और 'सुन्नत' व दृष्टि से हक़ हो और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सुन्नत को जारी (प्रचलित करें और तुम्हारी बेख़बरी की हालत में भी तुम्हारा हित करते रहें।

चारों 'ख़लीफ़ा' के अतिरिक्त दूसरे 'सहाबा' भी 'किताब' और 'सुन्नत' व अन्तिम सनद (Ascription) वस्तु और अन्तिम प्रमाण (Final Authority) समझ थे। वे अपने को अल्लाह के रसूल की 'सुन्नत' के विरुद्ध निर्णय करने व अधिकारी नहीं समझते थे। रूमी सरकार और हज़रत मुआवियह (रज़ि०) के बी एक समझौते के अन्तर्गत एक नियत समय तक युद्ध बन्द हो गया। जब व

1. तारीख़े तबरी भाग 2, पृष्ठ 446

वधि समाप्त होने को आई तो हज़रत मुआवियह (रज़ि०) ने सेना के साथ शत्रु के ा की ओर प्रस्थान कर दिया। उन्होंने सोचा कि समझौते की जो मुद्दत है उसमें ाक्रमण नहीं करेंगे, परन्तु मुद्दत समाप्त होते ही अचानक हमला कर देंगे। एक न उन्हें दूर से एक सवार आता दिखाई दिया जो ऊँचे स्वर से कह रहा था—

"अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर! प्रतिज्ञा पूरी करनी है, उसे भंग नहीं करना है।"

वह सवार अम्र बिन अबसह (रज़ि०) थे। हज़रत मुआवियह (रज़ि०) ने हा—

"क्या बात है?"

उन्होंने कहा कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना है—

"जिस व्यक्ति का किसी जाति से कोई समझौता हो तो उस समझौते में कोई परिवर्तन न करे, जब तक कि (समझौते की) मुद्दत न गुज़र जाए या उस जाति को सूचित न कर दे।"

हज़रत मुआवियह (रज़ि०) ने यह सुना तो अपनी सेना के साथ वापस हो गए।

हज़रत उमर (रज़ि०) के बाद हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) और दूसरे ाबा (रज़ि०) ने हज़रत उसमान (रज़ि०) को 'खलीफ़ा' चुना तो उनके हाथ पर इन ब्दों में बैअ्त की—

"हम आपके हाथ पर इस शर्त पर बैअ्त करते हैं कि आप अल्लाह की 'किताब', अल्लाह के रसूल की 'सुन्नत' और दोनों भूतपूर्व खलीफ़ाओं के तरीक़े पर कार्य करेंगे।"

हज़रत इब्न उमर 'मुख़ाबरह' (बटाई पर मामला करना) किया करते थे। जब फ़ेअ बिन ख़दीज की इस सम्बन्ध में निषेध की रिवायत पहुँची तो उन्होंने ख़ाबरह' करना छोड़ दिया। इसी तरह हज़रत ज़ैद (रज़ि०) हाइज़ह (रजस्वला) के ए भी 'तवाफ़े सद्र' करना ज़रूरी समझते थे, परन्तु जब हज़रत इब्न अब्बास ज़ि०) ने बयान किया कि नबी (सल्ल०) ने 'तवाफ़े सद्र' छोड़ने की अनुमति दी है उन्होंने अपने क़ौल से रुजू कर लिया।

अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ि०) से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने यह 'नज़्र' की है वह हमेशा 'रोज़ा' रहेगा। संयोग से उसके बाद ही ईदुलअज़्हा या ईदुलफ़ित्र त्योहार आ गया (जिसमें रोज़ा रखने से नबी सल्ल० ने रोका है) तो क्या वह दिनों में भी रोज़ा रखे? उन्होंने कहा नहीं और यह 'आयत' पढ़ी :

"निश्चय ही तुम लोगों के लिए अल्लाह के 'रसूल' में एक उत्तम आदर्श है।"
— क़ुरआन, 33 : 21

"नबी (सल्ल०) ईदुलअज़हा और ईदुलफ़ित्र में न ख़ुद रोज़ा रखते थे और न रोज़ा रखना पसन्द करते थे।"
— बुख़ारी

हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि०) कहते हैं : "जिसे कोई फ़ैसला क हो तो वह अल्लाह की किताब से करे, यदि उसमें मौजूद न हो तो नबी (सल्ल की हदीस के अनुसार फ़ैसला करे।" हज़रत अब्दुल्लाह इब्न अब्बास (रज़ि०) भी इसी तरह उल्लिखित है।[1]

सहाबा (रज़ि०) के बाद दूसरे धर्माधिकारियों और विद्वानों ने भी रस (सल्ल०) की 'सुन्नत' को वही स्थान दिया जो स्थान 'सहाबा' (रज़ि०) ने दिया थ हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) एक व्यक्ति को अपने पत्र में लिखते हैं–

"मैं तुझे वसीयत करता हूँ अल्लाह का डर रखने की और उसके हुक्म पर चलने की और उसके नबी की 'सुन्नत' का अनुसरण करने की, और जो बातें 'बिदअत'[2] वालों ने निकाली हैं उन्हें छोड़ने की। 'बिदअत' वालों ने ये बातें उस समय निकालीं हैं, जबकि 'सुन्नत' जारी (प्रचलित) हो चुकी थी। ये लोग 'सुन्नत' को पीछे डालकर उसके अनुसरण से बेपरवाह हो गए। तुझपर 'सुन्नत' का अनुपालन अनिवार्य है, क्योंकि यह चीज़ अल्लाह के आज्ञानुसार तुझे (पथभ्रष्टता से) सुरक्षित करनेवाली है।"
— अबू दाऊद

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) के इन शब्दों से स्पष्ट है कि उन दृष्टि में ईमानवालों के लिए 'सुन्नत' का अनुसरण आवश्यक एवं अनिवार्य है और यही सुरक्षित मार्ग है जिसके द्वारा इनसान अपने-आपको हर प्रकार आपदाओं और गुमराहियों से बचा सकता है। वे स्वयं भी 'सुन्नत' के अनुवर्ती और दूसरों को भी 'सुन्नत' के पालन करने पर उभारते थे।

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) के समय में एक ग़ुलाम बेचा गय बाद में उसमें कोई ऐब साबित हुआ तो उसके खरीदनेवाले ने उसकी वापसी का दा कर दिया। ग़ुलाम के द्वारा जो आमदनी इस बीच हुई थी उसके बारे में झगड़ा पै

1. अल-मुवाफ़िक़ात, भाग 4, पृष्ठ 7-8
2. बिदअत—सुन्नत को छोड़कर उसकी जगह नई विधि और प्रथा का प्रचलन करना।

हुआ कि वह किसे मिलेगी। हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) का विचार था कि आमदनी की राशि विक्रेता को दी जाए, परन्तु जब उन तक हज़रत आइशा (रज़ि०) की 'रिवायत' पहुँची की नबी (सल्ल०) का यह फ़ैसला है कि आमदनी क्रेता को मिलनी चाहिए, क्योंकि इस बीच में यह ग़ुलाम मर जाता तो हानि क्रेता ही की होती, अतः जिसकी हानि होती लाभ भी उसी को मिलना चाहिए। इसके बाद हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) ने अपने विचार से रुजू कर लिया।

इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) कहते हैं कि मुझे जब कोई हुक्म अल्लाह की किताब में मिल जाता है तो मैं उसी को थाम लेता हूँ। जब उसमें नहीं मिलता तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की 'सुन्नत' और आपकी 'हदीसों' को लेता हूँ जो विश्वसनीय लोगों के द्वारा सुप्रसिद्ध हैं। फिर जब न अल्लाह की किताब में हुक्म मिलता है और न रसूल (सल्ल०) की 'सुन्नत' में, तो मैं रसूल (सल्ल०) के 'सहाबा' (अर्थात सहाबा रज़ि० के 'इजमाअ' जिसमें वे एकमत हैं) का अनुसरण करता हूँ, और उनके मतभेद की दशा में जिस सहाबी का क़ौल चाहता हूँ, स्वीकार करता हूँ और जिसका चाहता हूँ छोड़ देता हूँ, परन्तु उन सबके क़ौल से बाहर जाकर किसी का क़ौल इख़तियार नहीं करता। रहे दूसरे लोग तो जैसे उन्होंने 'इजतिहाद' किया, मैं भी 'इजतिहाद' करता हूँ।[1]

एक दिन किसी ने इमाम अबू हनीफ़ा से कहा कि आप नबी (सल्ल०) के हुक्म का उल्लंघन करते हैं। इमाम (साहब) ने कहा—

> "अल्लाह की उसपर फिटकार जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का विरोध करता है! आप (नबी सल्ल०) ही के कारण अल्लाह ने हमें सम्मान प्रदान किया और आप (सल्ल०) ही के कारण हमने मुक्ति पाई।"[2]

अल्लामा इब्नुल क़ैयिम (रह०) ने इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) के निष्कर्षण के नियम का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे सर्वप्रथम दर्जा अल्लाह की किताब और सही 'हदीसों' को देते हैं। यदि वे न मिलें तो सहाबा (रज़ि०) के क़ौल को, वे भी न हों तो फिर 'क़ियास' (Comparing Analogy)[3] से काम लेने से पहले देख

---

1. ख़तीब की 'तारीख़े बग़दाद', भाग-13, ज़हबी की किताब 'मनाक़िबे इमाम अबू हनीफ़ा व साहिबैन', पृष्ठ 20, मनाक़िब इमामे आज़म लिल मुवफ़्फ़क़िल मक्की, भाग-1, पृष्ठ 79
2. इब्न अब्दुल बर्र की अल-इन्तिक़ा, पृष्ठ 140-141
3. किताब एवं 'सुन्नत' आदि के प्रकाश में किसी विषय में स्वयं विचार करके उसका हुक्म मालूम करना।

लेना चाहिए कि कोई ऐसी 'रिवायत' मौजूद है जो यद्यपि सही होने के उच्च स्तर पर न हो, किन्तु बिलकुल ऐसी न हो कि प्रमाण भी न बन सकती हो। ऐसी हालत में इमाम अहमद के विचार में इस प्रकार की 'हदीस' को दलील बनाना चाहिए। उनके विचार में 'मुरसल' और 'ज़ईफ़' हदीस को 'क़ियास' की अपेक्षा प्राथमिकता एवं प्रमुखता प्राप्त है। उन्होंने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि 'ज़ईफ़' से अभिप्रेत असत्य और 'मुन्कर' हदीस नहीं है, बल्कि इतना ही है कि वे विशुद्धता की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि की हदीसें न हों।[1]

पहले लोगों की परिभाषा में 'ज़ईफ़' (कमज़ोर) का आशय वह नहीं है जो बादवालों की परिभाषा में है; बल्कि जिस 'हदीस' को बाद के लोग 'हसन' कहते हैं उसी को अगले लोग 'ज़ईफ़' कहते हैं।[2]

इब्न क़ैयिम लिखते हैं कि इमाम अहमद इस नीति में अकेले नहीं हैं, बल्कि सभी इमामों की यही नीति रही है।[3] इब्न क़ैयिम ने इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के ऐसे 'फ़तवों' (शास्त्रीय निर्णयों और शरई हुक्मों) को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया है जो इस नियम पर आधारित हैं। इब्न क़ैयिम इमाम मालिक (रह०) के विषय में लिखते हैं कि इमाम मालिक की दृष्टि में हदीस 'मुरसल', 'मुनक़तेअ' और 'बलाग़ात'[4] और 'सहाबी' के क़ौल को 'क़ियास' के मुक़ाबले में प्राथमिकता प्राप्त है।[5]

यहाँ यह बात सामने रहनी चाहिए कि इमाम मालिक (रह०) जिन 'मुरसल' 'मुनक़तेअ', और 'बलाग़ात' को प्रमाणीकरण का आधार ठहराते थे, उनके विचार में उन 'रिवायतों' को प्रमाणिक हैसियत प्राप्त थी।[6]

इमामों और धर्माचारियों अथवा धर्म के विधिज्ञों के अतिरिक्त दूसरे पुण्यात्माओं और महानुभावों का भी यही तरीक़ा था कि वे 'क़ुरआन' और 'सुन्नत' दोनों ही को धर्म का मौलिक आधार समझते थे। उन्होंने क्षण भर के लिए भी यह नहीं सोचा कि 'सुन्नत' का अनुसरण एवं अनुपालन अनिवार्य नहीं है। 'हदीस' के

---

1. एअ्लामुल मुवक़्क़िईन, भाग 1, पृष्ठ 25
2. एअ्लाम भाग 1, पृष्ठ 64
3. एअ्लाम भाग 1, पृष्ठ 25
4. बलाग़ात से अभिप्रेत मुअत्ता की वे रिवायतें हैं, जिनको 'बलागह' से बयान किया गया है।
5. एअ्लाम भाग 1, पृष्ठ 26
6. मुसफ़्फ़ा, पृष्ठ 7, 13

क़ाबले में वे किसी की बात को भी दलील नहीं समझते थे। हज़रत जुनैद (रह०) हते हैं—

"उन लोगों के अतिरिक्त जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पदचिह्नों पर चले, शेष सबके लिए अल्लाह तक पहुँचने के मार्ग बन्द हैं।" [1]

हज़रत ज़ुन्नून मिस्री (रह०) कहते हैं—

"अल्लाह से प्रेम करनेवाले का एक लक्षण यह है कि वह अल्लाह के हबीब प्यारे रसूल (सल्ल०) का अनुसरण करे। आपकी मनोदशा में भी, कर्मों में भी, आदेशों और हुक्मों में भी और आपकी 'सुन्नतों' में भी।"[2]

हज़रत इब्न अता (रह०) का कहना है—

"कोई मक़ाम भी अल्लाह के हबीब हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के आदेशों, आपके कर्मों और आपके स्वभाव का अनुसरण करने के मक़ाम से उच्च नहीं।"[3]

ुन्नत की हिफ़ाज़त

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जीवन का सीधा और सरल मार्ग पाने केलिए ी (सल्ल०) का अनुसरण जिस प्रकार नबी (सल्ल०) के समय के लोगों केलिए निवार्य था, ठीक उसी प्रकार 'क़ियामत' तक के लोगों के लिए अनिवार्य । इसके लिए ज़रूरी है कि क़ुरआन के साथ 'रसूल की सुन्नत' और आप ल्ल०) के आदेश भी सुरक्षित हों। इस पहलू से देखते हैं तो मानना पड़ता है कि ल्लाह ने क़ुरआन के साथ 'सुन्नत' की भी हिफ़ाज़त की है।

नबी (सल्ल०) ने अपने जीवनकाल में एक ओर तो अपने कर्म और वचन से रआन अर्थात अल्लाह के आदेशों को स्पष्ट किया, दूसरी ओर आपने इस्लामी यमों के अनुसार लोगों के चरित्र का निर्माण किया और उन्हें एक सुसंगठित और क्तिशाली समुदाय बनाया। विचार और धारणाओं से लेकर व्यावहारिक जीवन समस्त अंगों तक समाज का निर्माण आप (सल्ल०) ही के निश्चय किए हुए यमों के आधार पर हुआ। आपके सिखाए हुए ढंग पर नमाज़, रोज़ा आदि

रिसालह क़ुशैरियह, पृष्ठ 11
रिसालह क़ुशैरियह, पृष्ठ 8
वही। पृष्ठ 23

'इबादतों' और उपासनाओं के तरीक़े प्रचलित हुए। शादी-विवाह, तलाक़, विरास आदि के जो नियम और व्यवस्था इस्लामी समाज ने ग्रहण की वह वही थी ज आपने नियत की थी। युद्ध में शत्रुओं से आपने जो मामला किया, पराजित जाति साथ आपने जो व्यवहार किया, वही इस्लामी राज्य का नियम और ज़ाबता समझ गया। घर से लेकर मस्जिद, बाज़ार, न्यायालय और शासन से लेकर अन्तर्राष्ट्री राजनीति तक सभी मामलों में नबी (सल्ल०) की 'सुन्नत' आपके अनुयायियों लिए एक क़ानून, नियम और ज़ाबते की हैसियत रखती थी। मुसलमानों ने उ क़ानून और ज़ाबते के रूप में ग्रहण भी किया। इसी ज़ाबते और क़ानून के अनुस इस्लामी समाज में एक चीज़ हलाल (वैध) समझी जाती थी और एक चीज़ हरा (अवैध) होती थी। इस्लामी समाज की, उसके अपने समस्त तत्त्वों और पहलुओं साथ, नबी (सल्ल०) की 'सुन्नत' पर, स्थापना हुई। आपके बाद यह समाज बा रहा और इस इस्लामी समाज के व्यवहार और आचरण ने बाद की शताब्दियों 'सुन्नत' की हिफ़ाज़त की।इसकी पुष्टि इससे भी होती है, जब हम देखते हैं ि 'हदीस' के प्रामाणिक उल्लेखों और इस्लामी समुदाय के निरन्तर व्यवहार में को विभेद नहीं पाया जाता, बल्कि उनके बीच पूर्णत: अनुकूलता पाई जाती है।

कुछ 'सुन्नतें' ऐसी हैं जो नबी (सल्ल०) के जीवनकाल में प्रसिद्ध न हो सक थीं। उनका ज्ञान विभिन्न लोगों को था जिसे उन लोगों ने नबी (सल्ल०) के क वचन आदि को देख-सुनकर प्राप्त किया था। नबी (सल्ल०) के स्वर्गवास होने तुरन्त बाद ही ऐसी 'सुन्नतों' के एकत्र करने का सिलसिला शुरू हो गया।

नबी (सल्ल०) अपने जीवनकाल में लोगों के पथप्रदर्शन के लिए स्वयं मौज थे, परन्तु आपके बाद इसकी आवश्यकता हुई कि आपकी वे 'सुन्नतें' भी जमा क जाएँ जिनका ज्ञान अभी हर व्यक्ति को नहीं हो सका था। जन-साधारण से लेक जजों और अधिकारियों सभी को अपने-अपने क्षेत्र में ऐसे मामले पेश आते जिनके बारे में उन्हें 'सुन्नत' के ज्ञान की आवश्यकता होती थी। जिन लोगों के पा नबी (सल्ल०) की किसी 'सुन्नत' का ज्ञान था वे भी उसे एक अमानत समझते थे वे इस बात को जानते थे कि उनके पास जो ज्ञान भी है उसे दूसरों तक पहुँचा उनका कर्त्तव्य है। इस प्रकार 'हदीस' की 'रिवायत' का शुभारम्भ हुआ अ 'हदीस' जमा करने का यह सिलसिला सन् 11 हिजरी से तीसरी-चौथी शताब हिजरी तक चलता रहा।

नबी (सल्ल०) का स्वर्गवास सन् 11 हि० में हुआ। सन् 40 हि० तक बड़े-ब सहाबा मौजूद थे। सन् 60 हि० तक आम 'सहाबा' लोगों के बीच पाए जाते थे

सन् 93 हि० तक 'सहाबा' में से कुछ महान् व्यक्ति मौजूद रहे हैं। हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) वह 'सहाबी' हैं, जिनका देहान्त 'सहाबा' में सबसे अन्त में हुआ। कुछ उल्लेखों से मालूम होता है कि आप सन् 99 हि० तक जीवित रहे। आपके देहान्त के अवसर पर एक व्यक्ति ने कहा—

> "आज आधा ज्ञान विदा हो गया। जब कोई ग़लत धारणा रखनेवाला हमारा विरोध करता तो हम उससे कहते कि हम उस व्यक्ति के पास चलें, जिसने प्रत्यक्ष रूप से नबी (सल्ल०) से 'हदीसें' सुनी हैं।"

महमूद बिन रबीअ (रज़ि०) 89 वर्ष तक नबी (सल्ल०) के बाद जीवित रहे। हज़रत अबुत्तुफ़ैल (रज़ि०), जिनका नाम आमिर बिन वासलह है, के देहान्त के बारे में जरीर बिन हाज़िम कहते हैं—

> "मैं सन् 110 हि० में मक्का में था। उसी समय में मैंने एक जनाज़ा देखा। मुझे बताया गया कि यह अबुत्तुफ़ैल (सहाबी) का जनाज़ा है।"

इसका अर्थ यह हुआ कि नबी (सल्ल०) के बाद 99 साल तक सहाबा की जमाअत का एक व्यक्ति मौजूद रहा है।

नबी (सल्ल०) के बाद 'सहाबा' (रज़ि०) आपकी 'सुन्नत' की हिफ़ाज़त और उसके प्रचार एवं प्रसार की ओर से असावधान न हुए। कम से कम सन् 93 हि० तक 'सहाबा' को प्रत्यक्षतः नबी (सल्ल०) की 'हदीस' की सेवा का अवसर मिला है। अबुल आलिया का बयान है कि जब हम बसरा में 'हदीसें' सुन लेते थे, तो फिर मदीना में आकर 'सहाबा' (रज़ि०) से उन 'हदीसों' की पुष्टि करा लेते थे।

हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) यमन में, मुस्लमा बिन मुहम्मद (रज़ि०) मिस्र में, इब्न मसऊद (रज़ि०) इराक़ में, अब्दुल्लाह बिन उनैस (रज़ि०) सीरिया में, हज़रत अली (रज़ि०) कूफ़ा में, उबादह बिन सामित (रज़ि०) हिम्स में नबी (सल्ल०) के आदेशों के प्रचार एवं प्रचालन का कार्य करते रहे। बाद में मआज़ बिन जबल (रज़ि०) और उबादह बिन सामित (रज़ि०) फ़िलस्तीन (Palestine) गए और वहाँ क़ुरआन और 'सुन्नत' की सेवा का कार्य-भार सँभाल लिया। अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) बसरा में थे। उनके साथ इमरान बिन हुसैन (रज़ि०) भी थे। कूफ़ा में अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) से सामूहिक रूप में बहुत बड़ी संख्या में लोग 'हदीस' सुनने आते थे। यही हालत दूसरे 'सहाबा' की भी थी। हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) बसरा पहुँचे तो एलान किया—

> "मुझे उमर (रज़ि०) ने तुम्हारी ओर भेजा है, ताकि मैं तुम्हें तुम्हारे 'रब' की

किताब और तुम्हारे नबी की 'सुन्नत' की शिक्षा दूँ।"

सहाबा (रज़ि०) ने तो नबी (सल्ल०) के जीवन में 'हदीस' की हिफ़ाज़त में न असावधानी दिखाई और न आपके बाद उन्होंने कभी अपने दायित्व को भुलाया। हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) कहते हैं—

"हम नबी (सल्ल०) की 'हदीसों' की हिफ़ाज़त करते थे और आपकी 'हदीसें' तो इसी लिए हैं कि उनकी हिफ़ाज़त की जाए।"

'हदीसों' को एकत्र करने के साथ ही गढ़ी हुई 'हदीसों' को सही 'हदीसों' में सम्मिलित करने के प्रयास को असफल बनाने की हर संभव कोशिश की गई। विशेष रूप से उन 'सुन्नतों' की जो नियम और क़ानून आदि से सम्बन्ध रखती थीं, हर प्रकार से जो संभव हो सकता था छानबीन की गई और आलोचना के कड़े से कड़े नियमों पर उन्हें परखा गया। तर्क-वितर्क और आलोचना की उस सामग्री को भी सुरक्षित कर दिया गया जिसके कारण किसी 'रिवायत' को छोड़ा गया या किसी 'हदीस' को क़बूल किया गया। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को यह अवसर प्राप्त है कि वह किसी भी 'रिवायत' या 'हदीस' के विषय में निश्चयात्मक निर्णय तक पहुँच सके। 'मुहद्दिसों' (हदीस के विशेषज्ञों) का यह ऐसा महान कार्य है जिसके द्वारा नबी (सल्ल०) का जीवन और उस समाज का, जिसका निर्माण आपके हाथों हुआ था, पूरा नक़्शा सदैव के लिए सुरक्षित हो गया। आपके एक-एक कथन की 'सनद' को सुरक्षित कर दिया गया, जिसे किसी समय भी जाँचकर सरलतापूर्वक यह निर्णय किया जा सकता है कि कोई 'रिवायत' किस दर्जे की है और कहाँ तक उसपर विश्वास किया जा सकता है।

हदीस का प्रसारण एवं प्रचार

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि 'हदीसें' आरंभ-काल से ही बयान की जाने लगीं और कम से कम दो शताब्दी तक मुसलमान 'हदीसों' के सुनने और उन्हें दूसरों तक पहुँचाने में लगे रहे। प्राचीन समय में घटनाओं और वृत्तान्तों को सुरक्षित रखने और उन्हें बाद के लोगों तक पहुँचाने का मुख्य साधन यह था कि वृत्तान्तों को याद रखा जाए और मौखिक रूप से उन्हें दूसरों तक पहुँचाया जाए। अरब निवासी हज़ारों वर्ष से लिखने के बजाय अधिकतर मौखिक एवं स्मरणशक्ति से अपना काम चलाते आए थे। उन्हें स्मरण-शक्ति और विशुद्ध रूप में बात को दूसरों तक पहुँचाने में विशिष्टता प्राप्त थी। वे इसके पूर्णतः अभ्यस्त थे। वे कवियों के काव्य ही को नहीं, क़बीलों की वंशावली, बल्कि घोड़ों तक की वंशावली को

याद रखते थे और अपनी सन्तान को याद कराते थे। फिर यह कैसे संभव था कि ये लोग अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जैसे महान पुरुष के जीवन-वृत्तान्त और आपके जीवन की घटनाओं और आपकी बातचीत को भूल जाते और उसे अपने बाद के लोगों तक न पहुँचाते। नबी (सल्ल०) से 'सहाबा' (रज़ि०) को जो गहरा सम्बन्ध था इतिहास में कहीं और उसकी मिसाल नहीं मिलती। 'सहाबा' के हृदय पर नबी (सल्ल०) का जो प्रभाव था उसका अनुमान करना भी हमारे लिए कठिन है। उनकी दृष्टि में तो जीवन का वही दिन सबसे मूल्यवान था जो नबी (सल्ल०) के साथ व्यतीत हुआ; वे आप (सल्ल०) की हर बात को ध्यानपूर्वक सुनते थे और आपके प्रत्येक कार्य को देखते थे और इस एहसास के साथ सुनते और देखते थे कि उसे अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से अपनाना है। इस तरह का उदाहरण भी मिलता है कि दो 'सहाबी' आपस में निश्चय करते हैं कि हममें से कोई न कोई हर समय नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित रहे और वह एक-दूसरे को नबी (सल्ल०) की बातों और आदेशों से सूचित करे, ताकि आपकी किसी एक बात से भी हम अनभिज्ञ न रहें।[1] जब हार्दिक सम्बन्ध इस प्रकार का हो तो नबी (सल्ल०) के साथी आपकी बातों को याद रखने में असावधानी कैसे दिखा सकते थे? जो लोग नबी (सल्ल०) का दर्शन नहीं कर सके थे और न उन्हें आपके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हो सका था; स्वभावतः उन्हें इसकी लालसा थी कि वे आपकी प्रत्येक बात सुनें और आपके जीवन-चरित्र से परिचित हों। इतिहास के पृष्ठों में इस प्रकार के वृत्तान्त मिलते हैं कि लोगों को जहाँ कहीं किसी 'सहाबी' की सूचना मिलती, वे सैकड़ों मील चलकर मुलाक़ात करते और नबी (सल्ल०) के विषय में जानना चाहते।

नबी (सल्ल०) की ओर से 'सहाबा' को इसकी इजाज़त थी, बल्कि आपने उन्हें इसकी ताकीद की थी कि आदेशों और हिदायतों को जो उन्हें अल्लाह के रसूल से मिलें, याद रखें और उन्हें दूसरों तक पहुँचाएँ। इस सिलसिले की कुछ हदीसें यहाँ प्रस्तुत की जाती है :

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा—

---

1. हज़रत उमर (रज़ि०) कहते हैं कि मैं और मेरा एक अनसार पड़ोसी नबी (सल्ल०) की सेवा में बारी-बारी हाज़िर होते थे। एक दिन वे हाज़िरी देते और एक दिन मैं हाज़िर रहता। जिस दिन मैं हाज़िर रहता उस दिन के वृत्तांत और 'वह्य' आदि का विवरण उन्हें सुनाता और जिस दिन वे हाज़िर होते उस दिन का वृत्तांत वे मुझे सुनाते। —बुख़ारी

"जो उपस्थित है वह उन लोगों तक पहुँचाए जो उपस्थित नहीं है, संभव है वह किसी ऐसे व्यक्ति को पहुँचा दे जो उससे अधिक समाईवाला हो।"

— बुख़ारी, मुस्लिम

ज़ैद बिन साबित (रज़ि०), अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०), ज़ुबैर बिन मुतइम (रज़ि०) और अबूद्दरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा—

"अल्लाह उस व्यक्ति को प्रफुल्ल रखे जो हमसे कोई बात सुने, उसे सुरक्षित रखे यहाँ तककि वह दूसरों तक पहुँचाए। कभी ऐसा होता है कि एक व्यक्ति स्वयं 'फ़क़ीह' (समझ-बूझवाला) नहीं होता, परन्तु 'फ़िक़्ह' (ज्ञान एवं समझ) का वाहक हो जाता है।"

—अबू दाऊद, तिरमिज़ी, अहमद, इब्न माजह, दारमी

बहरैन (Bahrein) से बनी अब्दुल क़ैस का प्रतिनिधि मण्डल नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ। वापसी के समय मण्डल के लोगों ने आपसे निवेदन किया कि आप (सल्ल०) हमें कुछ ऐसी हिदायतें दें जो हम वापस जाकर अपनी जाति के लोगों को बताएँ और 'जन्नत' के अधिकारी हों। आप (सल्ल०) ने 'दीन' (धर्म) के कुछ आदेश दिए और कहा—

"इन बातों को याद कर लो और वहाँ के लोगों को बता दो।"

— बुख़ारी, मुस्लिम

इब्न अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा—

"तुम मुझसे सुनते हो और लोग तुमसे सुनेंगे, फिर जिन लोगों ने तुमसे सुना होगा उनसे दूसरे लोग सुनेंगे।" — अबू दाऊद

सहाबा (रज़ि०) ने 'हदीस' के प्रचार का असाधारण प्रयास किया। बुख़ारी में हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) का यह कथन मिलता है—

"यदि तुम मेरी गर्दन पर तलवार रख दो और मुझे इस बात की आशा हो कि मैं मरने से पहले अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का एक 'कलिमा' (बात) भी, जो मैंने सुना है, कह सकूँगा, तो मैं अवश्य कह दूँगा।"

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के समय में अल्पायु थे। वे 'सहाबा' (रज़ि०) के दरवाज़े पर केवल इसलिए प्रातः काल से संध्या तक बैठे रहते थे कि नबी (सल्ल०) की कोई बात बयान करें तो ये उसे नोट कर लें।

— दारमी

इन रिवायतों से स्पष्ट है कि नबी (सल्ल०) की ओर से सहाबा (रज़ि०) को सकी अनुमति प्राप्त थी कि वे जो कुछ आपसे सुनें उसे दूसरों तक पहुँचा दें। कर्म र वचन तो बड़ी चीज़ है, 'सहाबा' (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की चाल-ढाल और पकी एक-एक अदा को सुरक्षित करने की कोशिश की है। उदाहरणार्थ हज़रत अ्ज़ मुज़नी (रज़ि०) की एक 'रिवायत' को लीजिए। वे कहते हैं कि एक बार ने गिना तो नबी (सल्ल०) ने मज्लिस में सौ बार ईश्वर से क्षमा याचना स्तग़फ़ार) की। इससे अनुमान किया जा सकता है कि किस प्रकार नबी ल्ल०) की एक-एक अदा पर सहाबा (रज़ि०) की निगाह रहती थी।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक ओर सहाबा (रज़ि०) को 'हदीसों' के प्रचार ताकीद की, दूसरी ओर आपने 'हदीसों' में ऐसी चीज़ों को मिलाने से सख़्ती के थ बचने की ताकीद की जो वास्तव में 'हदीस' न हों। इस सिलसिले की कुछ दीसें' ये हैं :

हज़रत सलमा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को यह कहते सुना है—

"जो व्यक्ति मुझसे सम्बन्ध लगाकर वह बात कहे जो मैंने नहीं कही, वह अपना ठिकाना 'जहन्नम' में बना ले।" — बुख़ारी

अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा—

"मेरी बातें 'रिवायत' करो[1], इसमें कोई हरज की बात नहीं है। परन्तु जो कोई जान-बूझकर मेरी ओर झूठी बात जोड़ेगा, वह अपना ठिकाना 'जहन्नम' में बनाएगा।" — मुस्लिम

इब्न अब्बास (रज़ि०), इब्न मसऊद (रज़ि०) और जाबिर बिन अब्दुल्लाह ज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा—

"मेरी ओर से कोई बात बयान करने से बचो; सिवाय उसके जिसके बारे में तुम जानते हो कि वह मैंने कही है। क्योंकि जो व्यक्ति मेरी ओर से झूठी बात जोड़ेगा वह अपना ठिकाना 'जहन्नम' में बनाएगा।"

— तिरमिज़ी, इब्न माजह

सहाबा (रज़ि०) को इसका पूरा एहसास था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का ी बात से सम्बन्ध जोड़ना, जो आपकी कही हुई न हो, साधारण गुनाह नहीं है, ल्क एक ऐसा गुनाह है जिसकी सज़ा 'जहन्नम' है। यही कारण है कि वे नबी

---

[1] अर्थात उनको दूसरों तक पहुँचाओ और उनका प्रचार करो।

(सल्ल०) की ओर से कोई बात बयान करने में बड़ी सावधानी से काम लेते थे
सहाबा (रज़ि०) में कोई एक मिसाल भी नहीं पेश की जा सकती कि 'सहाबा'
किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अपनी ओर से कोई बात गढ़कर नबी (सल्ल०)
उसका सम्बन्ध जोड़ा हो। सहाबा (रज़ि०) का हाल यह था कि जब वे कोई 'हदीस
बयान करते तो काँप उठते। जहाँ उन्हें कुछ भी संदेह होता कि शायद नब
(सल्ल०) के अपने शब्द कुछ और रहे हों वहाँ वे आम बात बयान करने के पश्चा
'औ कमा क़ा-ल रसूलुल्लाहु (सल्ल०)' कह देते थे, ताकि सुननेवाला शब्दों व
तथैव नबी (सल्ल०) के शब्द न समझे।

इससे इनकार नहीं कि पहली शताब्दी हिजरी के अन्त से 'हदीसों' में ऐस
'रिवायतें' सम्मिलित होने लगीं जो मन-गढ़न्त थीं। 'हदीस' के भण्डार में यदि कु
मन-गढ़ंत 'हदीसें' सम्मिलित भी हुईं तो 'मुहद्दिसों' (हदीस के विशेषज्ञों) व
छान-बीन और उनके आलोचना सम्बन्धी सिद्धान्तों ने उन्हें छाँटकर रख दिया
इसी उद्देश्य के लिए 'मुहद्दिसों' ने 'असमाउर्रिजाल' के फ़न (तकनीक) व
अनुसंधान किया।

हदीस का लिपिबद्ध होना

अरब के लोग दीर्घ काल से स्मरण से और मौखिक रूप से अपना का
चलाने में अभ्यस्त रहे हैं। इस्लाम के प्रारम्भिक काल में वर्षों तक उनमें य
विशिष्ट गुण बाक़ी रहा है। आरंभ में जिस चीज़ को सुरक्षित करने के लि
लिपिबद्ध करना आवश्यक समझा गया, वह क़ुरआन था। इसका विशेष कारण य
था कि क़ुरआन के प्रत्येक शब्द को उस विशेष क्रम के साथ सुरक्षित करना अभी
था जो अल्लाह ने उसके लिए नियत किया था। क़ुरआन अपने शब्द, अर्थ और क्र
आदि प्रत्येक दृष्टि से 'वह्य' (ईश्वर-प्रेषित) था। इसलिए उसकी प्रत्येक चीज़ व
सुरक्षित रखना आवश्यक था। 'सुन्नत' में नबी (सल्ल०) के वचन और कर्म दो
सम्मिलित हैं। कर्म एवं व्यवहार सम्बन्धी 'सुन्नत' का 'सहाबा' (रज़ि०) अप
शब्दों में बयान करते थे। उदाहरणार्थ—आपका स्वभाव ऐसा था, आपने यह का
किया आदि। आपके वचन और आपके मुख से निकले हुए शब्दों का उल्ले
करने के विषय में भी 'सहाबा' (रज़ि०) पर यह पाबन्दी न थी कि वे नबी (सल्ल
के शब्दों को अक्षरशः ही बयान करें। वे नबी (सल्ल०) की बातों को सुनव
उसके अर्थ और भाव को बदले बिना उसे अपने शब्दों में बयान कर सकते थे अ
उन्होंने अपने शब्दों में बयान भी किया।

'हदीस' को लिपिबद्ध करने का वह महत्त्व न था जो महत्त्व क़ुरआन को लिपिबद्ध करने का था। क़बीला क़ुरैश में केवल गिने-चुने व्यक्तियों को लिखना-पढ़ना आता था। मदीना के 'अनसार' में भी 11 से अधिक व्यक्ति न थे जिन्हें लिखना-पढ़ना आता था। काग़ज़ अप्राप्य था। लिखने के लिए झिल्लियाँ, हड्डियाँ और खजूर के पत्ते काम में लाए जाते थे। ऐसी स्थिति में सबसे आवश्यक था कि क़ुरआन करीम को ऐसा सुरक्षित रखा जाए कि दूसरी चीजें उसमें मिलने न पाएँ। लिखनेवाले केवल थोड़े से लोग थे जो क़ुरआन लिख रहे थे। वे यदि दूसरी चीज़ें भी लिखने लगते तो इसका भय था कि कहीं क़ुरआन में दूसरी चीज़ें न मिल जाएँ। इन्हीं कारणों से आरंभ में नबी (सल्ल०) ने 'हदीसों' को लिखने से रोका था, परन्तु यह रुकावट अधिक समय तक नहीं रही। 'हिजरत' के बाद आप मदीना पहुँचे, वहाँ आपने शिक्षा का प्रबन्ध किया। जल्द ही अच्छी संख्या में ऐसे लोग हो गए जो लिख-पढ़ सकते थे। फिर आपने 'हदीसों' के लिखने की अनुमति दे दी। इस सिलसिले की 'रिवायतें' बहुत-सी हैं। हम यहाँ केवल अत्यन्त प्रामाणिक रिवायतों का उल्लेख करते हैं।

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) का बयान है कि 'अनसार' में से एक व्यक्ति ने कहा—

"मैं आपसे बहुत-सी बातें सुनता हूँ, परन्तु याद नहीं रख पाता।"

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा—

"अपने हाथ से सहायता लो।"

और नबी (सल्ल०) अपने हाथ के इशारे से बताया कि लिख लिया करो।

— तिरमिज़ी

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने एक ख़ुतबा (भाषण) देया। अबू शाह ने कहा—"मेरे लिए लिखा दीजिए।" आपने कहा—

"इसे अबू शाह को लिखकर दे दो।" — बुख़ारी, अहमद, तिरमिज़ी

अबू हुरैरह (रज़ि०) की एक दूसरी 'रिवायत' से मालूम होता है कि यह ख़ुतबा नबी (सल्ल०) ने मक्का की विजय के अवसर पर दिया था और इस ख़ुतबे में आपने हरमे मक्का से सम्बन्धित आदेश और क़त्ल के मामले के सम्बन्ध में कुछ क़ानून बयान किए थे। यमनवालों में से एक व्यक्ति ने कहा था कि ये आदेश मुझे लिखवा दें।

अब्दुल्लाह बिन हुकैम से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का

एक लेख हमारे क़बीला 'जुहैनह' के पास पहुँचा जिसमें विभिन्न 'हदीसें' थीं और यह रिवायत भी थी कि मुर्दार जानवर का चमड़ा और पुट्ठे बिना पकाए हुए काम मे न लाओ। — तिरमिज़ी

नबी (सल्ल०) ने अपने जीवन के अन्तिम समय में 'हदीस' की एक बड़ी किताब लिखाकर अम्र बिन हज़्म (रज़ि०) के द्वारा यमनवालों के पास भेजी थी उसमें क़ुरआन की तिलावत (वाचन), नमाज़, रोज़ा, ज़कात, तलाक़, ग़ुलाम आज़ाद करना, क़िसास (प्रतिहत्या), दियत (हत्या के बदले का रुपया जो हत्यारे से हत्यादण्ड के रूप में लिया जाए) और दूसरे बहुत-से आदेश और बड़े गुनाहों का विवरण अंकित था।[1]

इस किताब को 'हदीस' की पहली किताब कहना उचित है। इस किताब के विषय में अल्लामा इब्न क़ैयिम लिखते हैं—

> "वह बहुत बड़ी किताब है, जिसमें बहुत-से 'फ़िक़्ह' के (धर्मशास्त्र सम्बन्धी) विषय—ज़कात, दियत, आदेश, बड़े गुनाह, तलाक़, ग़ुलाम आज़ाद करने, नमाज़, क़ुरआन छूने और अन्य बातों से सम्बन्धित आदेश लिखे हुए हैं। इमाम अहमद बिन हंबल कहते हैं कि निश्चय ही नबी (सल्ल०) ने स्वयं यह किताब लिखवाई थी।"
>
> — ज़ादुल मआद, भाग-1, पृष्ठ 30

हज़रत अम्र बिन हज़्म (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के 21 अन्य फ़रमान (आदेश भी संचित किए। इब्न तूलून (Toulon) ने जो पुस्तक संकलित की उसमें ये तमाम फ़रमान मौजूद हैं। दिमिश्क़ (Damascus) की सुप्रसिद्ध अकादमी अल-जमउल अरबी ने उन्हें प्रकाशित भी कर दिया है।

नबी (सल्ल०) ने अम्र बिन हज़्म (रज़ि०) को जो लेख लिखवाकर दिया था उसके बारे में मुहम्मद बिन शिहाब ज़ुहरी का बयान है कि यह किताब चमड़े पर लिखी हुई थी और अम्र बिन हज़्म (रज़ि०) के पौत्र के पास मौजूद थी। वे उसे मेरे पास लाए थे, मैंने उसे पढ़ा भी था। — नसई

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) का बयान है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपने जीवन के अन्तिम समय में अपने आमिलों (कर्मचारियों) के पास भेजने के लिए 'किताबुस्सदक़ा' लिखवाई थी, परन्तु अभी वह भेजी नहीं गई थी कि

1. दारक़ुली, दारमी, बैहक़ी, मुस्नद अहमद, मुवत्ता इमाम मालिक, नसई।

आपके संसार से प्रस्थान करने की घटना घटित हुई। आपके बाद जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ख़लीफ़ा हुए तो वह 'आमिलों' के पास भेजी गई। 'किताबुस्सदक़ा' में जानवरों की 'ज़कात' से सम्बन्धित आदेश थे। — तिरमिज़ी

नबी (सल्ल०) ने विभिन्न अवसरों पर फ़ौजदारी और दीवानी के क़ानून, मीरास और 'ज़कात' से सम्बद्ध आदेश लिखाकर अपने उन पदाधिकारियों को दिए थे, जिन्हें आपने विभिन्न इलाक़ों में भेजा था। इन आदेशों को 'हदीस' की किताबों और इतिहास के पृष्ठों में हर व्यक्ति देख सकता है। इसके अतिरिक्त नबी (स०) के भेजे हुए पत्र, सन्धि-पत्र और जागीरों के 'वसीक़े' (अधिकार-पत्र) हैं, जिन्हें आपने लिखाकर और मुहर लगाकर बादशाहों और विभिन्न क़बीलों के सरदारों के पास भेजा था या विभिन्न लोगों के हवाले किए थे। इस प्रकार के पत्रों और वसीक़ों को डाक्टर हमीदुल्लाह ने एकत्र किया है, जो 'मजमूअतुल वसायकुस्सियासियह' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह में वे पत्र और वसीक़े भी सम्मिलित हैं जो नबी (सल्ल०) के बाद होनेवाले चारों ख़लीफ़ा ने, जिन्हें 'ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन' कहा जाता है, लिखे थे। इस संग्रह में नबी (सल्ल०) के लिखाए हुए जो पत्र और वसीक़े सम्मिलित हैं उनकी संख्या 281 है। इन पत्रों में वह पत्र भी है जो नबी (सल्ल०) ने मिस्र (Egypt) के सम्राट् मक़ोक़स के नाम भेजा था। इस पत्र का उल्लेख 'हदीस' की किताबों में हुआ है। मिस्र के भग्नावशेष की खुदाई में यह पत्र प्राप्त हुआ है और आज भी मौजूद है। इस पत्र के शब्द वही हैं जो हदीस की किताबों में मिलते हैं। इस पत्र का और आपके प्राप्त कुछ अन्य पत्रों का छाया-चित्र प्रकाशित भी हो चुका है। नबी (सल्ल०) के प्राप्त पाँच मूल पत्रों के छाया-चित्र (Photo) मेरे पास भी मौजूद हैं।[1]

'हदीसों' को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध आरंभ से ही मौखिक तथा लिखित दोनों ही रूप से किया गया है। हदीस का इतिहास पूर्णतः सुरक्षित है। यह इतिहास प्रामाणिक भी है और इसमें निरन्तरता भी पाई जाती है। 'सहाबा' (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हदीसों और आपकी 'सुन्नतों' को सुरक्षित करने और अपने बाद के लोगों तक पहुँचाने में कदापि असावधानी नहीं दिखाई। उन्होंने नबी (सल्ल०) से जो कुछ प्राप्त किया था उसे छिपाकर भी नहीं रखा, बल्कि उसे अपने बादवालों तक पहुँचाया।

अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) कहते हैं कि मैं अल्लाह के रसूल

1. इस पुस्तक के परिशिष्ट में उन्हें अनुवाद सहित प्रस्तुत किया जा रहा है।

(सल्ल०) से जो कुछ सुनता था उसे याद करने के लिए लिख लिया करता था। लोगों ने मुझे रोका और कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) एक मनुष्य हैं, कभी प्रसन्नता की हालत में बातें करते है, कभी क्रोध की दशा में। इसपर मैंने लिखना छोड़ दिया, फिर मैंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) से इसका ज़िक्र किया तो आपने अपनी उँगलियों से अपने मुँह की ओर संकेत करते हुए कहा—

"लिखो, उस सत्ता की क़सम जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं, इस मुख से हक़ (सत्य) के सिवा कुछ नहीं निकलता।"

—अबू दाऊद, मुस्नद अहमद, दारमी, हाकिम, बैहक़ी

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) का बयान है कि 'सहाबा' (रज़ि०) में मुझसे अधिक किसी के पास 'हदीसें' न थीं सिवाय अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) के, इसलिए कि वे लिख लेते थे और मैं लिखता नहीं था।

अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) ने 'हदीसों' का एक संग्रह लिख रखा था, उसका नाम उन्होंने 'सादिक़ह' रखा था। इस संग्रह में लगभग एक हज़ार हदीसें थीं। —इसाबा, तबक़ात इब्न सअ्द, अबू दाऊद

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र के देहान्त पर यह 'सहीफ़ा' (पुस्तक) उनके पौत्र शुऐब बिन मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) को मिला। शुऐब से उनके पुत्र अम्र 'रिवायत' करते हैं। — तिरमिज़ी

इस सिलसिले से हदीस की किताबों में जो रिवायतें मिलती हैं वह 'सहीफ़-ए-सादिक़' की रिवायतें हैं।

हज़रत अली (रज़ि०) ने एक अवसर पर लोगों को एक लेख निकालकर दिखाया जिसमें 'ज़कात', दण्ड-विधान से सम्बन्धित क़ानून और हरमे मदीना और कुछ दूसरे मामलों के सम्बन्ध में कुछ आदेश थे।—बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद, नसई

एक बार हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) के पास तायफ़ के कुछ लोग उनकी किताबों को लेकर उपस्थित हुए और उनके सामने पढ़ने लगे (तिरमिज़ी किताबुल इलल)। इससे भी अन्दाज़ा किया जा सकता है कि सहाबा रिवायत को लिपिबद्ध करने की ओर उन्मुख थे।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) के लड़के अब्दुर्रहमान एक किताब लेकर आए और क़मस खाकर कहा कि यह स्वयं अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि०) के हाथ की लिखी हुई है। —जामेओ बयानिल इल्म, भाग 1, पृ० 17

हज़रत समुरह बिन जुनदुब के बेटे सुलैमान बिन समुरह ने उनसे हदीस की एक

बड़ी प्रति रिवायत की है (तहज़ीबुत्तहज़ीब, भाग 4, पृष्ठ 198)। इसकी अधिकांश हदीसें 'सुनन अरबा' में उल्लिखित हुई हैं। अली बिन मदीनी और इमाम बुख़ारी दोनों ने यह स्पष्ट किया है कि इस प्रति की समस्त रिवायतें सुनी हुई थीं।

हज़रत आइशा का बयान है—"मेरे पिता (हज़रत अबू बक्र रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की 500 हदीसें एकत्र कीं।"

—अज़-ज़हबी तज़किरतुल हुफ़्फ़ाज़1:5, मतबुआ दायरतुल मआरिफ़, हैदराबाद

सईद बिन हिलाल का बयान है कि जब हम हज़रत अनस (रज़ि०) से ज़्यादा खोद-कुरेद करते तो वे अपने पास से एक लिखित प्रति निकालते और कहते कि ये हैं वे हदीसें जो मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुनी हैं और इन्हें लिखकर आपके समक्ष प्रस्तुत कर चुका हूँ। — मुस्तदरक हाकिम

सहीफ़ा अबू बक्र, सहीफ़ा अली, सहीफ़ा अबू हुरैरह, अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस का सहीफ़ा सादिक़ा, सहीफा सअ्द बिन उबादह, रिसाला समुरह बिन जुन्दुब और रिसाला अनस बिन मालिक (इन सबसे अल्लाह राज़ी हो) आदि के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी किताबों में मिलती हैं। ये सहाबा के समय की यादगारें हैं।[1]

उन सहाबियों की संख्या जिन्होंने नबी (सल्ल०) को देखा या सुना अबू ज़ुरआ अर-राज़ी के कथनानुसार 1,00,000 होती है।[2] हदीस का जो भण्डार आज मौजूद है, वह लगभग 10,000 सहाबा से प्राप्त हुआ है। इब्न जौज़ी ने जिन सहाबियों की सूची उनकी रिवायतों के साथ दी है उनकी संख्या 1060 है।[3]

सहाबा में सबसे अधिक 'रिवायतें' जिन्होंने बयान की हैं वे हैं—हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०), हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०), हज़रत आइशा (रज़ि०), हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०), हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०), हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) और हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०)। ये वे सहाबा हैं जिनकी रिवायतों की संख्या हज़ार से अधिक है।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) उन सहाबा में से हैं जिनकी रिवायतें पाँच सौ और हज़ार के बीच हैं।

---

1. (दे० मनाज़िर अहसन की पुस्तक 'तदवीन हदीस')
2. अल-इसाबह फ़ी तमईज़िस्सहाबःइब्न हजर अस्क़लानी।
3. Taliqih Fuhum Ahlal—Athar P.P. 184-197

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०), हज़रत उसमान (रज़ि०), हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०), हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०), हज़रत अबू ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०), हज़रत अबू अय्यूब अनसारी (रज़ि०), हज़रत उबई बिन कअ्ब (रज़ि०) और हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) ऐसे 'सहाबा' हैं जिनकी 'रिवायतों' की संख्या सौ से अधिक और पाँच सौ से कम है।

हाकिम (मुस्तदरक के संकलनकर्ता) की खोज के अनुसार उच्चकोटि की सही 'हदीसों' की संख्या लगभग दस हज़ार हैं।[1] समस्त रिवायतें जो 'मुस्नद', 'जामेअ', 'सुनन', 'मोअ्जम' की किताबों और 'फ़वायद' एवं 'रिसालों' में मौजूद हैं। उनकी कुल संख्या 50,000 से भी कम है। हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह इब्न अम्र बिन आस (रज़ि०) की रिवायतें, दूसरे सहाबा की लिखित हदीसों और नबी (सल्ल०) के पत्र, आदेश-पत्र, संधि-पत्र और वसीक़ों (अधिकार-पत्र) आदि को देखते हुए इसमें किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं रहती कि 10,000 से अधिक 'हदीसें' नबी (सल्ल०) और सहाबा के समय में ही लिपिबद्ध हो चुकी थीं।

सहाबा (रज़ि०) के बाद 'ताबिईन' ने हदीस एवं 'सुन्नत' के उस ज्ञान को, जो उन तक सहाबा के द्वारा पहुँचा था, अपने बादवालों तक पहुँचाया। 'ताबिईन' ने सहाबा से केवल हदीसें ही नहीं लीं, बल्कि उन्होंने सहाबियों का जीवन-चरित्र भी बयान किया। उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया कि किस 'सहाबी' को नबी (सल्ल०) के साथ रहने का कितना अवसर प्राप्त हुआ है, उसने नबी (सल्ल०) को कब और किस स्थान पर देखा है और किन-किन अवसरों पर उसने आपकी सेवा में हाज़िरी दी है?

ताबिईन वे लोग हैं जिन्हें नबी (सल्ल०) को देखने का श्रेय तो प्राप्त न हो सका, लेकिन सहाबा को उन्होंने देखा है। ऐसे ताबिईन भी हैं जो नबी (सल्ल०) के समय में थे, लेकिन उन्हें नबी (सल्ल०) से मुलाक़ात का मौक़ा न मिल सका या वे नबी (सल्ल०) के जीवन के अन्तिम दिनों में पैदा हुए, इसलिए वे आपसे प्रत्यक्षतः लाभान्वित न हो सके। इस तरह यह बात स्पष्ट है कि ताबिईन का समय नबी (सल्ल०) के जीवनकाल ही में या कम से कम सन् 11 हि० से आरम्भ हो गया था। सन् 11 हि० में नबी (सल्ल०) का देहान्त हुआ है। सन् 11 हि० से ही ताबिईन के कार्य का शुभारम्भ हो गया था। 'ताबिईन' के महान् व्यक्तियों में कुछ के नाम ये हैं:

सईद बिन मुसैइब, हसन बसरी, उर्वह बिन ज़ुबैर, सालिम बिन अब्दुल्लाह बिन

1. तौजीहुन्नज़र, पृष्ठ 93

मर, नाफ़ेअ मौला अब्दुल्लाह बिन उमर, इब्न शिहाब ज़ुहरी, हुमाम बिन मुनब्बिह आदि। सईद बिन मुसैइब हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के दूसरे वर्ष मदीना में पैदा हुए। सन् 105 हि० में देहान्त हुआ। उन्होंने हज़रत उस्मान (रज़ि०), हज़रत आइशा सिद्दीक़ह (रज़ि०), हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) और ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) से 'हदीस' का ज्ञान प्राप्त किया।

उरवह बिन ज़ुबैर मदीना के प्रमुख विद्वानों में से थे। वे हज़रत आइशा (रज़ि०) के भांजे थे। उन्होंने अपनी ख़ाला से बहुत-सी हदीसें रिवायत की हैं। हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) और ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) का शिष्य होने का भी उन्हें श्रेय प्राप्त हुआ है। नबी (सल्ल०) के जीवन-चरित्र पर सबसे पहली पुस्तक उन्होंने ही लिखी। सन् 94 हि० में स्वर्गवास हुआ है।

नाफ़ेअ मौला अब्दुल्लाह बिन उमर, हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) के प्रमुख शिष्य और इमाम मालिक के गुरु हैं। 'मुहद्दिसों' (हदीस के विशेषज्ञों) ने इस सनद (मालिक-नाफ़ेअ-अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ि०) को 'सिलसिलतुज़्ज़हब' (स्वर्णिम श्रृंखला) कहा है। हज़रत नाफ़ेअ का इन्तिक़ाल सन् 117 हि० में हुआ। सालिम बिन अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) मदीना के सात 'फ़क़ीहों' (धर्मशास्त्रियों) में से हैं। अपने पिता और दूसरे 'सहाबा' से हदीस का ज्ञान प्राप्त किया है। इनका स्वर्गवास सन् 106 हि० में हुआ। हुमाम बिन मुनब्बिह हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) के शिष्यों में से हैं। इन्होंने हदीस का एक संग्रह तैयार किया। यह संग्रह आज भी मौजूद है और प्रकाशित हो चुका है। इसकी एक प्रकाशित प्रति मेरे पास भी मौजूद है। इमाम अहमद बिन हंबल ने 'मुस्नद' में पूरा संग्रह सम्मिलित कर दिया है। यह संग्रह वास्तव में हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) की बयान की हुई 'हदीसों' का एक भाग है। इसकी अधिकांश 'रिवायतों' को 'बुख़ारी 'और 'मुस्लिम' में भी देखा जा सकता है।

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) के एक दूसरे शागिर्द बशीर बिन नुहैक ने उनकी 'रिवायतों' की एक प्रति संकलित करके उन्हें सुनाई थी और पूछा था कि क्या ये सब वही 'हदीसें' हैं जो मैने आपसे सुनी हैं ? उन्होंने कहा—"हाँ ये वही हैं।"

— दारमी

मुहम्मद बिन शिहाब ज़ुहरी प्रसिद्ध 'ताबिईन' में से हैं। इन्होंने लिखित रूप में 'हदीस' का बहुत बड़ा भण्डार छोड़ा है। इन्होंने अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०), अनस बिन मालिक (रज़ि०) और सहल बिन सअ्द (रज़ि०) से 'हदीस' का ज्ञान प्राप्त किया। 'ताबिईन' में सईद बिन मुसैइब, मुहम्मद बिन रबीअ आदि महानुभावों

से 'हदीस' सुनी। इनके शिष्यों में इमाम औज़ाई, इमाम मालिक और सुफ़यान बिन उयैनह जैसे हदीस के इमाम सम्मिलित हैं। मुहम्मद बिन शिहाब ज़ुहरी को सन 101 हि० में ख़लीफ़ा उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) ने हदीसें एकत्र करने का आदेश दिया था। ज़ुहरी ने 'हदीसों' के साथ सहाबा के 'आसार' (अर्थात सहाबा के क़ौल और कर्म आदि) को भी एकत्र किया। हदीस को व्यवस्थित रूप में संकलित करने का सबसे पहले आप ही को श्रेय प्राप्त हुआ।[1] इन्होंने मदीना के राज्यपाल (Governor) अबू बक्र मुहम्मद बिन उमर बिन हज़्म को भी आदेश भेजा था कि उमरह बिन्त अब्दुर्रहमान और क़ासिम बिन मुहम्मद के पास जो हदीसें हों उन्हें लिख लो। उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने इस्लामी अधिक्षेत्र के समस्त ज़िम्मेदारों के पास आदेश भेजा था कि वे हदीसों को एकत्र करें। इसका परिणाम यह हुआ कि 'हदीस' के दफ़्तर के दफ़्तर राजधानी दिमिश्क़ पहुँच गए। ख़लीफ़ा ने उनकी प्रतिलिपियाँ राज्य के प्रत्येक भाग में फैला दीं।[2]

सईद बिन ज़ुबैर, जो प्रसिद्ध 'ताबिई' हैं, कहते हैं कि मैं इब्न अब्बास (रज़ि०) के पास बैठा हुआ 'सहीफ़ा' में लिखता रहता था, (सुनन दारमी)। इसी तरह मुस्लिम बिन क़ैस, इब्बान के बारे में कहते हैं कि मैंने इब्बान को देखा कि अनस (रज़ि०) के पास बैठे लिख रहे हैं। — दारमी

ताबिईन में अधिकतर ऐसे लोग थे जिनका पालन-पोषण 'सहाबा' (रज़ि०) के घरों में हुआ था। कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन किसी न किसी 'सहाबी' की सेवा में व्यतीत किया। ताबिईन की जीवनियों का अध्ययन कीजिए तो अन्दाज़ा होगा कि एक-एक व्यक्ति ने किस तरह बहुत-से सहाबा (रज़ि०) से मुलाक़ात करके नबी (सल्ल०) के जीवन-वृत्तान्त, वचन, आदेश और फ़ैसलों आदि के बारे में विस्तृत ज्ञान संचित किया।

ताबिईन में महान व्यक्तियों के बाद साधारण 'ताबिईन' और 'तबएताबिईन' को लीजिए जो हज़ारों की संख्या में फैले हुए थे। इन्होंने दूरवर्ती स्थानों पर सफ़र करके एक-एक भूभाग के सहाबा (रज़ि०) और उनके शिष्यों के पास जो कुछ ज्ञान था उसे एकत्र किया। यह दूसरी शताब्दी का दौर था। इस दौर में हदीसों के संग्रहों के संकलित करने का काम व्यवस्थित एवं नियमित रूप से आरम्भ हुआ बहुत-से व्यक्तियों ने 'हदीस' के संग्रह तैयार किए। उदाहरणार्थ—इब्न ज़ुरै

---

1. मुक़द्दमा शर्ह क़स्तलानी।
2. तज़किरतुल हुफ़्फ़ाज़, भाग-1, पृष्ठ 106, मुख़्तसर जामेउल इल्म, पृष्ठ 38

नक्की (मृ० सन् 150 हि०), इब्न इस्हाक़ (मृ० 151 हि०), सईद बिन अरूबा (सन् 156 हि०) मामर यमनी (मृ०153 हि०), रबीअ बिन सबीह (मृ०सन् 160 हि०)और चारों इमामों के तैयार किए हुए संग्रह विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ लोगों ने 'फ़िक़्ही' (शास्त्रीय एवं क़ानूनी) विषयों के अन्तर्गत 'हदीस' और 'आसार' को एकत्र किया। कुछ लोगों ने एक-एक 'सहाबी' की रिवायतों को अलग-अलग एकत्र किया। किसी ने नबी (सल्ल०) के 'ग़ज़वात' (वे युद्ध जिनमें नबी सल्ल० स्वयं सम्मिलित हुए) का इतिहास लिखा। किसी ने नबी (सल्ल०), 'सहाबा' (रज़ि०) और 'ताबिईन' के जीवन-वृत्तान्त एकत्र किए। इनमें से जिनकी पुस्तकें आज तक मौजूद हैं वे ये हैं : इमाम मालिक, इमाम अबू यूसुफ़, इमाम मुहम्मद बिन इस्हाक़, इब्न सअद, इमाम अहमद बिन हंबल और अबू बक्र इब्न अबी शैबह। मूसा बिन उक़्बह की किताब अल-मुग़ाज़ी का भी एक भाग प्रकाशित हो चुका है। आज हम जिन बुज़ुर्गों की किताबों को नहीं देखते वे किताबें भी वास्तव में नष्ट नहीं हुई, बल्कि बुख़ारी, मुस्लिम आदि ने और उनके बाद के लोगों ने उनको अपनी किताबों में सम्मिलित कर लिया है।

हदीस के विद्वानों ने हदीसों को एकत्र करने में असाधारण त्याग और क़ुरबानी से काम लिया है। समय की क़ुरबानी के साथ-साथ उन्होंने इसके लिए धन व्यय करने में भी कृपणता से काम नहीं लिया। ज़ुहरी (मृ० सन् 124 हि०/741 ई०) ने हदीस के लिए पानी की तरह दौलत ख़र्च की। रबीअह (136 हि०/753 ई०) ने हदीस की तलाश में वह सब कुछ ख़र्च कर डाला जो उनके पास था। अन्त में उन्होंने अपने घर की कड़ियाँ तक बेच डालीं।[1] इब्न मुबारक ने हदीस की तलाश में 40,000 नक़्दी ख़र्च की।[2] यहया बिन मुईन (मृ० सन् 233 हि०/547 ई०) ने इस सिलसिले में चाँदी के 150,000 सिक्के ख़र्च कर डाले जो उन्हें अपने बाप से विरासत में मिले थे। अन्त में वे इस दशा में पहुँच गए थे कि उनके पास एक जोड़ा जूते के सिवा कुछ भी बाक़ी न रहा।[3] अली बिन आसिम ने चाँदी के 1,00,000 सिक्के ख़र्च किए।[4] ज़हबी ने इस सलसिले में 1,50,000 ख़र्च किए।[5]

---

1. जामेओ बयानिल इल्म, भाग-1, पृष्ठ 97
2. मोअजमो उदबा, भाग-1, पृष्ठ 17
3. तहज़ीबुल अस्मा अबू ज़करिया यह्या अन-नौवी, पृ० 629-30
4. तज़किरतुल हुफ़्फ़ाज़, भाग 1, पृष्ठ 90
5. तहज़ीबुल अस्मा, पृष्ठ 17

इब्न रुस्तम ने 3,00,000[1] और हिशाम बिन उबैद (मृ० 221 हि०/835 ई०) ने 7,00,000[2] चाँदी के सिक्के हदीस की तलाश में लगा दिए। ख़तीब बग़दादी ने उन लोगों को 200 अशरफ़ियाँ दीं जिन्होंने अपना जीवन हदीस की सेवा में लगा रखा था।[3] 'अस्माउर्रिजाल' से ऐसे कितने ही व्यक्तियों के नाम दिए जा सकते हैं; जिन्होंने हदीस की सेवा में माल की कोई परवाह नहीं की।

आरम्भ से लेकर इमाम बुख़ारी (मृ० 256 हि०) तक हदीस का ऐसा श्रृंखलित इतिहास पाया जाता है जिसकी कड़ियाँ कहीं विच्छिन्न नहीं हुईं और हदीस के इतिहास की यह निरन्तरता आज तक खंड़ित नहीं हुई। इमाम बुख़ारी से जिन लोगों ने बुख़ारी पढ़ी है, उनकी संख्या 90 हज़ार तक पहुँचती है।

सहीह बुखारी के अतिरिक्त इस समय की दूसरी किताब सहीह मुस्लिम है। क्रम की सुन्दरता की दृष्टि से सहीह मुस्लिम को प्रमुखता प्राप्त है। इस समय का तीसरा महत्त्वपूर्ण संग्रह 'सुनन' अबू दाऊद है। इसमें अधिकतर नियम और क़ानून आदि से सम्बन्धित रिवायतें संकलित की गई हैं। नियमों और विधि-विधान आदि की दृष्टि से सुनन अबू दाऊद एक उत्तम ग्रन्थ है। इस समय का चौथा संकलन 'जामेअ् तिरमिज़ी' है जिसमें 'फ़िक़्ही मसलकों' (शास्त्रीय प्रणालियों) को सविस्तार स्पष्ट किया गया है। पाँचवाँ संकलन नसई की है जो 'अससुनन मुज्तबा' के नाम से प्रसिद्ध है। छठा संग्रह सुनन इब्न माजह है। इन छः किताबों को 'मुहद्दिसों' (हदीस के विशेषज्ञों) ने 'सिहाह सित्ता' (छः सही ग्रन्थ) के नाम से याद किया है। कुछ विद्वान इब्न माजह के स्थान पर मुवत्ता इमाम मालिक की गणना 'सिहाह सित्तह' में करते हैं।

बुख़ारी, मुस्लिम और तिरमिज़ी को 'जामेअ्' कहा जाता है। इसलिए कि इनमें विचार, धारणा, 'इबादत' (उपासना), नैतिकता, कर्म, व्यवहार, आदि सभी विषयों के अन्तर्गत 'हदीसों' को संकलित किया गया है। अबू दाऊद, नसई, और इब्न माजह को 'सुनन' कहते हैं ; क्योंकि इनमें अधिकतर व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली 'रिवायतें' संकलित की गई हैं।

हमारे अपने इस युग में ऐसे लोग लाखों की संख्या में हैं जिन तक 'हदीस' की किताबें हदीस के इमामों से सिलसिले के साथ पहुँची हैं। वह समस्त सामग्री

1. तज़किरतुल हुफ़्फ़ाज़, पृ० 17
2. मोअ्जमुल उदबा, भाग 1, पृष्ठ 17
3. मोअ्जमुल उदबा

जसके द्वारा 'मुहद्दिसों' ने हदीस के 'राविया़ें' (उल्लेख कर्ताओं) के जीवन-चरित्र ो जाँच-पड़ताल की थी वह प्रामाणिक ग्रन्थों के द्वारा हम तक पहुँची हैं। हदीस ो जाँच के सिलसिले में 'मुहद्दिसों' के बीच जो वाद-विवाद हुआ है और उनके ोच जो मतभेद हुआ है, वह भी अपनी दलीलों के साथ सुरक्षित रूप से हम तक हुँचा है।

हदीसों और 'रिवायतों' के रूप में नबी (सल्ल०) का जीवन और आपके ोवनकाल का वातावरण और समाज का विस्तृत नक़्शा हम तक पहुँचा है। क-एक घटना और आपके एक-एक कर्म और वचन की सनद मौजूद है जिसे ाँचकर कोई भी व्यक्ति किसी भी समय यह मालूम कर सकता है कि किस ़ायत पर कहाँ तक विश्वास और एतबार किया जा सकता है। नबी (सल्ल०) ा सही जीवन-वृत्तान्त मालूम करने के लिए उस समय के छः लाख व्यक्तियों के ोवन-वृत्तान्त संकलित किए गए हैं। यह इसलिए कि जिस व्यक्ति ने भी नबी ़ल्ल०) से सम्बन्ध लगाकर कोई 'रिवायत' बयान की है, उसके व्यक्तित्व को ाँच-परखकर यह मत निर्धारित किया जाए कि उसके बयान पर किस हद तक ़श्वास किया जा सकता है। आलोचना सम्बन्धी इतिहास का यह ऐसा शास्त्र है ़सका संकलन अत्यन्त बारीक खोज़-बीन और सूक्ष्मदर्शिता के साथ हुआ है, ़सका कोई दूसरा उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इसका उद्देश्य यह है, क नबी (सल्ल०) से सम्बन्ध लगाकर जो बात भी कही गई हो, उसे हर पहलू से ाँच-परखकर यह मत निर्धारित किया जा सके कि उसका सम्बन्ध आपसे स्थापित ़रना सही है या नहीं। 'मुहद्दिसों' ने सही और ग़लत, शुद्ध और अशुद्ध की परीक्षा ़ लिए कड़े से क़ड़े नियम निर्धारित किए, जिससे सरलता के साथ सही और गढ़ी ़ई हदीसों में पहचान हो सकती है। 'मुहद्दिसों' ने प्रत्येक 'हदीस' के विषय में ़पना मत भी व्यक्त कर दिया और यह बता दिया कि वह किस 'हदीस' या ़िवायत' को क्या स्थान देते हैं और इस सिलसिले में उनके पास क्या दलीलें हैं। हद्दिसों ने आलोचना सम्बन्धी नियम को इतनी उन्नति दी कि 'इस्नाद', जिरह, अ्दील आदि स्थायी रूप से अलग-अलग शास्त्र बन गए। अल्लामा जज़ायरी ने ़ौजीहुन्नज़र' में हदीस से सम्बन्धित 52 प्रकार के शास्त्रों का विस्तारपूर्वक उल्लेख ़्या है।

किसी भी 'रिवायत' की जाँच के सिलसिले में कड़े से कड़ा नियम जो बनाया ़ सकता है वह यही कि हम यह देखें कि 'रिवायत' हम तक किस तरीक़े से ़ुँची है। बीच के वास्तों (माध्यमों) का सिलसिला अन्त तक चला गया है या

नहीं। बीच के 'रावियों' ने जिस-जिस व्यक्ति से 'रिवायत' बयान की है उस
उसकी मुलाक़ात है या नहीं। 'रावी' ने रिवायत किस आयु में और किस हालत
बयान की है।

जिन लोगों के द्वारा और माध्यम से 'रिवायत' पहुँची है, वे अपने चरि
आचरण आदि की दृष्टि से कैसे थे? वे झूठे, बददियानत और दुष्प्रकृति तो न
थे? उनकी स्मरण-शक्ति कैसी थी? रिवायत को सही तौर से याद रखने और उ
सही रूप में पहुँचाने की योग्यता उनमें थी या नहीं? जो रिवायत उन्होंने की
उसमें उनका किसी प्रकार का व्यक्तिगत या गिरोही स्वार्थ तो निहित नहीं था
'रिवायत' को 'रावी' ने शब्दशः पहुँचाया है या उसके आशय और भाव को अप
शब्दों में बयान किया है? 'रावी' की 'रिवायत' दूसरे तरीक़ों से भी पहुँची है
नहीं? यदि दूसरे तरीक़ों से यह 'रिवायत' पहुँची है तो बयान में समानता पा
जाती है या नहीं? यदि उनके बयानों में भिन्नता पाई जाती है तो वह किस हद त
है? खुली हुई भिन्नता तो उनमें नहीं पाई जाती? यदि पाई जाती है तो विभि
तरीक़ों में से जिनके द्वारा यह 'रिवायत' पहुँची है, कौन-सा ज़्यादा भरोसा कर
योग्य है?

नबी (सल्ल०) के स्वभाव और आपके आचार एवं चरित्र और आप
वातावरण और समाज के बारे में जो 'रिवायतें' मशहूर, 'मुतवातिर' और 'प्रमाणि
हैं, ये 'रिवायतें' उनके विरुद्ध तो नहीं हैं?

यदि 'रिवायत' किसी असाधारण चीज़ के विषय में है तो क्या 'रिवायत'
तरीक़े (नियम) इतने अधिक और विश्वास करने योग्य हैं कि उसे मान लि
जाए?

रिवायतों और हदीसों की जाँच-पड़ताल में 'मुहद्दिसों' ने इन सारे ही पहलु
को अपने सामने रखा है। इसके बाद उन्होंने किसी रिवायत के बारे में कोई
निर्धारित किया है और उसके सही होने या न होने का फ़ैसला किया है।

दिरायत (ज्ञान एवं बुद्धि) का प्रयोग

'हदीसों' की जाँच-पड़ताल में 'रिवायत' के साथ 'दिरायत' अर्थात् समझ-ब
एवं प्रज्ञा का प्रयोग भी आवश्यक है। इस्लाम की वास्तविकता और उस
आंतरिक भाव एवं आत्मा से पूर्ण रूप से परिचित होने के पश्चात जब क
'हदीस' का अधिक से अधिक अध्ययन करता है तो अध्ययन की अधिकता
अभ्यास एवं अनुभव से उसमें ऐसी योग्यता पैदा हो जाती है कि वह किसी 'हदी

ो देखते ही समझ सके कि वह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का कर्म एवं वचन हो ाकता है या नहीं।

मुल्ला अली क़ारी ने 'मौज़ूआते कबीर' में लिखा है—

"इब्न क़ैयिम जौज़ी से पूछा गया कि क्या यह संभव है कि गढ़ी हुई 'हदीस' को उसकी 'सनद' पर निगाह डाले बिना ही पहचान लिया जाए? उन्होंने कहा कि यह प्रश्न बड़ा महत्त्व रखता है। यह पहचान उसी व्यक्ति को हो सकती है जिसे 'सुन्नत' और 'सही हदीसों' का पूरा ज्ञान हो और हदीस का ज्ञान उसके मांस और रक्त में सम्मिलित हो चुका हो, और इस ज्ञान में उसने विशेष योग्यता प्राप्त कर ली हो, और उसने 'सुन्नत' और 'आसार' का गहरा परिचय और रसूल (सल्ल०) के चरित्र की पहचान हासिल की हो, और वह अच्छी तरह नबी (सल्ल०) की हिदायत (मार्ग- दर्शन) को पहचान गया हो और इस बात को कि आप (सल्ल०) किस चीज़ का हुक्म देते हैं; किस चीज़ से रोकते हैं, किस बात की ख़बर देते हैं, किस चीज़ की ओर आमंत्रित करते हैं, क्या चीज़ आप (सल्ल०) पसन्द करते हैं, क्या नापसन्द करते हैं और कौन-से तरीक़े (नियम) अपने समुदाय (अपने अनुयायियों) के लिए निश्चित करते हैं। जब कोई व्यक्ति इन बातों को जानने में इस दर्जे को पहुँच जाए कि मानो वह नबी (सल्ल०) के साथ उनके सहाबा (रज़ि०) में सम्मिलित है, तो वह व्यक्ति पहचान जाएगा कि क्या चीज़ नबी (सल्ल०) के मन के भावों और हिदायत (मार्गदर्शन) से सम्बन्ध रखती है और कौन-सा कलाम आप (सल्ल०) का है और किन कर्मों और वचनों का सम्बन्ध आप (सल्ल०) से जोड़ा जा सकता है।"

इमाम रबीअ् बिन ख़सीम ने 'दिरायत' (प्रज्ञा, समझ-बूझ) की व्याख्या इन ाब्दों में की है—

"हदीस में एक प्रकाश होता है, दिन के प्रकाश जैसा और एक अंधकार होता है, रात के अंधकार जैसा। इस प्रकाश और अंधकार में तमीज़ (अन्तर-भेद) करना 'दिरायत' है।"

अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी (रह०) ने शर्ह 'सिफ़रुस्सआदत' में एक वाक़िआ लेखा है कि एक बार एक व्यक्ति ने हदीस के विशेषज्ञ के सामने एक हदीस पेश की, उसने कहा : 'मअलूल' है। पूछा कि आप किस कारण इसे 'मअलूल' ठहरा रहे

हैं? कहा : नहीं बयान कर सकता, अलबत्ता इसके सुनने से तबीयत बेमज़ा ह
गई। वह व्यक्ति कई 'मुहद्दिसों' के पास गया। सबका उत्तर एक ही था। जि
प्रकार सिक्के को सर्राफ़ हाथ लगाते ही बता देता है कि वह खोटा है या खरा, ठी
उसी प्रकार हदीस के सम्बन्ध में जिन्हें सूझ-बूझ और कुशलता प्राप्त होती है,
पहली ही दृष्टि में समझ जाते हैं कि कोई 'रिवायत' किस दर्जे की है।

हाफ़िज़ इब्न हजर ने लिखा है कि 'मुहद्दिस' की मिसाल सर्राफ़ और जौह
की-सी है। बहुधा रुपये के रंग-रूप और आवाज़ तक में कोई अन्तर महसूस न
होता, परन्तु सर्राफ़ छूते ही उसके खोट को जान लेता है।

हदीसों का अध्ययन करनेवाले इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि न
(सल्ल०) की भाषा और वाणी में एक अद्वितीयत्व (अनुपमता) पाई जाती है। आ
(सल्ल०) की अपनी एक भाषा और एक विशेष वर्णन-शैली (Style) है। 'सही
हदीसों' में आपका व्यक्तित्व बोल रहा होता है। उसमें आपकी महानता और उ
पद की झलक लक्षित होती रहती है। आपके वचनों में इतना अद्वितीयत्व पा
जाता है कि कोई उनकी नक़्ल नहीं उतार सकता। वे विशेषताएँ कोई कहाँ से ल
सकता है जो अल्लाह ने नबी (सल्ल०) को प्रदान की थीं। जो लोग नबी (सल्ल०
की भाषा से परिचित हैं वे किसी हदीस को देखते ही बता सकते हैं कि वह 'स
हदीस' है या गढ़ी हुई है। बल्कि यदि रिवायत करनेवाले ने नबी (सल्ल०)
'हदीस' के अर्थ और भाव को अपने शब्दों में व्यक्त किया हो तो वे तुरन्त महसू
कर लेते हैं कि यह बात तो नबी (सल्ल०) ही की है, किन्तु भाषा और शब्द आ
(सल्ल०) के नहीं हैं, बल्कि 'रावी' (उल्लेखकर्ता) के अपने हैं।

जिस प्रकार नबी (सल्ल०) का व्यक्तित्व समस्त व्यक्तियों से बढ़कर प्रि
और महान है, उसी प्रकार आपका कलाम भी सारे कलामों और वाणियों में उत्त
है। स्वयं नबी (सल्ल०) का अपना बयान है—

"मुझे व्यापक किन्तु संक्षिप्त बात कहने की योग्यता दी गई।"

क़ुरआन के बाद यह 'हदीस' ही का चमत्कार है कि स्पष्ट और संक्षिप्त हो
हुए भी अर्थ और भाव की दृष्टि से उसमें अत्यन्त फैलाव और व्यापकता पाई जात
है। समाहार-शक्ति का अनुपम नमूना हमें आप (सल्ल०) की 'हदीसों' में देखने क
मिलता है। आपके कलाम में शब्द कम और अर्थ अधिक होते हैं। शब्द कम हो
के बावजूद आपका बयान कहीं भी अव्यवस्थित और अस्पष्ट नहीं होता। आश
को व्यक्त करने में कहीं किसी प्रकार की त्रुटि और अपूर्णता नहीं पाई जाती

आपके कलाम में कृत्रिमता और अनुचित शाब्दिक आडम्बर नहीं पाया जाता। कलाम में महान व्यक्तित्व बोलता दीख पड़ता है। साधारण व्यक्तित्व के लोगों का कलाम इतना उच्च और पवित्र हो ही नहीं सकता। न तो आप (सल्ल०) गिरी हुई बाज़ारू भाषा का प्रयोग करते हैं और न आपके यहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग मिलता है जिससे लोग बिलकुल ही अपरिचित हों। जहाँ विस्तार की आवश्यकता होती है वहाँ आप (सल्ल०) विस्तार से काम लेते हैं और जहाँ संक्षिप्त वर्णन की आवश्यकता होती है वहाँ आप (सल्ल०) विस्तार में नहीं जाते। भाषा और भाषण पर आपको पूर्ण अधिकार प्राप्त है। 'कलाम' में जहाँ रोब और तेज पाया जाता है, उसमें आश्चर्यजनक रस, माधुर्य और हृदयाकर्षकता भी पाई जाती है। दोनों में सुन्दर समंवय एवं समांजस्य दीख पड़ता है। आपका कलाम आपके हार्दिक भावों और अन्तः प्रकाश का द्योतक है। आपकी प्रत्येक वार्ता ज्ञान और तत्वदर्शिता से सुसज्जित होती है। 'कलाम' में कहीं अनुचित पुनरावृत्ति नहीं पाई जाती और न आपके प्रस्तुत किए हुए तर्क में कोई त्रुटि और कमज़ोरी पाई जाती है।

नबी (सल्ल०) अपने शत्रुओं और विरोधियों पर व्यंग्य और चोट करते दिखाई नहीं देते, श्रोताओं पर रोब डालने के लिए अपने भाषण में अनुचित जोश कदापि नहीं दिखाते और न ही अतिशयोक्ति से काम लेते हैं। आपका संक्षिप्त कलाम बड़े-बड़े विस्तृत भाषणों पर भारी होता है। तर्कोपस्थिति में आप (सल्ल०) सदैव सच्चाई को अपने सम्मुख रखते हैं। आप (सल्ल०) बस उतनी ही बात करते हैं जितनी सत्य और ठीक होती है। बातचीत में न अधिक ठहरते हैं और न जल्दबाज़ी से काम लेते हैं। 'कलाम' न इतना लम्बा होता है कि लोगों को उकता दे और न इतना संक्षिप्त होता है कि बात ही न समझ में आ सके। शब्द जँचे-तुले होते हैं। वर्णन-शैली में मनोहरता और सौंदर्य पाया जाता है। आपकी भाषा में स्वाभाविक सरलता और प्रवाह पाया जाता है। जोश और विकलता की अभिव्यक्ति आपके यहाँ होती है तो शान्तिरूप लिए हुए होती है। 'कलाम' में किसी प्रकार की सख़्ती, उग्रता और असन्तुलन नहीं पाया जाता। आपकी हदीसों को जितनी बार पढ़ा जाए उतना ही उनका प्रभाव बढ़ता हुआ प्रतीत होता है और उनकी साहित्यिक एवं आंतरिक विशेषताएँ स्पष्ट होती चली जाती हैं।[1]

बातचीत में आप (सल्ल०) सम्बोधित व्यक्ति के मानसिक स्तर और उसके ज्ञान एवं बुद्धि की सीमा आदि का पूरा ध्यान रखते हैं। विरोधी को उसकी अपनी

---

1. देखिए अल-बयानु वत्ताबिईन

जानकारी के द्वारा शान्त करते हैं। आपके कलाम में कहीं नाम मात्र को किसी प्रकार की शंका और संकोच का चिह्न नहीं मिलता। मिस्री विद्वान सैयिद महमूद शाकिर ने लिखा है कि रसूल (सल्ल०) की हदीस को 'बलाग़त' (वक्तव्य) का अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त है, जिस तक पहुँचने की कोशिश लोगों की गरदनें तोड़ देती है।[1]

एक और पहलू से विचार कीजिए, सहीह 'हदीसों' में आचार-विचार धारणा और व्यवहार की एक पूर्ण प्रणाली मिलेगी। इस प्रणाली का सम्बन्ध मानवीय जीवन के किसी विशेष अंग से नहीं अपितु समस्त अंगों से है। विचार एवं सिद्धान्त सम्बन्धी समस्याएँ हों या व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली समस्याएँ हों, चाहे उनका सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से हो या सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन से, समस्त समस्याएँ और जीवन के समस्त अंग उससे सम्बद्ध हैं। इस जीवन-प्रणाली के समस्त भागों में परस्पर नैयायिक एवं तार्किक सम्पर्क पाया जाता है और विचार एवं व्यवहार की इस प्रणाली का प्रारम्भ से अन्त तक अपना एक विशेष स्वभाव है। ऐसी पूर्ण, संबद्ध और संतुलित जीवन-प्रणाली विभिन्न मस्तिष्क की उपज नहीं हो सकती। यह प्रणाली एक ऐसी कसौटी है जिसके द्वारा हम सरलतापूर्वक गढ़ी हुई और कमज़ोर हदीसों को अलग कर सकते हैं। इस जीवन-प्रणाली के साथ गढ़ी हुई हीदसों की असंगति स्वयं बता देगी कि वे गढ़ी हुई हैं, वे विश्वास करने योग्य नहीं हैं।

'ख़बरे वाहिद' भी धर्म का आधारभूत प्रमाण

ऐसी 'रिवायत' जिसके 'रावी' (उल्लेखकर्त्ता) हर समय में इतने अधिक रहे हों कि उनका झूठ पर सहमत होना स्वभावत: सम्भव न हो, 'ख़बरे तवातिर' कहलाती है। जिस 'रिवायत' के 'रावी' संख्या में 'मुतवातिर रिवायत' के 'रावियों' की संख्या के बराबर न हों उसे परिभाषा में 'ख़बरे वाहिद' कहते हैं। 'ख़बरे वाहिद' का अर्थ यह नहीं होता कि उसकी रिवायत करनेवाला हर समय में एक ही रहा है। किसी हदीस के बयान करनेवाले 'सहाबा' और 'ताबिईन' के समय में अधिक संख्या में हों पर किसी एक समय किसी कारण से उसके 'रावियों' की संख्या कम हो जाए तो उसे 'ख़बरे मुतवातिर' न कहकर 'ख़बरे वाहिद' ही कहेंगे। रिवायतें अधिकतर 'ख़बरे वाहिद' ही हैं। 'मुतवातिर रिवायतें' कम हैं। कुछ लोग इस तरह का मत व्यक्त करते हैं कि 'ख़बरे वाहिद' से केवल 'गुमाने ग़ालिब' (प्रबल

1. मिफ़ताहु कुनूज़िस्सुन्नह

अनुमान) ही प्राप्त होता है। अर्थात इस बात की केवल संभावना ही होती है कि वह नबी (सल्ल०) की 'हदीस' है। उसके प्रति ऐसा पूर्ण विश्वास प्राप्त नहीं होता जिसमें तनिक भी संदेह बाक़ी न रहे, जैसाकि 'ख़बरे मुतवातिर' की विशेषता है। इस तरह का विचार रखनेवाले वास्तव में ग़लती पर हैं। स्वयं हमारे दैनिक जीवन के अधिकतर मामलों के फ़ैसले का आधार 'गुमाने ग़ालिब' ही होता है। क़ुरआन ने भी ऐसी गवाहियों को जिनसे 'गुमाने ग़ालिब' प्राप्त होता है अविश्वसनीय नहीं ठहराया, बल्कि उनका एतबार किया है; यहाँ तक कि उनकी बुनियाद पर एक मुसलमान को मृत्युदण्ड भी दिया जा सकता है, व्यभिचार, चोरी आदि के सिलसिले में फ़ैसला दो-चार गवाहों पर ही होता है, जबकि इसमें एक मुसलमान को कोड़े की सज़ा भी दी जा सकती है और उसका हाथ भी काटा जा सकता है। जब क़ुरआन 'ग़ैर मुतवातिर' गवाहियों पर अपनी न्याय-प्रणाली की बुनियाद रखता है तो फिर किसी मुसलमान व्यक्ति के लिए यह कैसे उचित हो सकता है कि वह यह कहने लगे कि रसूल (सल्ल०) की 'हदीसों' के लिए प्रत्येक युग में दो-चार रावियों का होना काफ़ी नहीं है, बल्कि हर समय में 'रावियों' का एक विराट जनसमूह होना चाहिए। इससे इंकार नहीं कि 'रावी' के लिए यह आवश्यक है कि वह न्यायी और विश्वसनीय हो। इसी बात की जाँच के लिए वास्तव में 'अस्माउर्रिजाल' जैसा शास्त्र तैयार हुआ है।

क़ुरआन में कहा गया है—

> 'ऐ ईमान लानेवालो! जब कोई 'फ़ासिक़' (अवज्ञाकारी एवं मर्यादाहीन व्यक्ति) तुम्हारे पास कोई सूचना लेकर आए तो उसकी छानबीन कर लिया करो, ऐसा न हो कि तुम किसी गरोह के साथ बेजा हरकत कर बैठो, फिर तुम्हें अपने किए पर पछतावा हो।" — क़ुरआन, 49 : 6

इस 'आयत' में क़ुरआन ने 'ख़बरे वाहिद' को रद्द करने का आदेश नहीं दिया है। सूचना यदि किसी पापाचारी की दी हुई हो तो भी वह उसकी जाँच-पड़ताल का आदेश देता है। इस 'आयत 'से यह बात स्वतः निकलती है कि यदि सूचना किसी ऐसे व्यक्ति ने दी है जो 'फ़ासिक़' (अवज्ञाकारी) नहीं, बल्कि उसके न्यायशील और सच्चा होने पर पूर्ण विश्वास है, तो जाँच-पड़ताल के बिना भी उसकी दी हुई सूचना के आधार पर कार्रवाई की जा सकती है।

स्वयं क़ुरआन के ईश्वरीय ग्रन्थ होने का विश्वास भी हमें एक ही विश्वसनीय व्यक्ति हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के बयान से प्राप्त हुआ है। ऐसा नहीं हुआ कि अल्लाह की ओर से बहुत-से लोगों या 'फ़रिश्तों' ने आकर क़ुरआन के ईश्वरीय

ग्रन्थ होने की गवाही दी हो।

कुरआन के अतिरिक्त 'हदीस' से भी इसका प्रमाण मिलता है कि 'ख़बे वाहिद' को धर्म में प्रमाण एवं आधारशिला का स्थान प्राप्त है। इस सिलसिले में यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं :

यज़ीद बिन शैबान (रज़ि०) का बयान है कि हम अरफ़ात में थे। संयोग से हम जहाँ ठहरे थे वह स्थान उस जगह से दूर था जहाँ नबी (सल्ल०) ठहरे हुए थे हमारे पास आपका सन्देशवाहक यह सन्देश लेकर आया कि हम जहाँ ठहरे हैं उसी जगह रहें, वहाँ से किसी अन्य स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं। अरफ़ात में जहाँ भी ठहर जाएँ (उस मैदान में) ठहरने के कर्त्तव्य की पूर्ति हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि एक विश्वासपात्र व्यक्ति की दी हुई सूचना को भी 'दीन' में आधार का दर्जा प्राप्त है। यदि ऐसी बात न होती तो आप अपनी ओर से केवल एक व्यक्ति को न भेजते।

सन् 9 हि० में नबी (सल्ल०) हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को हज का अमी (अध्यक्ष) बनाकर भेजते हैं। इसके बाद सूरा अत-तौबा की प्रारम्भिक 'आयतें अवतरित हुईं तो आप (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) को भेजा ताकि वे 'हज' के अवसर पर वे 'आयतें' लोगों को सुना दें।

नबी (सल्ल०) ने जहाँ भी कोई दूत या 'आमिल' (कर्मचारी या हाकिम) भेज है इसमें संख्या की कोई पाबन्दी नहीं की है। आप (सल्ल०) बहरैन के प्रतिनिधि मण्डल के साथ इब्न सअद बिन आस (रज़ि०) को भेजते हैं, मआज़ बिन जबल (रज़ि०) को यमन भेजते हैं और क़ैस बिन आसिम (रज़ि०), ज़बरक़ान बिन बद् और इब्न ज़ुबैर (रज़ि०) आदि को उनके अपने-अपने क़बीलों के पास भेजते हैं इस प्रकार इस्लाम का आमंत्रण देने के सिलसिले में विभिन्न भू-भागों में नबी (सल्ल०) ने अपने बारह दूत भेजे। आपने केवल इस बात का ध्यान रखा कि किसी भी स्थान पर ऐसा व्यक्ति भेजा जाए जिससे वहाँ के निवासी परिचित हों, ताकि लोगों को उसके बारे में किसी प्रकार का संदेह न हो और उन्हें विश्वास हो जाए कि वह वास्तव में रसूल का भेजा हुआ दूत है।

जो उदाहरण ऊपर दिए गए हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि किसी बात पर विश्वास प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसका साक्षी विराट जनसमूह हो।

'सहाबा' (रज़ि०) किसी सूचना को मानने के सिलसिले में इसके पाबन्द न थे कि वह ख़बरे 'मुतवातिर' ही हो। इसके कितने ही उदाहरण हदीस की किताबों में

ग्रस्तुत किए जा सकते हैं। हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अबू उबैदह (रज़ि०) अबू तलहा (रज़ि०) और उबई बिन कअ्ब (रज़ि०) को शराब पिला रहे थे कि अचानक एक व्यक्ति ने आकर ख़बर दी कि शराब हराम हो गई। यह सुनना था कि अबू तलहा (रज़ि०) ने कहा कि अनस उठो और शराब के मटके तोड डालो। मैंने उठकर शराब के बरतन तोड़ दिए।

देखिए, केवल एक व्यक्ति के कहने पर मान लिया कि शराब हराम हो गई। 'ख़बरे मुतवातिर' की प्रतीक्षा नहीं की गई और न यह आवश्यक समझा गया कि ख़बर की तसदीक़ के लिए नबी (सल्ल०) के पास जाएँ।

क़ुबा के लोग 'फ़ज्र' की नमाज़ में थे कि उनके पास नबी (सल्ल०) का भेजा हुआ आदमी यह ख़बर लेकर पहुँचा कि 'क़िबला' बदल गया। अब 'नमाज़' काबा की ओर मुँह करके अदा की जाए। सूचना मिलते ही हर एक ने नमाज़ ही में अपना मुख 'बैतुल मक़दिस' की ओर से 'काबा' की ओर कर लिया। उन्हें एक व्यक्ति के बयान पर विश्वास कर लेने में कोई संकोच नहीं हुआ।

वास्तव में विश्वास केवल इसी से प्राप्त नहीं होता कि कोई सूचना हम तक 'तवातुर' के साथ पहुँचे, बल्कि दूसरे बहुत-से प्रमाण और संगत बातें एकत्र होकर जब किसी चीज़ की साक्षी होती हैं तो शाब्दिक 'तवातुर' न सही, एक प्रकार का आन्तरिक तवातुर अवश्य पैदा हो जाता है, जो इसके लिए बिलकुल पर्याप्त होता है कि आदमी उसपर विश्वास कर सके। इमाम शातिबी (रह०) इस सिलसिले में कहते हैं :

> "साधारणतया जिन प्रमाणों का यहाँ एतबार किया जाता है वे इस तरह के हैं कि यद्यपि अलग-अलग उनकी हैसियत 'गुमान' की हैं, परन्तु किसी एक मामले में सबमें एकता पाए जाने के कारण उस मामले में उनसे विश्वास प्राप्त हो जाता है। सब प्रमाणों के मिलने से जो बल पैदा होता है वह उनकी व्यक्तिगत हैसियत में नहीं पैदा हो सकता। 'ख़बरे मुतवातिर' में भी सामूहिक बल के कारण ही विश्वास प्राप्त होता है। अत: किसी मामले में विविध प्रमाण एकत्र हो जाएँ तो उनके समूह से एक विश्वास प्राप्त हो जाता है और यह एक प्रकार से आन्तरिक 'तवातुर' के समान हो जाता है।" —अल-मुवाफ़िक़ात, भाग 1, पृ० 36

इब्न तैमियह (रह०) का बयान है कि जब कोई वृत्तान्त किसी व्यक्ति के मुख से हम सुनते हैं, फिर विभिन्न स्थानों से, विभिन्न ढंग से उसकी विभिन्न गवाहियाँ

हमें मिल जाती हैं, तो यधपि उनमें से एक गवाही की हैसियत अपनी जगह 'खबं वाहिद' की होती है, परन्तु उन ख़बरों के मिलने से हमें पूरा विश्वास हो जाता है वि वे वास्तव में सही हैं। यह बुद्धिसंगत बात नहीं हो सकती कि विभिन्न व्यक्ति एक-दूसरे की बेख़बरी में कोई वृत्तान्त गढ़कर बयान करें और उनके बयान i समानता पाई जाए। उदाहरणार्थ बुख़ारी और मुस्लिम में यह 'रिवायत' मिलती कि एक सफ़र में नबी (सल्ल०) ने हज़रत जाबिर (रज़ि०) से ऊँट ख़रीदा। यधा ऊँट का मूल्य बताने में रावियों में मतभेद हुआ है, परन्तु विभिन्न तरीक़ों[1] से य मालूम होता है कि आपने जाबिर (रज़ि०) से ऊँट ख़रीदा था। विभिन्न व्यक्ति ज एक घटना का उल्लेख करते हैं और इसका कोई प्रमाण और लक्षण नहीं मिलत कि उन लोगों ने इससे पहले आपस में मिलकर वह घटना गढ़ी हो, और न उ ख़बर से उनके किसी स्वार्थ का सम्पर्क होता है, तो उस घटना के मान लेने में क्य संकोच हो सकता है ?[2]

अल्लामा जज़ायरी ने इस सिलसिले में एक और काम की बात लिखी है। इस आक्षेप का कि 'मुहद्दिसों' ने 'सहीह हदीसों' के अतिरिक्त हदीस की किताब में कमज़ोर हदीसें क्यों जमा की हैं, उत्तर देते हुए लिखते हैं कि अज्ञात औ कमज़ोर स्मरण शक्ति के लोगों की हदीसों को मुहद्दिस लोग इसलिए एकत्र कर थे कि ये हदीसें कम से कम मज़मून या विषय (वार्ता) की पुष्टि और समर्थन उपयोगी हो सकती हैं।[3]

इमाम अहमद (रह०) कहते हैं कि मैं कभी एक व्यक्ति की हदीस इस ध्येय लिखता हूँ कि उसको अनुकूलता दिखाने के लिए या दृष्टान्त के रूप में काम में ल सकूँ।[4]

कुछ संदेह और उनका निराकरण

ऊपर जो कुछ बयान किया गया है वह यह अन्दाज़ा करने के लिए पर्याप्त कि जिस तरह अल्लाह ने क़ुरआन को सुरक्षित किया और वह हम तक सुरक्षि रूप में पहुँचा है, उसी तरह उसने अपने रसूल की 'सुन्नत' को भी सुरक्षित रखने व

---

1. अर्थात रिवायत के सिलसिलों से।
2. तौजीहुन्नज़र, पृष्ठ 134
3. तौजीहुन्नज़र, पृष्ठ 134
4. तौजीहुन्नज़र।

बन्ध किया है। नबी (सल्ल०) के कर्म और वचन आदि का उल्लेख हम तक इस तरह पहुँचा कि हम महसूस करते हैं कि मानो आज भी नबी (सल्ल०) हमारे बीच मौजूद हैं। इसमें संदेह नहीं कि पहली शताब्दी हिजरी के अन्त में कुछ लोगों ने नबी (सल्ल०) से ऐसी बातें सम्बद्ध कीं जो वास्तव में आपकी न थीं, परन्तु ऐसी समस्त गढ़ी हुई और ग़लत रिवायतों को 'मुहद्दिसों' ने आलोचना की कसौटी पर रखकर अलग कर दिया।

'हदीसों' के बारे में साधारणयता लोगों को कुछ उलझनें पेश आती या आ सकती हैं, हम चाहते हैं कि उन उलझनों को भी दूर कर दिया जाए। 'हदीस' के बारे में एक संदेह यह किया जाता है कि 'हदीसों' का भण्डार यदि प्रामाणिक है और 'दीन' में उन्हें मौलिक स्थान प्राप्त है तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने 'हदीस' रिवायत (बयान) करने पर पाबन्दी क्यों लगा दी थी? हज़रत उमर (रज़ि०) जिस कारण अधिक रिवायत करने को पसन्द नहीं करते थे वह यह कदापि न था कि वे 'सुन्नत' और 'हदीस' को 'दीन' में कोई महत्त्व नहीं देते थे या यह कि उनके समय में लोग 'हदीसें' गढ़ने लगे थे, बल्कि इसका वास्तविक कारण यह था कि हज़रत उमर (रज़ि०) के शासन के आरंभिक काल में क़ुरआन का सर्वसाधारण जनता तक व्यापक प्रचार नहीं हो सका था। लाखों की संख्या में लोग इस्लाम में प्रवेश कर रहे थे। इसलिए हज़रत उमर ने ज़रूरी समझा कि सारे लोगों को पहले क़ुरआन से परिचित कराया जाए और उन बातों से बचा जाए जिनसे क़ुरआन में दूसरी चीज़ों के मिल जाने की आशंका हो। उनके आदेश का तात्पर्य यह था कि हदीस के मामले में साधारण लोगों की तरबियत की जाए तथा प्रामाणिकता पर विशेष बल दिया जाए। उन्हें इस बात का भय था कि जो हदीसें लोगों को अच्छी तरह याद न हों, उनके बयान करने में कहीं वे दिलेर न हो जाएँ।

एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि 'हदीस' के मज़मून और बयान में विभेद पाया जाता है, इसलिए उनपर कैसे विश्वास किया जा सकता है? इस आक्षेप में भी गहरे सोच-विचार से काम नहीं लिया गया। जिन लोगों ने भी 'हदीसों' का अध्ययन किया है वे इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि रिवायतों में समानता अधिक है, विभेद बहुत ही कम पाया जाता है। उनके बीच जो विभेद भी पाए जाते हैं वे अधिकतर निम्नलिखित प्रकार के हैं :

एक ही भाषण, वार्ता या घटना है, रावियों (उल्लेखकर्त्ताओं) ने उसे अपने-अपने शब्दों में बयान किया है। उनके शब्द अवश्य अलग-अलग हैं परन्तु अर्थ और आशय में कोई विभेद नहीं है। इस प्रकार के भेद को वास्तविक विभेद

कहना सही न होगा।

एक ही घटना या वार्ता है, किसी 'रावी' ने उसके किसी अंश का उल्लेख किया, किसी ने उसके किसी दूसरे अंश का उल्लेख किया जिसके कारण उनके बीच विभेद और विभिन्नता लक्षित होने लगी, हालाँकि वास्तव में उनके बीच विभेद सिरे से है ही नहीं।

ऐसा भी होता है कि एक 'हदीस' पहले की है, दूसरी बाद की है। बाद की 'हदीस' में पहली हदीस के हुक्म को मनसूख़ (निरस्त, Obliterate) कर दिया गया है। जो व्यक्ति इस बात को नहीं जानता उसे हदीसों में विपरीतता और प्रतिकूलता दिखाई दे सकती है। हालाँकि यह विपरीतता नहीं बल्कि वास्तव में आदेश और हुक्म में परिवर्तन है। नबी (सल्ल०) अल्लाह के रसूल थे, अल्लाह के हुक्म से आप किसी भी आदेश को आवश्यकता के अन्तर्गत मनसूख़ कर सकते थे। इसमें सिरे से आपत्ति की कोई बात है ही नहीं।

विभेद के समस्त प्रकार ऐसे हैं कि उनको वास्तविक विभेद नहीं कहा जा सकता। यदि कुछ थोड़ी 'रिवायतें' ऐसी निकल भी आएँ जिनमें पाए जानेवाले विभेद को दूर करना कठिन हो, तो उनके त्यक्त होने से यह आवश्यक कहाँ होता है कि 'हदीस' के सम्पूर्ण भण्डार को ही त्याग दिया जाए?

एक बात यह भी कही जाती है कि 'हदीसें' अत्यन्त संक्षेप और असम्बद्धता में पाई जाती हैं जिसके कारण उनका समझना कठिन है। यह बात भी वह व्यक्ति कह सकता है जो सोच-विचार से काम नहीं लेता या जिसकी निगाह 'हदीस' के सम्पूर्ण भण्डार पर नहीं है। अधिकतर हदीसें ऐसी हैं जो यदि एक स्थान पर संक्षिप्त और असम्बद्ध हैं, तो वही किसी दूसरे स्थान पर प्रसंग सहित तथा अपने विस्तार के साथ उल्लिखित हुई हैं। जिन 'हदीसों' का विस्तारपूर्वक उल्लेख नहीं भी हुआ है उनके शब्दों में ऐसे संकेत पाए जाते हैं जिनसे उन 'हदीसों' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। अलबत्ता उनके इशारों को समझने के लिए आवश्यक है कि हमें नबी (सल्ल०) के जीवन-काल, उस समय के समाज की स्थिति आदि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो। ऐसी हालत में किसी 'हदीस' या रिवायत में किसी कथन या घटना का उल्लेख देखकर उससे हम सरलतापूर्वक अन्दाज़ा कर सकते हैं कि उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है।

उम्मुल अहादीस

उम्मुल अहादीस (The Essence of the Hadith) शीर्षक के अन्तर्गत यहाँ
क विशेष हदीस प्रस्तुत की जा रही है। इस हदीस में पूरे दीन (धर्म) और नबी
ल्ल०) की समस्त हदीसों का सारांश आ गया है। इसी लिए विद्वानों ने इसे
म्मुल जवामेअ, उम्मुस्सुन्नह या उम्मुल अहादीस (हदीसों का मूल या सारांश एवं
ार) कहा है। इस हदीस का नाम उम्मुस्सुन्नह या उम्मुल अहादीस उसी तरह का
जैसे क़ुरआन मजीद की पहली सूरा-1 (अल-फ़ातिहा) का नाम 'उम्मुल किताब'
Mother of the book) है। जिस तरह सूरा अल-फ़ातिहा में क़ुरआन की समस्त
ौलिक बातें आ गई हैं उसी तरह इस हदीस में भी पूरा दीन सिमट आया है।
सरी समस्त हदीसें मानो इस एक हदीस का विस्तार हैं। इस हदीस की इसी
शेषता के कारण इमाम मुसलिम ने हदीस के अपने प्रसिद्ध संग्रह सहीह
सलिम को इसी हदीस से शुरू किया है और इमाम बग़वी ने अपनी किताब
साबीह और शर्हुस्सुन्नह का आरंभ भी इसी हदीस से किया है।

दीन वास्तव में नाम है विचार व धारणा, कर्म और सत्यनिष्ठा का। इस
दीस में दीन की इन तीनों मौलिक चीज़ों पर प्रकाश डाला गया है।

इस हदीस में हज़रत जिबरील (अलै०) के प्रश्नों का और नबी (सल्ल०) ने
के जो उत्तर दिए हैं उनका उल्लेख किया गया है; इसी लिए इस हदीस को
दीसे जिबरील भी कहा जाता है। कुछ रिवायतों (उल्लेखों) से मालूम होता है
 हज़रत जिबरील (अलै०) से नबी (सल्ल०) की यह बातचीत आपके जीवन के
न्तिम समय में हुई थी। इस तरह 23 वर्ष की मुद्दत में जो दीन पूर्ण हुआ था
सका सारांश हज़रत जिबरील के प्रश्नों के उत्तर के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया
। रिवायतों से यह भी मालूम होता है कि इस अवसर पर सहाबा रज़ि० (नबी
ल्ल० के साथी) अच्छी-ख़ासी संख्या में उपस्थित थे।

हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) कहते हैं कि एक दिन हम अल्लाह वे रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित थे कि अचानक एक व्यक्ति हमारे साम आया जिसका वस्त्र अत्यन्त उज्ज्वल और बाल बहुत ही काले थे। न उसप सफ़र का कोई असर दिखाई देता था और न हममें से कोई उसे पहचानता था[1] यहाँ तक कि वह नबी (सल्ल०) के पास बैठ गया और उसने अपने घुटने आप (सल्ल०) के घुटनों से मिला दिए और अपने हाथ आप (सल्ल०) की रानों प रख दिए[2] और कहा : ऐ मुहम्मद ! मुझे इस्लाम के बारे में बताइए।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : इस्लाम यह है कि तुम यह गवाही दो वि अल्लाह के सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। औ नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो और रमज़ान के रोज़े रखो, और अल्लाह के घ (काबा) का हज करो, यदि तुम्हें वहाँ तक यात्रा करने की सामर्थ्य प्राप्त हो।[3]

उसने कहा : आपने सच कहा। (हज़रत उमर रज़ि०) कहते हैं कि हमें इसप आश्चर्य हुआ कि वह आप (सल्ल०) से पूछता भी है और आपकी तसदीक़ (पुष्टि) भी करता है।[4]

---

1. अर्थात हम उसे पहचान नहीं रहे थे कि उसे अपने यहाँ का निवासी समझते, उसप थकावट और सफ़र का भी कोई चिह्न दीख नहीं पड़ रहा था कि उसे मुसाफ़िर समझ जाता।
2. अर्थात वह आपके बिलकुल निकट शिष्टता के साथ बैठ गया और उसने पूर्णरूप अपना ध्यान आपकी ओर केन्द्रित कर दिया।
3. इस्लाम का अर्थ है आज्ञापालन और आत्म-समर्पण। इस्लाम को इस्लाम इसलिए क गया है कि यह पूर्णतः अल्लाह के आज्ञापालन और उसके आदेशों के अनुसार चल का धर्म है। इसमें मनुष्य अपना सम्पूर्ण जीवन अल्लाह को अर्पण कर देता है औ उसके आदेशों के पालन में लग जाता है। अल्लाह को अपना स्रष्टा, पालनकर्त्त स्वामी, पूज्य और शासक मानकर उसकी पसन्द की हुई जीवन-प्रणाली और उसके दि हुए क़ानून को अपना लेता है। तौहीद (एकेश्वरवाद) और रिसालत की गवाही, नमा ज़कात, रोज़ा और हज ये इस्लाम के पाँच अरकान (स्तंभ या मूलाधार) हैं। इस्लाम व परिचय कराने के लिए नबी (सल्ल०) ने यहाँ इन्हीं का उल्लेख किया। इन्हीं प इस्लामी जीवन के भवन का निर्माण होता है। यदि इन्हें तोड़ दिया जाए तो पूरा भव गिर जाएगा।
4. अर्थात हमें इसपर आश्चर्य हुआ कि वह आपसे प्रश्न भी करता है फिर स्वयं आपव बातों की तसदीक़ (पुष्टि) भी करता है मानो वह वास्तविकता से भली-भाँति परिचित है

फिर उसने कहा : मुझे ईमान के बारे में बताइए।[1]

आपने कहा : ईमान यह है कि तुम अल्लाह, उसके फ़रिश्तों, उसकी किताबों, उसके रसूलों और अन्तिम दिन (आख़िरत) को मानो और तक़दीर (पुष्टि) की भलाई और बुराई पर ईमान लाओ।[2]

---

1. अर्थात बताइए कि किन बातों को मानना हमारे लिए आवश्यक है और वे कौन-सी वास्तविकताएँ हैं जिनपर हमको विश्वास करना चाहिए।
2. यहाँ जिन चीज़ों पर ईमान लाने की शिक्षा दी गई है उनमें सबसे पहली चीज़ अल्लाह पर ईमान है। यही इस्लाम का केन्द्र और उसका आधार है। अल्लाह पर ईमान लाए बिना दीन और इस्लाम सब ही कुछ निरर्थक हो जाता है। इस्लाम में समस्त विचारों और धारणाओं का सम्बन्ध वास्तव में अल्लाह पर ईमान से ही है। रिसालत का इनकार वास्तव में अल्लाह की दयालुता और उसकी महानता का इनकार है (दे० कुरआन, 17 : 86-87, 6 : 91)। अल्लाह के बारे में वास्तविक ज्ञान और उसकी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का ढंग रसूलों के द्वारा ही मालूम होता है। इसलिए तौहीद (एकेश्वरवाद) के साथ-साथ रिसालत पर ईमान लाना भी आवश्यक है। आख़िरत का सम्बन्ध भी तौहीद से है। आख़िरत का इनकार वास्तव में अल्लाह के प्रभुत्व (Sovereigaty) का इनकार है।

   अल्लाह पर ईमान के बाद दूसरी चीज़ जिसपर ईमान लाने की शिक्षा दी गई वह फ़रिश्तों का अप्रत्यक्ष अस्तित्व है। मुशरिक (बहुदेववादी) लोग साधारणतया जहाँ प्रभुत्व में उन चीज़ों को शरीक समझते थे जो अपना दैहिक अस्तित्व रखती हैं, जिनको हम अपनी आँखों से देखते हैं—जैसे सूर्य, नदी, पर्वत आदि—वहीं वे उन चीज़ों को भी प्रभुत्व में शरीक ठहराते थे जो हमारी आँखों से ओझल हैं। 'मुशरिकों' ने इन अप्रत्यक्ष सृष्टि-जीवों को देवी-देवता या अल्लाह की औलाद समझ लिया था। नबी (सल्ल०) ने बताया कि वे अल्लाह के पैदा किए हुए फ़रिश्ते हैं। ईश्वरीय प्रभुत्व में उनका कुछ भी अधिकार नहीं है। वे अल्लाह ही के आज्ञाकारी हैं। वे वही करते हैं जो अल्लाह का हुक्म होता है। यह सही है कि वे विभिन्न कामों में लगे हुए हैं और विश्व का प्रबन्ध करते हैं, परन्तु वे जो कुछ भी करते हैं अल्लाह ही के आदेश और उसके प्रदान किए हुए अधिकार से करते हैं। उन्हें प्रभुत्व में सहभागी समझना, उनकी उपासना करना या संकट में उन्हें पुकारना अन्याय और शिर्क है। उनमें प्रभुत्व लेश मात्र भी नहीं पाया जाता। वे तो अल्लाह के उसी तरह बन्दे और दास हैं जिस तरह हम हैं। इस प्रकार तौहीद (एकेश्वरवाद) को शिर्क (बहुदेववाद) की बुराई से बचाने के लिए फ़रिश्तों पर ईमान लाने का उल्लेख एक स्थायी धारणा के रूप में किया गया।

   तीसरी चीज़ जिसपर ईमान लाने की शिक्षा दी गई है वे अल्लाह की किताबें हैं।

उसने कहा : आपने सच कहा।

फिर कहा : मुझे एहसान के बारे में बताइए।

आपने कहा : (एहसान) यह है कि तुम अल्लाह की इबादत इस तरह करो मानो तुम उसे देख रहे हो, क्योंकि यदि तुम उसे नहीं देखते हो, तो वह तो तुम्हें

अल्लाह ने लोगों के दिशा-दर्शन और पथ-प्रदर्शन के लिए किताबें उतारीं। क़ुरआन उसी दीन की शिक्षा के लिए अवतरित हुआ है जिसकी शिक्षा पहले ईश्वरीय ग्रन्थों या आसमानी किताबों (Heavenly Books) में दी गई थी।

किताबों के साथ-साथ रसूलों पर ईमान लाना भी आवश्यक है। रसूलों ही के द्वारा अल्लाह ने लोगों तक अपना मार्गदर्शन और ग्रन्थ भेजा। रसूल अल्लाह के प्रतिनिधि होते हैं। वे अल्लाह की इच्छा के अनुसार जीवन-यापन करके लोगों को दिखाते हैं। अल्लाह की किताब को व्यवहार में कैसे लाया जाए, यह हमें रसूल ही के जीवन से ज्ञात होता है। रसूल का जीवन हमारे लिए आदर्श होता है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) नुबूवत के सिलसिले की अन्तिम कड़ी हैं। आपपर नुबूवत और रिसालत का सिलसिला समाप्त हो गया।

रसूलों के बाद आख़िरत पर ईमान लाने की शिक्षा दी गई है। आख़िरत या अन्तिम दिन से अभिप्रेत यह है कि एक दिन सारा संसार विनष्ट हो जाएगा। इसके बाद अल्लाह लोगों को दूसरा जीवन प्रदान करेगा। सब लोग अल्लाह के सामने हाज़िर किए जाएँगे। लोगों ने जो कुछ सांसारिक जीवन में किया होगा उसका उन्हें बदला दिया जाएगा।

अन्त में तक़दीर पर ईमान लाने की शिक्षा दी गई है। तक़दीर पर ईमान वास्तव में अल्लाह पर ईमान लाने का एक पहलू है। क़ुरआन में इस धारणा का इसी हैसियत से उल्लेख भी हुआ है। उदाहरणार्थ देखिए क़ुरआन की सूरा 3 : 26, 73; 4 : 78; 7 : 128; 25 : 2-3, 57 : 22-23। तक़दीर पर ईमान वास्तव में इस बात का इक़रार है कि अल्लाह सर्वशक्तिमान अबाध्य शासक है। उसका ज्ञान सबको घेरे हुए है। कोई भी चीज़ उसके ज्ञान से विलग नहीं। उसने हर चीज़ का अन्दाज़ा ठहराया है, कोई भी चीज़ उसका अतिक्रमण नहीं कर सकती। उसकी शक्ति और बल का मुक़ाबला कोई नहीं कर सकता। यह संसार उसकी सोची-समझी योजना (Scheme) के अन्तर्गत चल रहा है। कोई उसको उसके मनसूबे में असफल नहीं कर सकता। फिर लाभ-हानि की सारी शक्तियों का वही मालिक है। सम्मान और अपमान और धन और बल सब उसके अधिकार में है। वह अपनी हिकमत और तत्वदर्शिता (Wisdom) की दृष्टि से जिस व्यक्ति को भी, जो कुछ और जितना, चाहता है देता है। उसकी हिकमत में कोई त्रुटि नहीं। उसका कोई काम और उसका कोई निर्णय निरर्थक नहीं।

ख रहा है।[1]

उसने फिर कहा : मुझे उस घड़ी (क़ियामत) के बारे में बताइए।

आप (सल्ल०) ने कहा : जिससे यह पूछा जा रहा है, वह पूछनेवाले से धिक नहीं जानता।[2]

उसने कहा : अच्छा, मुझे उसकी निशानियों से सूचित कीजिए।[3]

आपने कहा : (निशानियाँ ये हैं कि) लौंडी (दासी) अपनी स्वामिनी को न्म देगी[4] और तुम नंगे पाँव और नंगे शरीरवाले कंगालों और बकरियाँ

यहाँ आपने एहसान की वास्तविकता का, जो वास्तव में पूरे दीन (धर्म) का सार एवं प्राण है, उल्लेख किया है। एहसान शब्द हुस्न से निकला है। हुस्न सुन्दरता एवं उत्तमता को कहते हैं। इबादत में सुन्दरता ख़ूबी और पूर्णता उसी समय पैदा होती है जबकि हमारा ईमान और विश्वास ऐसा हो कि मानो अल्लाह हमारी दृष्टि से ओझल नहीं है, बल्कि हमारी निगाहों के सामने है। इस मनोभाव और हृदय-स्थिति के साथ जो इबादत की जाएगी, उसमें जो सौन्दर्य होगा वह उन उपासनाओं और इबादतों में नहीं हो सकता जो इस मनोभाव से वंचित हों। एहसान वास्तव में मानवीय विकास की उच्चतम मंज़िल है। यहाँ पहुँचकर मनुष्य को अल्लाह का अत्यन्त सामीप्य और उसका अत्यन्त गहरा प्रेम प्राप्त होता है। एहसान अल्लाह की पहचान (ब्रह्मज्ञान) का सबसे उच्च दर्जा है। यहाँ पहुँचने के पश्चात् अल्लाह की पसन्द मनुष्य की अपनी पसन्द हो जाती है। उसकी इच्छा वही होती है जो उसके ईश्वर की इच्छा होती है। जो चीज़ उसके पालनकर्ता को अप्रिय होगी वह उसे भी अप्रिय होगी। वह उन भलाइयों और नेकियों को फैलाने और उन्हें क़ायम करने की कोशिश में अपनी सारी शक्ति लगा देता है जिनसे उसका स्वामी (ईश्वर) इस धरती को सुसज्जित देखना चाहता है। इसी प्रकार वह उन बुराइयों को मिटाने के लिए जान तोड़ कोशिश करता है जिन्हें उसका स्वामी इस धरती में देखना नहीं चाहता। ऐसा नहीं कि वह केवल नमाज़ की हालत में एहसान के पद पर हो, बल्कि अल्लाह के प्रत्येक आदेश के पालन में वह एहसान ही के दर्जे पर होता है।

अर्थात इसका ज्ञान हममें से किसी को नहीं है कि क़ियामत कब आएगी, इसका ज्ञान केवल अल्लाह को है।

जिनके प्रकट होने पर यह समझा जा सके कि क़ियामत निकट आ गई।

मतलब यह है कि क़ियामत के क़रीब लोगों में परस्पर सहानुभूति और प्रेम-भाव शेष नहीं रहेगा। लोग रिश्ते-नाते का आदर करना भी छोड़ देंगे। बड़ों का आदर-सम्मान न होगा। बेटी जिसे अपनी माँ से गहरा लगाव होना चाहिए, उसका व्यवहार माँ के साथ

चरानेवालों को देखोगे कि वे भवनों (के निर्माण) में एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर रहना चाहते हैं।[1]

(हज़रत उमर रज़ि०) कहते हैं कि फिर वह चला गया और मैं कुछ देर ठहरा रहा। फिर आप (सल्ल०) ने मुझसे कहा : ऐ उमर ! क्या तुम्हें मालूम है कि प्रश्न करनेवाला कौन था ?

मैंने कहा : अल्लाह और उसका रसूल ज़्यादा जानते हैं।

आपने कहा : वे जिबरील थे, तुम्हारे पास आए थे कि तुम्हें तुम्हारे दीन (धर्म) की शिक्षा दें।[2]

ऐसा होगा जैसे साधारणतः स्वामिनी का अपनी दासी के साथ होता है। माँ ने माने बेटी नहीं बल्कि अपनी स्वामिनी को जन्म दिया है।

1. अर्थात धन-वैभव और उच्च पद उन लोगों को प्राप्त होगा जो ज्ञान, सभ्यता, सज्जनत आदि गुणों से कोरे होंगे। उन्हें बस इसकी धुन होगी कि ऊँचे-ऊँचे भवनों का निर्मा कराएँ। इसमें वे एक-दूसरे से बाज़ी ले जाने की चेष्टा करेंगे। इसी को वे अपने लि गर्व की बात समझने लगेंगे। एक दूसरी हदीस् में नबी (सल्ल०) ने कहा है कि हुकूमत अधिकार और मामले अयोग्य लोगों को सौंपे जाने लगें तो क़ियामत की प्रतीक्षा क (बुख़ारी)। अर्थात उस समय समझ लो कि अब क़ियामत दूर नहीं है।
2. अर्थात अल्लाह के विशेष फ़रिश्ते हज़रत जिबरील (अलै०) थे जो मानव रूप इसलिए आए थे, ताकि धर्म के विषय में मुझसे प्रश्न करें और इस तरह तुम्हें अपने दी के विषय में सच्चा और उत्तम ज्ञान प्राप्त हो सके।

मौलिक विचार

और

धारणाएँ

मनुष्य अपने जीवन को कभी विचार और धारणाओं से रिक्त नहीं रख सकता। हर व्यक्ति का कोई न कोई दृष्टिकोण, मत और धारणा होती है जिसके अन्तर्गत वह जीवनयापन करता है। संसार में जिन प्रत्यक्ष वास्तविकताओं से हम परिचित हैं, वास्तविकताएँ उन्हीं तक सीमित नहीं है। कितनी ही ऐसी चीज़ें हैं जिनको हम अनुभव-शक्ति से मालूम नहीं कर सकते, हमें उनका ज्ञान बुद्धि और तर्क द्वारा होता है। A. E. Mander ने लिखा है कि दीख पड़नेवाली घटनाएँ वास्तविकता के केवल कुछ अंश हैं। अनुभव-शक्ति और इन्द्रियों के द्वारा हम जो कुछ जानते हैं वे केवल आंशिक और असम्बद्ध घटनाएँ होती हैं। यदि अलग से केवल उन्हीं को देखा जाए तो वे निरर्थक होंगी। वे प्रत्यक्ष घटनाएँ जिनका अनुभव होता है उनके साथ और बहुत-सी ऐसी अप्रत्यक्ष घटनाओं को मिलाकर जब हम देखते हैं उस समय हम उनका अर्थ समझ पाते हैं। उसकी दृष्टि में जब हम कभी किसी निरीक्षण का उल्लेख करते हैं तो उससे अभिप्रेत ऐन्द्रिक निरीक्षण मात्र से कुछ अधिक होता है। उससे अभिप्रेत ऐन्द्रिक निरीक्षण और अनुभूति (Recognition) दोनों ही होते हैं, जिसमें कुछ व्याख्या (Interpretation) का अंश भी सम्मिलित होता है। मनुष्य ऐन्द्रिक निरीक्षण और उन प्रत्यक्ष वास्तविकताओं पर ही सन्तोष नहीं कर सकता जिनसे वह प्रत्यक्षतः परिचित होता है। वह जो कुछ देखता और महसूस करता है उसके अतिरिक्त भी उसका कोई न कोई विचार और कल्पना होती है और इसके लिए वह विवश होता है।

जीवन और वास्तविकताओं की सही व्याख्या और मानवीय जीवन के सही विचार और दृष्टिकोण से परिचित करानेवाले अल्लाह के भेजे हुए बन्दों को नबी और रसूल कहा जाता है। नबी वास्तव में अल्लाह के प्रतिनिधि होते हैं। अल्लाह उन्हें इसी लिए भेजता है कि वे मनुष्यों को सही और सत्यानुकूल विचारों की शिक्षा दें और लोगों को हर प्रकार की वैचारिक और व्यावहारिक पथभ्रष्टता से बचाएँ। नबियों ने मनुष्यों को जो विचार और दृष्टिकोण दिए वे किसी अनुमान और अटकल पर आधारित नहीं हैं। नबियों को उन धारणाओं का प्रत्यक्ष ज्ञान अल्लाह की ओर से दिया गया। जिन धारणाओं की शिक्षा नबियों ने दी है

उनमें से किसी एक का खंडन भी नवीन खोजों और अनुसंधानों से नहीं होता। और न इसकी आशा की जा सकती है कि भविष्य में कोई खोज और अनुसंधान उनके मिथ्या होने का प्रमाण बन सकेगा। नवीन खोजों से नबियों की शिक्षा और उनके दृष्टिकोण का समर्थन और पुष्टि ही होती है। जीवन के सही दिग्दर्शन के लिए आवश्यक है कि मनुष्य नबियों पर और उनकी लाई हुई हिदायत और मार्गदर्शन पर विश्वास करे। नबियों पर ईमान लाए बिना मनुष्य अंधियारियों से छुटकारा नहीं पा सकता। जीवन के लिए केवल बुद्धि और अनुभव का मार्गदर्शन पर्याप्त नहीं। इस सिलसिले में शीन (Sheen) ने सही विश्लेषण किया है। वह लिखता है : "हमारी अनुभवशक्ति और इन्द्रियाँ उत्तम रीति से उस समय काम करती हैं जब बुद्धि द्वारा उनकी पूर्ति हो जाए। इसी प्रकार हमारी बुद्धि भी उस समय ठीक काम कर सकती है जबकि ईमान के द्वारा उसकी पूर्ति हो जाए। जो व्यक्ति अस्थायी रूप से (जैसे शराब पीनेवाला शराब पीकर) बुद्धिविहीन हो जाता है, उसकी अनुभवशक्ति और इन्द्रियाँ वही होती हैं जो पहले थीं; परन्तु उस समय वह कभी भी अपने कर्त्तव्यों का पालन उस तरह नहीं कर सकता जिस तरह वह बुद्धि और होश की हालत में कर सकता है। जो दशा बुद्धि के बिना इन्द्रियों की होती है ठीक वही दशा वह्य (ईश-मार्गदर्शन) के बिना बुद्धि की होती है।" आँख से काम लेने के लिए प्रकाश और दीप की आवश्यकता होती है। बुद्धि से भी सही काम उसी समय लिया जा सकता है जबकि उसके लिए वह्य और नुबूवत का प्रकाश संचित कर दिया जाए।

सही धारणा और सत्य-विचार मनुष्य को हर प्रकार की गुमराही और पथभ्रष्टता से बचाते हैं और उसके चरित्र और स्वभाव को महान शक्ति प्रदान करते हैं। विचार और धारणाएँ ही वास्तव में किसी व्यक्तित्व या जाति की महानता की ज़ामिन होती हैं। दृष्टिकोण और विचार यदि उच्च हैं, तो निश्चय ही वे किसी व्यक्ति या जाति को महानता प्रदान कर सकते हैं। इसके विपरीत विचार और अपनी धारणाओं की दृष्टि से यदि कोई जाति गिरी हुई या पथभ्रष्ट है तो कोई दूसरी चीज़ उसे प्रतिष्ठा का वह स्थान नहीं दिला सकती जो संसार में केवल उच्च विचार, शुद्ध धारणा और सही दृष्टिकोण के द्वारा प्राप्त होता है। यह यह बात न भूलनी चाहिए कि सही से सही और उच्च से उच्च विचार और दृष्टिकोण भी व्यावहारिक क्षेत्र में निरर्थक सिद्ध होते हैं यदि उन्हें ग्रहण करनेवाला कोई ऐसा गिरोह धरती पर मौजूद न हो जो उसके लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर सके और उसके प्रचार में हर वह कोशिश करे जो वह कर सकता

हो। विचार और धारणाओं के द्वारा ही मनुष्य के आंतरिक भावों और अनुभूतियों में संतुलन और दृढ़ता पैदा होती है। चरित्र-निर्माण के लिए आवश्यक है कि मनुष्य के विचार और उसके मनोवेग और इच्छाओं में अनुरूपता पाई जाती हो। मनुष्य यदि अपने विचार और मनोवेग एवं इच्छाओं में एकता बनाए रखने में सफल न हो सका, तो वह अपने सामयिक उद्वेगों के हाथ में एक खिलौना मात्र है, इससे अधिक उसकी कोई हैसियत नहीं। ऐसे व्यक्ति से किसी उच्च और सुदृढ़ चरित्र एवं स्वभाव की आशा नहीं की जा सकती और न ही ऐसे व्यक्तियों से यह आशा की जा सकती है कि उनके द्वारा किसी सुदृढ़ सभ्यता का विकास हो सकेगा। जार्ज फूट मूर (George Foot Moor) के शब्दों में सभ्यता केवल इस रूप में विकास पा सकती है जबकि मनुष्यों की अधिक से अधिक संख्या किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सचेष्ट हो। इस प्रकार का संगठन केवल विचारों और कल्पनाओं की एकता (Unity of Bare Ideas) के आधार पर सम्भव नहीं होता। यह संगठन मनोवेगों और अनुभूतियों की एकता से संभव होता है, जिनसे कल्पनाओं एवं विचारों को प्रेरणा मिलती है और वे (केवल विचार और कल्पना न रहकर) आस्था और उद्देश्य बन जाते हैं।

इस्लाम ने विचार और धारणा को मानव-जीवन में वही स्थान दिया है जो वास्तव में उनका स्थान होता है। विचार और धारणा के महत्व के कारण ही इस्लाम ने ज्ञान व विश्वास और ईमान को धार्मिक व्यवस्था में मौलिक स्थान दिया है। जो लोग वास्तविकता से अपरिचित हैं और जीवन के अन्तिम परिणाम से बेपरवाह होकर जीवन-यापन करते हैं उनके जीवन का उल्लेख करते हुए कुरआन में एक जगह कहा गया है—

> "ऐसे व्यक्ति से अलग रहो जो हमारे ज़िक्र से मुँह मोड़े और सांसारिक जीवन के अतिरिक्त कुछ न चाहे। उनके ज्ञान की पहुँच यहीं तक है। निस्संदेह तुम्हारा रब उस व्यक्ति को भली-भाँति जानता है जो उसके मार्ग से भटक गया और वह उस व्यक्ति को भी भली-भाँति जानता है जिसने सीधी राह अपनाई।" (क़ुरआन, 53 : 29-30)

क़ुरआन के इस बयान से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है कि जीवन में ज्ञान, शुद्ध विचार और सही दृष्टिकोण का कितना महत्व है। सही विचार मनुष्य को सही मार्ग की ओर ले जाता है, अशुद्ध विचार और असत्य भावनाएँ मनुष्य को विनाश की ओर ले जाती हैं।

ज्ञान एवं विवेक

मानव-जीवन में ज्ञान का बड़ा महत्व है। ज्ञान ही वास्तव में मनुष्य के चरि
और आचार का मौलिक आधार है। मनुष्य की सफलता वास्तव में इस बात प
निर्भर करती है कि उसे वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त हो, जिसके अनुसार वह अप
जीवन का निर्माण कर सके। यदि उसे इस बात का ज्ञान ही न हो कि उसे य
जीवन किसने प्रदान किया है और उसके जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है,
वह कभी भी जीवन के सीधे और सच्चे मार्ग पर नहीं चल सकता और न
अपने सृष्टिकर्त्ता की इच्छा को कभी पूरी कर सकता है। उसकी मिसाल बिलकु
ऐसी होगी जैसे कोई गहन अन्धकार में भटक रहा हो और उसे इसकी बिलकु
ख़बर न हो कि वह कहाँ है और उसे किस ओर जाना चाहिए। एक ईमानवा
(आस्तिक) व्यक्ति और काफ़िर (नास्तिक व ईश्वर का अवज्ञाकारी) में वास्तवि
अन्तर ज्ञान और कर्म ही का है। इस अन्तर के कारण उनके जीवन और उन
परिणाम में महान अन्तर पाया जाता है। ईमानवालों को संसार में भी उत्तम जीव
(हयाते तैयबा) प्राप्त होता है और आख़िरत में वे अल्लाह की कृपा एवं दयालु
और उसकी जन्नत के अधिकारी होंगे। काफ़िर केवल अल्लाह के प्रकोप अ
जहन्नम की यातना का भागी होगा। यही कारण है कि क़ुरआन और हदीस
ज्ञान एवं बुद्धिमत्ता को मौलिक महत्व दिया गया है। क़ुरआन में कहा गया है—

"कह दो : क्या बराबर होते हैं वे लोग जो जानते हैं और वे लोग जो नहीं जानते?" —क़ुरआन, 39 : 9

"अल्लाह उन लोगों के दर्जे ऊँचे कर देगा जो तुममें से ईमान ले आए और जिन्हें ज्ञान प्रदान किया गया है।" —क़ुरआन, 58 : 11

"अल्लाह से तो उसके बन्दों में बस ज्ञानवाले ही डरते हैं।"

—क़ुरआन, 35 : 28

"और कहो, ऐ रब ! मुझे और अधिक ज्ञान प्रदान कर।"

—क़ुरआन, 20 : 114

"और जिसे हिकमत (तत्वदर्शिता) दी गई, उसे बड़ी दौलत दी गई।"

—क़ुरआन, 2 : 269

काफ़िरों (नास्तिकों एवं अवज्ञाकारियों) और मुशरिकों (बहुदेववादियों) को विशेष रूप से इसलिए अपराधी कहा गया है कि वे ज्ञान का अनुसरण नहीं करते बल्कि अपनी इच्छाओं के दास हैं और केवल अटकल और अनुमान से काम लेते हैं। कहा गया—

"वे तो बस अपनी इच्छाओं के दास हैं और गुमान पर चलते हैं, और गुमान हक़ बात के सामने कुछ काम नहीं देता।"

—क़ुरआन, 53 : 28

"ये लोग तो बस गुमान पर और जो जी चाहता है उसपर चल रहे हैं।"

—क़ुरआन, 53 : 23

"और उस व्यक्ति से बढ़कर भटका हुआ कौन होगा जो अल्लाह के मार्गदर्शन के बिना अपनी (तुच्छ) इच्छा पर चले।"

—क़ुरआन, 28 : 50

ऐसे लोग वास्तव में बुद्धि और सूझ-बूझ से वंचित होते हैं।

"क्या तुम समझते हो कि इनमें अधिकतर सुनते या समझते हैं? ये तो बस चौपायों की तरह हैं—बल्कि ये और बढ़कर राह से भटके हुए हैं।"

—क़ुरआन, 25 : 44

दीन में समझ और अल्लाह की उतारी हुई किताब में सूझ-बूझ प्राप्त करना हमारा कर्त्तव्य है। इसके बिना हमारी चेष्टाएँ अव्यवस्थित और हमारा जीवन अस्त-व्यस्त और अनियमित ही रहेगा। हमारे विश्वास और विचार को खोखला और हमारी इबादतों और उपासनाओं को प्राणहीन और निस्सार होने से जो चीज़ बचा सकती है वह यही है कि आदमी दीन में समझ हासिल करे और किताब व सुन्नत में सोच-विचार से काम ले। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने मुसलमानों को इसकी बार-बार ताकीद की है कि वे दीन में सूझ-बूझ हासिल करें और उसके आदेशों को समझें।

ज्ञान एवं विवेक का महत्व

1. हज़रत मुआविया (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसके लिए अल्लाह भलाई का इरादा करता है उसे दीन में समझ प्रदान करता है[1] और मैं तो बस वितरण करनेवाला हूँ और अल्लाह देता है।[2] यह समुदाय सदा अल्लाह के हुक्म पर क़ायम रहेगा। जो कोई इनका (इस समुदायवालों का) विरोधी होगा, इन्हें हानि न पहुँचा सकेगा यहाँ तक कि क़ियामत आ जाएगी।[3] —बुख़ारी, मुसलिम, इब्ने माजा

2. हज़रत इब्न मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ईर्ष्या केवल दो आदमियों के सिलसिले में की जा सकती है : एक वह व्यक्ति जिसे अल्लाह ने धन दिया और फिर उसको सत्य (हक़) के मार्ग में लुटाने का सौभाग्य प्रदान किया, दूसरा वह व्यक्ति जिसे अल्लाह ने हिकमत (तत्त्वदर्शिता, निर्णयशक्ति) प्रदान की तो वह उसके अनुसार निर्णय करता है और

---

1. "दीन में समझ" से अभिप्रेत वह सूझ-बूझ और विवेक है जिसके कारण मनुष्य दीन की वास्तविकता और उसके तथ्यों को जान जाता है। वह धर्म का मर्मज्ञ हो जाता है। वास्तविक रूप से उसे दीन का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। धार्मिक आदेशों के आशय और अभिप्राय को वह पा लेता है, फिर वह कोई अन्धा अनुवर्ती नहीं रहता, बल्कि पूर्ण सूझ-बूझ और विवेक के साथ वह जीवन में ईश्वरीय आदेशों का पालन करता है। उस पर यह तथ्य प्रत्यक्ष हो जाता है कि अल्लाह की बन्दगी और उसके आदेशों के पालन ही में मानव की सफलता और उसका कल्याण है। अल्लाह की दासता और उपासना के बिना मनुष्य अपने जीवन के वास्तविक अभिप्राय से अनभिज्ञ ही रहता है। यह हदीस बताती है कि वह व्यक्ति बड़ा ही भाग्यवान है जिसे अल्लाह ने दीन में समझ प्रदान की हो। इसलिए कि यही चीज़ समस्त भलाइयों और कल्याण का स्रोत एवं उद्‌गम है।
2. अर्थात मेरा काम तो वितरण करना है। जो सन्देश या ज्ञान की बातें मैं लोगों तक पहुँचा रहा हूँ वे मेरी अपनी घड़ी हुई कदापि नहीं हैं, बल्कि वे अल्लाह ही की ओर से हैं।
3. इसमें इस बात की भविष्यवाणी है कि मुसलिम समुदाय क़ियामत तक शेष रहेगा, कोई भी शक्ति उसका उन्मूलन न कर सकेगी। इस्लाम चिरस्थायी वास्तविकता है, इसे मिटाया नहीं जा सकता। एक गिरोह सदा उसका समर्थक रहेगा।

(लोगों को) उसकी शिक्षा देता है।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति ज्ञान की खोज में निकले वह अल्लाह के मार्ग में है जब तक कि वापस न आ जाए।[2] —तिरमिज़ी

4. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : यदि किसी व्यक्ति को इस दशा में मृत्यु आ जाए कि वह ज्ञान प्राप्त कर रहा हो, तो वह अल्लाह से इस दशा में मिलेगा कि उसके और नबियों के बीच केवल नुबूवत के दर्जे का अन्तर रहेगा।

—अत-तबरानी : औसत

5. हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : जो व्यक्ति ज्ञान की खोज में कोई मार्ग अपनाएगा अल्लाह उसके लिए जन्नत का मार्ग सुगम कर देगा।[3] और फ़रिश्ते ज्ञानार्थी की प्रसन्नता के लिए अपनी भुजाएँ बिछाते हैं। और ज्ञानी के लिए आकाश और धरती के रहनेवाले यहाँ तक कि जल की मछलियाँ भी मोक्ष की प्रार्थना करती हैं।[4] और ज्ञानी की श्रेष्ठता उपासक की अपेक्षा ऐसी है जैसे

---

1. अर्थात ये दो प्रकार के मनुष्य ऐसे हैं जो बड़े भाग्यशाली हैं उनकी नीति का अनुसरण सफलता की कुंजी है। किसी को अल्लाह ने धन दिया है और उसे वह अल्लाह के मार्ग और शुभ कर्मों में व्यय करता है, तो वह सफल है। इसी प्रकार वह व्यक्ति भी सफल है जिसे अल्लाह ने ज्ञान और विवेक प्रदान किया है और वह इसे उचित रूप से प्रयोग में लाता है, मामलों का सही फ़ैसला करता और लोगों को तत्वदर्शिता (Wisdom) की शिक्षा देता है।
2. ज्ञान की खोज में निकलनेवाला अल्लाह के मार्ग में होता है। वह उस मार्ग में होता है जिसपर चलकर वह अपने रब को पाता और उसकी प्रसन्नता प्राप्त करता है। सत्य-ज्ञान का जिज्ञासु वास्तव में अल्लाह के मार्ग का मुजाहिद (धर्मयोद्धा) होता है।
3. ज्ञान का मार्ग वास्तव में मनुष्य को जन्नत में पहुँचानेवाला है। वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही मनुष्य पथभ्रष्टता से बच सकता है और उस मार्ग पर चल सकता है जिसपर चलकर मनुष्य जन्नत में जाने के योग्य होता है। यदि वह ज्ञान का जिज्ञासु है तो अल्लाह उसके लिए सन्मार्ग पर चलना सरल कर देता है।
4. यह हदीस बताती है कि सत्यज्ञान के इच्छुक व्यक्ति का आदर फ़रिश्ते तक करते हैं। आकाश और धरती के जीवधारी उनके लिए ख़ुदा से दुआएँ करते हैं कि यदि उनसे कोई भूल-चूक और गुनाह हुआ हो तो उसे क्षमा कर दे और उनके ऐबों को छिपा ले।

चन्द्रमा की श्रेष्ठता शेष समस्त तारागण के मुक़ाबले में है।[1] और निस्संदेह ज्ञानी नबियों के वारिस (उत्तराधिकारी) हैं। नबी मीरास में न दीनार छोड़ते हैं और न दिरहम, वे तो विरासत में बस ज्ञान छोड़ जाते हैं। तो जिस किसी ने उसे प्राप्त किया उसने अत्यधिक हिस्सा प्राप्त किया।[2] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी, इब्ने माजा

6. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस मार्गदर्शन और ज्ञान के साथ अल्लाह ने मुझे भेजा है उसकी मिसाल ऐसी है जैसे वर्षा जो धरती पर हुई, तो उस (धरती) का जो भाग अच्छा था उसने जल को शोषित किया और हरियाली और हरी-भरी घास उगाई और उस (धरती) का जो भाग कठोर था उसने जल को रोक लिया तो अल्लाह ने उससे लोगों को फ़ायदा पहुँचाया। लोगों ने उससे वह जल पिया और जानवरों को पिलाया और खेतों को सिंचित किया और खेती-बाड़ी की। और वह वर्षा भूमि के

ज्ञान और ज्ञानियों ही के कारण संसार में भलाई और मंगल की अभिव्यक्ति होती है। अल्लाह संसारवालों पर दया करता है। उन्हीं की बरकत से वर्षा होती है और प्रत्येक जीवधारी अपना आहार पाता है। बिलों में चींटियों और समुद्र के तल में मछलियाँ उन्हीं की बरकत से जीवन का आनन्द लेती हैं, मानो वे अपनी स्थिति की जिह्वा से उनके लिए दुआ कर रही होती हैं कि उनपर अल्लाह की दया हो ताकि वे उनकी बरकत से ज़्यादा से ज़्यादा लाभान्वित हो सकें। यदि संसार से ज्ञान और ज्ञानवाले उठ जाएँ तो फिर 'क़ियामत' ही आ जाएगी। फिर कोई जीवधारी जीवित नहीं रह सकता।

1. इसमें सन्देह नहीं कि अल्लाह की इबादत और उसका स्मरण मानव-जीवन की वास्तविक सम्पत्ति है, परन्तु इस बहुमूल्य सम्पत्ति की प्राप्ति ज्ञान और समझ-बूझ के बिना संभव नहीं। इसी प्रकार लोक-सुधार का कार्य तो इसके बिना हो ही नहीं सकता कि लोगों को जग-स्रष्टा और उसके मार्गदर्शन से परिचित कराया जाए। स्वयं नबी (सल्ल०) जो ज्ञान एवं मार्गदर्शन लेकर आए उसकी शिक्षा और उसके प्रचार में अन्त तक लगे रहे। आपके प्रयास एवं प्रयत्न के परिणामस्वरूप वह क्रान्ति आई जिसने लोगों के सोच-विचार और व्यवहार को बदलकर रख दिया। भटके हुए मनुष्यों को सत्य-मार्ग मिला और गुमराही, पथभ्रष्टता और कुफ़्र व शिर्क (अधर्म और अनेकेश्वरवाद) में ग्रस्त लोगों को तौहीद (एकेश्वरवाद) की दौलत मिली।
2. नबी अपनी जातिवालों के लिए पिता के समान होते हैं, बल्कि इससे भी बढ़कर उनका दर्जा होता है। वे अपने पीछे तरका (विरासत) में धन-दौलत नहीं छोड़ते। उनका तरका तो वह ज्ञान है जिसे लेकर वे आते हैं। वे लोग बड़े ही भाग्यशाली हैं जो वास्तविक रूप में नबियों के वारिस बनें।

क ऐसे भाग पर भी हुई जो चटियल है, वह न जल को रोक सकता है और न रियाली उगा सकता है। यह मिसाल उन लोगों की है जिन्होंने सर्वोच्च ईश्वर के तारे हुए) दीन में समझ प्राप्त की और उस चीज़ से फ़ायदा उठाया जिसके साथ ल्लाह ने मुझे भेजा है, तो उन्होंने सीखा और सिखाया। और यह उन लोगों की साल है जिन्होंने न तो इस तरफ़ सिर उठाकर देखा और न अल्लाह के उस र्गदर्शन को अपनाया जिसके साथ मुझे भेजा गया है।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

ान की रक्षा

1. हज़रत कअब बिन मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के

इस हदीस में नबी (सल्ल०) ने ज्ञान एवं मार्गदर्शन (Divine Guidance) को वर्षा की उपमा दी है। जब वर्षा होती है तो अच्छी भूमि जल से सिंचित होकर हरी-भरी हो जाती है। दूसरी प्रकार की भूमि वह है जिसमें हरियाली तो नहीं होती परन्तु उसमें जल एकत्र हो जाता है जिससे लोग फ़ायदा उठाते हैं। तीसरी प्रकार की भूमि वह है जो बिलकुल चटियल मैदान होती है, न तो वह जल को शोषित कर सकती है कि वहाँ हरियाली हो सके और खेती-बाड़ी की जा सके और न ही उसमें पानी एकत्र हो सकता है। ऐसी भूमि न वर्षा से स्वयं फ़ायदा उठाती है और न उसके द्वारा दूसरों को कोई फ़ायदा पहुँच सकता है। ठीक इसी वर्षा की तरह अल्लाह की ओर से ज्ञान और मार्गदर्शन का अवतरण होता है। उसका रसूल लोगों को ज्ञान और मार्गदर्शन की ओर बुलाता है और उन्हें 'किताब' व हिकमत की शिक्षा देता है। जो लोग बुद्धिमान, विवेकशील और सूझ-बूझवाले हैं वे उससे लाभान्वित होते हैं। उनका जीवन ज्ञान व मार्गदर्शन रूपी वर्षा से भली-भाँति सिंचित हो जाता है। उनके जीवन-उपवन में वसन्त आ जाता है। उनके जीवन में ज्ञान और कर्म के ऐसे पुष्प खिलते हैं जिससे मानवता का सम्पूर्ण वातावरण सुगन्धित हो जाता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो स्वयं ज्ञान और मार्गदर्शन से पूरा फ़ायदा नहीं उठा पाते, परन्तु उनके द्वारा दूसरों को फ़ायदा पहुँचता है। वे धार्मिक आदेशों और ज्ञान को सुरक्षित रखते हैं और दूसरों तक पहुँचाते हैं। उनकी मिसाल उस सरोवर की है जिसमें पानी भरा रहता है जिससे भूमि की सिंचाई करके खेतियाँ उगाई जाती हैं। जिसके पानी को लोग स्वयं पीते और अपने जानवरों को भी पिलाते हैं। तीसरे प्रकार के लोग वे हैं जो बिलकुल चटियल मैदान होते हैं। ज्ञान की अमृत वर्षा से न उनमें सजीवता आती है और न वे ज्ञान को सुरक्षित रखते हैं कि दूसरे लोग उससे फ़ायदा उठा सकें। उनके जीवन में जैसे पहले बिगाड़ होता है वैसे ही ज्ञान अवतरित होने के पश्चात भी बिगाड़ शेष रहता है। वे ज्ञान और ईश्वरीय-निर्देश की ओर ध्यान ही नहीं देते।

रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसने ज्ञान इस ध्येय से प्राप्त किया कि वह उससे ज्ञानीजन पर गर्व करे या मूर्ख और अज्ञानियों से झगड़े या लोगों को अपनी ओर खींचे, अल्लाह उसको (जहन्नम की) आग में डालेगा।[1] —तिरमिज़ी, इब्ने माजा

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा जिसने उस ज्ञान को जिससे अल्लाह की प्रसन्नता चाही जाती है, केवल इस ध्येय से सीखा कि वह उससे सांसारिक उपभोग्य वस्तु प्राप्त करे, उसे क़ियामत के दिन जन्नत की सुगन्ध भी प्राप्त न होगी। —अहमद, अबू दाऊद, इब्ने माजा

3. हज़रत आमिश (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा ज्ञान की आपदा भूलना है और उसे विनष्ट करना यह है कि तुम उसे ऐसे व्यक्ति के सामने बयान करो जो उसके योग्य नहीं।[2] —दारमी

4. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा बन्दे ने जब संसार में परहेज़गारी और निस्पृहता अपनाई तो तो अल्लाह ने उसके दिल में हिकमत (तत्त्वदर्शिता) पैदा की, और हिकमत उसकी ज़बान पर जारी की

---

1. अर्थ यह है कि ज्ञानार्जन किसी घटिया और तुच्छ उद्देश्य के लिए नहीं होना चाहिए दूसरे कार्यों की भाँति ज्ञान की प्राप्ति में भी सदैव ईश्वर की प्रसन्नता ही ध्येय होना चाहिए। किसी ने ज्ञान यदि ईश-प्रसन्नता के लिए नहीं बल्कि लोक-प्रसिद्धि और लौकिक लाभ की दृष्टि से प्राप्त किया तो अल्लाह के यहाँ उसके लिए कोई प्रतिदान नहीं है। वहाँ वह जन्नत की नेमतों से वंचित रहेगा और उसके हिस्से में जहन्नम की आग के अतिरिक्त और कुछ न आ सकेगा।
2. ज्ञानार्जन की भाँति ज्ञान की रक्षा भी आवश्यक है। ज्ञान प्राप्त करके उसे भुला देना बड़े दुर्भाग्य की बात है। ज्ञान और तत्वदर्शिता (Wisdom) किसी ऐसे व्यक्ति से बयान करना जो उसके योग्य न हो एक प्रकार का अन्याय है। एक तरफ़ हमें हर व्यक्ति से उसकी बुद्धि और उसके मानसिक स्तर के अनुसार बात करनी चाहिए दूसरी तरफ़ हमें योग्य लोगों की खोज होनी चाहिए और उन तक ज्ञान पहुँचाना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करते तो न केवल यह कि हम हक़दारों का हक़ मारते हैं बल्कि स्वयं ज्ञान को भी अत्यन्त हानि पहुँचाते हैं और उसे नष्ट करते हैं। ज्ञान जब योग्य लोगों तक पहुँचेगा तो वे उससे लाभान्वित होंगे और उनके द्वारा ज्ञान की अधिक से अधिक उन्नति और प्रचार भी हो सकेगा। वे अपने चिन्तन और विचार-शक्ति द्वारा ज्ञान-राशि में अभिवृद्धि भी कर सकते हैं चाहे वह वृद्धि चिन्तन और इजतिहाद के रूप में हो या साहित्य-भण्डार के रूप में।

संसार के अवगुण और उसके रोग और उनका उपचार उसे सुझा दिया और फिर उसे संसार से भला-चंगा (सकुशल) सलामती के घर की ओर निकाल ले गया।[1]

—बैहक़ी : शोबुल ईमान

सूझ-बूझ और बुद्धिमत्ता

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा गया : लोगों में कौन सबसे श्रेष्ठ है? आपने कहा : लोगों में अल्लाह की दृष्टि में सबसे श्रेष्ठ वह है जो सबसे अधिक (अल्लाह का) डर रखता हो।[2] लोगों ने कहा : हम आपसे यह नहीं पूछते। आपने कहा : तो फिर लोगों में सबसे श्रेष्ठ यूसुफ़ हैं कि स्वयं भी अल्लाह के नबी हैं, अल्लाह के नबी के बेटे और अल्लाह के नबी के पोते और अल्लाह के मित्र (हज़रत इबराहीम अलै०) के पड़पोते हैं। लोगों ने कहा : हम आपसे यह नहीं पूछते हैं। आपने कहा : तो फिर तुम अरब के

---

1. मनुष्य मृत्युलोक का पुजारी न बने, लोभ और लोलुपता से दूर रहे, प्रत्येक दशा में आख़िरत को अपने सामने रखे, यही वास्तविक ज़ुह्द (निस्पृहता) है। आख़िरत के प्रतिदान के अतिरिक्त सांसारिक जीवन में भी अल्लाह बन्दे को उसके ज़ुह्द के कारण तत्काल पुरस्कार प्रदान करता है जिसे क़ुरआन में "ख़ैरे कसीर" (बड़ी दौलत) कहा गया है (क़ुरआन 2 : 269)। अल्लाह उसको ज्ञान और हिकमत (Wisdom) प्रदान करता है। इससे बढ़कर पुरस्कार दूसरा नहीं हो सकता। यह सबसे उत्तम पुरस्कार और प्रतिदान है, अपनी भावात्मकता और रसात्मकता की दृष्टि से भी और इस दृष्टि से कि मनुष्य इसके द्वारा इस उपद्रव और फ़ितनों (Persecution) से भरी दुनिया में अपने को गुमराही और विनाश से बचाने में सफल हो सकता है। जिसे ज्ञान और हिकमत की दौलत मिल गई उसे वह विवेक और अन्तःदृष्टि मिल गई जिसके द्वारा वह सत्य-असत्य, उचित-अनुचित और भले-बुरे में अन्तर कर सकता है और जीवन की पेचीदा राहों में अपने आपको सीधे मार्ग पर स्थिर रख सकता है। उसके जीवन और उसके चरित्र को कोई आघात नही पहुँच सकता यहाँ तक कि वह इस संसार से सलामती के घर (दारुस्सलाम) अर्थात अल्लाह की जन्नत की ओर प्रस्थान कर जाएगा जहाँ हर प्रकार का मंगल, सुख और सलामती है। जहाँ कोई उपद्रव और फ़ितना नहीं। जहाँ न कल का भय है और न आज की कोई चिन्ता और डर।
2. अर्थात लोगों में सबसे श्रेष्ठ वह है जो सबसे ज़्यादा अल्लाह का डर रखनेवाला हो। क़ुरआन में भी कहा गया है : "अल्लाह के यहाँ तो तुममें सबसे ज़्यादा इज़्ज़तवाला वह है जो तुममें सबसे ज़्यादा डर रखता है।" —क़ुरआन, 49 : 13

घरानों के विषय में मुझसे पूछ रहे हो। लोगों ने कहा : हाँ। आपने कहा : तुममें जो अज्ञानकाल में अच्छे थे वही इस्लाम में भी तुममें सबसे अच्छे हैं जबकि उन्हें (दीन में) समझ (सूझ-बूझ) प्राप्त हो।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अबुल क़ासिम (सल्लं०) (अर्थात नबी सल्ल०) को कहते सुना : तुममें से इस्लाम में अच्छे वे हैं जो तुममें स्वभाव (एवं चरित्र) की दृष्टि से अच्छे हैं जबकि उन्हें (दीन में) समझ (सूझ-बूझ) प्राप्त हो।[2] —अदबुल मुफ़रद

---

1. इस हदीस से मालूम हुआ कि जो लोग स्वभावतः योग्य होते हैं, जिनमें निर्णय-शक्ति, धैर्य, दृढ़ता, सहनशीलता, वीरता और साहस पाया जाता है, दानशीलता, सज्जनता, उदारता, दूरदर्शिता एवं सतर्कता जैसी विशेषताएँ जिनमें मौजूद हों, जो स्वाभिमान, लज्जा, सहानुभूति, संवेदनशीलता आदि गुणों से सम्पन्न होते हैं, नीचता, कायरता, निर्लज्जता, कृपणता आदि दुर्गुणों से जिनका दूर का सम्पर्क भी नहीं होता, वे जहाँ भी होंगे प्रत्यक्ष चरित्र के अधिकारी सिद्ध होंगे। उन्हीं के द्वारा शक्तिशाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण संभव है। इस्लाम मौलिक मान्य नैतिकता एवं चरित्र के लिए वास्तविक केन्द्र एवं लक्ष्य प्रस्तुत करता है। इस्लाम के द्वारा मान्य नैतिकता एवं चरित्र को बल एवं व्यापकता प्राप्त होती है। यही कारण है कि इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व जो लोग उत्तम नैतिक गुणों से युक्त थे वे ईमान लाने के पश्चात भी प्रमुख व्यक्तित्व के अधिकारी हुए। अज्ञान काल में कुफ़्र और अधर्म ने उनकी मानवीय विशेषताओं को सीमित और दुर्बल कर रखा था। वे जब ईमान लाए और दीन में समझ और सूझ-बूझ प्राप्त की, तो उनके गुण और उनकी विशेषताएँ चमक उठीं। उनके नैतिक गुणों में अत्यन्त व्यापकता आ गई। संकुचित स्थिति से वे मुक्त हो गए। उनकी योग्यता में निखार आ गया। ऐसे ही लोग होते हैं जिनके द्वारा धरती में ईश्वरीय इच्छा की पूर्ति होती है, जो प्राणियों के लिए यातना और आपदा होने के स्थान पर सर्वथा दयालु होते हैं। एक दूसरी हदीस भी हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि आपने कहा : मनुष्यों की हैसियत सोने-चाँदी की खान की है। जो लोग अज्ञान (के समय) में चरित्र-बल (की दृष्टि) से अच्छे थे वे इस्लाम में भी अच्छे हैं, यदि उनमें समझ (और सूझ-बूझ) हो।"
2. मनुष्य शील-स्वभाव और चरित्र की दृष्टि से अच्छा हो और उसे दीन में समझ और सूझ-बूझ प्राप्त हो तो फिर वह एक उत्तम व्यक्ति है, उसके व्यक्तित्व में कोई कमी नहीं। एक हदीस में है : "सुन लो! उस इबादत में कोई भलाई नहीं जिसमें समझ नहीं, और न उस ज्ञान में कोई अच्छाई है जिसमें सूझ-बूझ नहीं और न क़ुरआन के उस पाठ करने में कोई अच्छाई है जिसमें चिन्तन नहीं है।"

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह के बन्दे के लिए दीन में समझ प्राप्त करने से बढ़कर श्रेष्ठता की कोई बात दूसरी नहीं हो सकती। एक (दीन में) समझ रखनेवाला व्यक्ति शैतान पर हज़ार उपासकों से अधिक भारी है। और हर चीज़ का एक आधार होता है और इस दीन (इस्लाम) का आधार समझ है।[1] —दारक़ुतनी, बैहक़ी

4. हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : (दीन में) समझ श्रेष्ठतम इबादत (उपासना) है[2] और श्रेष्ठतम दीन (धर्म) परहेज़गारी (संयम) है।[3] —तबरानी

---

1. मनुष्य के लिए सबसे बड़ी श्रेष्ठता और गौरव की बात यह है कि उसे दीन में समझ प्राप्त हो। एक ऐसा विद्वान जिसे धर्म में समझ और समझ-बूझ प्राप्त है वह शैतान की चालों से भली-भाँति परिचित हो सकता है, वह शैतान की चालों में नहीं आ सकता। इसके अतिरिक्त एक ऐसा व्यक्ति जिसे दीन में समझ और सूझ-बूझ प्राप्त नहीं, जो दीन के रहस्यों से अनभिज्ञ है, वह भले ही अपने निजी जीवन में अधिक से अधिक ईश-उपासना कर ले और सांसारिक प्रलोभनों के अवसर पर उदासीनता दिखाए किन्तु वह अपने वातावरण को बदलने में सफल नहीं हो सकता। इस्लाम को एक जीवन-प्रणाली के रूप में प्रचलित करने और शैतान के उपद्रवों को दबाने के लिए दीन की समझ अभीष्ट है। यही कारण है कि शैतान उन लोगों से अधिक भयभीत रहता है जो दीन के मर्मज्ञ होते हैं, जिन्हें दीन की समझ पूर्ण रूप से प्राप्त होती है।
   इससे मालूम हुआ कि इस्लाम आदेशों के अन्धानुकरण का नाम कदापि नहीं है, बल्कि इस दीन की नींव ही समझ और तत्वदर्शिता पर रखी गई है। अतः इस्लाम का इनकार वह व्यक्ति नहीं कर सकता जो समझ-बूझ से काम लेता और वास्तविकताओं एवं जीवन-तथ्यों को मन और मस्तिष्क के पूर्ण प्रकाश में स्वीकार करता और हर प्रकार के पक्षपात से अलग होकर केवल सत्य की इच्छा करता है।
2. समझ को इबादत में सम्मिलित किया गया, बल्कि उसे श्रेष्ठतम इबादत कहा गया। समझ के बिना मनुष्य धर्म-आदेशों और इबादतों के वास्तविक भाव, तत्व और अभिप्राय से अनभिज्ञ ही रहता है। इसी लिए समझ (तफ़क़्क़ुह) को मौलिक महत्व दिया गया है। एक हदीस में है : "लोगों में सबसे श्रेष्ठ वे हैं जो कर्म की दृष्टि से श्रेष्ठ हों, शर्त यह है कि वे दीन में समझ रखते हों।"
3. यहाँ संयम या परहेज़गारी के लिए वरअ़ शब्द प्रयुक्त हुआ है। वरअ़ वास्तव में अल्लाह की अवज्ञा और गुनाहों से दूर रहने और उन कामों से बचने को कहते हैं जिनके अनुचित और अवैध होने का सन्देह होता है। उच्चतम संयम, परहेज़गारी और

5. हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने मुझे अपने सीने से लगाया और कहा : "ऐ अल्लाह ! इसको हिकमत (तत्वदर्शिता) प्रदान कर।"[1] एक रिवायत में ये शब्द हैं : "इसको किताब (क़ुरआन) का ज्ञान दे।"[2]

—बुख़ारी

6. हज़रत अबू सईद अनसारी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) नमाज़ (में खड़े होने) के समय हमारे कन्धों पर हाथ फेरते (ताकि हम पंक्ति ठीक कर लें) और कहते : बराबर हो जाओ और विभेद और अन्तर पैदा न करो, नहीं तो तुम्हारे दिलों में फूट पड़ जाएगी। तुममें जो बुद्धिमान और समझवाले हैं वे मुझसे निकट रहें फिर जो उनके समीप हैं, फिर जो उनके समीप हैं।[3] —मुसलिम

7. हज़रत अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : एक व्यक्ति नमाज़ भी पढ़ता है, रोज़ा भी रखता है ज़कात भी देता है, हज और उमरा भी करता है—यहाँ तक कि आपने समस्त शुभ कर्मों की चर्चा की—परन्तु क़ियामत के दिन उसे उसकी बुद्धि के अनुसार प्रतिदान दिया जाएगा।[4] —बैहक़ी

निस्पृहता (ज़ुह्द) का नाम वरअ़ है।

1. तिरमिज़ी की एक रिवायत है कि इब्न अब्बास (रज़ि०) ने कहा : "अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मेरे लिए दो बार दुआ की कि अल्लाह मुझे हिकमत (तत्वदर्शिता और ज्ञान) प्रदान करे।"
2. क़ुरआन का ज्ञान स्वयं सर्वथा हिकमत (Wisdom) है।
3. इस हदीस से बुद्धिमान और विवेकशील व्यक्तियों की श्रेष्ठता का भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है कि उन्हें नमाज़ में नबी (सल्ल०) के निकट स्थान मिल रहा है नमाज़ की सफ़ों (पंक्तियों) में बेढंगापन और उनका तितर-बितर होना दिलों में फूट पड़ने का कारण बन सकता है। बाह्य-प्रभाव अन्तर पर भी पड़ता है इसी लिए नमाज़ में सफ़ों (पंक्तियों) को ठीक रखने की ताकीद की गई।
4. यह हदीस बताती है कि बुद्धि और समझ को दीन में मौलिक महत्व प्राप्त है। मनुष्य जितनी समझ, बुद्धि और विवेक के साथ अल्लाह की इबादत करेगा और शुभ कार्यों में लगा रहेगा उतना ही वह इबादत और सत्कर्म के वास्तविक उद्देश्य से परिचित हो सकेगा और ईश्वरीय आदेशों के अभिप्राय को पूरा कर सकेगा और उतना ही उसे अल्लाह का सामीप्य और आत्मिक आनन्द प्राप्त होगा। क़ुरआन मजीद में भी बुद्धि और विवेक से काम लेनेवालों की जगह-जगह प्रशंसा की गई है। एक जगह कहा गया है :

ज्ञान का प्रचार

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : श्रेष्ठ सदक़ा (दान) यह है कि एक मुसलिम व्यक्ति ज्ञान सीखकर अपने दूसरे मुसलिम भाई को उसकी शिक्षा दे।[1] —इब्ने माजा

2. हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क्या तुम जानते हो कि दानशीलता में कौन सबसे बढ़कर है? लोगों ने कहा : अल्लाह और उसके रसूल ज़्यादा जानते हैं। आपने कहा : दानशीलता में सबसे बढ़कर अल्लाह है, फिर आदम के बेटों (मानव-जाति) में सबसे अधिक दानशील मैं हूँ और मेरे बाद दानशीलता में सबसे बढ़कर वह है जिसने ज्ञान प्राप्त किया और उसको फैलाया।[2] यह व्यक्ति क़ियामत के दिन एक नायक की भाँति आएगा। या आपने यह कहा कि यह एक समुदाय के रूप में आएगा।[3] —बैहक़ी

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : स्वभाव सम्बन्धी दो बातें ऐसी हैं जो मुनाफ़िक़ (द्वयवादी, कपटाचारी) में नहीं एकत्र हो सकतीं; एक सुशीलता, दूसरे दीन की समझ (सूझ-बूझ)।[4] —तिरमिज़ी

(कृपाशील ईश्वर के अभीष्ट बन्दे तो वे हैं कि) जब उन्हें उनके रब की आयतों के द्वारा चेताया जाता है, तो उन (आयतों) पर वे अन्धे और बहरे बनकर नहीं गिरते (बल्कि बुद्धि से काम लेते और उनसे वास्तविक रूप में प्रभावित होते हैं)।

—क़ुरआन, 27 : 73

1. अर्थात सदक़ा और दान केवल माल ही में नहीं होता बल्कि ज्ञान और हिकमत (Wisdom) में भी व्यय और दान होता है। श्रेष्ठतम दान, ज्ञान और हिकमत ही का है कि स्वयं भी ज्ञानार्जन करे और दूसरों को भी उसकी शिक्षा दे ताकि वे भी उससे लाभान्वित हो सकें।
2. ज्ञानार्जन के पश्चात उसके प्रचार में प्रयत्नशील होना यदि दानशीलता है, तो उसके प्रसार एवं प्रचार की ओर से उदासीन होना निकृष्टतम प्रकार की कृपणता होगी। कृपणता ऐसा दुर्गुण है जिससे कोई भी अपने चरित्र को दूषित करना न चाहेगा।
3. अर्थात आख़िरत में उसका पद ऊँचा होगा। उसे नायक-पद (सरदारी) की प्रतिष्ठा और गौरव प्राप्त होगा।
4. निफ़ाक़ (कपटाचार) ऐसा रोग है कि जिसे लग जाता है वह इन दो चीज़ों से वंचित हो

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है; वे कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : संसार और संसार की प्रत्येक वस्तु तिरस्कृत है सिवाय अल्लाह के स्मरण और उस चीज़ के जो उसके निकट हो और सिवाय ज्ञानी और ज्ञानार्थी के।[1]
—तिरमिज़ी, इब्ने माजा, बैहक़ी

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति से ज्ञान की कोई बात पूछी जाए और वह उसको छिपा ले तो क़ियामत के दिन उसके (मुँह में) आग की लगाम दी जाएगी।
—अबू दाऊद, तिरमिज़ी

6. हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह उस बन्दे को प्रफुल्लित रखे जिसने मेरी बात सुनी, उसे याद रखा और उसे (ठीक रूप में लोगों तक) पहुँचाया, क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि समझ और विवेक की बात का वाहक ऐसे व्यक्ति तक बात पहुँचा देता है जो उससे कहीं ज़्यादा विवेकशील होता है।[2]
—तिरमिज़ी, अबू दाऊद

जाता है। मुनाफ़िक़ (कपट-नीति अपनानेवाला) कभी सुशील एवं चरित्रवान नहीं हो सकता और न उसे दीन की समझ प्राप्त हो सकती है। अल्लाह मुनाफ़िक़ों का पथ-प्रदर्शन नहीं करता। मुनाफ़िक़ के अन्दर हदीस में वर्णित ये दोनों गुण कभी एकत्र नहीं हो सकते।

1. अर्थात संसार में वास्तविक रूप से वही चीज़ें अपना मूल्य रखती हैं जिनका अल्लाह के स्मरण और ज्ञान से सम्बन्ध हो। जो चीज़ें इससे रहित हैं वे वास्तव में मंगल एवं कल्याण से रहित हैं, अतः उन्हें तिरस्कृत ही कहा जाएगा। अल्लाह के स्मरण और उसके प्रति आत्म-निवेदन और आज्ञापालन की भावना लौकिक कार्य-व्यापार को भी इतना पावन बना देती है कि हम उसे अल्लाह के स्मरण और अल्लाह के ज़िक्र से भिन्न नहीं कह सकते। जो कार्य भी अल्लाह की प्रसन्नता के लिए नियमित रूप से किया जाए वह ज़िक्र अर्थात ईश-स्मरण ही है।
2. इस हदीस से नबी (सल्ल०) के सन्देश और आपके वचन को दूसरों तक पहुँचाने की श्रेष्ठता पर प्रकाश पड़ता है। सारे लोग समान योग्यता के अधिकारी नहीं होते। यह असंभव नहीं कि ज्ञान और मार्गदर्शन की बात पहुँचानेवाले से वह व्यक्ति समझ और बुद्धि में बढ़ा हुआ हो जिस तक बात पहुँचाई जा रही है और वह उससे ज़्यादा से ज़्यादा लाभान्वित हो सके।

7. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरी ओर से पहुँचाओ यद्यपि एक ही आयत हो और बनी इसराईल से (सुनी हुई रिवायतें) बयान करो इसमें कोई हर्ज नहीं। और जो व्यक्ति ज्ञान-बूझकर झूठी बात का सम्बन्ध मुझसे जोड़े उसे अपना ठिकाना (जहन्नम की) आग में बनाना चाहिए। —बुख़ारी

ज्ञान और कर्म

1. हज़रत ज़ियाद बिन लबीद (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने किसी (भयावह) चीज़ की चर्चा की और फिर कहा कि यह (आपदा और उपद्रव) ज्ञान के चले जाने के समय होगा। मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! ज्ञान कैसे चला जाएगा जबकि हम क़ुरआन पढ़ते हैं और उसे अपनी औलाद को पढ़ाते हैं और हमारी औलाद अपनी औलाद को पढ़ाएगी? आपने कहा : तुम्हारी माँ तुम्हें खोए ज़ियाद! मैं तो तुम्हें मदीना का अत्यन्त समझदार एवं विवेकशील व्यक्ति समझता था। क्या ये यहूदी और नसारा (ईसाई) तौरात और इंजील नहीं पढ़ते (परन्तु फिर भी) जो कुछ उनमें है उसका कुछ भी पालन नहीं करते।[1]

—इब्ने माजा, तिरमिज़ी

2. हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आपने कहा : मैं इस समुदाय में हर मुनाफ़िक़ (द्वयवादी, कपटाचारी के दुष्कृत्य) से डरता हूँ, जो बातें तो हिकमत (ज्ञान एवं तत्वदर्शिता) की करे, परन्तु कार्य उसका अत्याचार का हो। —बैहक़ी : शोबुल ईमान

3. हज़रत शद्दाद बिन औस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो अपने आपको दबाए और मृत्यु के पश्चात जो कुछ है उसके लिए कर्म करे और निरुपाय एवं अक्षम व्यक्ति वह है जो अपनी (तुच्छ) इच्छाओं का दास हो और अल्लाह से प्रतिफल, मोक्ष एवं दया छया अभिलाषाएँ रखता हो। —तिरमिज़ी, इब्ने माजा

---

1. इस हदीस से मालूम हुआ कि जब ज्ञानानुसार कर्म न हो तो समझ लेना चाहिए कि ज्ञान उठ गया। ज्ञानवान वास्तव में वह व्यक्ति है जिसके ज्ञान ने उसके नैतिक रूप को सँवारा हो, जिसने ज्ञान को पूरी तरह अपने जीवन में अपना लिया हो। तुम्हारी माँ तुम्हें खोए अरबी मुहावरा है जिसका प्रयोग ऐसे ही अवसर पर होता है। इसका अभिप्राय बद्दुआ (श्राप) देना कदापि नहीं।

स्वाभाविक धर्म

इस्लाम उस जीवन-प्रणाली का नाम है जो स्वभाव से ही मनुष्य को अपेक्षित है। रसूलों को भेजकर अल्लाह ने मनुष्य को जिन चीज़ों का स्मरण कराया है वे उनकी अपनी प्रकृति और स्वभाव ही की माँगें हैं। इस्लाम विचार एवं व्यवहार का ऐसा विधान है जो बुद्धि-विवेक और हमारी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। इसी कारण कुरआन ने इस्लाम को सरल मार्ग से अभिहित किया है।[1] इस्लामी आदेशों का उल्लंघन करना वास्तव में अपनी प्रकृति और अपने स्वभाव का विरोध और अल्लाह की रचना को विकृत करना है।[2] इस्लाम ने जिन चीज़ों का आदेश दिया है स्वभावतः उन्हीं के द्वारा व्यक्ति को पूर्णता प्राप्त होती है। उन्हीं से मनुष्य का व्यक्तित्व निखरता और विकसित होता है। और जिन बातों से इस्लाम ने रोका है वे वही हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व को विकृत करती हैं और वह अपने प्राकृतिक एवं स्वाभाविक उद्दश्यों को पूरा करने में असफल रह जाता है। व्यक्ति की सिद्धि एवं पूर्णता (Perfection) और आत्मा की शुद्धि एवं विकास ही शरीअत (धर्मशास्त्र) का मौलिक उद्देश्य है। यही कारण है कि कुरआन में आत्म-शुद्धि और आत्म-विकास को अन्तिम लक्ष्य बताया गया है। एक जगह कहा गया :

> "सफल हो गया जिसने उसे (आत्मा को) निखारा, और असफल हुआ जिसने उसे दबाया।" —कुरआन, 91 : 9-10

एक दूसरी जगह कहा गया :

> "ऐ हमारे रब ! उन लोगों के बीच उन्हीं में एक ऐसा रसूल उठाना जो उन्हें तेरी आयतें पढ़कर सुनाए, उन्हें किताब और हिकमत की शिक्षा दे और उनकी आत्मा को शुद्ध (करके उसे विकसित होने का अवसर प्रदान) करे।" —कुरआन 2 : 129

इस आयत से मालूम हुआ कि रसूल लोगों को कुरआन सुनाता और उन्हें

---

1. उदाहरणार्थ देखिए, कुरआन 1 : 7, 2 : 142, 213; 3 : 51, 101; 6 : 126, 153; 19 : 36; 36 : 61; 43 : 61, 64; 15 ; 41; 5 : 16; 10 : 25
2. दे० कुरआन 4 : 119।

ारीअत (धर्मशास्त्र) और हिकमत (तत्वदर्शिता, Wisodm) की शिक्षा देता है, और रिणाम की दृष्टि से उनकी आत्मा को शुद्ध और विकसित करता है। शुद्ध एवं ‌वकसित (तज़किया) करने के शब्द स्वयं इस वास्तविकता पर प्रकाश डालते हैं कि ‌ल्लाह को मनुष्य से कोई ऐसी चीज़ अपेक्षित नहीं है जो मनुष्य की अपनी प्रकृति ‌थवा स्वभाव के प्रतिकूल हो।[1] मनुष्य से केवल इसकी माँग की गई है कि वह ‌पने व्यक्तित्व को विकसित करे और उन नैतिक गुणों की पूर्णता का आयोजन ‌रे जो उसकी प्रकृति में अन्तर्निहित हैं। इस्लाम में व्यक्ति की पूर्णता-प्राप्ति ही ‌ल वस्तु है। क़ियामत में प्रत्येक व्यक्ति को वास्तव में जिस चीज़ का हिसाब ‌ना है वह यही कि संसार में अल्लाह ने उसे जो शक्तियाँ और योग्यताएँ प्रदान ‌ी थीं उनसे काम लेकर वह स्वयं क्या बन सका है? वह अपना क्या व्यक्तित्व ‌नाकर अल्लाह की सेवा में पहुँचा है? इस्लाम में सामाजिक व्यवस्था और ‌ामाजिक विधान का महत्व इसी लिए है कि वह व्यक्ति की पूर्णता-प्राप्ति में ‌हायक होता है। सामाजिक जीवन में व्यक्ति एक ओर स्वयं अपनी पूर्णता को ‌ाप्त होता है दूसरी ओर दूसरे लोगों को पूर्णता की प्राप्ति में उससे सहयोग ‌िलता है। इस्लाम ने न व्यक्ति को ऐसी स्वतंत्रता दी है जिससे समाज को किसी ‌कार की हानि पहुँचे और न ही इस्लाम में समाज को ऐसे अधिकार दिए गए हैं ‌ो व्यक्ति से उसकी वह स्वतंत्रता छीन लें जो उसके व्यक्तित्व के विकास के ‌लए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अभीष्ट हैं। 'इस्लाम' ने व्यक्ति और समाज में ‌त्युत्तम सन्तुलन स्थापित किया है। इस्लाम प्रत्येक दृष्टि से मनुष्य की प्रकृति ‌ौर उसके व्यक्तित्व और सामाजिक अपेक्षाओं और आवश्यकताओं के नितान्त ‌नुकूल है। इसका अनुभव हर उस व्यक्ति को हुआ होगा जिसने इस्लाम का ‌ध्ययन एक 'दीन' और जीवन-व्यवस्था के रूप में किया होगा।

इस्लामी दृष्टिकोण से मानव-व्यक्तित्व का विकास संभव ही नहीं जब तक ‌क मनुष्य अपना और अपने प्रयास और साधनाओं का वास्तविक लक्ष्य

इस्लाम वास्तव में उन्हीं वास्तविकताओं को, जो मानव-प्रकृति में अन्तर्निहित हैं, प्रकट करके मनुष्य को उनसे परिचित कराता है। वह ईमान और कर्म की ओर बुद्धि एवं विवेक ही के मार्ग में बुलावा देता है, वह मनुष्य को उसके वास्तविक स्वभाव एवं प्रकृति और उसकी अपेक्षाओं से परिचित कराता है। यही कारण है कि कुरआन ने अपने को ज़िक्र (अनुस्मारक) और 'तबसिरह' (आँखें खोलने की सामग्री) के नाम से प्रस्तुत किया है।

ईश-प्रसन्नता को न ठहराए। ईश्वर की चाह और उसका प्रेम ही हमारे दीन ईमान (धर्म व आस्था) का अन्तिम लक्ष्य है। अल्लाह के आज्ञापालन, उसव दासता और आत्म-निवेदन में ही वास्तविक जीवन है जिसकी मानव-प्रकृति व जिज्ञासा है। अल्लाह के उतारे हुए आदेशों का पालन किसी दमनकारी विधा की अधीनता स्वीकार करना कदापि नहीं है, बल्कि यह ऐसे क़ानून का अनुपाल है जो स्वयं अपनी प्रकृति का क़ानून और नियम है।[1] अल्लाह का आज्ञापाल वास्तव में एक ऐसे शासक का आज्ञापालन है जिसका राजसिंहासन स्वयं हमा हृदय का गहना है। अल्लाह का इनकार करने के पश्चात न केवल यह कि संसा अपनी प्रियता एवं आकर्षण से वंचित हो जाता है, बल्कि मानव-जीवन से शान्ि परितोष और वास्तविक आनन्द सदैव के लिए विदा हो जाते हैं। जीवन, जीव के उच्चतम मूल्यों (Values) से वंचित होकर रह जाता है। खाने-पीने औ भोग-विलास के अतिरिक्त जीवन का कोई उच्च अभिप्राय और अर्थ शेष नह रहता। अल्लाह का दिखाया हुआ मार्ग और उसकी दासता एवं आज्ञापालन ही मनुष्य के लिए जीवन है। उसकी सफलता का मार्ग इसके अतिरिक्त औ कोई नहीं है कि वह अपने जीवन में वह पद्धति अपनाए जिसकी शिक्षा अल्ला ने अपने नबियों के द्वारा दी है :

> "क़ह दो : अल्लाह का मार्गदर्शन ही (वास्तव में) मार्गदर्शन है, और हमें आदेश मिला है कि हम संसार के रब के लिए अपने आपको अर्पण कर दें। और यह कि नमाज़ क़ायम रखो और उसका डर रखो, वही है जिसके पास तुम इकट्ठे किए जाओगे।" —क़ुरआन, 6 : 71-72

नबी जो आदेश और मार्गदर्शन (Guidance) लेकर आए वह वास्तवि जीवन ही का मार्गदर्शन है। क़ुरआन के अतिरिक्त पुरातन ग्रन्थों में भी इसव उल्लेख मिलता है। इंजील में है :

> "लिखा हुआ है कि मनुष्य केवल रोटी से जीवित नहीं रहता, बल्कि उस शब्द से जीवित रहता है जो ईश्वर की ओर से आता है।"
>
> —मत्ती 4 : 4

---

1. यही कारण है कि अल्लाह की वह्य को, जिसके द्वारा हम ख़ुदा के आदेशों और निया का ज्ञान प्राप्त करते हैं, क़ुरआन ने 'जीवन', 'सुन्दर आजीविका' और 'प्रकाश' आि शब्दों द्वारा व्यक्त किया है। इसकी साक्षी पूर्व आसमानी ग्रन्थ भी हैं।

अर्थात अल्लाह के हुक्म और आदेश से मानव को जीवन मिलता है। शरीअत (धर्मशास्त्र) के पालन में ही उसका वास्तविक जीवन है। क़ुरआन में कहा गया :

"क्या वह व्यक्ति जो मुरदा था फिर हमने उसे जीवित किया, और उसके लिए प्रकाश कर दिया जिसको लिए हुए वह लोगों के बीच चलता-फिरता है, उस व्यक्ति की तरह हो सकता है जो अँधेरों में पड़ा हो, उन (अँधेरों) से निकलनेवाला ही न हो?" —क़ुरआन 6 : 122

क़ुरआन की इस आयत में ईमान को जीवन, और शरीअत (धर्मशास्त्र) का पालन करने को प्रकाश लेकर चलना कहा गया है। जिस व्यक्ति को ईमान न मिल सका और जिसे सत्यता का ज्ञान न हो सका वह निर्जीव पत्थर के समान है, उसे वास्तविक जीवन प्राप्त नहीं। जिसको जीवन का सीधा, सहज और स्वाभाविक मार्ग नहीं मिला वह उस व्यक्ति जैसा है जो अँधेरों में इधर-उधर भटक रहा हो और उसके पास कोई प्रकाश न हो जिससे वह उस मार्ग को अपना सके जो मंज़िल तक पहुँचाता है।

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि कोई बच्चा ऐसा नहीं जो प्रकृति पर[1] पैदा न होता हो, फिर उसके माता-पिता उसे यहूदी या ईसाई या मजूसी बना लेते हैं[2] जैसा कि जानवर के पेट से भला-चंगा जानवर पैदा होता है। क्या उनमें से किसी को तुम नाक, कान कटा पाते हो? (उनके कान तो बाद में लोग अज्ञानपूर्ण प्रथा के अन्तर्गत काटते हैं[3])? फिर अबू

---

1. अर्थात प्राकृतिक एवं स्वाभाविक गुणों और विशेषताओं के साथ।
2. मालूम हुआ कि 'इस्लाम' मानव का प्राकृतिक एवं स्वाभाविक धर्म है। इस 'हदीस' में 'प्रकृति' (फ़ितरत) से अभिप्रेत 'इस्लाम' है, इसी लिए यहूदी, ईसाई तथा मजूसी धर्मों का उल्लेख उसके मुक़ाबले में किया गया। इस 'हदीस' की कुछ 'रिवायतों' में "प्रकृति पर" के स्थान पर "इस्लामी प्रकृति पर" और "इस मिल्लत (पन्थ) पर" के शब्द आए हैं जिनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि इस 'हदीस' में इस्लाम ही को "प्रकृति" (फ़ितरत) कहा गया है। "प्रकृति" कहने का आशय यह है कि वह प्रकृति और मानवीय स्वभाव के सर्वथा अनुकूल है।
3. यहाँ एक महत्वपूर्ण वास्तविकता पर प्रकाश डाला गया है, वह यह कि मनुष्य संसार में

हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि यदि चाहो तो (इसकी पुष्टि के लिए क़ुरआन की यह आयत) पढ़ लो : "यह अल्लाह की (बनाई हुई) प्रकृति है जिसपर उसने लोगों को पैदा किया है। अल्लाह की प्रकृति में कोई परिवर्तन होने का नहीं है। यही ठीक (यथोचित) दीन है।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम, अबू दाऊद, तिरमिज़ी

2. इयाज़ बिन हिमार अल-मुजाशिई से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल

विशुद्ध प्रकृति लेकर आता है जिसका नाम 'इस्लाम' है। उसकी प्रकृति अल्लाह को अपना 'रब' (पालनकर्ता स्वामी) और 'इलाह' (इष्ट पूज्य) जानती और उसी के बताए हुए जीवन-मार्ग और स्वाभाविक नियमों से परिचित होती है। शिर्क (बहुदेववाद), कुफ़्र (अधर्म), नास्तिकता और अज्ञानपूर्ण विचारों और कर्मों से उसकी प्रकृति का कोई ताल-मेल नहीं है। मनुष्य तो ईश-ज्ञान की जिज्ञासा और उसकी उपासना एवं दासता की प्रेरणा लेकर आता है। प्रत्येक बालक उस वास्तविक प्रकृति के साथ जन्म लेता है, जो कुफ़्र और अधर्म से सर्वथा विमुक्त होती है। हर बच्चा स्वभावतः एकनिष्ठ होता है। यदि मनुष्य अपनी जन्मसिद्ध प्रकृति पर स्थिर रहे तो इस्लाम की शिक्षा ग्रहण करने में उसे तनिक भी संकोच न हो। वह उसे इस प्रकार स्वीकार करेगा जैसे कोई अपनी जानी-पहचानी चीज़ को ग्रहण करता है, परन्तु होता यह है कि बिगड़ा हुआ वातावरण और उसके पथभ्रष्ट माता-पिता, आदि उसकी प्रकृति को विकृत करके उसे शिर्क (अनेकेश्वरवाद) की ओर मोड़ देते हैं। उसकी दशा उस जानवर जैसी होती है जिसको उसकी माँ ने भला-चंगा जन्म दिया हो; परन्तु किसी ने उसकी नाक और उसके कान काटकर उसका रूप बिगाड़ दिया हो। मनुष्य कुफ़्र, शिर्क, नास्तिकता और वे चीज़ें जो उसकी प्रकृति के प्रतिकूल हैं लेकर नहीं आता, परन्तु पथभ्रष्ट होकर वह वे समस्त चीज़ें ग्रहण कर लेता है जो उसके स्वभाव और उसकी सृष्टि के वास्तविक उद्देश्य के विरुद्ध होती है। कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहेगा कि उसका कान या उसकी नाक कटी हुई हो या वह पैर का लंगड़ा या आँखों का अन्धा हो, लेकिन यह उसका दुर्भाग्य है कि वह अपनी प्रकृति को विकृत दशा में देखना ही पसन्द नहीं करता बल्कि हठ भी करता है कि उसके व्यक्तित्व को विकृत अवस्था ही में रहने दिया जाए।

1. क़ुरआन का यह टुकड़ा सूरा-30 (रूम) की आयत 30 से उद्धृत है। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि मनुष्य का स्वाभाविक धर्म यह है कि वह एक अल्लाह का दास, आज्ञाकारी और उपासक हो जाए। इसी का नाम इस्लाम है। इस्लाम हमारे स्वभाव एवं प्रकृति को आघात नहीं पहुँचाता बल्कि उसे निखारता और सँवारता है। इस धर्म का ज्ञान वास्तव में मनुष्य की अपनी प्रकृति और अपने जीवन के उद्देश्य और अभिप्राय का ज्ञान है। जीवन के इस उद्देश्य के प्रतिकूल आचरण करके मनुष्य अपनी प्रकृति और अपने अस्तित्व को ऐसी हानि पहुँचाता है जिसकी क्षति-पूर्ति संभव नहीं।

(सल्ल०) ने एक दिन अपने ख़ुतबे (भाषण) में कहा : सुन लो ! रब ने मुझे-आदेश दिया है कि जो कुछ आज उसने मुझे बताया है, मैं तुम्हें बता दूँ जिसे तुम नहीं जानते (उसने कहा है) कि जो माल (धन-सम्पत्ति आदि) मैंने किसी बन्दे को दिया वह उसके लिए वैध है। और मैंने अपने समस्त बन्दों (सेवकों-दासों) को एकनिष्ठ (एक ईश्वर के होकर रहनेवाले) पैदा किया, बाद में उनके पास शैतान आए और उन्हें उनके दीन से हटा ले गए। उन्होंने उनपर वे चीज़ें हराम (अवैध) कर दीं जिनको मैंने उनके लिए हलाल (वैध) किया था, और उन्हें इस बात की ओर प्रेरित किया कि वे उन चीज़ों को मेरा साझी ठहराएँ जिनके लिए कोई प्रमाण नहीं उतारा गया।[1]

—मुसलिम

3. अनस बिन मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन एक नारकी व्यक्ति से कहा जाएगा कि बता यदि (तेरे पास) धरती की समस्त वस्तुएँ होतीं तो क्या तू उन सबको इस (यातना) से बंचने के लिए प्रतिदान के रूप में दे डालता? आपने कहा : वह कहेगा : हाँ। अल्लाह कहेगा : मैंने तुझसे इससे बहुत हल्की चीज़ चाही थी. जब तू आदम की पृष्ठ में था तो मैंने तुझसे वचन लिया था कि मेरे साथ किसी चीज़ को शरीक न करना, परन्तु तू माना नहीं, मेरे साथ (दूसरों को) शरीक करके रहा।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम, अहमद

---

1. इस हदीस का विषय पहली हदीस से मिलता-जुलता है। इस हदीस में भी इस वास्तविकता का उल्लेख किया गया है कि अल्लाह ने अपने बन्दों को प्रकृति (फ़ितरत) पर एकनिष्ठ (एक अल्लाह का ही रहनेवाला) पैदा किया है। लोग शैतानों और गुमराह लोगों के बहकावे में आकर शिर्क ग्रहण कर लेते हैं और अल्लाह ने जिन चीज़ों को उनके लिए वैध किया है उन्हें अपने लिए वर्जित (हराम) कर लेते हैं। इस प्रकार विचार और व्यवहार दोनों पहलू से वे अपने स्वाभाविक धर्म से दूर हो जाते हैं।

   इस हदीस की कुछ रिवायतों में "एक निष्ठ" (हुनफ़ा) के स्थान पर एकनिष्ठ मुसलिम (हुनाफ़ा मुसलिमीन) के शब्द आए हैं जिससे मालूम होता है कि अल्लाह ने अपने बन्दों को एकनिष्ठ मुसलिम (मुसलिमे हनीफ़) पैदा किया था, इस्लाम ही उनका जन्मसिद्ध और स्वाभाविक धर्म था। शिर्क (बहुदेववाद) का समर्थन न आसमानी किताबों से होता है और न उसके लिए विश्व में कोई प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है।

2. इस हदीस से भी इस बात की पुष्टि होती है कि तौहीद (एकेश्वरवाद) ही मानव का स्वाभाविक धर्म है। कुफ़्र व शिर्क का उसकी प्रकृति से कोई जोड़ नहीं है। मानव-प्रकृति में यह चीज़ समोई हुई है कि वह एक ईश्वर के अतिरिक्त किसी को

4. हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा गया : समस्त धर्मों में अल्लाह को सबसे अधिक प्रिय कौन-सा धर्म है? आपने कहा : "एकनिष्ठता (एक प्रभु का हो रहना) जो अत्यन्त सरल और सहज है।"[1]

—अहमद, अदबुल मुफ़रद, तबरानी

अपना पूज्य, कष्ट-निवारक और अपनी कामनाओं और अभिलाषाओं का केन्द्र न बनाए। अल्लाह की बन्दगी करने और शिर्क की गन्दगी से अपने आपको बचाए रखने का वचन स्वभावतः प्रत्येक व्यक्ति से लिया जा चुका है। क़ुरआन में भी इस प्रतिज्ञा का उल्लेख विशेष ढंग से किया गया है (क़ुरआन, 7 : 172-173)। मानव-प्रकृति तौहीद (एकेश्वरवाद) और अल्लाह की प्रभुता के इक़रार के साँचे में ढाली गई है, इसके साथ यह बात भी असंभव नहीं है कि अल्लाह ने हज़रत आदम के पैदा किए जाने के पश्चात समस्त मानवों को जो क़ियामत तक पैदा होनेवाले थे, एक साथ किसी रूप में अपने सामने हाज़िर किया हो और उन्हें यह ज्ञान दिया हो कि उनका रब (पालनकर्ता स्वामी) केवल एक अल्लाह है, और उनसे अल्लाह ने अपने रब होने का इक़रार भी कराया हो। यद्यपि यह इक़रार आज हमें याद नहीं है, फिर भी इस इक़रार की गहरी छाप हमारी आत्मा और हमारे मन में वर्तमान है। तौहीद (एकेश्वरवाद) का इक़रार मनुष्य की प्रकृति और उसकी अन्तरात्मा की स्वाभाविक प्रेरणा है। पैग़म्बर इसी इक़रार को स्मरण कराते हैं। वे कोई नई चीज़ लेकर मनुष्यों के पास नहीं आते। आज यदि हमारे मस्तिष्क में अल्लाह से किए हुए इक़रार की याद को बाक़ी नहीं रखा गया तो केवल इसलिए कि संसार में हमारी परीक्षा हो सके।

1. अर्थात अल्लाह का प्रिय धर्म जो उसने अपने बन्दों के लिए निर्धारित किया है यह है कि बन्दा अल्लाह के लिए सब ओर से एकाग्र हो जाए। वह एक अल्लाह की बन्दगी और आज्ञापालन करे और जीवन का सही मार्ग ग्रहण करे जो उसकी अपनी प्रकृति के अनुकूल है। जिसकी शिक्षा अल्लाह ने दी है, जिसमें किसी तरह की सख़्ती नहीं है, जो बहुत नर्म और सहज है। जिसमें न मानवीय प्रकृति के प्रतिकूल मनुष्य को संसार-त्याग की शिक्षा दी गई है कि वह घर-बार छोड़कर जंगल और पर्वतों की गुफाओं में रहने लगे और न जिसमें मानव के आध्यात्मिक विकास के मार्ग में शरीर को बाधक समझा गया है कि शरीर को कष्टों और यातनाओं के द्वारा दबाया जाए ताकि आत्मिक विकास का मार्ग सुगम हो सके। इस्लामी शिक्षा की दृष्टि से शरीर और आत्मा में कोई विरोध नहीं है। शरीर आध्यात्मिक विकास के मार्ग में सहयोग देता है जिस प्रकार उड़ने में पक्षी के पंख सहायक होते हैं, बोझ नहीं होते। शरीर और शारीरिक गुण और विशेषताएँ आध्यात्म-मार्ग में सहायक होते हैं, शर्त यह है कि मनुष्य ईश्वर की निश्चित की हुई सीमाओं का उल्लंघन न करे बल्कि ईश्वरीय आदेशों के अन्तर्गत जीवन व्यतीत

5. हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दीन (धर्म) बहुत सहज है ।[1]

—बुख़ारी, अहमद, अदबुल मुफ़रद

6. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह ने मुझे मशक़्क़त में डालनेवाला बनाकर नहीं भेजा; बल्कि मुझे सिखानेवाला और आसानी पैदा करनेवाला बनाकर भेजा है ।[2] —मुसलिम

करे ।

1. मुसनद अहमद की एक रिवायत में है : "तुम्हारे सब दीनों (धर्मों) में अच्छा वह है जो सबमें सहज हो ।" इनजील में है : "मेरा जुआ अपने ऊपर उठा लो, तुम्हारे प्राण सुख पाएँगे, क्योंकि मेरा जुआ कोमल है और मेरा बोझ हल्का है ।" मत्ती (11 : 29-30)
2. नबी (सल्ल०) ने यह बात एक विशेष अवसर पर कही थी जबकि कुरआन में आपकी पत्नियों को दो बातों में से एक बात को अंगीकार करने के लिए कहा गया था : या तो वे अल्लाह और रसूल को अपनाएँ या सांसारिक वैभव और धन-सम्पत्ति को । यदि वे दुनिया चाहती हैं तो उन्हें रसूल से नाता तोड़ लेना पड़ेगा और यदि वे अल्लाह और रसूल को चाहती हैं तो उनके लिए आख़िरत में बड़ा प्रतिदान और पुरस्कार है (कुरआन, 33 : 28-29) । नबी (सल्ल०) ने जब अपनी पत्नियों को अल्लाह के इस आदेश से सूचित किया तो सबसे पहले हज़रत आइशा (रज़ि०) से कहा कि मैं तुम्हारे सामने एक बात रखता हूँ और मैं चाहता हूँ कि तुम इसके बारे में जल्दबाज़ी से काम न लो जबतक कि अपने माँ-बाप से सलाह न कर लो । आपको भय था कि कहीं जल्दबाज़ी में वे कोई ग़लत फ़ैसला न कर लें । माँ-बाप से सलाह करेंगी तो वे उन्हें ठीक सलाह देंगे । हज़रत आइशा (रज़ि०) ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! वह क्या बात है ? आपने जब उन्हें अल्लाह का आदेश सुनाया तो वे बोल उठीं : ऐ अल्लाह के रसूल ! क्या आपके संग रहने की बात भी ऐसी है जिसमें मैं अपने माँ-बाप से सलाह करूँ । मैं अल्लाह और रसूल को चाहती हूँ । हाँ, मेरा एक निवेदन है, वह यह कि आप मेरे इस उत्तर की सूचना अपनी पत्नियों में से किसी को न दें । आपने कहा : "उनमें से जो भी पूछेंगी मैं उसे तुम्हारे उत्तर से सूचित कर दूँगा । अल्लाह ने मुझे मशक़्क़त में डालनेवाला बनाकर नहीं भेजा है; बल्कि मुझे सिखानेवाला और आसानी पैदा करनेवाला बनाकर भेजा है ।" इससे मालूम होता है कि आपकी हैसियत एक दयालु शिक्षक की है । आप लोगों को उसी बात की शिक्षा देते हैं जिसमें उनकी भलाई और कल्याण है । आपकी यह कामना होती है कि लोग सीधे मार्ग पर चलने लगें । इसके लिए हर वह उपाय करते हैं जो आप कर सकते हैं ।

7. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) कहते हैं कि हम एक यात्रा में अल्लाह के रसू (सल्ल०) के साथ थे। लोग उच्च स्वर में तकबीर (अल्लाह की महानता का वर्णन का उच्चारण करने लगे। इसपर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : "ऐ लोगो अपने आप पर तरस खाओ। तुम उसे नहीं पुकार रहे हो जो सुनता न हो या यह मौजूद न हो। तुम तो उसको पुकार रहे हो जो सुननेवाला और देखनेवाला है औ वह तुम्हारे साथ है। जिसे तुम पुकार रहे हो वह तो तुमसे तुम्हारे ऊँट की गरदन र भी अधिक निकट है।"[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

---

1. मालूम हुआ कि नबी (सल्ल०) जिस दीन या धर्म की शिक्षा और प्रचार के लिए भेजे गए थे मानव-प्रकृति और बुद्धि, दोनों से, उसकी पुष्टि होती है। वह न मानव-प्रकृति के प्रतिकूल है और न उसे बुद्धि-विरुद्ध धर्म कहा जा सकता है। सच्ची बात यह है कि वह हमारी प्रकृति और बुद्धि दोनों के लिए आहार के समान है, उससे हमारी बुद्धि को शक्ति और हमारी आत्मा और प्रकृति को बल प्राप्त होता है।

ईश्वर की कल्पना

इस्लाम की सम्पूर्ण वैचारिक और व्यावहारिक व्यवस्था में जिस चीज़ को मौलिक एवं केन्द्रीय स्थान प्राप्त है वह अल्लाह में विश्वास है। दूसरी धारणाएँ और आदेश वास्तव में इस एक मूल की शाखाएँ हैं। जितने भी विचार, आदेश और मान्यताएँ हैं उनमें दृढ़ता और सार्थकता अल्लाह में विश्वास द्वारा ही आती है। यदि इस एक केन्द्र से निगाह हटा ली जाए तो प्रत्येक चीज़ अर्थहीन हो जाएगी और इस्लाम की सम्पूर्ण व्यवस्था, चाहे उसका सम्बन्ध विचार एवं आस्था से हो या व्यवहार से, छिन्न-भिन्न हो जाएगी।

इस्लाम में अल्लाह को मानने और उसपर ईमान लाने का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि अल्लाह मौजूद है, बल्कि इस विश्वास में अल्लाह की सत्ता और उसके गुणों की उचित और पूर्ण कल्पना पाई जाती है। यह विश्वास हमें अल्लाह की सत्ता और उसके गुणों की जो कल्पना देता है उसका हमारे जीवन से गहरा सम्बन्ध है। यही कारण है कि इस्लाम अल्लाह में विश्वास द्वारा केवल यही नहीं कि आत्मा की शुद्धि एवं विकास और नैतिक सुधार का काम लेता है बल्कि इसी को उसने जीवन के समस्त कार्य-कलाप और मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति की आधारशिला माना है।

इस्लाम ने प्रभुता एवं ईश्वरत्व की जो कल्पना प्रस्तुत की है उसकी दृष्टि से इलाह (प्रभु एवं पूज्य) और ईश्वर वही हो सकता है जो परम स्वतंत्र, निरपेक्ष और सर्व शक्तिमान हो, जो सदा से हो और सदैव रहनेवाला हो। जिसे प्रत्येक चीज़ का ज्ञान हो, जो तत्वदर्शी, ज्ञान एवं बुद्धि का स्रोत हो, जिस शक्ति के आधीन सब हों और जिसकी दयालुता अत्यन्त व्यापक हो। जिसके अधिकार में जीवन और मृत्यु, हानि और लाभ सारी चीज़ें हों। जिसकी कृपादृष्टि और जिसकी रक्षा के सभी आकांक्षी हों। जिसकी ओर सबकी वापसी हो। जो सबका हिसाब लेनेवाला हो, और जिसे किसी को दण्ड देने या पुरस्कृत करने का पूर्ण अधिकार हो। प्रभुता एवं ईश्वरत्व कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसका विश्लेषण या विभाजन किया जा सके। उसे शरीर और संतानोत्पत्ति आदि वृत्ति से लिप्त समझना ही सही न होगा। समस्त ईश्वरीय गुण केवल एक सत्ता में एकत्र हो सकते हैं और वह अल्लाह ही की सत्ता है। अल्लाह की सत्ता सर्वोच्च है। विश्व की सब चीज़ें

उसी के आधीन और आश्रित हैं। वही इस अखिल विश्व का व्यवस्थापक और नियंता है। उसी का कोष अक्षय है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह उसकी महानता एवं महत्ता को पहचाने। उसके आगे झुके, उससे डरे, उसी से आशा करे, उसी पर उसका भरोसा हो। माँगे तो उसी से माँगे। दुख और संकट में पुकारे तो उसे ही पुकारे। उसी के पास सबको लौटकर जाना है। वही हमारे शुभ-अशुभ कर्मों का हिसाब लेनेवाला है। वही है जिसके निर्णय पर मनुष्य का अच्छा या बुरा परिणाम निर्भर है। तौहीद या एकेश्वरवाद की यही धारणा है जिसकी शिक्षा पिछले समस्त नबियों ने दी है। इस धारणा का मानव-जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अल्लाह पर ईमान मनुष्य को ईश्वरीय आदेश और उसके नियत किए हुए नियमों और विधान का पाबन्द बनाता है और उसके अन्दर उत्तरदायित्व का एहसास पैदा करता है। अल्लाह पर ईमान रखनेवाला व्यक्ति यह समझता है कि उसका अल्लाह प्रत्येक अवस्था में उसे देखता है। वह उसकी पकड़ से बच नहीं सकता। इसलिए वह, अकेला हो या लोगों के साथ हो, हर दशा में अल्लाह से डरता और उसके दिए हुए नियमों और उसकी निश्चित की हुई सीमाओं व मर्यादाओं का आदर करता है। फिर अल्लाह में विश्वास उसे नैतिकता एवं चरित्र के उच्चतम स्तर तक पहुँचाता है। अल्लाह पर ईमान रखनेवाला कभी संकीर्ण-दृष्टि नहीं हो सकता और न उसे गर्व और अहंकार का रोग लग सकता है। वह जानता है कि अखिल विश्व ईश्वर का है। उसकी मित्रता और शत्रुता अपने लिए नहीं, अल्लाह के लिए होती है। इस तरह उसकी सहानुभूति, प्रेम और सेवा का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो जाता है। वह जानता है कि उसे जो कुछ प्राप्त है वह अल्लाह का दिया हुआ है; फिर वह गर्व कैसे कर सकता है। अल्लाह में विश्वास रखने के परिणामस्वरूप वह विनम्र ही होगा, न कि अहंकारी और उद्दंड। अल्लाह पर ईमान रखने के परिणामस्वरूप मनुष्य को आत्म-गौरव और स्वाभिमान का उच्च स्थान प्राप्त होता है। वह अल्लाह ही को समस्त शक्तियों का स्वामी समझता है। उसका विश्वास होता है कि अल्लाह ही के अधिकार में हानि-लाभ, जीवन-मरण सब कुछ है। अतः वह अल्लाह के सिवा किसी से नहीं डरता। अल्लाह के सिवा किसी के आगे उसकी गरदन नहीं झुकती। वह अल्लाह के सिवा समस्त शक्तियों से निर्भय होकर अपने कर्त्तव्य-पालन में लग जाता है। उसका ईमान है कि उसका अल्लाह निरपेक्ष और न्यायशील है। उसका क़ानून बेलाग है। किसी को उसकी खुदाई में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त नहीं है कि उसकी पकड़ से किसी को बचा सके। उसके यहाँ आत्मा की शुद्धता

और सत्कर्म के अतिरिक्त और कोई चीज़ काम आनेवाली नहीं है, इसलिए वह किसी से ग़लत और अनुचित आशाएँ नहीं रखता। उसका अल्लाह अक्षय कोष और अपार शक्तियों का स्वामी है, इसलिए न वह निराश होता है और न साहस छोड़ता है। उसमें धैर्य, सन्तोष, दृढ़ता और वीरता की वह शक्ति होती है कि बड़ी से बड़ी विरोधी शक्तियाँ भी उसका मार्ग नहीं रोक सकतीं। वह लोभी और लालची नहीं होता, वह अत्यन्त निस्पृह होता है। वह अल्लाह की कृपा और उसकी प्रदान की हुई जीविका का इच्छुक होता है; परन्तु जीविकोपार्जन के लिए किसी निकृष्ट उपाय का अवलम्बन कदापि नहीं करता। वह जानता है कि अल्लाह अपने ज्ञान और तत्त्वदर्शिता (Wisdom) के अन्तर्गत जिसको जो कुछ चाहता है प्रदान करता है। वह अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी होता है और अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए अधिक से अधिक सचेष्ट रहता है।

अल्लाह पर ईमान

1. हज़रत अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : इस्लाम की बुनियाद पाँच चीज़ों पर रखी गई है : इस बात की गवाही देना कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई इलाह (पूज्य-प्रभु) नहीं और यह कि मुहम्मद अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं : और नमाज़ क़ायम करना, ज़कात देना और हज करना और रमज़ान के रोज़े रखना।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. यही इस्लाम के पाँच अरकान (स्तंभ) हैं जिनपर दीन के विशाल भवन का निर्माण होता है। केवल अल्लाह को इलाह (पूज्य-प्रभु) मानने का अर्थ यह है कि मनुष्य यह स्वीकार करे कि अल्लाह ही हमारा उपास्य, स्वामी और शासक है, सब उसी के आश्रित हैं। वही है जिसकी चाह, अभिलाषा और खोज की प्रेरणा हमारी प्रकृति में रखी गई है। उसके सिवा कोई दूसरा हमारी साधना और प्रयास का केन्द्र या लक्ष्य नहीं बन सकता। उसके सिवा कोई नहीं जिसकी इच्छा हमारे जीवन का उद्देश्य बन सके।

   अल्लाह के बारे में यथार्थ ज्ञान उसके रसूलों के द्वारा होता है। रसूल ही बताते हैं कि अल्लाह की इच्छा के अनुसार जीवन किस प्रकार व्यतीत किया जाए। इसलिए तौहीद (एकेश्वरवाद) और अल्लाह के प्रभुत्व को मानने के साथ रिसालत (ईशदूतत्व) को मानना भी आवश्यक है। रसूलों में सबसे अन्तिम रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) हैं। जीवन का यथार्थ मार्ग पाने के लिए आवश्यक है कि आपकी रिसालत को माना जाए और आपके नेतृत्व और मार्गदर्शन को स्वीकार किया जाए।

   नमाज़ एक ओर अल्लाह का स्मरण और उसकी उपासना है दूसरी ओर वह हमारी

2. हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) कहते हैं कि हम (लोगों) को वर्जित कर दिया गया था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से (बिना विशेष आवश्यकता के)

अपनी दासता का प्रदर्शन और आत्मनिवेदन भी है। नमाज़ प्रत्येक दिन कई बार अल्लाह का स्मरण कराती है और उसके सर्वव्यापी एवं सर्वज्ञाता होने की याद ताज़ा कराती और हमारे हृदय में उसका प्रेम-भाव भरती रहती है। नमाज़ हमें सचेत करती रहती है कि एक दिन हमें अल्लाह की अदालत में पेश होना है। अल्लाह के न्यायालय में सफल होने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपना सम्पूर्ण जीवन अल्लाह के आज्ञापालन में व्यतीत करे।

रोज़े के द्वारा इन्द्रियनिग्रह में हमें सफलता मिलती है। आत्मसंयम के लिए रोज़ा अत्यन्त आवश्यक है। रोज़े के द्वारा हम अपनी इच्छाओं पर क़ाबू पा सकते हैं। फिर हम अल्लाह की ख़ुशी के मुक़ाबले में किसी चीज़ को प्रधानता नहीं दे सकते। अल्लाह के लिए हम हर चीज़ से मुख मोड़ सकते हैं। उसकी प्रसन्नता के लिए हर सुख और आनन्द को त्याग सकते हैं, हर कठिनाई और संकट का मुक़ाबला कर सकते हैं। हममें कर्त्तव्य-परायणता की वह भावना जागृत हो जाती है कि हम अल्लाह की इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकते।

ज़कात हमें याद दिलाती है कि अल्लाह के अलावा हमपर उसके बन्दों का भी हक़ है। हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम दूसरों के काम आएँ और कमज़ोरों और दीन-दुखियों का सहारा बनें। ज़कात के द्वारा हमारे मन से धन का मोह निकल जाता है। नैतिक दृष्टि से हम ऊँचे उठते हैं। हमारा मन पवित्र होता है। मन की संकीर्णता दूर होती है। हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रकाशमान हो जाता है। मनुष्य की आत्मा सन्दूक़ों और तिजोरियों में बन्द होकर रह जाए इससे बढ़कर कारावास क्या हो सकता है? जिस प्रकार दीपक अपने को और अपने वातावरण को प्रकाशित रखने के लिए बड़ी उदारता से अपने पात्र में संचित तेल ख़र्च करता है ठीक उसी प्रकार ज़कात, सदक़ा और दान के द्वारा एक ओर मनुष्य जन-सामान्य के काम आता है तो दूसरी ओर वह अपनी आत्मा को विकसित करता और उसे वास्तविक स्वतंत्रता और आत्मिक आनन्द से अलिंगित करता है। त्याग और दान द्वारा मनुष्य अपना अहित नहीं करता बल्कि अपनी आत्मा को उज्ज्वल और विशाल बनाता है। वह उस दीपक के समान नहीं होता जो अपने पात्र का समस्त तेल सुरक्षित रखने के लिए सदैव बुझा रहता है।

हज हमारे हृदय में अल्लाह की महानता और उसके प्रेम की अमिट छाप अंकित करता है। हज के द्वारा हमें इस्लाम से ऐसा हार्दिक लगाव हो जाता है जो सदा बाक़ी रहनेवाला होता है। हज हमें इसके लिए तैयार करता है कि हमारी समस्त चेष्टाएँ और दौड़-धूप इस्लाम की उच्चता के लिए हों।

कुछ पूछें, तो हमें इस बात से ख़ुशी होती थी कि कोई बुद्धिमान बदवी (ग्रामीण) आए और आपसे कुछ पूछे और हम सुनें। तो बदवी लोगों में से एक व्यक्ति आया और उसने कहा : ऐ मुहम्मद ! आपका दूत हमारे पास आया और हमसे बयान किया कि आपका कहना है कि अल्लाह ने आपको रसूल बनाकर भेजा है। आपने कहा : उसने सच कहा। फिर उस व्यक्ति ने कहा : आकाश को किसने पैदा किया? आपने कहा : अल्लाह ने। उसने कहा : धरती को किसने पैदा किया? आपने कहा : अल्लाह ने। फिर उसने कहा : ये पर्वत किसने खड़े किए हैं और इनमें जो कुछ बनाया है, वह किसने बनाया है? आपने कहा : अल्लाह ने। उसने कहा : तो क़सम है उसकी जिसने आकाश और धरती को पैदा किया और ये पर्वत खड़े किए, क्या अल्लाह ने आपको भेजा है? आपने कहा : हाँ।[1] उसने कहा : आपके दूत ने बयान किया कि हमारे दिन और रात में हमपर पाँच नमाज़ें अनिवार्य हैं। आपने कहा : उसने सच कहा। उसने कहा : क़सम है उसकी जिसने आपको रसूल बनाकर भेजा है, क्या अल्लाह ने आपको इसका आदेश दिया है? आपने कहा : हाँ। उसने कहा : और आपके दूत ने बयान किया कि हमपर हमारे मालों (धन-सम्पत्ति) में ज़कात भी अनिवार्य है। आपने कहा : उसने सच कहा। उसने कहा : क़सम है उसकी जिसने आपको रसूल बनाकर भेजा है, क्या अल्लाह ने आपको इसका आदेश दिया है? आपने कहा : हाँ। उसने कहा : आपके दूत ने बयान किया था कि वर्ष में रमज़ान-मास का रोज़ा भी हमपर अनिवार्य है। आपने कहा : उसने सच कहा। उसने कहा : क़सम है उसकी जिसने आपको रसूल बनाकर भेजा है, क्या अल्लाह ने आपको इसका आदेश दिया है? आपने कहा : हाँ। उसने कहा : आपके दूत ने यह भी बयान किया कि हममें से उसपर अल्लाह के घर (काबा) का हज अनिवार्य है जो उस तक पहुँचने की सामर्थ्य रखता हो।[2] आपने कहा : उसने सच कहा। रावी (हदीस के उल्लेखकर्त्ता) बयान करते हैं कि फिर वह व्यक्ति यह कहता हुआ वापस हुआ कि उसकी क़सम जिसने आपको हक़ (सत्य) के साथ भेजा है, मैं इनमें (अपनी ओर से) न कुछ बढ़ाऊँगा और न इनमें कोई कमी करूँगा। इसपर नबी (सल्ल०) ने कहा : यदि यह सच्चा है तो अवश्य जन्नत में प्रवेश करेगा। —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात मुझे अपना रसूल बनाकर उसी अल्लाह ने भेजा है जो आकाश, धरती और सारे संसार का सृष्टिकर्त्ता है।
2. अर्थात जो व्यक्ति इसकी सामर्थ्य रखता हो कि मक्का की यात्रा कर सके उसके लिए हज करना अनिवार्य है।

3. हज़रत अली इब्न अबी तालिब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कोई बन्दा ईमानवाला नहीं हो सकता जब तक कि वह चार चीज़ों पर ईमान न लाए : इस बात की गवाही दे कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह (इष्ट, पूज्य-प्रभु) नहीं और यह कि मैं, मुहम्मद अल्लाह का रसूल हूँ, मुझे उसने हक़ (सत्य) के साथ भेजा है और मृत्यु पर ईमान लाए (कि वह आनेवाली है) और मृत्यु के पश्चात (दुबारा जीवित करके) उठाए जाने पर ईमान लाए और तक़दीर (भाग्य) पर ईमान लाए। —तिरमिज़ी

4. हज़रत सुफ़यान बिन अब्दुल्लाह सक़फ़ी (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे इस्लाम के बारे में ऐसी बात बता दीजिए कि आपके बाद फिर मैं किसी से इसके बारे में कुछ न पूछूँ। आपने कहा : कहो मैं अल्लाह पर ईमान लाया, फिर (इसी पर) जमे रहो।[1] —मुसलिम

---

1. इस हदीस में संक्षिप्त शब्दों में सम्पूर्ण दीन (धर्म) का सारांश प्रस्तुत कर दिया गया है। अल्लाह पर ईमान लाना ही वास्तव में दीन का मूल आधार है। अल्लाह पर ईमान लाने का अर्थ केवल इतना ही नहीं होता कि मनुष्य अल्लाह की सत्ता को स्वीकार कर ले, बल्कि इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि वह अल्लाह को उसके समस्त गुणों के साथ माने और उसके प्रति अपने समस्त कर्त्तव्यों का निर्वाह करे। वही व्यक्ति सफल है जो अल्लाह पर ईमान लाए और उसके सृष्टिकर्त्ता, रब, स्वामी और शासक होने को स्वीकार करे और इसपर जमा रहे; किसी भय या लोभ के कारण वह अपने ईमान से न फिरे। अल्लाह को मानने और उसकी दासता की प्रतिज्ञा करने के पश्चात इसपर दृढ़ रहना जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य है। क़ुरआन में ऐसे लोगों के विषय में कहा गया है—

   "निश्चय ही जिन लोगों ने कहा : हमारा रब अल्लाह है, फिर वे (उसपर) क़ायम रहे, तो उन्हें न तो कोई भय होगा और न वे दुखी होंगे। ये जन्नत (में वास करने) वाले लोग हैं, उसमें सदैव रहेंगे, यह बदला होगा उसका जो वे करते थे।"

   —क़ुरआन 46 : 13-14

   क़ुरआन में एक-दूसरे स्थान पर कहा गया है :

   "जिन लोगों ने कहा : हमारा रब अल्लाह है फिर (उसपर) जमे रहे, उनपर फ़रिश्ते उतरते हैं (और कहते हैं) कि डरो नहीं और न दुखी हो, बल्कि उस जन्नत की ख़ुशख़बरी (शुभ-सूचना) लो जिसका तुमसे वादा किया गया था। हम सांसारिक जीवन में भी तुम्हारे साथी हैं और आख़िरत में भी (तुम्हारे साथी हैं)।"

   —क़ुरआन, 41 : 30-31

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से किसी-किसी के पास शैतान आता है और कहता है कि अमुक वस्तु को किसने पैदा किया ? अमुक वस्तु को किसने उत्पन्न किया ? यहाँ तक कि वह कहता है कि तुम्हारे रब को किसने पैदा किया ? जब बात यहाँ तक पहुँच जाए तो चाहिए कि वह अल्लाह से पनाह माँगे और रुक जाए ।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : लोग एक-दूसरे से प्रश्न करते रहेंगे यहाँ तक कि कहा जाएगा कि समस्त सृष्टि को तो अल्लाह ने पैदा किया, अच्छा अल्लाह को किसने पैदा किया ? तो जब कोई व्यक्ति इस प्रकार की कोई बात पाए तो उसे चाहिए कि कहे : अल्लाह और उसके रसूलों पर मेरा ईमान है ।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : लोग सदैव परस्पर प्रश्न करते रहेंगे यहाँ तक कि कहा जाएगा कि सृष्टि की रचना तो अल्लाह ने की, अच्छा अल्लाह को किसने पैदा किया ? जब लोग इस प्रकार की बातें करें तो कहो : अल्लाह यकता है ! अल्लाह निस्पृह एवं सबका आधार है ! उसकी कोई औलाद नहीं और न वह किसी की औलाद है। और कोई नहीं जो उसके बराबर का हो ।[3] फिर तीन बार अपनी बाईं ओर

---

1. अर्थात शैतान लोगों के दिलों में इस तरह के भ्रम और शंकाएँ डालता है कि जब समस्त चीज़ों और सारी सृष्टि का सृष्टिकर्त्ता अल्लाह है, तो अल्लाह का भी कोई सृष्टिकर्त्ता होना चाहिए। जब इस तरह की भ्रमयुक्त भावनाएँ मन में उत्पन्न हों, तो इनको शैतानी शंकाएँ समझकर अल्लाह की पनाह माँगनी चाहिए और अपने ध्यान को इधर से हटा लेना चाहिए। कुरआन में भी शैतानी शंकाओं से सुरक्षित रहने के लिए यही शिक्षा दी गई है कि ऐसी हालत में अल्लाह की पनाह लेनी चाहिए। दे० कुरआन 41 : 36, 16 : 98-99, 113 : 1-5, 114 : 1-6
2. यह शिक्षा उन लोगों को दी जा रही है जो अल्लाह और रसूल पर ईमान रखते हैं। कहा जा रहा है कि जब ईमानवालों के सामने इस प्रकार की बातें आएँ जो ईमान के प्रतिकूल हैं तो ऐसी बातों को यह कहकर रद्द कर देना चाहिए कि हमारा तो अल्लाह और रसूल पर ईमान है। हम ऐसे कुतर्क में नहीं पड़ सकते। वह अल्लाह ही क्या हुआ जिसके विषय में पिता का प्रश्न उठता हो। इस प्रकार की बातें वही कर सकता है जिसका दिल ईमान से ख़ाली हो या जो बुद्धि और विवेक का शत्रु हो।
3. अर्थात जब इस तरह की बातें कही जाने लगें और इस प्रकार के बेहूदा प्रश्नों में लोग उलझने लगें कि सबका सृष्टिकर्त्ता तो अल्लाह है, आख़िर अल्लाह का स्रष्टा कौन है,

थूको[1] और तिरस्कृत शैतान से अल्लाह की पनाह चाहो। —अबू दाऊद

8. हज़रत उसमान बिन अफ़्फ़ान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : जो व्यक्ति इस हालत में मरा कि वह (यक़ीन के साथ) जानता था कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह (पूज्य-प्रभु) नहीं है, वह जन्नत

तो तुम्हें क़ुरआन की सूरा-112 (अल-इख़लास) पढ़नी चाहिए जिसमें अल्लाह के मौलिक गुणों का उल्लेख किया गया है। जिसमें एकेश्वरवाद का पूर्ण रूप से प्रदर्शन हुआ है। सूरा अल-इख़लास में अल्लाह का यह गुण बयान हुआ है कि वह यकता है। उस जैसा कोई नहीं। फिर उसके प्रति उस प्रकार सोचना जिस प्रकार हम सृष्टि की दूसरी चीज़ों के बारे में सोचते हैं अन्याय नहीं तो और क्या है?

अल्लाह का दूसरा गुण जो इस सूरा में बयान हुआ है वह यह है कि वह निराधार और सबका आधार है। वह सर्वथा पूर्ण है। उसमें कोई कमी और अपूर्णता हो ही नहीं सकती। अतः उसकी सत्ता के विषय में वास्तव में यह प्रश्न ही नहीं उठता कि उसका स्रष्टा कौन है। यदि यह मान लिया जाए कि उसका कोई स्रष्टा है, तो इसका अर्थ यह होगा कि वह अपने अस्तित्व में किसी दूसरे का आश्रित है। जब वह किसी दूसरे का मुहताज हुआ तो फिर उसकी सत्ता को पूर्ण कैसे कह सकते हैं? अल्लाह तो वही हो सकता है जो अपने अस्तित्व और अनश्वरता में किसी दूसरे का आश्रित न हो, वह सदा से हो। यदि वह सदा से है तो फिर उसका कोई शरीक और सहभागी नहीं हो सकता। इसलिए कि अमरता और अनश्वरता के लिए पूर्णता अपेक्षित है और पूर्णता के लिए यकताई अनिवार्य शर्त है। यदि हम कई ईश्वर मानते हैं तो शक्ति और प्रभुत्व विभिन्न ईश्वरों में विभक्त हो जाएगा। फिर हम किसी ईश्वर के बारे में भी नहीं कह सकते कि वह अपार शक्ति और प्रभुत्व का स्वामी है। जब शक्ति और प्रभुत्व सीमित हो गए तो फिर कोई ईश्वर भी महान और अपूर्णतारहित नहीं रहा। इसलिए मानना पड़ेगा कि ईश्वर यकता है। वह निराधार और सर्वाधार है। फिर जो यकता, परम स्वतंत्र और निरपेक्ष है वह सदा से होगा। और जो सदा से होगा उसके लिए किसी स्रष्टा का प्रश्न ही कब उठता है।

अल्लाह की यकताई और उसकी निरपेक्षता के पश्चात कहा गया : "उसकी कोई औलाद नहीं और न वह किसी की औलाद है, और कोई नहीं जो उसके बराबर का हो।" यह स्पष्ट ही है कि जो यकता और अद्वितीय होगा वह किसी का बाप या बेटा कैसे हो सकता है और कोई उसकी बराबरी का कैसे होगा? यदि उसकी औलाद मान ली जाए तो उसकी यकताई कहाँ शेष रहती है?

1. यह शंकाओं का मनोवैज्ञानिक उपचार भी है और शैतान और बुरे विचारों के प्रति घृणा का प्रदर्शन भी है।

में दाख़िल होगा ।[1] —मुसलिम

पवित्रता एवं पावनता

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च ईश्वर कहता है : आदम के बेटे ने मुझे झुठलाया, हालाँकि उसे यह न चाहिए था और उसने मुझे गाली दी, हालाँकि उसे यह न चाहिए था। उसका मुझे झुठलाना तो यह है कि वह कहता है कि जिस तरह (अल्लाह ने) मुझे पहली बार पैदा किया है वह (मरने के पश्चात) दोबारा मुझे कदापि जीवित नहीं करेगा, हालाँकि मेरे लिए पहली बार पैदा करना उसके दोबारा पैदा करने की अपेक्षा सरल तो न था।[2] और उसका मुझे गाली देना यह है कि वह कहता है कि अल्लाह ने अपना बेटा बनाया है, हालाँकि मैं निराधार व सर्वाधार हूँ। न मैं किसी का बाप हूँ और न संतान और न कोई मेरे बराबर का है।[3] —अहमद, बुख़ारी, मुसलिम, अबू दाऊद, नसई

---

1. तौहीद (एकेश्वरवाद) पर विश्वास रखनेवाले व्यक्ति का अन्तिम ठिकाना जन्नत (स्वर्ग) ही है। जिस व्यक्ति को तौहीद और अल्लाह के एक ही इलाह (पूज्य-प्रभु) होने का ज्ञान और विवेक होगा, उसका सम्पूर्ण जीवन तौहीद के साँचे में ढल जाएगा। अल्लाह का ऐसा बन्दा अल्लाह के सबसे बड़े पुरस्कार (स्वर्ग) का अधिकारी होगा। तौहीद पर विश्वास रखनेवाला यदि तौहीद की व्यावहारिक अपेक्षाओं से असावधान होगा तो स्वर्ग में प्रवेश से पहले उसे अपनी असावधानी की सज़ा भी मिल सकती है और अल्लाह चाहे तो उसे क्षमा भी कर सकता है। इस हदीस से किसी को यह धोखा न होना चाहिए कि अल्लाह की प्रसन्नता-प्राप्ति के लिए केवल तौहीद पर ईमान लाना पर्याप्त है, रिसालत पर ईमान लाना ज़रूरी नहीं है। रसूल के मार्गदर्शन के बिना न तो व्यक्ति को तौहीद का पूरा ज्ञान हो सकता है और न वह तौहीद की व्यावहारिक अपेक्षाओं से परिचित हो सकता है, और यह ख़ुद तौहीद की भी आवश्यकता है कि व्यक्ति रिसालत पर ईमान लाए।
2. मेरा वादा है कि मैं लोगों को मृत्यु के पश्चात पुनर्जीवन प्रदान करूँगा, फिर उनके कार्यों का हिसाब लूँगा। परन्तु कुछ लोग मृत्यु के पश्चात के जीवन का इनकार करके मुझे झूठा ठहराते हैं और उस महान उद्देश्य का निषेध करना चाहते हैं जिसके अन्तर्गत इस विश्व की रचना हुई है; हालाँकि यदि वे सोच-विचार से काम लेते तो यह बात आसानी से उनकी समझ में आ सकती थी कि जिस अल्लाह ने उन्हें पहली बार जीवन प्रदान किया है वह उन्हें दोबारा जीवन प्रदान करने में असमर्थ कैसे हो सकता है।
3. यह कहना कि अल्लाह के कोई बेटा है (जैसा कि ईसाई हज़रत मसीह अलै० को ख़ुदा का बेटा कहते हैं) वास्तव में अल्लाह की महानता का इनकार है। यदि हम यह स्वीकार

2. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह से बढ़कर कष्टदायक बात सुनकर सहन करनेवाला कोई नहीं, लोग अल्लाह के लिए बेटा ठहराते हैं फिर भी वह उन्हें सुख-शान्ति से रखता और उन्हें रोज़ी देता है ।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : प्रभावशाली एवं प्रतापवान ईश्वर कहता है : समय को बुरा कहकर आदम का बेटा मुझे कष्ट पहुँचाता है क्योंकि मैं ही समय हूँ, मेरे ही हाथ में कार्य-कलाप का सूत्र है । मैं ही रात और दिन में उलट-फेर करता हूँ ।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम, अहमद

4. हज़रत ज़ैद बिन ख़ालिद जुहनी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हुदैबिया में वर्षा के पश्चात, जो रात से हो रही थी, भोर में प्रात: की 'नमाज़' पढ़ाई । जब आप 'नमाज़' से लौटे तो लोगों की ओर रुख़ किया और कहा : क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे रब ने क्या कहा ? बोले : अल्लाह और उसका रसूल ज़्यादा जानते हैं । कहा : उसने कहा कि मेरे बन्दों में से कुछ लोगों ने मुझे माना और कुछ ने इनकार किया । जिसने कहा कि हमपर अल्लाह की कृपा और उसकी दयालुता से वर्षा हुई, उसने मुझे माना और सितारों का इनकार किया और जिसने कहा कि अमुक नक्षत्रों से हमपर वर्षा हुई है वह मेरा इनकार करनेवाला और सितारों पर ईमान रखनेवाला है ।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

कर लें कि उसकी औलाद है, तो इससे उसकी यकताई और उसके चिरस्थाई और चिरंजीवी होने का निषेध हो जाएगा । फिर हम यह नहीं कह सकते कि वह ख़ुद से क़ायम (self subsisting), सारी सृष्टि का स्थापित करनेवाला और स्थिर रखनेवाला है ।

1. अल्लाह चाहे तो मनुष्य को उसके दुष्कर्म के कारण तत्काल ही विनष्ट कर दे । उसपर ऐसा वज्र प्रहार हो कि उसकी चीख़ भी न निकल सके; परन्तु यह उसका धैर्य है कि वह अन्यायियों को ढील पर ढील और मुहलत पर मुहलत दिए जाता है और उनकी जीविका का प्रबन्ध भी करता है ।
2. समय (Time) का वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है । समय केवल अवास्तविक अथवा सापेक्ष वस्तु है । रात-दिन का चक्र और समस्त क्रिया-कलाप अल्लाह ही के अधिकार में है । मनुष्य यदि दुखों, कष्टों आदि से पीड़ित होकर समय को बुरा कहता है तो उसके बुरा कहने की चोट वास्तव में ईश्वर ही पर पड़ती है; इसलिए कि संसार पर अधिकार और अधिपत्य उसी का है, सारी परिवर्तन-शक्ति उसी के हाथ में है ।
3. इस हदीस में इस वास्तविकता का उल्लेख किया गया है कि मनुष्य के भाग्य और

5. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सर्वोच्च अल्लाह अपने बन्दे को क्षमा करता है जब तक कि परदा बीच में न आ ाए।" लोगों ने कहा : "परदा क्या है ?" कहा : "यह कि कोई ऐसी दशा में मरे के मुशरिक (अनेकेश्वरवादी) हो।"[1] —अहमद, बैहक़ी

हानि-लाभ या वर्षा आदि का निर्णय अल्लाह ही के हाथ में है। उसके अतिरिक्त कोई दूसरा कार्य-साधक नहीं है। सारा परिवर्तन और क्रिया-कलाप उसी के अधिकार में है। जो कुछ होता है उसके आदेश से होता है। वही समस्त कार्य का आदिकारण है। वर्षा के अवसर पर उसकी अनुकम्पा को भूल जाना और उसे सितारों और नक्षत्रों का चमत्कार समझना वास्तव में धृष्टता की बात है। भौतिक जगत में तारों, नक्षत्रों आदि की जो वास्तविक स्थिति है उससे इनकार नहीं; परन्तु अभौतिक रूप में शासक ईश्वर ही है। उसी के हाथ में सब कुछ है; इसलिए हमारा भरोसा उसी पर होना चाहिए और हमारी समस्त आशाएँ और अभिलाषाएँ उसी से सम्बद्ध होनी चाहिए। प्रत्येक अवसर पर हमें उसका ही स्मरण करना चाहिए। ऋग्वेद में भी है :

यः एक इद् हव्यश्चर्षणीतामिन्द्रं त गीर्भीरभ्यर्नो आभि।

यः पत्यते वृष्णाय वृष्ण्यवान्त्स त्यः सत्वा पुरुमायाः महस्वान्॥ (ऋ० 6/22/1)

"जो ईश्वर समस्त मानव संसार का एक ही उपास्य है उसी का इन वाणियों द्वारा भली-भाँति अर्चन करो, वही सुख की वर्षा करनेवाला सर्वशक्तिमान, सत्यस्वरूप, सर्वज्ञ और समस्त शक्तियों का अधिपति है।"

1. बन्दे ने जब अल्लाह के अतिरिक्त किसी और को भी अपना ईश्वर समझ लिया और उसे ईश्वरत्व में सहभागी ठहराने लगा और उससे ऐसी आशाएँ करने लगा जैसी आशाएँ केवल अल्लाह से की जानी चाहिएँ तो उसने अपने और अपने वास्तविक ईश्वर के बीच ऐसी दूरी पैदा कर ली कि वह अल्लाह की दयालुता और क्षमा के योग्य नहीं रहता। यदि वह अपनी नीति बदल दे और एक अल्लाह का उपासक हो जाए तो अल्लाह उसके अपराधों को क्षमा कर सकता है, परन्तु यदि शिर्क (अनेकेश्वरवाद) ही में उसका जीवन समाप्त हो गया तो फिर वह कर्म कहाँ से लाएगा जो उस दीवार को ढा सके जो उसने अपने और अल्लाह के बीच खड़ी कर ली है।

ऋग्वेद में है : **य एक इत तमुष्टुहि कृष्टीना विचर्षणि। पतिर्ज्ञे वृषकूतु।**
"जो ईश्वर एक ही है तू उसी की स्तुति कर, वह सब मनुष्यों का सर्वद्रष्टा सर्वज्ञ है। सुख की वर्षा करनेवाला सम्पूर्ण संसार का एकमात्र अधिपति है।"

अथर्वेद में कहा गया है :

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।

य एतं देवमेकवृतं देव॥

न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
य एनं देवमेंकवृतं वे॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेंकवृतं वेद।
स सवस्मै विं पश्यति यच्चं प्राणति य-च न।
य एतं देवमेंकवृतं वेद॥
तमिदं निगतं सहः स एब एक एकवृदेक एव।
य एतं देवमेंकवृतं वेद॥
सर्वे अस्मि न् देवा एकवृतों भवन्ति।
य एतं देवमेंकवृतं वेद॥ (अथर्ववेद 13/14/16-21)

भावार्थ : वह (अकेला वर्तमान), न दूसरा, न तीसरा, न चौथा ही कहा जाता है। वह न पाँचवाँ, न छठा, न सातवाँ ही कहा जाता है। वह न आठवाँ, नवाँ, न दसवाँ ही कहा जाता है। वह (ईश्वर) सब (जगत्) के हित के लिए (उस सबके लिए) विविध प्रकट देखता है, जो श्वास लेता है और जो नहीं (श्वास लेता है)। यह सामर्थ्य उस (ईश्वर) को निश्चय करके प्राप्त है। वह आप एक, अकेला वर्तमान एक ही है। इस (ईश्वर) में सब चलनेवाले (पृथ्वी आदि लोक) एक (ईश्वर) में वर्तमान हैं।

"वह ईश्वर न दूसरा है न तीसरा और न चौथा कहा जाता है, वह पाँचवाँ, छठा और सातवाँ भी नहीं कहा जाता है, वह ईश्वर समुच्चय संसारस्थ प्राणि-अप्राणि वर्ग को विविध प्रकार से देखता है। उसे सब सामर्थ्य प्राप्त है। वह अकेला ही वर्तमान है। उसी में पृथ्वी आदि समस्त वर्तमान है।" (अथर्वेद : 13/4/16-21)

दयालुता एवं क्षमाशीलता

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : जब अल्लाह ने सृष्टि रची तो अपनी किताब में लिख दिया, जो अर्श (राज सिंहासन) पर उसके पास मौजूद है : "मेरी दयालुता मेरे प्रकोप से बढ़ी हुई है ।"[1]

—बुख़ारी, मुसलिम, तिरमिज़ी

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह की सौ दयालुताएँ (रहमतें) हैं जिनमें से उसने केवल एक भाग जिन्न व मनुष्य, चौपायों और छोटे जीव-जन्तुओं में उतारा जिसके कारण वे परस्पर ममता दिखलाते और एक-दूसरे पर दया करते हैं। इसी के कारण वन-पशु अपने बच्चे की ओर झुकता है। और निन्यानवे दयालुताओं को उसने रख छोड़ा है, उनसे वह क़ियामत के दिन अपने बन्दों पर दया करेगा ।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम, तिरमिज़ी

---

1. एक रिवायत के शब्द ये हैं : "मेरी दयालुता मेरे प्रकोप की अपेक्षा अग्रसर रही।" अर्थात अल्लाह की दयालुता को प्रधानता प्राप्त है। वह प्रकोप से बढ़ी हुई है। यह उसकी दयालुता ही है कि उसने लोगों को पैदा किया, उनके पथ-निर्देशन के लिए वह्य व रिसालत का सिलसिला जारी किया। यह उसकी दयालुता ही है कि वह उपद्रवी और अत्याचारी लोगों को तुरन्त नहीं पकड़ता, बल्कि उन्हें सँभलने और ज़ुल्म व अन्याय से बचने का पूरा अवकाश प्रदान करता है। वे उसका इनकार करते हैं फिर भी वह उनके लिए आजीविका का प्रबन्ध करता है। वे उसके पथ-निर्देशन से विमुख होते हैं और उसके रसूलों को कष्ट पहुँचाते हैं, फिर भी वह उनपर तुरन्त ही यातना नहीं भेजता बल्कि उन्हें सोचने-समझने का पूरा अवसर देता है। आख़िरत में उसकी दयालुता का पूर्णतः प्रदर्शन होगा। उस दिन वह न्याय करेगा। क़ुरआन में भी कहा गया है : "मेरी दयालुता प्रत्येक वस्तु पर छाई हुई है (7 : 156)।" अल्लाह के यहाँ मौलिक स्थान उसके प्रकोप को नहीं, उसकी दयालुता को प्राप्त है। यह विश्व-व्यवस्था उसकी दयालुता और न्याय पर अवलम्बित है। उसका प्रकोप तो केवल उन लोगों पर होता है जो सरकशी और अत्याचार में बहुत आगे बढ़ जाते हैं।
2. संसार में जहाँ कहीं जिस रूप में दयालुता और प्रेम का प्रदर्शन होता है वह वास्तव में अल्लाह की उस दयालुता का प्रदर्शन है जो संसार में अवतरित हुई है। अल्लाह की दयालुता एवं अनुकम्पा का पूर्ण प्रदर्शन तो आख़िरत में होगा। जो लोग आख़िरत की ओर ध्यान नहीं देते, वे अल्लाह की अपार एवं असीम दयालुता से अपने आपको वंचित कर रहे हैं।

3. हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) के पास कुछ क़ैदी आए। उन क़ैदियों में एक स्त्री दीख पड़ी जिसके स्तनों से दूध बह रहा था। वह (अपना बच्चा) खोजती फिरती थी। जब उसे क़ैदियों में बच्चा मिल गया तो उठाकर उसे अपने सीने से लगा लिया और उसे दूध पिलाने लगी। नबी (सल्ल०) ने हमसे कहा : तुम्हारा क्या विचार है, क्या यह स्त्री अपने बच्चे को आग में डाल सकती है? हमने कहा : नहीं, जबकि उसे यह सामर्थ्य प्राप्त हो कि उसे (आग में) न डाले। इसपर (अल्लाह के रसूल सल्ल० ने) कहा : अल्लाह उससे कहीं अधिक अपने बन्दों पर दयालु है जितना यह स्त्री अपने बच्चे पर दयावती है।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत अबू ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : प्रभावशाली एवं प्रतापवान अल्लाह कहता है, जो व्यक्ति एक नेकी करेगा उसे उसका दस गुना मिलेगा और मैं और भी उसे प्रदान करूँगा। और जो बुराई करेगा उसे केवल एक बुराई का बदला मिलेगा या मैं क्षमा कर दूँ। और जो मुझसे एक बित्ता निकट होगा, मैं उससे एक हाथ निकट होऊँगा। और जो मुझसे एक हाथ निकट होगा मैं उससे दो हाथ निकट होऊँगा। और जो मेरी ओर चलकर आएगा, मैं उसकी ओर लपकता हुआ आऊँगा, और जो मुझसे धरती के बराबर गुनाह करके मिलेगा मैं उससे उसी जैसी क्षमा के साथ मिलूँगा, शर्त यह है कि उसने किसी को मेरा सहभागी न बनाया हो।[2]

—मुसलिम, तिरमिज़ी

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल

---

1. यही कारण है कि उसने अपने बन्दों के मार्ग-निर्देशन के लिए नबियों को भेजा और उनपर अपनी किताबें उतारीं। फिर भी जो लोग विनाश ही की ओर बढ़ते हैं और कुफ़्र और अधर्म के मार्ग को नहीं त्यागते, उनको वह तुरन्त नहीं पकड़ता बल्कि उन्हें मुहलत पर मुहलत देता जाता है, कदाचित वे अत्याचार को छोड़कर सत्य-मार्ग अपना लें। फिर भी जो उसकी दयालुता से अपने को दूर ही रखना चाहते हैं, वह उनके साथ ज़बरदस्ती भी नहीं करता कि वे तो घृणा ही किए जाएँ और वह उन्हें बलपूर्वक सीधे मार्ग पर ले आए। अल्लाह जहाँ दयावान और कृपाशील है, वहीं वह स्वाभिमानी और गौरवयुक्त भी है।
2. इस हदीस में अल्लाह की दयालुता और क्षमा का उल्लेख जिस सुन्दर ढंग से किया गया है उससे अनुमान किया जा सकता है कि उसकी दयालुता उन बन्दों की ओर लपकने को कितनी विह्वल है जो अल्लाह की दयालुता एवं कृपा की आशा लिए हुए उसकी ओर बढ़ते और उसकी पुकार पर दौड़ पड़ते हैं।

(सल्ल०) ने अपने प्रभावशाली प्रतापवान रब से रिवायत करते हुए कहा कि एक बन्दे ने गुनाह किया और कहा : ऐ अल्लाह! मेरा गुनाह क्षमा कर दे। बरकतवाले सर्वोच्च अल्लाह ने कहा : मेरे बन्दे ने गुनाह किया और यह समझा कि उसका कोई रब है जो गुनाह को क्षमा करता और गुनाह पर पकड़ता है।[1] कुछ समय के पश्चात उसने फिर गुनाह किया और कहा : ऐ मेरे रब! मेरा गुनाह क्षमा कर दे। बरकतवाले सर्वोच्च अल्लाह ने कहा : मेरे बन्दे ने गुनाह किया और समझा कि उसका कोई रब है जो गुनाह को क्षमा करता और गुनाह पर पकड़ता है। कुछ समय के पश्चात उसने फिर गुनाह किया और कहा : ऐ मेरे रब! मेरा गुनाह क्षमा कर दे। बरकतवाले सर्वोच्च अल्लाह ने कहा : मेरे बन्दे ने गुनाह किया और यह समझा कि उसका कोई रब है जो गुनाह को क्षमा करता और पकड़ता है। (यदि मेरी ओर तेरे रुजू करने का यही हाल है) तो अब जो चाहे कर, मैंने तुझे क्षमा कर दिया।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

6. हज़रत सौबान (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते सुना है कि यदि इस आयत के बदले में मुझे पूरी दुनिया मिल जाए तो भी मुझे पसन्द नहीं : "ऐ मेरे बन्दो! जिन्होंने अपने आपपर ज़्यादती की है अल्लाह की दयालुता (की ओर) से निराश न हो।" इसपर एक व्यक्ति ने कहा : अच्छा क्या वह व्यक्ति भी, जिसने शिर्क किया है? नबी (सल्ल०) चुप रहे। फिर

---

1. इसलिए मेरे इस सेवक का यह हक़ होता है कि मैं इसकी ख़ताओं को क्षमा कर दूँ और इसको अपनी दयालुता की ओर से निराश न होने दूँ।
2. इस हदीस में तौबा से अभिप्रेत दिखाने की तौबा नहीं, बल्कि वास्तविक तौबा है। एक मोमिन से गुनाह हो जाता है तो फिर उसे अल्लाह की प्रभुता और उसका अज़ाब (यातना) याद आता है। वह सच्चे दिल से अल्लाह की ओर पलटता और उससे अपने गुनाहों के लिए क्षमा की प्रार्थना करता है। अल्लाह उसकी ग़लती को क्षमा कर देता है। मानवीय दुर्बलता और संकल्प की निर्बलता के कारण उससे फिर गुनाह हो जाता है। वह फिर काँप उठता है और अल्लाह के आगे फिर तौबा करता है। वह अल्लाह ही के दिखाए मार्ग पर चलना चाहता है; परन्तु बार-बार उसका क़दम डगमगा जाता है, किन्तु हर बार वह सँभलता है और सँभलकर अल्लाह के मार्ग पर क़दम रखता है। ऐसे व्यक्ति की आत्मा कदापि विकृत नहीं होती। ऐसे व्यक्ति से चाहे कितनी ही बार गुनाह हो वह अपनी तौबा से अल्लाह की क्षमा और दयालुता का अधिकारी बन जाता है।

कहा : सुन लो जिसने शिर्क किया वह भी, तीन बार कहा।[1] —अहमद

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) नमाज़ के लिए खड़े हुए, हम भी आपके साथ खड़े हो गए। एक ग्रामीण ने नमाज़ में ही कहा : ऐ अल्लाह ! मुझपर और मुहम्मद पर दया कर और हमारे साथ किसी दूसरे पर दया न कर। नबी (सल्ल०) ने सलाम फेरा तो उस ग्रामीण से कहा : तूने तो अत्यन्त विस्तृत वस्तु को तंग कर दिया।[2] —बुख़ारी

8. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से किसी व्यक्ति को उसका कर्म न जन्नत में दाख़िल करेगा और न ही (जहन्नम की) आग से बचाएगा और मुझे भी नहीं, परन्तु अल्लाह की दयालुता से।[3] —मुसलिम

9. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब कोई बन्दा अल्लाह के सामने तौबा करता है तो वह अपने बन्दे की तौबा से तुममें से उस व्यक्ति से कहीं अधिक प्रसन्न होता है जिसकी सवारी खाना-पानी सहित किसी चटियल मैदान में खो जाए और वह (परेशान होकर) एक वृक्ष के निकट आकर उसकी छाया में निराश होकर पड़ रहे, तो इसी निराशावस्था में वह पड़ा रहे, इस बीच में उसकी सवारी उसके पास आ खड़ी हो, वह उसकी रस्सी पकड़ ले और अत्याधिक ख़ुशी और प्रसन्नता से बोल उठे : ऐ अल्लाह ! तू मेरा बन्दा है और मैं तेरा रब हूँ। मारे ख़ुशी के असत्य कहने लगे।[4] —मुसलिम

---

1. अर्थात जिन लोगों ने अल्लाह की अवज्ञा करके अपने आपपर अत्याचार किया है उन्हें अल्लाह की दयालुता से कदापि निराश न होना चाहिए। शिर्क जैसे बड़े गुनाह को भी अल्लाह क्षमा कर सकता है यदि बन्दा तौबा करके शिर्क से बाज़ आ जाए और पूर्ण रूप से अपने को एक अल्लाह की बन्दगी में दे दे।
2. अर्थात अल्लाह की दयालुता तो अत्यन्त विस्तृत थी, उसे तूने क्यों केवल दो व्यक्तियों तक सीमित रखा।
3. मनुष्य अल्लाह के आज्ञापालन और उसकी उपासना में कितना ही प्रयास क्यों न करे, अल्लाह का हक़ किसी तरह अदा नहीं होता। मनुष्य से कोई न कोई कोताही और भूल-चूक हो ही जाती है। अल्लाह की दयालुता ही है जिसके सहारे मनुष्य का आख़िरत में उद्धार हो सकता है।
4. अर्थात हर्ष में वह कुछ ऐसा खो-सा जाए कि उसके मुख से कुछ ग़लत बातें निकल

10. इब्न उमर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : (क़ियामत के दिन) अल्लाह मोमिन (ईमानवाले) को अपने क़रीब कर लेगा और अपने संरक्षण की चादर डालकर उसे ढक देगा।[1] फिर अल्लाह कहेगा : क्या तुम इस गुनाह को जानते हो? क्या तुम इस गुनाह से परिचित हो? वह कहेगा : हाँ, ऐ मेरे रब! (मैं जानता हूँ) यहाँ तक कि अल्लाह उससे उसके समस्त गुनाहों का इक़रार करा लेगा। और वह अपने जी में समझेगा कि वह (अपने गुनाहों के कारण) अब विनष्ट हुआ। अल्लाह कहेगा : मैंने दुनिया में तेरे इन अवगुणों पर

जाएँ। इस हदीस में अल्लाह की अपार दयालुता का उल्लेख किया गया है। इनजील में भी अल्लाह की दयालुता और क्षमाशीलता की कुछ सुन्दर उपमाएँ मिलती हैं। एक जगह आया है : "तुम क्या समझते हो? यदि एक व्यक्ति की सौ भेड़ें हों और उनमें से एक भटक जाए तो क्या वह निन्यानवे को छोड़कर और पहाड़ में जाकर उस भटकी हुई भेड़ को न ढूँढेगा? और यदि ऐसा हो कि उसे पाए तो मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वह निन्यानवे की अपेक्षा जो भटकी नहीं उस भेड़ के लिए ज़्यादा ख़ुशी करेगा। इसी प्रकार तुम्हारा आसमानी बाप यह नहीं चाहता कि इन छोटों में से एक भी विनष्ट हो।"

(मत्ती 18 : 12-13)

एक दूसरी जगह खोई हुई भेड़ की उपमा देकर कहा गया है : "मैं तुमसे सच कहता हूँ कि इसी प्रकार निन्यानवे सत्यवादियों की अपेक्षा जिन्हें तौबा की आवश्यकता नहीं एक तौबा करनेवाले गुनाहगार के कारण आसमानों पर ज़्यादा ख़ुशी होगी।"

(लूक़ा 15 : 7)

इसी प्रकार एक हृदयस्पर्शी उपमा उस बेटे की दी गई है जो बहुत ही नालायक़ था। जिसने पिता से मिली हुई सम्पत्ति बुरे कर्मों में लुटा दी थी। जब वह परेशानी में ग्रस्त हुआ तो कहा : "अब मैं उठकर अपने पिता के यहाँ जाऊँगा और कहूँगा कि ऐ बाप! मैं आसमान का और तेरी दृष्टि में गुनहगार हुआ। अब इस योग्य नहीं कि तेरा बेटा कहलाऊँ। मुझे अपने मज़दूरों जैसा कर ले।" अतः वह उठकर अपने बाप के पास चला। वह अभी दूर ही था कि उसे देखकर उसके बाप को तरस आया और दौड़कर उसको गले लगा लिया और चूमा। बेटे ने उससे कहा : ऐ बाप, मैं आसमान का और तेरी नज़र में गुनहगार हुआ, अब इस लायक़ नहीं रहा कि फिर तेरा बेटा कहलाऊँ। बाप ने अपने नौकरों से कहा : अच्छे से अच्छा वस्त्र निकालकर जल्द इसे पहनाओ और इसके हाथ में अँगूठी और पाँव में जूती पहनाओ और पले हुए बछड़े को लाकर ज़बह करो ताकि हम खाकर हर्ष मनाएँ क्योंकि मेरा यह बेटा मुर्दा था अब जीवित हुआ, खो गया था अब मिला है। (लूक़ा : 15)

1. अर्थात उसे अपने संरक्षण में ले लेगा और उसे हर प्रकार की रुसवाई से बचाएगा।

परदा डाला और आज मैं तेरे इन गुनाहों को क्षमा कर दूँगा। उसे उसकी नेकियो का कर्म-पत्र दिया जाएगा। रहे काफ़िर (अधर्मी जन) और मुनाफ़िक़ (कपटी) लोग उन्हें समस्त सृष्टि-जन के सामने बुलाया जाएगा और पुकारकर कहा जाएगा : ये वे लोग हैं जिन्होंने अपने रब से झूठी बातें सम्बद्ध कीं, जान लो अल्लाह की फिटकार है ज़ुल्म (अत्याचार) करनेवालों पर ![1] —बुख़ारी, मुसलिम

11. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह मेहरबान है और नर्मी और मेहरबानी को पसन्द करता है और नर्मी और मेहरबानी (अनुकम्पा) पर वह चीज़ प्रदान करता है जो क्रूरता एवं कठोरता पर नहीं प्रदान करता और न किसी और ही चीज़ पर प्रदान करता है।[2]

—मुसलिम

अल्लाह की महानता

1. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हमारे बीच खड़े होकर चार बातें बयान कीं : प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह सोता नहीं और न यह उसे शोभा देता है कि वह सोए। न्याय-तुला को

---

1. मोमिन यदि वास्तव में ईमानवाला है; ज़ालिम, अल्लाह का अवज्ञाकारी और विद्रोही नहीं है तो उसपर क़ियामत के दिन अल्लाह की विशेष कृपा होगी। मानवीय दुर्बलता के कारण उससे जो कोताही या गुनाह के काम हुए होंगे अल्लाह उनको क्षमा कर देगा और क़ियामत के दिन की रुसवाई और अपमान से उसे बचा लेगा। इसके विपरीत काफ़िर और मुनाफ़िक़ के लिए क़ियामत का दिन रुसवाई का दिन होगा। वे अपनी करतूतों की सज़ा उस दिन पाकर रहेंगे।
2. मालूम हुआ कि नर्मी और मेहरबानी की नीति ही अल्लाह को प्रिय है। उसकी विशेष सहायता, योग और समर्थन उन्हीं लोगों को प्राप्त होती है जो नर्मी और मेहरबानी से पेश आते हैं। अल्लाह स्वयं मेहरबान है। उसका प्रकोप यदि होता है तो केवल उन लोगों पर जो अत्याचारी और अधर्मी हैं, वे विनाश ही के अधिकारी हैं। ज़ालिमों और अपराधियों को भी अल्लाह सँभलने और सही मार्ग पर आने का पूरा अवसर प्रदान करता है, परन्तु जब उनकी सरकशी बहुत ज़्यादा बढ़ जाती है तो फिर ईश्वरीय प्रकोप में ग्रस्त होकर रहते हैं। अल्लाह मेहरबान और दयावन्त है परन्तु इसके साथ वह न्यायशील, गौरवान्वित और स्वाभिमानी भी है। उसके स्वाभिमान, गौरव और न्याय को चुनौती देकर कोई कहाँ शरण पा सकता है। दयालुता के साथ जब तक महानता के गुणों से भी अल्लाह को युक्त न माना जाए; प्रभुता की कल्पना अपूर्ण ही रहती है।

झुकाता और उसे ऊँचा करता है। रात के कर्म दिन में और दिन के कर्म रात में उसकी ओर उठाए जाते हैं।[1] —अहमद, मुसलिम, इब्न माजा

2. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह सोता नहीं और न यह उसे शोभा देता है कि वह सोए, न्याय-तुला को झुकाता और उसे ऊँचा करता है। (सृष्टि के जीव आदि और उसके बीच उसके मुख मंडल का) तेज एवं ताप उसका आवरण है। यदि वह उसे उठा दे तो उसके श्रीमुख का तेज जहाँ तक दृष्टि पहुँचे सबको भस्म कर दे।[2] इसके बाद अबू उबैदा (रज़ि०) ने (क़ुरआन की इस आयत को) पढ़ा : "जब वह (मूसा) उसके निकट पहुँचा तो उसे पुकारा गया कि बरकत दी गई उसे जो इस अग्नि में है और जो इसके आस-पास है ! और महिमावान है अल्लाह, सारे

---

1. अर्थात अल्लाह कभी अचेत और असावधान नहीं होता। उसको ऊँघ या निद्रा नहीं सताती (क़ुरआन, 2 : 255)। इस प्रकार की समस्त दुर्बलताओं से वह रहित है। फिर सारे अधिकार उसी के हाथ में हैं। जिसे चाहता है उच्चता प्रदान करता है, जिसे चाहता है नीचे गिराता है। किसी को अधिक रोज़ी देता है और किसी को कम और नपी-तुली रोज़ी देता है। उसके फ़ैसले सत्य, न्याय और तत्वदर्शिता (Wisdam) की तुला पर पूरे उतरते हैं। उसका कोई फ़ैसला न्याय और इनसाफ़ से हटा हुआ नहीं होता और न ही उसका कोई काम तत्वदर्शिता और शुभहेतु से रहित होता है। यह दूसरी बात है कि अपनी अन्धता के कारण मनुष्य उसके उद्देश्य एवं हेतु के समझने में असमर्थ रहे। अल्लाह की महानता और शासनाधिकार ऐसा है कि समस्त कर्म और कारगुज़ारियाँ उसकी सेवा में पेश होती हैं। वह किसी कार्य से भी बेख़बर नहीं है। वह साक्षात प्रत्येक चीज़ का ज्ञान रखता हैं। इसके अतिरिक्त फ़रिश्ते भी अपनी कारगुज़ारी और मनुष्यों के कर्म उसके सामने प्रस्तुत करते हैं।
2. इस हदीस से मालूम हुआ कि लोगों की दृष्टि यदि अल्लाह को देखने में असमर्थ है तो इसका कारण यह कदापि नहीं है कि बीच में कोई आवरण और अन्धकार है, बल्कि इसका मूल कारण यह है कि अल्लाह की महानता और उसके प्रताप का प्रकाश ही उसका आवरण बन रहा है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश और उसकी चमक ही उसका अपना आवरण बन जाए और कमज़ोर निगाह का व्यक्ति उसके देखने में असमर्थ रहे। हमारी दृष्टि और नेत्र-ज्योति में यह शक्ति नहीं कि वह अल्लाह के दर्शन को सहन कर सके। हज़रत मूसा (अलै०) ने दर्शन की अभिलाषा की थी; परन्तु वे उसको सहन न कर सके और मूर्छित होकर गिर पड़े और पर्वत चकनाचूर हो गया। —क़ुरआन, 7 : 143

संसार का पालनकर्ता स्वामी।"[1] —मुसलिम, अहमद, इब्ने माजा

3. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा: "मैं वह कुछ देखता हूँ जो तुम नहीं देखते और वे बातें सुनता हूँ जो तुम नहीं सुनते। आसमान चरचरा रहा है और उसे चरचराना ही चाहिए। उसमें चार अंगुल स्थान भी ऐसा नहीं है जहाँ कोई सजदा करनेवाला फ़रिश्ता मौजूद न हो। यदि तुम वे बातें जानते जो मैं जानता हूँ, तो हँसते कम और रोते अधिक और अपने बिछौनों पर अपनी स्त्रियों के साथ सुख न भोगते और सर्वोच्च अल्लाह की ओर चीखते-चिल्लाते मैदानों में निकल जाते। अबू ज़र (रज़ि०) कहते हैं : "क्या ही अच्छा होता कि मैं एक वृक्ष होता (जो जड़ से) काट दिया जाता।"[2]

—तिरमिज़ी, इब्ने माजा, अहमद

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन अल्लाह ज़मीन को अपनी मुट्ठी में ले लेगा और आसमान को अपने दाहिने हाथ में लपेटकर कहेगा : मैं हूँ सम्राट, कहाँ है धरती के सम्राट?[3] —बुख़ारी, मुसलिम, अहमद

---

1. देखें क़ुरआन, 27 : 8.
2. इस हदीस में अल्लाह के प्रताप, तेज और उसकी महानता और श्रेष्ठता का उल्लेख जिस ढंग से किया गया है वह अत्यन्त प्रभावशाली है। किसी अप्रत्यक्ष वास्तविकता के प्रदर्शन का प्रभावकारी ढंग यही है कि प्रत्यक्षतः उसके विषय में कुछ कहने के बदले बाह्य वातावरण पर उसके जो प्रभाव पड़ रहे हों उन्हीं को उसके प्रदर्शन का साधन बनाया जाए। यह रसूल ही का हृदय और उसकी सहन-शक्ति है कि वे अलौकिक और परोक्ष सम्बन्धी वास्तविकताओं से प्रत्यक्षतः परिचित होते हुए भी अपने होश-हवास को बाक़ी रखता है। दूसरा कोई इसको सहन नहीं कर सकता। दूसरा कोई यदि उन बातों से परिचित हो जाए जिनसे रसूल परिचित होता है, तो उसका वही हाल होगा जो इस हदीस में बयान हुआ है। उसके लिए संसार में मनोरंजन की कोई चीज़ शेष न रहेगी। आसमान में कोई स्थान भी ऐसा नहीं है जहाँ कोई न कोई फ़रिश्ता अल्लाह की महानता के आगे नतमस्तक न हो और आसमान की हालत यह है कि वह चरचरा रहा है, परन्तु लोगों का हाल यह है कि उन्हें इसका कुछ भी ज्ञान नहीं कि क्या हो रहा है और क्या होनेवाला है।
3. इस हदीस में वही बात कही गई है जो क़ुरआन में इन शब्दों में कही गई है : "अल्लाह जैसा कुछ है ये लोग उसका अन्दाज़ा नहीं कर सके, उसका हाल तो यह है कि क़ियामत के दिन यह धरती पूरी की पूरी उसकी मुट्ठी में होगी और आकाश उसके

5. अब्दुल्लाह इब्न अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : आदम के बेटों (मनुष्यों) के हृदय कृपाशील ईश्वर की उँगलियों में से दो उँगलियों के बीच में हैं, वह जैसा चाहता है उन्हें फेरता है। फिर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ऐ अल्लाह! हृदयों के फेरनेवाले! हमारे हृदयों को अपने आज्ञापालन की ओर फेर दे।[1] —मुसलिम

6. हज़रत जुबैर बिन मुतइम (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास एक ग्रामीण आया। उसने कहा : लोगों की जानें मशक़्क़त में पड़ गईं, बच्चे भूखे हुए, माल तबाह हो गए, चौपाए विनष्ट हो गए, अत: अल्लाह से हमारे लिए वर्षा की प्रार्थना कीजिए। हम अल्लाह के सामने आपकी सिफ़ारिश चाहते हैं और आपके सामने अल्लाह की सिफ़ारिश चाहते हैं। इसपर नबी (सल्ल०) कहने लगे : महिमावान है अल्लाह! महिमावान है अल्लाह! और यहाँ तक तसबीह करते रहे कि आपके साथियों के मुख पर भी उसका प्रभाव लक्षित होने लगा। फिर आपने कहा : अरे (नादान) : अल्लाह की सिफ़ारिश किसी के सामने नहीं पेश की जाती। अल्लाह का गौरव इससे कहीं उच्च और बढ़कर है। तू जानता भी है कि अल्लाह का गौरव क्या है? उसका अर्श (राजसिंहासन) आसमानों पर इस तरह क़ायम है। आपने अपनी उँगलियों से गुम्बद की तरह बनाकर दिखाया। कहा : वह उसकी महानता से इस प्रकार चरचरा रहा है जैसे

दाहिने हाथ में लिपटे होंगे। महिमावान है वह और उच्च है उस शिर्क से जो ये लोग करते हैं" (क़ुरआन 39 : 67)।

इस हदीस और क़ुरआन की इस आयत में अल्लाह की सामर्थ्य, उसकी शक्ति, प्रभुत्व और उसकी महानता एवं श्रेष्ठता का अनुपम वर्णन है। क़ियामत के दिन यह वास्तविकता किसी से छिपी न रहेगी कि धरती और आकाश सब कुछ उसके अधिकार में है। आज धरती में जो लोग शासक एवं सम्राट बने हुए हैं उनका झूठा शासन और उनकी झूठी राजसत्ता उस दिन समाप्त हो चुकी होगी। वे अपनी वास्तविकता से पूर्ण रूप से परिचित हो चुके होंगे।

1. मनुष्य का बाह्य अस्तित्व ही नहीं, उसकी अन्तरात्मा भी अल्लाह के अधिकार में है। वह हमारे दिल को जिस ओर चाहे फेर दे। अल्लाह से इसी की प्रार्थना करते रहना चाहिए कि वह हमारे दिलों को अपनी ओर झुकाए रखे और हम उसकी बन्दगी और आज्ञापालन से कभी विमुख न हों। मनुष्य को जिस चीज़ की इच्छा होती है, अल्लाह उसके दिल को उसी ओर झुका देता है। मनुष्य स्वयं इसका उत्तरदायी है कि वह दुनिया में किस चीज़ का इच्छुक होता है।

कजावा सवार के भार से चरचराता है। —अबू दाऊद

7. हज़रत उम्मुल अला अनसारिया (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह की क़सम, मैं नहीं जानता, अल्लाह की क़सम! मैं नहीं जानता यद्यपि मैं अल्लाह का रसूल हूँ कि मेरे साथ क्या किया जाएगा और तुम्हारे साथ क्या?[1] —बुख़ारी

8. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह से रिवायत करते हुए कहा कि वह कहता है : ऐ मेरे बन्दो! मैंने अपने ऊपर ज़ुल्म को हराम कर लिया है और उसे तुम्हारे बीच भी हराम (अवैध) किया है, तो तुम एक-दूसरे पर ज़ुल्म न किया करो। ऐ मेरे बन्दो! तुम सब राह से भटके हुए हो सिवाय उसके जिसे मैंने राह दिखाई, तो मुझसे पथ-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना करो, मैं तुम्हें मार्ग दिखाऊँगा। ऐ मेरे बन्दो! तुम सब भूखे हो सिवाय उसके जिसे मैंने खिलाया, तो मुझसे खाना माँगो मैं तुम्हें खिलाऊँगा। ऐ मेरे बन्दो! तुम सब नंगे हो सिवाय उसके जिसे मैंने वस्त्र पहनाया, तो मुझसे वस्त्र माँगों, मैं तुम्हें पहनाऊँगा। ऐ मेरे बन्दो! तुम रात-दिन ख़ताएँ किया करते हो, मैं सब गुनाहों को क्षमा करता हूँ, तो मुझसे क्षमा की प्रार्थना करो, मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा। ऐ मेरे बन्दो! तुम कदापि मुझे हानि पहुँचाने की स्थिति में नहीं हो सकते कि मुझे हानि पहुँचाओ। और तुम कदापि मुझे फ़ायदा पहुँचाने की स्थिति में नहीं हो सकते कि मुझे फ़ायदा पहुँचाओ। ऐ मेरे बन्दो! यदि तुम्हारे अगले और तुम्हारे पिछले तुम्हारे मनुष्य और तुम्हारे जिन्न तुममें सबसे बढ़कर (अल्लाह का) डर रखनेवाले व्यक्ति के समान हो जाएँ, तो यह चीज़ मेरे राज्य में कुछ बढ़ा नहीं सकती। ऐ मेरे बन्दो! यदि तुम्हारे अगले

---

1. नबी (सल्ल०) अल्लाह के सच्चे रसूल हैं। आपने अल्लाह की ओर से लोगों को जीवन की वास्तविकता से परिचित कराया। उन्हें जीवन की सीधी सच्ची राह दिखाई, और यह बताया कि एक दिन अल्लाह की अदालत में सबको उपस्थित होना है। परन्तु तमाम बातों के बावजूद आपको अल्लाह की महानता और गौरव का इतना एहसास है कि उस दिन के बारे में कहते हैं जो फ़ैसले का दिन होगा, जिस दिन अल्लाह अपने पूर्ण तेज एवं प्रताप के साथ प्रकट होगा : मैं नहीं कह सकता कि संसार को किस स्थिति का सामना करना पड़ेगा। उसका पूर्ण अनुमान करने में मैं भी असमर्थ हूँ। मैं उस भयावह दृश्य का पूर्ण रूप से चित्रण नहीं कर सकता।

और तुम्हारे पिछले, तुम्हारे मनुष्य और तुम्हारे जिन्न तुममें सबसे बढ़कर दुस्साहसी व्यक्ति के समान हो जाएँ, तो यह चीज़ मेरे राज्य में कोई कमी पैदा नहीं कर सकती। ऐ मेरे बन्दो! यदि तुम्हारे अगले और तुम्हारे पिछले, तुम्हारे मनुष्य और तुम्हारे जिन्न सब एक मैदान में खड़े हों और मुझसे माँगें और मैं हर व्यक्ति की माँग पूरी करूँ, तो इससे उसमें कुछ भी कमी नहीं आ सकती जो मेरे पास है सिवाय उसके जैसी कमी सूई पैदा करती है जब वह समुद्र में दाखिल होती है। ऐ मेरे बन्दो! ये तुम्हारे कर्म ही हैं जिनकी मैं तुम्हारे लिए गणना करके रखता हूँ फिर मैं तुम्हें उनको पूरा-पूरा दे दूँगा। फिर जो व्यक्ति अच्छा बदला पाए तो उसे अल्लाह की हम्द (प्रशंसा) करनी चाहिए। और जो इसके प्रतिकूल (अर्थात बुरा बदला) पाए तो उसे अपने आपको ही मलामत करनी चाहिए।[1]

—मुसलिम, तिरमिज़ी

9. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह कहता है : ऐ मेरे बन्दो! तुम सब गुनहगार हो सिवाय उसके जिसे मैं बचा लूँ, तो मुझसे क्षमा की प्रार्थना करो, मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा। जो व्यक्ति यह ज़ानता है कि मुझे क्षमा कर देने की सामर्थ्य

---

1. इस हदीस से कई बातें प्रकाश में आती हैं। अल्लाह परम स्वतंत्र और निरपेक्ष है। उसको न कोई फ़ायदा पहुँचा सकता है और न हानि पहुँचा सकता है। सब उसके मुहताज और आश्रित हैं। वह किसी का भी मुहताज नहीं है। जिस प्रकार समुद्र में सूई डालकर निकालने से समुद्र का पानी घट नहीं जाता उसी तरह लोगों को देने से अल्लाह के यहाँ कोई कमी नहीं आ सकती। समुद्र की उपमा तो केवल समझाने के लिए दी गई है, समुद्र तो उसकी महानता के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं है। हमारा कर्तव्य है कि हम अल्लाह के सम्बन्ध से लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करें। अल्लाह को ज़ुल्म पसन्द नहीं, हम भी किसी पर ज़ुल्म और अत्याचार न होने दें। मनुष्य अपना उत्तरदायी स्वयं है। जैसे उसके कर्म होंगे उसी के अनुसार अल्लाह उसे प्रतिदान प्रदान करेगा। यदि किसी को अच्छा बदला मिले तो उसे अल्लाह का कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने उसके कर्मों को अकारथ नहीं किया। उसे अपने रब की हम्द (प्रशंसा) करनी चाहिए कि जो कार्य और शुभ कर्म भी हो सका उसके पालनकर्त्ता अल्लाह की कृपा और दया ही से हो सका। यदि किसी को अल्लाह के यहाँ बुरा बदला मिलता है और वह वहाँ दण्ड का भागी समझा जाता है तो उसे अपने को ही मलामत करनी चाहिए, किसी दूसरे को नहीं। अल्लाह के यहाँ न्याय होता है, अन्याय कदापि नहीं होता।

प्राप्त है फिर मेरी सामर्थ्य के बल पर मुझसे क्षमा की प्रार्थना करता है उसे मैं क्षमा कर देता हूँ और कोई परवाह नहीं करता। (ऐ मेरे बन्दो !) तुम सब राह से भटके हुए हो सिवाय उसके जिसे मैं राह दिखाऊँ, तो मुझसे मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना करो, मैं तुम्हें (सीधा) मार्ग दिखाऊँगा।[1] और तुम सब मुहताज हो सिवाय उसके जिसे मैं बेपरवाह कर दूँ, तो मुझसे माँगो मैं तुम्हें बेपरवाह कर दूँगा।[2] यदि तुम्हारे अगले और पिछले, ज़िन्दा और मुर्दा, आर्द्र और शुष्क सब मिलकर मेरे बन्दों में सबसे अधिक दुष्ट और पाषाण-हृदय व्यक्ति के समान हो जाएँ, तो मेरे राज्य में मच्छर के पंख के बराबर भी कोई कमी नहीं आ सकती और यदि सब मिलकर मेरे बन्दों में सबसे अधिक (अल्लाह) का डर रखनेवाले व्यक्ति के समान हो जाएँ तो मेरे राज्य में एक मच्छर के पंख के बराबर भी कोई अधिकता नहीं हो सकती। और यदि तुम्हारे अगले और पिछले, ज़िन्दा और मुरदा, आर्द्र और शुष्क सब इकट्ठा हों और उनमें से प्रत्येक माँगनेवाला मुझसे माँगे जहाँ तक उसकी कामना की पहुँच हो, फिर मैं उनमें से प्रत्येक माँगनेवाले को दे दूँ जो कुछ वह माँगे, तो इससे मेरे यहाँ कोई कमी न आएगी जैसे कि तुममें से कोई समुद्र के किनारे से गुज़रे और उसमें कोई सूई डुबोकर निकाल ले (तो इससे समुद्र के जल में कोई कमी नहीं आती) इसी प्रकार मेरे राज्य में कोई कमी नहीं आती। यह

---

1. इस हदीस में पूर्ण रूप से तौहीद (एकेश्वरवाद) का चित्रण हुआ है। यह हदीस बताती है कि मनुष्य का वास्तविक संरक्षक और सहायक केवल अल्लाह है। मनुष्य को उसी पर भरोसा करना चाहिए और सहायता के लिए उसी को पुकारना चाहिए। जिस व्यक्ति ने अल्लाह को अपना मित्र और कार्यसाधक बना लिया वही सफलतापूर्वक जीवन के सीधे मार्ग पर चल सकता है। अल्लाह ही की दया-दृष्टि है जो मनुष्य को गुनाहों से बचाती और उसे शुद्धता और पवित्रता प्रदान करती है। जब तक अल्लाह की कृपा न हो कोई भी व्यक्ति जीवन का सीधा मार्ग नहीं पा सकता। उसे न वास्तविकता का ज्ञान हो सकता है और न ही वह वास्तविकता के अनुसार अपने ज़ीवन को ढाल सकता है। पथ-प्रदर्शन के लिए अल्लाह ही पर भरोसा करना चाहिए और उसके दिखाए हुए मार्ग पर चलने और उसके आदेशों के अनुपालन को ही अपना परम कर्त्तव्य समझना चाहिए।
2. मनुष्य को जो कुछ प्राप्त है वह अल्लाह ही का दिया हुआ है। सब उसी के आश्रित हैं। मनुष्य को उसी के आगे हाथ फैलाना चाहिए। उसको छोड़कर किसी और को अपना दाता और कष्ट-निवारक समझना घोरतम अन्याय है।

इसलिए कि मैं बड़ा दानशील हूँ, गौरववाला हूँ[1], निरपेक्ष, सर्वाधार हूँ[2], कलाम (वचन) मेरा प्रदान और कलाम मेरी यातना है (मुझे कुछ करना नहीं पड़ता), जब मैं किसी चीज़ का इरादा करता हूँ, तो बस उसके लिए यह कह देता हूँ कि 'हो जा', तो वह हो जाती है।[3] —अहमद मुसलिम, तिरमिज़ी

10. हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह की प्रतिष्ठा एवं सम्मान करो, वह तुम्हें क्षमा कर

---

1. अर्थात अल्लाह निरपेक्ष है और परम स्वतंत्र है, उसके यहाँ किसी चीज़ की कमी नहीं। वह महान और अपार सामर्थ्य व शक्ति का स्वामी है। किसी का विद्रोह उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। दान व प्रदान से उसके यहाँ कोई कमी नहीं होती। वह अपने आप बड़ाई और श्रेष्ठता का अधिकारी है। उसकी महानता और श्रेष्ठता किसी के मानने, न मानने पर कदापि अवलम्बित नहीं है। यदि कोई उसे मानने से इनकार करता है तो इससे उसकी पूर्णता एवं सौन्दर्य में कोई अन्तर नहीं आ सकता।
2. यहाँ जिस शब्द का अनुवाद निरपेक्ष व सर्वाधार किया गया है वह 'समद' शब्द है। समद का मौलिक अर्थ चट्टान होता है। शत्रु के आक्रमण के अवसर पर चट्टान की पनाह ली जाती थी। ज़बूर (Psalms) आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी अल्लाह को "चट्टान" और "मदद की चट्टान" कहा गया है। उदाहरणार्थ देखिए ज़बूर 18 : 2; 62 : 26; 94 : 22। ज़बूर के ये वाक्य कितने सुन्दर हैं : "मेरी चट्टान और मेरा क़िला (दुर्ग) तू है। ऐ मेरे प्रभु ! मुझे दुष्ट के हाथ से, कुटिल और निर्मम मनुष्य के हाथ से छुड़ा। क्योंकि ऐ प्रभुवर, प्रभु तू ही मेरी आशा है" (ज़बूर 71 : 3-4)।

   उस नायक अथवा सरदार को भी 'समद' कहते हैं जिसके ऊपर कोई और सरदार न हो। अपनी आवश्यकताओं को लेकर जिसकी ओर सब दौड़ते हों और वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कहीं न जाता हो। अल्लाह को 'समद' कहने का अर्थ यह है कि वह निरपेक्ष है, दूसरे सब उसी के आश्रित और उपजीवी हैं। उसे किसी सहायक की आवश्यकता नहीं, परन्तु वह स्वयं सबका सहायक, आश्रयदाता और आधार है। मनुष्य की निगाह उठनी चाहिए तो केवल उसी की ओर उठनी चाहिए, पुकारना चाहिए तो उसे ही और दौड़ना चाहिए तो उसी की ओर।
3. अर्थात कुछ करने के लिए वह साधन एवं सामग्री का मुहताज नहीं। कोई भी काम उसके लिए मुश्किल नहीं। वह सर्वशक्तिमान है। जो बात भी कह दे वह हो जाती है (दे० क़ुरआन, 2 : 116, 117; 3 : 6)। कार्य-कारण की शृंखला आदि को उसके आदेश की प्रतीक्षा होती है, उसे किसी की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। हर चीज़ का अन्तिम कारण वह स्वयं है।

देगा।[1]

—अहमद, तबरानी

11. हज़रत अदी बिन हातिम (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक भाषण-कर्त्ता ने नबी (सल्ल०) के सामने भाषण दिया। उसने (भाषण देते हुए) कहा : जो अल्लाह और उसके रसूल का आज्ञापालन करेगा वह सीधे मार्ग पर रहा और जिसने उन दोनों की अवज्ञा की. . . . इसपर आपने कहा : खड़ा हो जा या चला जा। तू बहुत बुरा भाषणकर्त्ता है।[2]

12. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें कोई व्यक्ति (अपने ग़ुलाम या लौंडी को) मेरा ग़ुलाम और मेरी लौंडी न कहे, तुम सब अल्लाह के ग़ुलाम हो और तुम्हारी सारी स्त्रियाँ अल्लाह की लौंडियाँ (दासियाँ) हैं—बल्कि यूँ कहे मेरा सेवक और मेरी सेविका और मेरा लड़का और मेरी लड़की। और न कोई ग़ुलाम (अपने स्वामी को) मेरा रब (स्वामी) कहे बल्कि मेरा सरदार कहे।[3]

—मुसलिम

13. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल

---

1. अर्थात उसकी महानता और उसके गौरव का हर समय ध्यान रखो, तुम्हारे सिर सदैव उसके आगे झुके हुए हों। अपने जीवन में सदा उसके आदेशों का ध्यान रखो। वह भी तुम्हारी ग़लतियों को क्षमा करेगा और तुमपर उसकी दया-दृष्टि बनी रहेगी।
2. 'इन दोनों की अवज्ञा की' अर्थात अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा की। भाषणकर्त्ता ने अल्लाह और रसूल को एक ही सर्वनाम में जोड़ दिया। इसमें एक प्रकार की समानता का आभास होता है। नबी (सल्ल०) इसको सहन न कर सके कि अल्लाह की महानता के प्रति कोई तनिक भी असावधानी से काम ले। आपने भाषण देनेवाले को सख़्ती से टोका कि वह अल्लाह की बड़ाई और उसकी प्रतिष्ठा का पूरा-पूरा ध्यान रखे। मुसलिम की एक हदीस है कि इस अवसर पर आपने कहा : "तू बुरा भाषणकर्त्ता है, तुझे यूँ कहना चाहिए था कि जो अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा करे।" अर्थात तुझे अल्लाह और रसूल का अलग-अलग ज़िक्र करना चाहिए था। तौहीद (एकेश्वरवाद) और अल्लाह की महानता यदि पूर्ण रूप से हृदय में जगह पा ले तो सर्वनाम का इस प्रकार से प्रयोग क्षमा योग्य समझा जा सकता है, परन्तु कभी-कभी भाषणकर्त्ता और श्रोताओं की स्थिति और उनकी मनोवृत्ति ऐसी होती है कि आवश्यक होता है कि साधारण भूल-चूक पर भी चुप न रहा जाए।
3. मतलब यह है कि मनुष्य को सदा अपनी दासता और अल्लाह की प्रभुता एवं महानता को ध्यान में रखना चाहिए। कोई ऐसी बात कदापि नहीं कहनी चाहिए जो बन्दे को शोभा न देती हो या जो अल्लाह की महानता और प्रभुता की अनुभूति से रहित हो।

सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह कहता है : श्रेष्ठता मेरी चादर है और महानता मेरा तहबंद है। जो व्यक्ति इन दोनों में से किसी एक में मुझसे झगड़ेगा मैं उसे (जहन्नम की) आग में दाख़िल करूँगा। एक रिवायत में है कि मैं उसे (जहन्नम की) आग में फेंक दूँगा।[1] —मुसलिम

14. अब्दुल्लाह इब्न अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : आदम के बेटों (मनुष्य) के समस्त हृदय कृपाशील ईश्वर की दो उँगलियों के बीच एक हृदय की तरह हैं। वह जिस प्रकार चाहता है उन्हें फेरता रहता है। इसके बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ऐ अल्लाह, हृदयों के फेरनेवाले ! हमारे हृदयों को अपने आज्ञापालन की ओर फेर दे।[2] —मुसलिम

---

1. एक रिवायत में "महानता मेरा तहबंद है" के स्थान पर "इज़्ज़त मेरा तहबंद है" के शब्द आए हैं। हदीस का अर्थ यह है कि जिस प्रकार चादर और तहबंद मनुष्य के वस्त्र होते हैं, यह कोई पसन्द नहीं कर सकता कि कोई व्यक्ति उसके वस्त्र को उससे छीन ले। इस तरह महानता एवं श्रेष्ठता और गौरव एवं प्रतिष्ठा अल्लाह के निजी वस्त्र के समान हैं। जो व्यक्ति संसार में अपनी बड़ाई और इज़्ज़त या गौरव का दावेदार है वह वास्तव में अपनी वास्तविकता को भूलकर अपने को ईश्वरत्व का अधिकारी समझता है। वह कदाचित इस बात से अनभिज्ञ है कि बड़ाई और महानता केवल अल्लाह के लिए है। बन्दे को जो चीज़ शोभा देती है वह दासता और विनयभाव है। अभिमान, अहंकार और अपने बड़े होने का घमण्ड मानव के लिए घातक ही सिद्ध होता है।
2. मनुष्य के बाह्य अस्तित्व ही पर नहीं, उसके अन्तर, उसकी हृदयस्थिति और आंतरिक भावों पर भी अल्लाह का पूर्ण रूप से अधिकार है। वह जिस ओर चाहता है मनुष्य के दिल को फेर देता है। दुर्भाग्य है उन लोगों का जिनके दिल गुनाह और ज़ुल्म और सरकशी की ओर झुके हुए हों, जिनके दिल में भलाई और नेकी के लिए कोई जगह न हो। और भाग्यवान हैं वे लोग जिनके दिल अल्लाह के आज्ञापालन और उसकी दासता की ओर झुके हुए हों। अल्लाह उन्हीं लोगों को अपने आज्ञापालन, दासता और प्रेम का सुअवसर प्रदान करता है जो वास्तव में इसके इच्छुक होते हैं। वे लोग जिनको सत्य-असत्य, सुन्दर-असुन्दर और भलाई-बुराई की कोई चिन्ता नहीं, तो अल्लाह को भी ऐसे लोगों की कोई परवाह नहीं होती। वह ऐसे लोगों को विनाश के लिए छोड़ देता है। यह प्रार्थना कि अल्लाह! हमारे दिलों को अपने आज्ञापालन और दासता की ओर फेर, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि बन्दा उस मार्ग पर चलना चाहता है जो अल्लाह को प्रिय है। ऐसे लोगों को अल्लाह अवश्य अपनी प्रसन्नता के मार्ग पर चलने का सौभाग्य प्रदान करता है।

ईश-आत्माभिमान

1. हज़रत मुग़ीरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि सअ्द बिन उबादा (रज़ि०) कहा कि यदि मैं किसी व्यक्ति को अपनी स्त्री के साथ (अनुचित दशा में) दे लूँ तो तलवार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँ। यह बात अल्लाह के रसू (सल्ल०) तक पहुँची तो आपने कहा : क्या तुम सअ्द के आत्मसम्मान प आश्चर्य करते हो? अल्लाह की क़सम मैं उनसे बढ़कर आत्माभिमानी हूँ। औ अल्लाह मुझसे बढ़कर आत्माभिमानी है। इसी लिए उसने समस्त अश्लील औ निर्लज्जता की बातों को, चाहे वे खुली हों या छिपी, अवैध कर दिया।[1] इस प्रकार अल्लाह से अधिक यह बात किसी को प्रिय नहीं कि हुज्जत पूरी हो, इस लिए उसने (जहन्नम से) डरानेवाले और (जन्नत की) शुभ सूचना देनेवाले (नबं भेजे।[2] और अल्लाह से बढ़कर प्रशंसा भी किसी को प्रिय नहीं इसी लिए उस (इसपर) जन्नत का वादा किया है।[3] —बुखा

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसू (सल्ल०) ने कहा : बरकतवाला सर्वोच्च अल्लाह आत्माभिमान करता है औ अल्लाह का आत्माभिमान यह है कि कोई ईमानवाला ऐसा कर्म करे जि अल्लाह ने अवैध किया हो (वह अल्लाह को बुरा मालूम होता है)। —बुख़ा

3. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल

---

1. जिस प्रकार मनुष्य की ग़ैरत और उसके आत्माभिमान को यह असह्य है कि को व्यक्ति उसकी स्त्री पर हाथ डाले और उसकी पत्नी में उसका सहभागी हो, इसी प्रक अल्लाह की ग़ैरत और उसकी आत्म-प्रतिष्ठा को भी यह असह्य है कि उसके बन्दे ऐ कर्म करें जो बेग़ैरती और निर्लज्जता के कर्म हैं। इसी लिए अल्लाह ने खुले-छि समस्त बुरे और अश्लीलता के कामों को अवैध कर दिया है। ज़िना और व्यभिचार त तरह अल्लाह को यह बात भी अप्रिय है कि कोई उसकी बन्दगी, उपासना आदि किसी और को उसका सहभागी बनाए। अल्लाह अत्यन्त आत्माभिमानी है; वह शि जैसे घृणित कर्म को कभी सहन नहीं कर सकता।
2. अर्थात अल्लाह को यह बात पसन्द नहीं है कि उसके बन्दे अनजाने में उसके प्रकोप भागी हों। इसी कारण उसने नबियों को भेजा ताकि वे लोगों को सूचित कर दें उन्हें क्या चीज़ अपनानी है और किस चीज़ से उन्हें बचना है।
3. अर्थात अल्लाह को यह बात बहुत ही प्रिय है कि उसके बन्दे उसकी हम्द और उस प्रशंसा एवं गुणगान में लगे रहें। उसकी हम्द और गुणगान ही जीवन का अभिप्रा और प्राप्ति है और इसी पर जन्नत का वादा भी किया गया है।

। कहा : ऐ मुहम्मद के समुदायवालो ! अल्लाह की क़सम अल्लाह से अधिक कोई इस बात की ग़ैरत (लज्जा, आत्माभिमान) नहीं रखता कि उसका ग़ुलाम या उसकी लौंडी (दासी) ज़िना (व्यभिचार) करे ।[1] —बुख़ारी

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह कहता है : "मैं समस्त सहभागियों में सबसे बढ़कर शिर्क से निरपेक्ष हूँ। जो व्यक्ति कोई कर्म करता और उसमें मेरे साथ किसी और को भी साझी कर लेता है, तो मैं उसे और उसके शिर्क को छोड़कर अलग हो जाता हूँ।" एक रिवायत में है कि मैं ऐसे कर्म से विरक्त हूँ, वह कर्म उसी के लिए है जिसके लिए उसने किया है ।[2] —मुसलिम

---

1. अर्थात ज़िना (व्यभिचार) और अवैध कर्मों में लिप्त होना अल्लाह की ग़ैरत को अत्यन्त अप्रिय है।
2. अर्थात अल्लाह की ग़ैरत (आत्माभिमान) इसको कभी पसन्द नहीं कर सकती कि उसके साथ किसी को शरीक किया जाए जबकि कोई उसके बराबर का नहीं है। जो भी है उसक बन्दा और उसका पैदा किया उपजीवी है। फिर किसी भी हैसियत से कोई उसका सहभागी कैसे हो सकता है। अल्लाह को अपने बन्दों और सेवकों से निर्लिप्त और शुद्ध बन्दगी और सेवा अभीष्ट है। जिस इबादत और उपासना में शिर्क मिला हुआ हो या जिस कर्म में अल्लाह के अतिरिक्त किसी दूसरे को प्रसन्न करना अभीष्ट हो, उसे अल्लाह के यहाँ कभी भी स्वीकृति प्राप्त नहीं हो सकती। कुरआन में (सूरा अन-नूर, आयत 3) 'शिर्क' करनेवाले पुरुषों और स्त्रियों और ज़िना करनेवाले पुरुषों और स्त्रियों का उल्लेख एक साथ किया गया है। तौरात और इनजील में शिर्क को स्पष्ट शब्दों में विभिन्न स्थानों पर ज़िना और व्यभिचार कहा गया है। उदाहरणार्थ देखिए : निर्गमन (Ex.) 20 : 3-7; 34 : 14-18, लैव्यव्यवस्था (Lev.) 20 : 5-8, व्यवस्था विवरण (Deut.) 5 : 8-10, यसइयाह (Isaih) 57 : 3-9, यरमियाह (Jermiah) 2 : 5-28, 3 : 1-9। शिर्क और ज़िना में बड़ी समानता पाई जाती है। शिर्क भी ज़िना (व्यभिचार) ही की तरह अत्यन्त घृणित कर्म है। इसी लिए कुरआन में शिर्क को रिज्स अर्थात नापाकी और मुशरिक को नजिस (नापाक व अशुद्ध) कहा गया है।

   शिर्क करनेवाला उस उच्च और आदरणीय स्थान से, जो अल्लाह ने मनुष्य को प्रदान किया है, गिर जाता है। उसकी शिक्षाप्रद दशा कुरआन के शब्दों में यह होती है : "जो कोई अल्लाह के साथ शिर्क करे तो मानो वह आकाश से गिर पड़ा फिर चाहे चिड़ियाँ उसे उचक ले जाएँ या वायु उसे दूरवर्ती स्थान पर (ले जाकर) फेंक दे।"

   — कुरआन, 22 : 31

5. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह केवल उस कर्म को स्वीकार करता है जो केवल उसी के लिए हो और जिसके द्वारा उसकी प्रसन्नता चाही गई हो।

—अबू दाऊद, नसई

6. अता बिन यसार से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा ऐ अल्लाह! मेरी क़ब्र को बुत न बनने देना कि उसकी पूजा की जाने लगे।[1] अल्लाह का प्रकोप उन लोगों पर भड़क उठा है जिन्होंने अपने नबियों की क़ब्रों को सजदागाह बना डाला।[2]

—मालिक (मुरसल रूप में)

7. हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि जिसने अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की क़सम खाई उसने शिर्क किया।[3]

—तिरमिज़ी

---

1. अर्थात् ऐसा न हो कि मेरे बाद लोग मेरी क़ब्र की पूजा करने में लग जाएँ।
2. इबादत और पूजा अल्लाह के सिवा किसी की भी वैध नहीं है। यह अल्लाह ही का हक़ है कि उसे अपना इलाह (पूज्य) बनाया जाए और उसकी पूजा और इबादत की जाए। जो व्यक्ति अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की उपासना और इबादत करता है वह वास्तव में अल्लाह की ग़ैरत (आत्माभिमान) को चुनौती देता है। ऐसा व्यक्ति अल्लाह के प्रकोप से कैसे बच सकता है। पिछली जातियाँ जब शिर्क (बहुदेववाद) में ग्रस्त हुईं और उन्होंने अल्लाह को छोड़कर अपने नबियों को अपना पूज्य और उनकी क़ब्रों को सजदागाह (पूजास्थल) बना लिया तो फिर वे अल्लाह के प्रकोप से न बच सकीं।
3. क़सम उसकी खाई जाती है जिसका दिल में असाधारण आदर, सम्मान और जिसकी महानता की अनुभूति हो। अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की क़सम खाने का अर्थ यह है आदमी अपने व्यवहार से उसे अल्लाह के बराबर स्थान देना चाहता है। इससे बढ़कर अत्याचार क्या हो सकता है। क़सम खाने की आदत को पसन्द नहीं किया गया है। बार-बार और बिना किसी विशेष आवश्यकता के क़सम खाकर मनुष्य क़सम और जिसकी क़सम खाता है उसकी प्रतिष्ठा को घटाता है। यदि किसी कारण क़सम खानी ही पड़े तो मनुष्य को अल्लाह और उसके गुण की क़सम खानी चाहिए, किसी और की क़सम कदापि न खानी चाहिए। मक्का के लोगों की विशेष रूप से क़ुरैश वंश के लोगों की आदत थी, वे अपने पूर्वजों की क़समें खाया करते थे। नबी (सल्ल०) ने इससे रोका।

8. हज़रत अबू सईद (रज़ि०) और हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि अल्लाह कहता है बड़ाई एवं श्रेष्ठता मेरी चादर है और इज़्ज़त मेरा तहबंद है। जो व्यक्ति इनमें से कुछ छीनना चाहेगा, मैं उसे यातना दूँगा।[1] —मुसलिम, अबू दाऊद

9. हज़रत जाबिर बिन अतीक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कुछ ग़ैरत (आत्माभिमान) सर्वोच्च अल्लाह को प्रिय है और कुछ सर्वोच्च अल्लाह को प्रिय नहीं है। जो ग़ैरत अल्लाह को प्रिय है वह सन्देह के अवसर की ग़ैरत है।[2] और जो ग़ैरत अल्लाह को प्रिय नहीं वह संदेह रहित अवसर की ग़ैरत है।[3] और कुछ गर्व अल्लाह को प्रिय नहीं और कुछ गर्व सर्वोच्च अल्लाह को प्रिय है, जो गर्व अल्लाह को प्रिय है वह मनुष्य का संग्राम के अवसर का गर्व है और सदक़ा (दान) करने के समय का गर्व है।[4] और जो गर्व सर्वोच्च अल्लाह को

---

1. मतलब यह है कि इज़्ज़त, बड़ाई और महानता वास्तव में अल्लाह ही के लिए है। बन्दे को जो चीज़ शोभा देती है वह बन्दगी और विनय-भाव है न कि झूठी बड़ाई और प्रतिष्ठा का दावा। ऐसे व्यक्ति के लिए अल्लाह के यहाँ अपमानजनक दण्ड है ताकि वह अपने अहंकार का मज़ा चख ले।
2. अर्थात जहाँ बदकारी और व्यभिचार का सन्देह या शंका हो वहाँ अवश्य आदमी को ग़ैरत और आत्म-प्रतिष्ठा का ख़याल होना चाहिए। ऐसी ग़ैरत अल्लाह को बहुत प्रिय है इसलिए कि वह स्वयं ग़ैरतवाला है।
3. अर्थात जहाँ किसी बदकारी या किसी अश्लील कर्म का सन्देह या शंका न हो वहाँ अपने ग़ैरतदार होने का अकारण परिचय देने लगना अशोभनीय और सामाजिक नियम व लोक व्यवहार के प्रतिकूल है, इसलिए उसे अल्लाह कभी पसन्द नहीं कर सकता।
4. सत्य-असत्य के युद्ध के अवसर पर यदि कोई सत्य के लिए लड़नेवाला गर्व करता है वह वास्तव में अल्लाह ही के लिए होता है। इससे धर्म-योद्धाओं का साहस बढ़ता और शत्रु पर उनका रोब छा जाता है। सदक़ा के समय का गर्व यदि वह गर्व अल्लाह के लिए है, मनुष्य को विशाल-हृदय बनाता है और उसे तंगदिली से बचाता है। इससे दूसरों में भी सदक़ा करने का जोश उभरता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि गर्व की चीज़ यदि है तो वह शत्रु के मुक़ाबले में वीरता और दृढ़ता का प्रदर्शन और अल्लाह के मार्ग में अपना माल ख़र्च करना या इसी तरह के दूसरे सत्कर्म। ऐसे कर्म जिनके पीछे स्वार्थ के अतिरिक्त कोई उच्च भावना काम न कर रही हो, उनपर गर्व करने के बदले मनुष्य को लज्जित होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो इसे अज्ञान और निकृष्ट अभिरुचि ही का फल समझना चाहिए।

प्रिय नहीं वह उसका ज़ुल्म व सरकशी और बड़ाई में गर्व करना है।

—अबू दाऊद, नसई

अल्लाह का हक़

1. हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) कहते हैं कि मैं नबी (सल्ल०) के पीछे एक सवारी पर बैठा हुआ था और मेरे-आपके बीच में कजावा का केवल पिछला भाग था। आपने कहा : ऐ मआज़ बिन जबल! मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! मैं आपकी सेवा के लिए बारम्बार हाज़िर हूँ। फिर कुछ देर चले, फिर कहा : ऐ मआज़ बिन जबल! मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! मैं आपकी सेवा के लिए बारम्बार हाज़िर हूँ। फिर कुछ देर चले, फिर कहा : ऐ मआज़ बिन जबल! मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! मैं आपकी सेवा के लिए बारम्बार हाज़िर हूँ। आपने कहा : क्या तुम जानते हो कि बन्दों पर प्रतापवान तेजोमय अल्लाह का क्या हक़ है? मैंने कहा : अल्लाह और उसका रसूल अधिक जानते हैं। आपने कहा : अल्लाह का हक़ बन्दों पर यह है कि वे उसकी इबादत करें और उसके साथ किसी चीज़ को शरीक न करें। फिर कुछ चले, फिर कहा : ऐ मआज़ बिन जबल! मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! मैं सेवा में हाज़िर हूँ। आपने कहा : क्या तुम जानते हो कि बन्दों का अल्लाह पर क्या हक़ है, जबकि वे ऐसा कर दें? मैंने कहा : अल्लाह और उसका रसूल अधिक जानते हैं। कहा : यह कि वह उन्हें यातना न दे।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

---

1. हज़रत मआज़ (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) ने तीन बार इसलिए पुकारा ताकि वे पूर्ण रूप से ध्यान देकर आपकी बातें सुनें। आपने जो बातें बताईं वे ऐसी ही हैं कि उन्हें ध्यान से सुनकर हृदयंगम किया जाए।

   यह हदीस बताती है कि अल्लाह का यह हक़ है कि लोग उसकी बन्दगी करें और किसी को उसका सहभागी न बनाएँ। केवल एक अल्लाह के होकर रहें। जब वे अल्लाह ही के दास और ग़ुलाम हैं तो फिर उन्हें अपना सम्पूर्ण जीवन अल्लाह ही के आज्ञापालन में व्यतीत करना चाहिए। न उन्हें अपनी तुच्छ इच्छाओं का दास होना चाहिए और न अपने जैसे दूसरे मनुष्यों की दासता स्वीकार करनी चाहिए और न ही किसी देवी-देवता के आगे अपना सिर झुकाना चाहिए। वे एक अल्लाह के बन्दे हैं, उन्हें एक ही की बन्दगी करनी चाहिए। अल्लाह की बन्दगी और ईश्वरीय इच्छा का अनुपालन हमारी प्रकृति की माँग है। अपनी प्रकृति की माँग की पूर्ति ही से वास्तविक आनन्द की प्राप्ति भी संभव है। इस प्रकार अल्लाह की बन्दगी और दासता कोई

2. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह (क़ियामत के दिन) उस जहन्नमी (नरकगामी) से जो सबसे कम यातना में होगा पूछेगा : क्या इस यातना से बचने के लिए तेरे हाथ में धरती की समस्त चीज़ें होतीं, तो दे देता? वह कहेगा : हाँ (मेरे पास जो कुछ भी होता यातना से छुटकारा पाने के लिए दे डालता)। अल्लाह कहेगा : मैंने तो तुझसे बहुत हल्की चीज़ चाही थी जबकि तू आदम की पीठ में था, वह यह कि मेरे साथ किसी चीज़ को शरीक न करना, परन्तु तू न माना और (मेरे साथ) 'शिर्क'[1] किया।

—बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सर्वोच्च अल्लाह कहता है कि मेरा और जिन्न व मनुष्य का मामला एक भारी मामला बन चुका है। पैदा मैं करता हूँ और वह इबादत (दासता एवं उपासना) मेरे सिवा दूसरे की करता है। रोज़ी मैं देता हूँ और वह कृतज्ञता

रसहीन व्यस्तता नहीं रहती बल्कि वह मनुष्य के लिए परम सुख, शान्ति एवं आनन्द का विषय सिद्ध होती है।

बन्दा यदि अल्लाह के हक़ को नहीं भूलता तो उसका अल्लाह भी उसे विनष्ट नहीं होने देता। वह उसे शाश्वत विनाश और जहन्नम की यातनाओं से अवश्य ही बचा लेगा जो उन लोगों के लिए तैयार की गई हैं जो अल्लाह के सरकश और अवज्ञाकारी हैं। किन्तु यदि वह शिर्क या कुफ़्र में ग्रस्त होता है तो उसे उसके दुष्परिणाम से कोई नहीं बचा सकता। एक अन्य हदीस में है : जिसकी मृत्यु इस हालत में आए कि वह ख़ुदा के साथ किसी चीज़ को साझी ठहराता हो, वह जहन्नम में गया।

(मुसलिम, इब्न मसऊद रज़ि० द्वारा उल्लिखित)

रिवायत से यह भी मालूम होता है कि हज़रत मआज़ (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से पूछा था कि क्या मैं लोगों को इसकी शुभ-सूचना दे दूँ? आपने कहा : 'उनको शुभ-सूचना न दो क्योंकि वे इसी पर भरोसा कर बैठेंगे अर्थात लोग इस भ्रम में पड़ सकते हैं कि जहन्नम से बचने के लिए मुख से अल्लाह के एक होने को मान लेना काफ़ी है और उसके अनुकूल कर्म की आवश्यकता नहीं है।

1. अर्थात मैंने तुझसे एक ऐसी चीज़ माँगी थी जो बिलकुल स्वाभाविक और सहज थी। मैंने तुझसे चाहा था कि तू केवल मुझे अपना उपास्य और इलाह समझना और अपने जीवन में किसी को वह स्थान न देना जो स्थान केवल मेरा है। परन्तु तूने मेरी इच्छा और माँग की उपेक्षा करके विश्वासघात किया। मेरे साथ तू दूसरों की उपासना करने लगा और प्रभुता एवं ईश्वरत्व को विभाजनीय वस्तु बनाकर तूने घोर अन्याय किया।

मेरे सिवा दूसरे के आगे दिखलाता है।[1] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

4. हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह कहता है : ऐ आदम के बेटे! तीन बातें ऐसी हैं जिनमें से एक का सम्बन्ध तो केवल मेरे साथ है और एक का सम्बन्ध तेरे साथ है और एक बात ऐसी है जो मेरे और तेरे बीच समन्वित है। जिसका सम्बन्ध मुझसे है, वह यह है कि मेरी इबादत कर और मेरे साथ किसी चीज़ को शरीक न कर, जिस बात का सम्बन्ध तेरे साथ है वह यह है कि तू जो कर्म करे उसका मैं तुझे प्रतिदान दूँ और यदि मैं क्षमा कर दूँ तो मैं क्षमाशील और दयावन्त हूँ। और जो चीज़ मेरे और तेरे बीच समन्वित है वह यह है कि तेरा काम प्रार्थना करना और माँगना है और मेरा काम प्रार्थना को स्वीकार करना और देना है।[2] —तबरानी : अल-कबीर

5. हज़रत अबू ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कर्मों में, सर्वोच्च अल्लाह को, सबसे प्रिय वह प्रेम है जो अल्लाह के मार्ग में हो और वह द्वेष और बैर है जो अल्लाह के मार्ग में हो।[3] —अबू दाऊद

---

1. अर्थात यह कितनी विचित्र बात है कि लोगों को पैदा करनेवाला तो कोई और हो और वे इबादत और उपासना किसी और की करने लगें। रोज़ी तो उन्हें कोई दे रहा हो और वे कृतज्ञ किसी और के हों। आख़िर इससे बढ़कर अप्रिय और निकृष्ट बात और क्या हो सकती है!
2. मतलब यह है कि अल्लाह और उसके बन्दों के बीच जो सम्बन्ध एवं सम्पर्क है स्वभावतः अपेक्षित यही है कि बन्दे केवल उसी की इबादत और उपासना करें और किसी को उसका सहभागी न बनाएँ। वे अल्लाह ही को पुकारें और अपनी आवश्यकताओं के लिए उसी से प्रार्थनाएँ करें। और अल्लाह का काम यह है कि वह उनकी पुकार सुने, उनके विनयभाव को स्वीकार करे और उनकी प्रार्थनाओं को स्वीकृति प्रदान करे। यह लोगों की निकृष्टतम पथभ्रष्टता और विश्वासघात है कि वे अल्लाह का हक़ नहीं पहचानते और अपने सम्पूर्ण विनयभाव और दास्यभाव आदि मन की सुन्दरतम चेष्टाओं एवं अनुभूतियों को उनपर निछावर करते हैं जो वास्तव में इसके अधिकारी नहीं होते। वे अपनी आशाओं को उन झूठे प्रभुओं से सम्बद्ध रखते हैं जो स्वयं उनके अपने घड़े हुए होते हैं। जिनके हाथ में न लोगों की हानि होती है और न लाभ होता है। जो स्वयं उन्हीं की तरह विवश होते हैं।
3. अर्थात अल्लाह के बन्दे पर एक हक़ यह भी है कि उसका प्रेम और द्वेष व बैर-भाव

6. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब भी किसी बन्दे ने अल्लाह के लिए किसी बन्दे से प्रेम किया, उसने अपने प्रतापवान तेजोमय रब (पालनकर्त्ता प्रभु) का सम्मान और प्रतिष्ठा की।[1]

—अहमद

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह क़ियामत के दिन कहेगा : मेरे प्रताप के कारण परस्पर प्रेम करनेवाले कहाँ हैं, आज मैं उनपर अपनी छाया करूँगा, आज मेरी छाया के अतिरिक्त कोई छाया नहीं।[2]

—मुसलिम

8. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसने प्रेम किया अल्लाह के लिए, घृणा की अल्लाह के लिए, दिया अल्लाह के लिए और रोका अल्लाह के लिए, उसने ईमान को पूर्ण कर लिया।[3] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

केवल अल्लाह के लिए हो, वह जिससे प्रेम करे अल्लाह ही के लिए करे और यदि किसी से उसे बैर और घृणा हो तो इसका कारण कोई व्यक्तिगत कलह एवं शत्रुता न हो, बल्कि उसका बैर और उसकी शत्रुता भी अल्लाह ही के लिए हो।

1. अर्थात अल्लाह की बड़ाई और प्रताप को अपेक्षित यह होता है कि मनुष्य को अल्लाह के सत्कर्मी बन्दों से प्रेम और स्नेह हो।
2. अर्थात वे लोग कहाँ हैं जिन्होंने सांसारिक जीवन में मेरे हक़ को पहचाना। आज के दिन उन्हें उनकी वफ़ादारियों और सेवाओं का पूरा बदला दिया जाएगा। आज उन्हें मेरी छाया प्राप्त होगी। मेरी दयालुता की छाया के अतिरिक्त और दूसरी कोई छाया नहीं है। मेरे सिवा आज कहीं भी किसी को शरण नहीं मिल सकती। आज उन लोगों पर मेरी कृपा दृष्टि होगी संसार में जिनकी मित्रता का आधार केवल मेरा प्रताप और मेरी महानता थी। वे न स्वयं अपनी तुच्छ इच्छाओं के दास बने और न किसी चीज़ के उपासक थे, वे केवल मेरे उपासक थे। उन्हें जिस चीज़ ने परस्पर जोड़ा था वह मेरी प्रतिष्ठा और मेरी बड़ाई की अनुभूति थी। निर्लिप्त और सच्चा प्रेम वही है जो अल्लाह के लिए हो। अल्लाह पवित्रता की चरम सीमा है। जिस मित्रता में अल्लाह की इच्छा, उसकी प्रतिष्ठा और उसकी महानता का ध्यान न रखा गया हो वास्तविकता की दृष्टि में उसका कोई मूल्य और मान्यता नहीं है।
3. अर्थात मनुष्य के ईमान की माँग है कि उसका सब कुछ अल्लाह के लिए हो जाए और उसके समस्त कार्य ईश्वरीय इच्छा के अधीन हो जाएँ। वह किसी से मित्रता का सम्बन्ध जोड़े तो अल्लाह के लिए जोड़े। किसी से उसका बैर हो तो उसके पीछे भी अल्लाह को प्रसन्न करने की पवित्र भावना ही काम कर रही हो। किसी को कुछ दे तो

9. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हमारे पास आए और कहा : क्या तुम जानते हो कि कौन-सा कर्म अल्लाह को सबसे अधिक प्रिय है ? कहनेवाले ने कहा : नमाज़ और ज़कात और कहनेवाले ने कहा : जिहाद। नबी (सल्ल०) ने कहा : सर्वोच्च अल्लाह की दृष्टि में सबसे प्रिय कर्म है अल्लाह के लिए प्रेम करना और अल्लाह के लिए द्वेष व बैर रखना।[1] —अहमद व अबू दाऊद

10. हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि बरकतवाले सर्वोच्च अल्लाह का कथन है : मेरे लिए परस्पर प्रेम करनेवालों, और मेरे लिए एक-दूसरे के पास बैठनेवालों, और मेरे लिए एक-दूसरे से मिलनेवालों और मेरे लिए एक-दूसरे पर उदारतापूर्वक ख़र्च करनेवालों के लिए मेरा प्रेम आवश्यक हो गया।[2] —मुवत्ता : इमाम मालिक

11. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इस आयत "वह इस योग्य है कि उसका डर रखा जाए और इस योग्य है कि मोक्ष प्रदान करे"—के बारे में कहा : तुम्हारे रब का कथन है कि मैं इस योग्य हूँ कि मेरा डर रखा जाए और मेरे साथ मेरे ग़ैर को शरीक न किया जाए। और मैं इस योग्य हूँ कि जो व्यक्ति इससे बचा कि वह किसी को मेरा सहभागी बनाए मैं उसे मोक्ष प्रदान कर दूँ।[3] —इब्ने माजा

अल्लाह के लिए दे और न दे तो यह न देना और हाथ रोक लेना भी अल्लाह के लिए हो। जब तक यह बात पैदा न हो मनुष्य का ईमान पूर्ण नहीं होता और न वह सत्य और न्याय पर स्थिर रह सकता है। मनुष्य का सबकुछ यदि अल्लाह की इच्छा के अधीन हो जाए तो वह न तो किसी पर अत्याचार कर सकता है और न किसी के साथ अन्याय की नीति अपना सकता है और न ही कभी सत्य एवं न्याय की माँग की उपेक्षा कर सकता है। तिरमिज़ी में यह हदीस हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है और उसके अन्तिम शब्द ये हैं : "उसने अपने ईमान को पूर्ण कर लिया।"

1. अबू दाऊद में केवल अन्त के शब्दों का उल्लेख हुआ है।
2. अर्थात जो लोग मेरी ही प्रसन्नता और मुखाकांक्षा के लिए परस्पर मिलते-जुलते और एक-दूसरे पर अपना माल ख़र्च करते हैं, मैं उनसे अवश्य प्रेम करता हूँ। मेरे ये सेवक मेरी कृपादृष्टि से कभी वंचित नहीं रह सकते।
3. अर्थात जिसने मेरे हक़ को पहचाना, मुझसे डरता रहा और कुफ़्र व शिर्क की गन्दगियों से अपने आपको बचाए रखा, मैं उसे क्षमा करूँगा और जहन्नम की यातनाओं से बचा लूँगा।

12. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह क़ियामत के दिन कहेगा : मैंने तुम्हें हुक्म दिया था तो तुमने उन आदेशों को अकारथ किया जो मैंने तुम्हें दिए थे और अपने कुल और गोत्र को ऊपर उठाया। आज मैं अपनी श्रेणी ऊँची करूँगा और तुम्हारी वंश-श्रेणी को अकारथ करूँगा। कहाँ हैं (अल्लाह का) डर रखनेवाले? निस्संदेह अल्लाह की दृष्टि में तुममें सबसे अधिक प्रतिष्ठित वह है जो तुममें सबसे अधिक (अल्लाह का) डर रखनेवाला हो।[1] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

13. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बूढ़े मुसलिम की प्रतिष्ठा एवं सम्मान, उस क़ुरआन वाहक की प्रतिष्ठा जो क़ुरआन (के शब्दों व अर्थों) में अत्युक्ति और ज़्यादती करनेवाला न हो और न्यायशील सुलतान (राज्याधिकारी) की प्रतिष्ठा अल्लाह की प्रतिष्ठा में से है।[2] —अबू दाऊद, बैहक़ी : शोबुल ईमान

14. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : (जहन्नम की) आग में दुर्भागी के अतिरिक्त और कोई न जाएगा। कहा गया : ऐ अल्लाह के रसूल! दुर्भागी कौन होगा? कहा : जो

---

1. अर्थात आज मैं तुम्हारे सारे नस्ली और जाति एवं गोत्र सम्बन्धी गर्व को धूल में मिला दूँगा जिसके कारण तुम धरती पर अकड़ते फिरते थे और दूसरों को तुच्छ समझते और उनपर अत्याचार करते रहते थे। आज तुम्हें ज्ञात हो जाएगा कि अल्लाह की दृष्टि में सबसे बढ़कर इज़्ज़तवाला और सम्मानित व्यक्ति वही है जो सबसे अधिक अल्लाह के हक़ और अधिकार को पहचानता हो और अपने मन में उसका डर रखता हो।
2. मालूम हुआ कि जो व्यक्ति भी आदर-सत्कार करने योग्य हो उसका आदर और सत्कार करना हमारे लिए आवश्यक है। जिसके मन में इन लोगों का आदर और सम्मान नहीं, जो वास्तव में आदर व प्रतिष्ठा का अधिकारी है, वह जीवन के मौलिक मूल्यों (Values) और मान्यताओं से अनभिज्ञ है। उसका जीवन अभी उस अनुभूति और आत्मिक दृष्टि से रहित है जिसके कारण मनुष्य अल्लाह की प्रतिष्ठा करता और उसके प्रताप एवं महानता के आगे अपने को झुका देता है। अल्लाह की प्रतिष्ठा एवं महानता की अनुमति से अपने हृदय को रिक्त न होने देना और आदरणीय व्यक्तियों का आदर करना वास्तविकता की दृष्टि से दो कृति नहीं है, बल्कि यह एक ही कृति है। चरित्र एवं आचरण की पूर्णता उसी समय संभव है जबकि उसमें किसी अवसर पर भी दोष न दीख पड़े।

अल्लाह के लिए कोई आज्ञापालन का कार्य न करे और उसके लिए कोई अवज्ञा का काम न छोड़े।
—इब्ने माजा

अल्लाह से प्रेम

1. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तीन चीज़ें हैं कि जिस व्यक्ति में वे हों उसे ईमान की मिठास प्राप्त होगी, यह कि अल्लाह और उसका रसूल उसे समस्त अतिरिक्त चीज़ों से बढ़कर प्रिय हों, वह जिस व्यक्ति से भी प्रेम करे अल्लाह ही के लिए प्रेम करे और कुफ़्र की ओर पलटना उसे उतना ही अप्रिय हो जितना अप्रिय उसे यह बात है कि उसको आग में डाल दिया जाए।[1]
—बुख़ारी, मुसलिम

---

1. एक रिवायत के शब्द हैं : "तीन चीज़ें ऐसी हैं कि जिस व्यक्ति में हों उसे ईमान की मिष्टता (मज़ा एवं आनन्द) प्राप्त होगा—यह कि अल्लाह और उसका रसूल उसे समस्त अतिरिक्त वस्तुओं से बढ़कर प्रिय हों। वह किसी से प्रेम करे तो अल्लाह के लिए और द्वेष करे तो अल्लाह के लिए, और यह कि बड़ी आग भड़काई जाए और वह उसमें गिरा दिया जाए तो वह उसे अल्लाह के साथ शिर्क करने के मुक़ाबले में ज़्यादा पसन्द हो। (बुख़ारी, मुसलिम)

अल्लाह का प्रेम वास्तव में ईमान की आवश्यक माँग है। क़ुरआन में कहा गया है, "और जो लोग ईमानवाले हैं। वे अल्लाह से अत्यन्त प्रेम करते हैं" (2 : 165)। एक दूसरी जगह कहा गया : "(ऐ नबी !) कह दो ; यदि तुम्हारे बाप, तुम्हारे बेटे, तुम्हारे भाई, तुम्हारी पत्नियाँ और तुम्हारे घराने के लोग और माल जो तुमने कमाए हैं और कारोबार जिसके ठप हो जाने का तुम्हें डर है और घर जिन्हें तुम पसन्द करते हो, तुम्हें अल्लाह और उसके रसूल और उसके मार्ग में जिहाद करने से अधिक प्रिय हैं तो प्रतीक्षा करो यहाँ तक कि अल्लाह अपना फ़ैसला तुम्हारे सामने ले आए और अल्लाह उन लोगों को राह नहीं दिखाता जो मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले हैं। (क़ुरआन, 9 : 24)

अल्लाह के अस्तित्व में विश्वास रखना और उसे सम्पूर्ण संसार का स्रष्टा, स्वामी, शासक, पूज्य और आराध्य मानना जीवन की किसी कटु वास्तविकता का इक़रार नहीं है, बल्कि यह इक़रार और स्वीकृति वास्तव में हमारे जीवन को अर्थमय बनाता और उसे वास्तविक आनन्द और जीवन के वास्तविक सौन्दर्य और सूक्ष्म आन्तरिक भावों से परिचित कराता है। ईमानवालों का कर्त्तव्य है कि वे अल्लाह से सबसे बढ़कर प्रेम करें। यह कोई अनिष्ठ एवं अप्रिय कर्त्तव्य नहीं है बल्कि यह एक वास्तविकता है कि अल्लाह सबसे बढ़कर अनुरक्ति का स्वामी है। प्रेम-भाव और मन की उमंगों को

2. हज़रत अब्दुर्रहमान बिन अबी क़ुराद (रज़ि०) कहते हैं कि एक दिन नबी (सल्ल०) ने वुज़ू किया। आपके साथी आपके वुज़ू के पानी को अपने शरीर से मलने लगे। नबी (सल्ल०) ने कहा : तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? उन्होंने कहा : अल्लाह और उसके रसूल के प्रेम के कारण। नबी (सल्ल०) ने कहा : जिसको यह पसन्द हो कि वह अल्लाह और उसके रसूल से प्रेम करे या अल्लाह और उसका रसूल उससे प्रेम करें; उसे चाहिए कि वह बातचीत करे तो सच बोले और जब उसके पास अमानत रखी जाए तो अमानत को अदा करे और जो कोई उसका पड़ोसी हो उसके साथ अच्छे प्रतिवास का व्यवहार करे।[1] —बैहक़ी

3. हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अबू ज़र (रज़ि०) से कहा : ऐ अबू ज़र! ईमान की कौन-सी शाखा सबसे सुदृढ़ है? उन्होंने कहा : अल्लाह और उसके रसूल अधिक जानते हैं। आपने कहा : अल्लाह के लिए परस्पर मिलना या सम्बन्ध रखना, अल्लाह के लिए प्रेम करना और अल्लाह के लिए द्वेष और बैर रखना।[2] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

केवल उसी के प्रति समर्पण में शान्ति एवं तृप्ति प्राप्त होती है। इसलिए संसार के दूसरे प्रेम-भाव उसके प्रेम के अधीन होने चाहिएँ, न कि उससे स्वतंत्र।

1. मतलब यह है कि अल्लाह और उसके रसूल से प्रेम करने के लिए यह भी आवश्यक है कि मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से उस स्वभाव और चरित्र का प्रदर्शन हो जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल को प्रिय है। वह सच्चा और अमानतदार हो और अपने पड़ोसियों के साथ उसका व्यवहार अच्छा हो। वह न अल्लाह के हक़ और उसके प्रति अपने दायित्व को भूले और न ही अल्लाह के बन्दों के हक़ की उपेक्षा करे। इंजील में भी कहा गया है : "तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और सारी बुद्धि से प्रेम रख। बड़ा और प्रथम आदेश तो यही है। और दूसरा इसके समान यह है कि तू अपने पड़ोसी से अपने बराबर प्रेम रख। इन्हीं दो आदेशों पर सम्पूर्ण 'तौरात' और 'नबियों' के 'सहीफ़े' (ग्रन्थ) आधारित हैं।"

(मत्ती 22 : 37-40)

एक दूसरी जगह कहा गया है : "तुम परमेश्वर अपने प्रभु से प्रेम रखो और उसके समस्त मार्गों पर चलो और उसके आदेशों को मानो और उससे लिपटे रहो।" (व्यवस्था विवरण Deut 11 : 22)। "अपने सम्पूर्ण मन और सारे प्राण से उसकी सेवा करो" (व्यवस्था विवरण 11 : 13)।

2. यूँ तो ईमान की माँग और उसके प्रतीक बहुत-से हैं, परन्तु इस सिलसिले की सबसे मौलिक चीज़ यह है कि मनुष्य की मित्रता हो या बैर, जो कुछ भी हो सब अल्लाह के

4. हज़रत अनस (रज़ि) कहते हैं कि एक आदमी नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित था, एक दूसरा व्यक्ति आया और बोला : ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे इससे प्रेम है। आपने कहा : क्या तुमने उसे बताया भी?[1] उसने कहा : नहीं आपने कहा : उसे बता दो। उसने उस व्यक्ति से मिलकर कहा : मैं तुमसे अल्लाह के लिए प्रेम करता हूँ। उसने कहा : जिसके लिए तुम मुझसे प्रेम करते हो वह भी तुमसे प्रेम करे।[2] —अबू दाऊद

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब अल्लाह किसी बन्दे से प्रेम करता है तो जिबरील को बुलाकर कहता है कि मैं अमुक व्यक्ति से प्रेम करता हूँ, तुम भी उससे प्रेम करो। फिर जिबरील भी उससे प्रेम करने लगते हैं। और आकाश में घोषणा कर देते हैं कि अल्लाह अमुक व्यक्ति से प्रेम करता है, तुम भी उससे प्रेम करो, तो आकाशवाले भी उससे प्रेम करने लगते हैं। फिर उसके लिए धरती (वालों के दिलों) में भी स्वीकृति रख दी जाती है। और जब अल्लाह को किसी बन्दे से द्वेष व बैर होता है तो जिबरील को बुलाकर कहता है कि मैं अमुक व्यक्ति से द्वेष व बैर करता हूँ, तुम भी उससे द्वेष

लिए हो। उसकी सारी कामनाएँ, अभिरुचियाँ और चेष्टाएँ अल्लाह ही के लिए हों। उसके सम्पूर्ण जीवन से जो चीज़ व्यक्त होती हो वह ईश-प्रेम और प्रभु-कामना के अतिरिक्त कुछ और न हो। अल्लाह की इच्छा और उसकी प्रसन्नता के विरुद्ध कुछ करना उसके लिए असंभव हो जाए। जो कार्य अल्लाह के लिए होगा वह अवश्य ही न्याय और सच्चाई पर आधारित होगा। जो मित्रता अल्लाह के लिए होगी वह अवश्य ही उन व्यक्तियों से होगी जो वास्तव में मित्र बनाने योग्य होंगे, जो सच्चे, नेक और अल्लाह से डरनेवाले होंगे। इसी प्रकार अल्लाह के लिए बैर और विरोध भी उन्हीं लोगों से होगा जो अल्लाह से फिरे हुए, सरकश और अत्याचारी होंगे। जो धरती में बिगाड़ पैदा करते तथा अल्लाह के बन्दों को सीधे मार्ग से भटकाते होंगे।

1. उस प्रेम-भाव और स्नेह से जो कोई व्यक्ति किसी के लिए अपने मन में पाता है उसको सूचित करने से मित्रता और प्रेम में और अधिक दृढ़ता और गहराई आ जाती है। दोनों में अत्यन्त अच्छे सम्बन्धों की स्थापना हो जाती है। लोगों में पारस्परिक अच्छे सम्बन्ध हों यह इस्लाम को अभीष्ट है। दीन के दूसरे उद्देश्यों की पूर्ति में भी इससे सहयोग मिलता है। एक दृढ़ और आदर्श समाज का निर्माण उसी समय संभव है जबकि उस समाज के व्यक्तियों में परस्पर एकात्मता और प्रेम पाया जाता हो।
2. अर्थात जिस तरह तुम मुझसे अल्लाह के लिए प्रेम करते हो, अल्लाह भी तुमसे प्रेम रखे। तुम्हारी गणना अल्लाह के प्रिय सेवकों में हो।

करो। फिर जिबरील भी उससे द्वेष करते हैं और आकाशवालों में घोषणा करते हैं कि अल्लाह अमुक व्यक्ति से द्वेष करता है, तुम भी उससे द्वेष करो। अत: वे भी उससे द्वेष करने लगते हैं। फिर उसके लिए धरती (वालों के हृदय) में द्वेष रख दिया जाता है।[1]

—मुसलिम

6. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक 'सरिय्या'[2] पर भेजा। जब वे अपने साथवालों को नमाज़ पढ़ाते तो उसे (सूरा) "क़ुलहु वल्लाहु अहद" पर समाप्त करते। जब वे लोग लौटे तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से उसका ज़िक्र किया। आपने कहा कि उनसे पूछो कि वे ऐसा किस लिए करते थे? जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा कि उसमें रहमान (कृपाशील ईश्वर) के गुण का उल्लेख हुआ है, उसका पढ़ना मुझे प्रिय है।[3] (यह सुनकर) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : उन्हें

---

1. मतलब यह है कि जो व्यक्ति अल्लाह को प्रिय होता है अल्लाह उसे आकाश और धरती सबमें प्रिय बना देता है। हज़रत जिबरील (अलै०) जैसे बड़े फ़रिश्ते भी उससे प्रेम करने लगते हैं। ऊपरी लोक में उसकी प्रियता की घोषणा कर दी जाती है। धरती पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। धरती में ऐसा व्यक्ति चमकते सितारे की तरह होता है। वह लोगों के मन को मोह लेता है। उसके बड़े से बड़े शत्रु भी उससे उसकी प्रियता को छीन नहीं सकते। जो लोग उसकी शत्रुता के तत्पर होते हैं उनके विरोध और शत्रुता के पीछे कोई उच्च भावना काम नहीं कर रही होती है। वे केवल अपनी नीचता और सांसारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वार्थवश उसका विरोध करते हैं। मन में वे भी उसकी बड़ाई स्वीकार करते हैं।

   इसके विपरीत जिस व्यक्ति से अल्लाह को उसकी सरकशी और उसके बुरे चरित्र और बुरे कर्म के कारण द्वेष या नफ़रत होती है वह सारे संसार की दृष्टि में घृणित हो जाता है। न जिबरील (अलै०) को उससे प्रेम होता है और न ही दूसरे फ़रिश्तों को उससे कोई लगाव हो सकता है। उसे धरती के रहनेवाले मनुष्यों का प्रेम और स्नेह भी प्राप्त नहीं होता। जो लोग उससे सम्बन्ध और सम्पर्क रखते हैं उनका यह सम्पर्क केवल दिखाने को होता है। वे अपने किसी लाभ और स्वार्थ के लिए उसके साथ होते हैं। उनके हृदय में उसके लिए कोई उच्च स्थान और श्रद्धा कदापि नहीं होती।
2. अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के समय की वे लड़ाइयाँ, जिनमें आप सम्मिलित न थे।
3. अर्थात 'क़ुलहु वल्लाहु' (सूरा अल-इख़लास) में कृपाशील ईश्वर (अर्थात् अल्लाह) के गुण और उसकी पूर्णता का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है जिसके कारण वह सूरा मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसी लिए नमाज़ में इसी सूरा पर समाप्त करता रहा।

बता दो कि सर्वोच्च अल्लाह उनसे प्रेम करता है।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह कहता है : जिसने मेरे मित्र से बैर किया मैं उससे युद्ध की घोषणा करता हूँ।[2] स्वयं मेरे निर्धारित किए हुए कर्म से बढ़कर प्रिय चीज़ दूसरी नहीं हो सकती जिसके द्वारा बन्दा मेरा सामीप्य प्राप्त करे।[3] मेरा बन्दा नफ़्लों

---

1. अर्थात उन्हें अल्लाह से प्रेम है। इस प्रेम के कारण उन्हें सूरा अल-इख़लास से विशेष लगाव है, तो उन्हें इसकी सूचना दे दो कि अल्लाह भी ऐसे व्यक्ति से प्रेम रखता है जो उससे प्रेम करता और उसे उसके गुणों के साथ याद करता है। किसी बन्दे के लिए इससे बढ़कर श्रेय की बात और क्या हो सकती है ?
2. अर्थात मेरे आज्ञाकारी और प्रिय सेवक से किसी की शत्रुता वास्तव में मुझसे शत्रुता और विद्रोह है। ऐसा व्यक्ति मुझसे लोहा ले रहा है। अल्लाह का आत्माभिमान इसे कभी सहन नहीं कर सकता। ऐसा व्यक्ति अन्त में मुँह की खाता है। क़ुरआन में इस तरह के प्रकोप का उल्लेख उन लोगों के लिए भी हुआ है जो ब्याज खाने से बाज़ न आएँ। कहा गया है : "ऐ ईमान लानेवालो ! अल्लाह का डर रखो और जो ब्याज (लोगों पर) बाक़ी रह गया है, उसे छोड़ दो यदि तुम ईमानवाले हो। यदि तुमने ऐसा न किया तो सावधान हो जाओ कि अल्लाह और उसके रसूल की ओर से तुम्हारे विरुद्ध युद्ध की घोषणा है। —क़ुरआन 2 : 278-279
3. अर्थात सबसे प्रिय कर्म वे हैं जिनको मैंने अपने बन्दों के लिए अनिवार्य किया है जिनके द्वारा बन्दों को मेरा सामीप्य प्राप्त होता है। मालूम हुआ कि अल्लाह ने हमारे लिए जो कर्म अनिवार्य किए हैं उनका वास्तविक ध्येय अल्लाह का सामीप्य प्राप्त करना ही है। मनुष्य के जीवन में इस सामीप्य का प्रदर्शन विभिन्न रूप और विभिन्न ढंग से होता है। अल्लाह के क़रीबी बन्दों को जहाँ एक ओर चरित्र की पवित्रता और कृत्य की महानता प्राप्त होती है वहीं उन्हें हृदय की वह मृदुलता, माधुर्य आनन्दमय वेदना और वह दिव्य शान्ति भी प्राप्त होती है जिसके मुक़ाबले में संसार का सारा सुख-वैभव तुच्छ है। उन्हें वह जीवन मिलता है जिसका वादा क़ुरआन के इन शब्दों में किया गया है : "जिस किसी ने अच्छा कर्म किया, पुरुष हो या स्त्री, यदि वह ईमान पर है तो हम उसे अवश्य अच्छा जीवन प्रदान करेंगे।" (16 : 97)

   उसके व्यक्तित्व की वह ज्योति एवं प्रकाशमान जीवन प्राप्त होता है जिसके बारे में कहा गया है : "क्या वह व्यक्ति जो मुरदा था, फिर हमने उसे जीवित किया और उसके लिए प्रकाश कर दिया जिसको लिए हुए वह लोगों के बीच चलता-फिरता है उस व्यक्ति की तरह हो सकता है जो अँधेरों में पड़ा हुआ हो, उनसे निकलनेवाला

धक शुभ कर्मों) के द्वारा मुझसे निकट होता रहता है यहाँ तक कि मैं उससे
करने लगता हूँ। और जब मैं उससे प्रेम करता हूँ तो मैं उसका कान बन
ा हूँ जिससे वह सुनता है, और उसकी आँख बन जाता हूँ जिससे वह देखता
गैर उसका हाथ बन जाता हूँ जिससे वह पकड़ता और हमला करता है। और
का पाँव बन जाता हूँ जिससे वह चलता है। यदि वह मुझसे माँगता है तो मैं
देता हूँ। यदि वह मुझसे पनाह का इच्छुक होता है तो मैं उसे पनाह देता
और जिस काम को मैं करनेवाला होता हूँ उसमें मुझे संकोच नहीं होता।
संकोच उस ईमानवाले व्यक्ति के प्राण ग्रस्त लेने में होता है जिसे मृत्यु
ाय होती है, मुझे उसे तकलीफ़ पहुँचाना पसन्द नहीं परन्तु इससे किसी हाल में

हो (कुरआन, 6 : 122)।" इसी प्रकाश एवं जीवन का प्रदर्शन ईमान और धार्मिक आदेशों एवं नियमों के पालन के रूप में भी होता है। यही प्रकाश है जिससे उसका व्यक्तित्व जगमगा उठता है। "उनका प्रकाश उनके आगे-आगे दौड़ता होगा और उनके दाहिने हाथ में होगा (कुरआन, 66 : 8)।" ईमान की सच्चाई और चरित्र की पवित्रता से केवल संसार ही में ईमानवालों का जीवन नहीं जगमगा उठता बल्कि आख़िरत में भी उनके व्यक्तित्व का प्रकाश अपने वातावरण को प्रकाशित रखेगा और हश्र-क्षेत्र से जन्नत की ओर उनका मार्गदर्शन करेगा।

अल्लाह का प्रिय सेवक अनिवार्य कर्म से भी आगे बढ़कर अल्लाह के मार्ग में चेष्टा करता और अधिक से अधिक सत्कर्मों में लगा रहता है। वह फ़र्ज़ (अनिवार्य कर्म) के अतिरिक्त नफ़्ल कामों में भी भाग लेता और ज़्यादा से ज़्यादा अल्लाह की बन्दगी; उसकी इबादत और उपासना में रत रहता है। ऐसा व्यक्ति अल्लाह का प्रिय बन्दा हो जाता है। अल्लाह की सहायता और सहयोग उसे प्राप्त होता है। फिर उसका सम्पूर्ण जीवन अल्लाह की इच्छाओं के अन्तर्गत व्यतीत होता है। उसका कोई भी काम ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध नहीं होता। उसका चलना-फिरना, देखना-सुनना कर्म-क्षेत्र में आगे बढ़ना आदि, सभी कार्य अल्लाह की इच्छा के अनुसार होने लगते हैं। ज़बूर की भाषा में वह अल्लाह का ममसूह होता है और अपने प्रभु के मुखारविन्दु के प्रकाश में चलता है (ज़बूर Psalms 84 : 9, 89 : 15)। कुरआन में एक जगह कहा गया है : (ऐ ईमानवालो !) तुमने उन धर्म-विद्रोहियों का क़त्ल नहीं किया, बल्कि अल्लाह ने उनका क़त्ल किया। और (ऐ नबी !) तुमने नहीं फेंका, बल्कि अल्लाह ने फेंका।" (कुरआन, 8 : 17) इस आयत में अल्लाह ने ईमानवालों और अपने नबी के कर्म को अपना कर्म कहा। क्योंकि यह कर्म अल्लाह ही के लिए और उसकी इच्छा के अनुसार था और इसमें अल्लाह का सहयोग व सहायता भी सम्मिलित थी।

छुटकारा नहीं ।[1] —बु

अल्लाह का भय

1. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) कहते हैं कि मुझसे अल्लाह के रसूल (सल्ल० कहा : जहाँ और जिस हाल में रहो, अल्लाह का डर रखो और हर बुरा पश्चात नेकी करो, वह उसे मिटा देगी, और लोगों के साथ अच्छे शील-स्व से पेश आओ ।[2] —अहमद, तिरमिज़ी, दा

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के र (सल्ल०) ने कहा : तीन चीज़ें विनाशक और तीन मुक्त करनेवाली हैं। करनेवाली चीज़ें हैं : खुले-छिपे अल्लाह का डर रखना, प्रसन्नता और अप्रस दोनों ही अवस्था में सत्य बात कहना और सम्पन्नता व निर्धनता, दोनों ही दश सन्तुलित नीति पर स्थित रहना ।[3] विनाशक वस्तुएँ हैं : वासना जिसका अनुर

---

1. मालूम हुआ कि अल्लाह को ईमानवालों से गहरा सम्बन्ध होता है। उसे पसन्द नहं ईमानवालों को किसी तरह की तकलीफ़ या कष्ट पहुँचे; परन्तु कुछ चीज़ें ऐसी हो जिसे अपनी हिकमत, तत्वदर्शिता और महान उद्देश्यों के कारण वह सहन कर लेता उनमें से एक ईमानवाले की मृत्यु भी है।
2. यह नबी (सल्ल०) का एक संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उपदेश है। मनुष्य का परम क है कि वह जहाँ और जिस हाल में हो अल्लाह से डरता रहे, कभी कोई ऐसा का करे जो अल्लाह की अप्रसन्नता का कारण बनता हो। यदि कभी भूल-चूक हो जा तत्काल अल्लाह के आगे झुक जाए और उससे क्षमा की प्रार्थना करे। और इ पश्चात कोई न कोई नेकी का काम भी उसे अवश्य कर लेना चाहिए ताकि नेव गुनाह और बुराई का प्रभाव उसके मन और मस्तिष्क से मिट जाए और उसकी अ को पुनः पूर्ण शुद्धता प्राप्त हो। कुरआन में भी कहा गया है : "निस्सन्देह नें बुराइयों को मिटा देती हैं।" (11 : 114)

   जिस तरह बन्दे पर अल्लाह का हक़ है उसी तरह उसपर अल्लाह के बन्दों क हक़ है। अल्लाह के बन्दों के साथ सदा उसका व्यवहार अच्छा होना चाहिए।
3. जो व्यक्ति खुले-छिपे हर हाल में अल्लाह से डरता और उसकी अवज्ञा से बचत चाहे वह किसी से प्रसन्न हो या अप्रसन्न सदा सत्य बात कहता है, उसके मुख से कोई असत्य बात नहीं निकलती; दुख हो या सुख, तंगी हो या कुशादगी, प्र अवस्था में सन्तुलित मार्ग पर स्थिर रहता है; न वह धनवान होकर व्यर्थ कामों में अ

ा जाए, कृपणता जिसका अनुपालन किया जाए और मनुष्य की आत्मश्लाघा (यह इनमें सबसे भारी है।[1] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

3. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि पवान तेजोमय अल्लाह (क़ियामत के दिन) हुक्म देगा कि जिसने किसी । मुझे याद किया या किसी जगह मुझसे डरा हो, उसे (जहन्नम की) आग निकाल लो।[2] —तिरमिज़ी, बैहक़ी : किताबुल बअस वन्नुशूर

4. हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल ल्ल०) ने कहा : जिस किसी ईमानवाले बन्दे की आँखों से आँसू निकले, यद्यपि वह

धन नष्ट करता और न मर्यादाओं का उल्लंघन करता है, और न निर्धनता की अवस्था में वह धैर्य, धर्म और सन्तोष का परित्याग करके किसी अनुचित नीति का पालन करता है। ऐसे व्यक्ति को सांसारिक जीवन में भी हार्दिक शान्ति और आत्मिक सन्तोष प्राप्त होगा और आख़िरत में भी वह अल्लाह के प्रकोप से बच जाएगा।

जो व्यक्ति अल्लाह का आज्ञाकारी न बनकर अपनी तुच्छ इच्छाओं का दास बना रहता है और अपने में उदारता और दानशीलता की विशेषता पैदा करने के बदले तंगदिली, कृपणता, आत्मश्लाघा और अभिमान जैसे रोगों में ग्रस्त हो जाता है, वह सांसारिक जीवन में भी तबाह व बरबाद होता है और आख़िरत में भी तबाही के अतिरिक्त उसके हिस्से में कुछ न आ सकेगा। ऐसे व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व और कोई चरित्र नहीं होता। वह तो वास्तव में एक बिकाऊ माल होता है जो किसी भी क़ीमत पर बिक सकता है। इस हदीस में आत्मश्लाघा और ख़ुदपसन्दी को सबसे अधिक बुरा कहा गया है। जब किसी को ख़ुदपसन्दी की बीमारी लग जाती है तो उसका सीधे मार्ग पर आना असंभव-सा हो जाता है। ऐसा व्यक्ति इस अवस्था में होता ही नहीं कि किसी की कोई भली बात सुन सके। अल्लाह को जो चीज़ सबसे अधिक अप्रिय और नापसन्द हो सकती है वह यही अहंकार, आत्मश्लाघा और ख़ुदपसन्दी है। इसी चीज़ ने इबलीस (शैतान) का नाश किया और इसी के कारण संसार के कितने ही अभिमानी मारे गए।

मतलब यह है कि मनुष्य की मृत्यु यदि इस हालत में हुई है कि वह अल्लाह और रसूल का माननेवाला था, काफ़िर और मुशरिक होकर वह नहीं मरा है तो वह अपने गुनाह या अपने किसी ज़ुल्म और अन्याय के कारण भले ही जहन्नम (नरक) में डाल दिया जाए, परन्तु यदि किसी अवसर पर उसने अल्लाह को याद किया है और कभी उसके मन में अल्लाह का डर पैदा हुआ है तो इसके कारण अवश्य ही किसी न किसी दिन उसे क्षमादान प्राप्त होगा और वह जहन्नम से निकाल लिया जाएगा।

मक्खी के सिर के बराबर ही क्यों न हों, फिर वह बहकर उसके चेहरे पर पहुँच जा
अल्लाह उसे (जहन्नम की) आग के लिए हराम कर देगा ।[1] —इब्ने म

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने क
अल्लाह के भय से रोनेवाला व्यक्ति (जहन्नम की) आग में नहीं जाएगा जब तक
दूध स्तन में न वापस हो जाए[2], और अल्लाह के मार्ग की धूल और जहन्नम (न
का धुआँ एकत्र न होंगे ।[3] —तिरमि

6. हज़रत अबू उमामा सुदय्यी बिन अजलान बाहिली (रज़ि०) से उल्लि
है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह को कोई भी चीज़ इतनी
नहीं जितने दो क़तरे (बूँदें) और दो चिह्न प्रिय हैं। एक क़तरा आँसुओं का
अल्लाह के भय से गिरे, दूसरा रक्त का क़तरा जो अल्लाह के मार्ग में ब
जाए।[4] रहे दो चिह्न तो एक चिह्न तो वह है जो अल्लाह के मार्ग में हो

---

1. मतलब यह है कि जो चेहरा ईश-भय के कारण बहे हुए आँसुओं से भीगा हुआ हो जहन्नम की आग नहीं छू सकती। इन आँसुओं की यही विशेषता और इनका शुभ प्रभाव होना चाहिए जिसका उल्लेख इस हदीस में किया गया है। यह दूसरी है कि अल्लाह के भय से आँसू बहानेवाला व्यक्ति अल्लाह की अवज्ञा और ज़ुल ज़्यादती का कर्म करके स्वयं अपने को अल्लाह की कृपा और दया का अधिकार रहने दे।
2. कोई व्यक्ति जीवन में अनुचित नीति अपनाकर स्वयं अपने आँसुओं का मूल्य घट तो दूसरी बात है, यूँ इन आँसुओं का गुण और इनकी विशेषता यही है जिसका उल्ले इस हदीस और इससे पहलेवाली हदीस में किया गया है। अल्लाह के भय से गिरे आँसू मनुष्य के जीवन को पवित्र बना देते हैं और वह आख़िरत में अल्लाह के वि सामीप्य और पुरस्कार का अधिकारी हो जाता है। परन्तु जो आँसू जीवन की गन को धोकर उसे निर्मल न कर सके, जिनका मनुष्य के जीवन और उसके चरित्र पर प्रभाव न पड़े, ऐसे आँसू अपना महत्व स्वयं खो देते हैं।
3. अर्थात वह व्यक्ति जिसके क़दम या जिसके कपड़े अल्लाह की राह में धूल से भर हों, जिसने अल्लाह के दीन को ऊँचा उठाने के लिए दौड़-धूप की हो, वह 'जहन्नम' आग और उसके धुओं से बचा रहेगा। जहन्नम की आँच कदापि उस तक नहीं प सकती।
4. अर्थात रक्त की वे बूँदे जो अल्लाह के दीन की रक्षा या उसे ऊँचा उठाने के लि रण-भूमि में बहाई जाएँ।

दूसरा चिह्न वह है जो निर्धारित किए हुए किसी कार्य के सिलसिले में हो।

—तिरमिज़ी

7. हज़रत अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : दो आँखें ऐसी हैं जिनको (जहन्नम की) आग नहीं छूएगी : एक आँख वह है जो मध्य रात में अल्लाह के डर से रोई, और दूसरी आँख वह जिसने अल्लाह के मार्ग में निगहबानी करते रात बिताई।[1]

—तबरानी

8. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सात व्यक्ति ऐसे हैं कि जिनपर अल्लाह उस दिन छाया करेगा जिस दिन उसकी छाया के अतिरिक्त और कोई छाया न होगी।[2] न्यायशील नायक[3], वह नवयुवक जिसका अल्लाह की इबादत में पालन-पोषण हुआ[4], वह व्यक्ति जिसका मन मसजिद में लगा रहे[5], वे दो व्यक्ति जो अल्लाह के लिए परस्पर प्रेम करें,

---

1. इस हदीस में दो व्यक्तियों को जहन्नम की यातना से मुक्ति पाने की शुभ-सूचना दी गई है : एक व्यक्ति तो वह है जो रात में उस समय उठकर अल्लाह के आगे आँसू बहाता और उससे क्षमा की प्रार्थना करता है जब संसार सुख की नींद सो रहा होता है। दूसरा वह ईमानवाला है जिसके ज़िम्मे सीमा की रक्षा है। वह रातों को अपनी नींद कुरबान करके पहरा देता और दुश्मनों से सरहद को सुरक्षित रखता है। निस्सन्देह ये दोनों व्यक्ति इस योग्य हैं कि अल्लाह आख़िरत की यातना को इनसे दूर रखे। यह आँसू और यह रात का जागरण अपना विशेष महत्व रखते हैं। ये आँसू इसके साक्षी हैं कि ये जिसके नेत्रों से बहे हैं उसका अपने रब से असाधारण सम्बन्ध है। इसी प्रकार यह जागरण उस प्रेम को प्रदर्शित करता है जो सत्यप्रिय और कर्तव्यपरायण व्यक्ति को इस्लाम और इस्लामी राज्य से होता है। वह उसकी रक्षा के लिए सहर्ष अपनी प्रत्येक सेवाएँ प्रस्तुत करता है।
2. अर्थात इन सात प्रकार के लोगों पर अल्लाह की विशेष दया होगी। ये आख़िरत में हर प्रकार के संकट और दुख से दूर होंगे। उस दिन अल्लाह की दयालुता जिससे रूठ गई उसे कहीं भी शरण न मिल सकेगी।
3. अर्थात वह शासक और नायक जिसने अपने राज्य में न्याय की स्थापना की और अपने को हर प्रकार के अन्याय और अत्याचार से दूर रखा।
4. अर्थात जिस व्यक्ति ने अपनी जवानी अल्लाह की 'इबादत' में गुज़ारी।
5. अर्थात नमाज़ उसकी आँखों की ठंडक और उसके हृदय की शान्ति बन चुकी हो। मसजिद से निकलने के बाद भी उसका मन मसजिद ही में अटका रहता हो कि कब

इसी ध्येय से परस्पर इकट्ठा हों और इसी पर एक-दूसरे से अलग हों, व व्यक्ति जिसे कोई प्रतिष्ठित और सुन्दर स्त्री बुलाए तो वह कहे कि मैं अल्लाह स डरता हूँ[1], वह व्यक्ति जो सदक़ा (दान) करे और उसे इतना छिपाए कि उसवे बाएँ तक हाथ को न मालूम हो कि दाएँ हाथ ने क्या दिया[2], और वह व्यक्ति ज एकान्त में अल्लाह को याद करे और उसकी आँखों से आँसू बह जाएँ।[3]

—बुख़ारी, मुसलिम

9. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल० ने उनसे कहा : तुम न किसी गोरे से अच्छे हो और न काले से। यह दूसरी बा

फिर नमाज़ का समय आए और वह वहाँ पहुँचकर अल्लाह के आगे अपना सिर झुका और उसकी सेवा में सजदों के रूप में मन के कोमल भावों और उमंगों का उपहार भें करे।

1. जब मनुष्य को बुराई की ओर ले जानेवाली सभी चीज़ें मौजूद हों, दिल का शिकारी पू सामान के साथ शिकार को आया हो, सौन्दर्य हो, प्रतिष्ठा हो, सम्मान हो, यौवन हो औ सौन्दर्य स्वयं आमंत्रण दे रहा हो, ऐसी अवस्था में केवल अल्लाह का भय ही किसी क बुराई से बचा सकता है। ऐसे समय में भी यदि कोई अल्लाह के डर से बुराई के निकट नहीं जाता तो निश्चय ही उसका ईमान पूर्ण है और वह इस योग्य है कि उसे आख़िरत में ईश्वरीय छाया प्राप्त हो।
2. अर्थात बहुत ही गुप्त रूप से सदक़ा (दान) करे कि किसी को ख़बर न हो। यह उसी समय संभव है जब मनुष्य को झूठी प्रतिष्ठा और झूठी ख्याति का लोभ न हो, बल्कि वह केवल अल्लाह की प्रसन्नता और उसकी दयालुता की ही अभिलाषा रखता हो।
3. कोई व्यक्ति क्या है? इसका प्रदर्शन सबसे अधिक उस समय होता है जबकि वह अकेला होता है और उसे देखनेवाला दूसरा कोई नहीं होता। यदि ऐसे समय में भी वह अल्लाह को याद करे, उसके भय से काँपे और उससे सहायता चाहे तो यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण होगा कि उसकी इबादत और बन्दगी संसार को दिखाने के लिए नहीं है, बल्कि सचमुच वह अल्लाह में विश्वास रखता है और अल्लाह की बड़ाई और उसकी महानता का उसे पूरा ज्ञान है। अल्लाह उसके लिए कोई निर्जीव कल्पना मात्र नहीं है बल्कि अल्लाह उसकी पुष्टि में सबसे व्यापी सत्ता और चेतना का मूल उद्गम है। वह उसके जीवन में पूर्णतः सम्मिलित हो चुका है। यदि वह लोगों से कहता है कि मैं एक अल्लाह का माननेवाला हूँ, तो निश्चय ही वह अपने दावे में सच्चा है। ऐसे व्यक्ति को यदि अल्लाह का सामीप्य प्राप्त न होगा तो किसे होगा।

है कि (अल्लाह का) डर रखने के कारण तुम्हें किसी की अपेक्षा श्रेष्ठता प्राप्त हो।[1]
—अहमद

10. हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : लोगों में सबसे अधिक मेरा सामीप्य (अल्लाह का) डर रखनेवालों को प्राप्त है, वे जो भी हों और जहाँ-कहीं भी हों।[2] —अहमद

---

1. अर्थात रंग, नस्ल या देश के आधार पर किसी को बड़ाई और श्रेष्ठता प्राप्त नहीं हो सकती। बड़ाई का वास्तविक आधार अल्लाह का डर, धर्मपरायणता और संयम है। सबसे श्रेष्ठ वही है जो सबसे अधिक अल्लाह से डरनेवाला और उसकी अवज्ञा से बचनेवाला हो। यही बात क़ुरआन ने इन शब्दों में कही है : 'ऐ लोगो! हमने तुम्हें पैदा किया एक पुरुष और एक स्त्री से और तुम्हारी बहुत-सी नस्लें और क़बीलें बनाए, ताकि तुम एक-दूसरे को पहचान सको। अल्लाह के यहाँ तो तुममें सबसे अधिक प्रतिष्ठित वह है जो तुममें सबसे अधिक (अल्लाह का) डर रखनेवाला है। निस्सन्देह अल्लाह जाननेवाला और ख़बर रखनेवाला है।" (49 : 13)
2. नबी (सल्ल०) ने यह बात उस समय कही थी जब आप मआज़ बिन जबल (रज़ि०) को यमन का क़ाज़ी या कर्मचारी बनाकर भेज रहे थे। हज़रत मआज़ (रज़ि०) अपनी सवारी पर थे और आप उनकी सवारी के साथ पैदल चल रहे थे। जब आप उन्हें आवश्यक उपदेश और ज़रूरी आदेश दे चुके तो कहा : मआज़! बहुत संभव है मेरे जीवन के इस वर्ष के पश्चात फिर तुम्हारी मुझसे मुलाक़ात न हो और कदाचित ऐसा हो कि तुम फिर इस मसजिद और मेरी क़ब्र के पास से गुज़रो। यह सुनकर हज़रत मआज़ (रज़ि०) रोने लगे। फिर रसूल (सल्ल०) ने उनकी ओर से मुख फेरकर मदीना की ओर कर लिया और कहा : "लोगों में मुझसे सबसे ज़्यादा क़रीबी लोग वे हैं जो अल्लाह का डर रखते हैं; वे जो भी हों और जहाँ कहीं हों।" मतलब यह कि मेरे साथ सम्बन्ध का मूल आधार अल्लाह का डर और धर्मपरायणता है। यदि कोई अल्लाह से डरता और वह उसकी अवज्ञा से बचता है तो भले ही देखने में वह मुझसे दूर हो परन्तु वास्तव में वह मुझसे दूर नहीं है। वह मुझसे क़रीब है और आख़िरत के शाश्वत जीवन में मैं और वह दोनों एक साथ होंगे। परन्तु यदि किसी के हृदय से अल्लाह का भय ही निकल जाए, तो चाहे शारीरिक रूप में वह मुझसे क़रीब हो, परन्तु वास्तव में वह मुझसे दूर है और मैं उससे दूर हूँ। इस तरह आपने हज़रत मआज़ (रज़ि०) को तसल्ली दी कि उन्हें जुदाई का अधिक ग़म न होना चाहिए। बल्कि अधिक से अधिक चिन्ता इस बात की करनी चाहिए कि जीवन धर्मनिष्ठा, ईश-प्रतिष्ठा और अल्लाह के भय से वंचित न हो।

अल्लाह के प्रति अच्छा गुमान

1. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह कहता है कि मैं अपने बन्दे के गुमान (ख़याल व अनुमान) के साथ हूँ, वह जैसा चाहे मुझसे गुमान क़ायम कर ले।[1]

—बैहक़ी, तबरानी-कबीर

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सर्वोच्च अल्लाह कहता है : मैं अपने (सेवक) के गुमान (ख़याल व अनुमान) के साथ हूँ और जब वह मुझे पुकारता है तो मैं उसके साथ होता हूँ।

—तिरमिज़ी

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह का कथन है : मैं अपने बन्दे (सेवक) के गुमान के साथ हूँ। यदि वह (मुझसे) अच्छा गुमान करे तो उसी के लिए अच्छा है और यदि बुरा गुमान क़ायम करे तो यह उसी के लिए बुरा है।

—अहमद

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह कहता है : "मैं अपने बन्दे (सेवक) के गुमान के साथ हूँ जो वह मेरे साथ रखता है। मैं उसके साथ होता हूँ जहाँ वह मुझे याद करता है।" और अल्लाह की क़सम ! अल्लाह अपने बन्दे (सेवक) की तौबा से उससे अधिक प्रसन्न होता है जितना कि तुममें से कोई अपने खोए हुए ऊँट को चटियल मैदान में पाकर होता है। और (वह कहता है :) जो मुझसे एक बालिश्त

---

1. अल्लाह का यह हक़ है कि उसका बन्दा (सेवक) उसके साथ अच्छा गुमान रखे। बन्दा अल्लाह के साथ जैसा गुमान और अनुमान करता है, अल्लाह उसी के अनुसार उससे मामला करता है। बन्दा अल्लाह के साथ क्या गुमान व ख़याल रखता है, यह इस बात की पहचान होती है कि उसकी वैचारिक एवं व्यावहारिक स्थिति कैसी है ? अल्लाह की कृपा और उसके अनुग्रह का अधिकारी कोई व्यक्ति उसी समय हो सकता है जबकि वह अल्लाह के साथ अपने सम्बन्ध और कर्म को ठीक कर ले। अल्लाह के बारे में अच्छा गुमान रखे और उसके आदेशानुपालन में ही अपना जीवन व्यतीत करे। इस दशा में अवश्य ही उसका गुमान और उसकी आशा वास्तविकता के अनुरूप ही होगी।

क़रीब होता है, मैं उससे एक हाथ क़रीब होता हूँ। और जो मुझसे एक हाथ क़रीब होता है मैं उससे दो हाथ क़रीब होता हूँ। और जो मेरी ओर चलकर आता है, मैं उसकी ओर दौड़कर आता हूँ।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह कहता है : मैं अपने बन्दे के गुमान के साथ हूँ वह जैसा मेरे साथ गुमान रखे।[2] मैं उसके साथ होता हूँ जब वह मुझे याद करता है। यदि वह मुझे अपने जी में याद करता है, तो मैं भी उसे अपने जी में याद करता हूँ और यदि वह किसी समूह में मुझे याद करता है, तो मैं भी उसे ऐसे समूह में याद करता हूँ जो उनसे अच्छा है।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

6. हज़रत ज़ाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) से आपके स्वर्गवास से तीन दिन पहले सुना, आप कहते थे कि तुममें से किसी को मृत्यु न आए परन्तु इस अवस्था में कि वह प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह के साथ अच्छा गुमान रखता हो।[4] —मुसलिम

अल्लाह का आज्ञापालन

1. हज़रत मुहाजिर इब्न हबीब (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि अल्लाह कहता है : मैं मनीषी (हकीम) की प्रत्येक वाणी (कलाम) को स्वीकार नहीं करता, परन्तु मैं उसके संकल्प और इरादे को स्वीकार करता हूँ (यदि वह स्वीकार करने योग्य है)। यदि उसका संकल्प मेरे आज्ञापालन में है तो मैं उसके मौन को अपनी प्रशंसा (हम्द) और प्रतिष्ठा निर्धारित करता हूँ

---

1. इस हदीस से अल्लाह की अपार दयालुता प्रदर्शित होती है। बन्दा जब अल्लाह की ओर रुख़ करता और उसकी ओर ध्यान देता है तो उससे कहीं अधिक अल्लाह की कृपा-दृष्टि उसकी ओर होती है।
2. अर्थात वह मेरे बारे में जैसा ख़याल व गुमान रखता है, मैं उसके लिए वैसा ही हूँ। मेरा मामला और व्यवहार उसके साथ उसके गुमान के अनुरूप ही होता है।
3. अर्थात मैं उसका ज़िक्र और उसकी चर्चा उस मजलिस में करता हूँ जिसमें फ़रिश्ते और स्वर्गवासी नबियों और ईमानवालों की आत्माएँ मौजूद होती हैं। ऐसी सभा और मजलिस से अच्छी कौन-सी मजलिस हो सकती है।
4. अर्थात मृत्यु के समय मनुष्य को अल्लाह से क्षमा और दयालुता की आशा रखनी चाहिए।

चाहे वह बातें न करे (ख़ामोश ही रहे)।[1] —दारमी

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि तुम्हारा प्रतापवान एवं तेजोमय रब (पालनकर्त्ता स्वामी) कहता है : यदि मेरे बन्दे मेरी आज्ञा का पालन करें तो मैं उनपर रात में मेंह बरसाऊँ (जबकि वे सो रहे हों) और दिन को सूर्य निकालूँ और बादल के गरजने की आवाज़ उन्हें न सुनाऊँ।[2] —अहमद

3. हज़रत अली (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक छोटी-सी सेना तैयार की और अनसार में से एक व्यक्ति को उसका नायक बनाया और उन (सैनिकों) को हुक्म दिया कि उसकी बात सुनें और उसके आदेशों का पालन करें। उन्होंने किसी बात पर उसे क्रुद्ध कर दिया। उसने (क्रोध में) हुक्म दिया कि मेरे पास लकड़ी इकट्ठा करो। लोगों ने (लकड़ियाँ) इकट्ठा कर दीं। फिर उसने कहा : इनको जलाकर आग तैयार करो। उन्होंने आग

---

1. मतलब यह है कि कोई कितना ही बड़ा बुद्धिमान और ज्ञानी क्यों न हो, मेरी दृष्टि उसकी वाणी से अधिक उसकी भावनाओं, उसके संकल्प और उसकी हृदयस्थिति को देखती है। यदि उसका संकल्प निर्दोष और उसकी भावनाएँ पवित्र हैं तो मैं उन्हें स्वीकार कर लेता हूँ। यदि उसके यहाँ मेरे आज्ञापालन के अतिरिक्त कोई और भावना काम नहीं कर रही है तो उसकी बातचीत ही नहीं, उसका मौन भी मेरी दृष्टि में मेरी प्रशंसा और प्रतिष्ठा करने के समान है। हर चीज़ के बाह्य रूप से अधिक मैं उसकी वास्तविकता को देखता हूँ। यदि किसी की वाणी तो बहुत सुन्दर और ज्ञानगर्भित है, परन्तु उसका मन अपवित्र और मेरे प्रेम और भय से रहित है, और वह मेरी दासता के बदले अपनी ही इच्छाओं का दास बना हुआ है, तो ऐसी दशा में उसकी सुन्दर से सुन्दर वाणी का मेरे यहाँ कोई मूल्य नहीं।
2. अर्थात यदि वे मेरे आज्ञाकारी बनेंगे तो आख़िरत के अतिरिक्त उन्हें इस लोक में भी हमारी ओर से बरकतें हासिल होंगी। अल्लाह उनके सुख और आराम के लिए उचित से उचित व्यवस्था करेगा। उदाहरणार्थ, वे रात में आराम से सो रहे होंगे और उनकी भूमि वर्षा के जल से सिंचित हो रही होगी। इस प्रकार वे बादल की गरज और बिजली की कड़क से भी सुरक्षित रहेंगे और दिन में उन्हें धूप भी मिल सकेगी। क़ुरआन में भी हज़रत नूह (अलै०) के इस कथन का वर्णन मिलता है : "और ऐ रब (अपनी जाति के लोगों से) मैंने कहा : तुम अपने रब से क्षमा की प्रार्थना करो, निस्संदेह वह क्षमा करनेवाला है। वह आकाश को तुमपर ख़ूब बरसता छोड़ेगा और तुम्हें और अधिक धन और बेटे देगा। और तुम्हारे लिए बाग़ लगा देगा और तुम्हारे लिए नहरें निकालेगा।" —क़ुरआन, 71 : 10-12

जलाई। फिर उसने कहा : क्या अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हुक्म नहीं दिया था कि तुम मेरी बात सुनो और मेरा आदेश मानो? उन्होंने कहा : जी हाँ, हुक्म दिया है। उसने कहा : अच्छा तो इस आग में प्रवेश करो। वे आपस में एक-दूसरे की ओर देखने लगे और बोले : आग ही से तो बचने के लिए हम भागकर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आए थे (अब उसी में कैसे दाख़िल हों?)।[1] वे इसी हाल में थे यहाँ तक कि उस (नायक) का क्रोध शान्त हो गया और आग भी बुझ गई। जब ये लोग वापस हुए तो इसका ज़िक्र अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से किया। आपने कहा : "यदि ये लोग आग में दाख़िल हो जाते तो उससे कभी न निकलते।"[2] और आपने कहा : "अल्लाह की अवज्ञा में कोई आज्ञापालन नहीं[3], आज्ञापालन तो केवल सुकर्म में है[4]।" —बुख़ारी, मुसलिम

4. नौरस बिन समआन कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सृष्टिकर्ता की अवज्ञा में किसी प्राणी के लिए कोई आज्ञापालन नहीं।[5] —शरहुस्सुन्नह

5. हज़रत इब्न मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल

---

1. अर्थात हम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर ईमान इसी लिए तो लाए थे कि हम आख़िरत में जहन्नम की आग से बच सकें और दुनिया में भी बुरे परिणामों और बुरी मृत्यु से हमारी रक्षा हो सके, फिर आग के अलाव में हम कैसे कूद सकते हैं?
2. अर्थात आख़िरत में हमेशा जहन्नम की आग में जलते ही रहते। जीवन का यह भयानक परिणाम होता यदि वे सूझ-बूझ से काम न लेते।
3. अर्थात वास्तव में जिसका आज्ञापालन किया जाना चाहिए वह अल्लाह है। ईमानवालों के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन, दोनों ही का वास्तविक केन्द्र अल्लाह की दासता और उसका आज्ञापालन है। किसी दूसरे का आज्ञापालन केवल उसी दशा में किया जा सकता है जबकि वह अल्लाह के आज्ञानुकूल हो, उसके विपरीत न हो।
4. आज्ञा का पालन केवल सुकर्म और भलाई के कामों में किया जाएगा। ऐसे कामों में किसी की आज्ञा का पालन कदापि नहीं किया जाना चाहिए जिनमें अल्लाह की अवज्ञा होती हो। एक 'हदीस' में है : "मुस्लिम व्यक्ति के लिए ज़रूरी है कि वह अपने हाकिमों की बात सुने और माने, चाहे उसे पसन्द हो या नापसन्द हो जब तक कि उसे गुनाह (अल्लाह की अवज्ञा) का आदेश न दिया जाए और जब उसे गुनाह का आदेश दिया जाए, तो फिर न सुनना है न आज्ञापालन।" —बुख़ारी, मुसलिम
5. किसी की आज्ञा का पालन उसी समय तक किया जा सकता है जब तक कि वह अल्लाह की आज्ञा के विरुद्ध न हो।

(सल्ल०) ने कहा : लोगो ! कोई चीज़ सिवाय उसके जिसका मैं तुमको हुक्म दे चुका हूँ ऐसी नहीं जो तुम्हें जन्नत से क़रीब कर दे और कोई चीज़ सिवाय उसके जिससे मैं तुम्हें रोक चुका हूँ ऐसी नहीं जो तुम्हें (जहन्नम की) आग से क़रीब और जन्नत से दूर रखे ।[1] और रूहुल अमीन[2] ने (एक रिवायत के अनुसार रूहुल क़ुदुस ने) मेरे दिल में यह बात डाली है कि कोई व्यक्ति उस समय तक नहीं

---

1. अर्थात मैंने वे आदेश तुम तक पहुँचा दिए हैं जिनका पालन करके तुम 'जन्नत' के अधिकारी बन सकते हो। अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए वे आदेश पर्याप्त हैं जो मैंने तुम्हें दिए हैं। अल्लाह की प्रसन्नता और मुखाकांक्षा में तुम्हें इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है। न तुम्हें इसके लिए जंगलों और बियाबानों की खाक छानने की ज़रूरत है और न ही बस्ती से दूर वनों और पर्वतों की गुफाओं में जाकर कठिन तपस्या करनी है। तुम्हारा तप और तुम्हारी साधना यही है कि तुम उन आदेशों के पालन में लग जाओ जो मैं तुम्हें अल्लाह की ओर से पहुँचा रहा हूँ। इसके अतिरिक्त अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने का कोई और साधन नहीं है। दूसरे उपाय और कृत्रिम साधन तुम्हें पथभ्रष्ट तो कर सकते हैं, उनके द्वारा तुम्हें अल्लाह की प्रसन्नता नहीं मिल सकती।

   मैं तुम्हें उन बातों से भी सचेत कर चुका हूँ जिनसे तुम्हें जीवन में बचने की आवश्यकता है। जिनसे यदि तुम बचे नहीं तो जन्नत से दूर और जहन्नम से क़रीब हो जाओगे। मैंने जिन बातों से तुम्हें रोका है बस उनसे दूर रहना, जहन्नम की आग से सुरक्षित रहने के लिए पर्याप्त है। गुमराह जातियों ने अपनी ओर से जो मशक़्क़तें गढ़ ली हैं और जो पाबन्दियाँ अपने आपपर लागू कर रखी हैं या जिन चीज़ों को उन्होंने बिना किसी प्रमाण के वर्जित और अवैध निर्धारित कर लिया है, तुम कदापि उनके पाबन्द नहीं हो। जिस प्रकार अल्लाह की हराम की हुई चीज़ किसी के हलाल (Lawful) करने से हलाल (अवर्जित) नहीं हो सकती, वह हराम (Unlawful) ही रहेगी इसी प्रकार जिन चीज़ों को अल्लाह ने हराम नहीं किया है बल्कि वैध ही रखा है, उन्हें किसी को हराम करने का अधिकार कदापि नहीं है।

   क़ुरआन में भी नबी (सल्ल०) के बारे में कहा गया है : "जो उन्हें सुकर्म (भले कामों) का हुक्म देता है और बुराई से रोकता है और उनके लिए पाक (शुद्ध) चीज़ों को हलाल और नापाक (अशुद्ध) चीज़ों को हराम ठहराता है। और उनपर से उनका बोझ दूर करता है और उन फन्दों को (काटता है) जो उनपर चढ़े हुए थे।"

   —क़ुरआन, 7 : 157

2. अर्थात अल्लाह के विशेष फ़रिश्ते हज़रत जिबरील (अलै०) ने।

मरता जब तक कि अपनी रोज़ी पूरी न कर ले।[1] सावधान! अल्लाह का डर रखो और रोज़ी प्राप्त करने में सन्तुलित नीति अपनाओ और रोज़ी में विलम्ब के कारण कहीं ऐसा न हो कि तुम उसे अल्लाह की अवज्ञा करके प्राप्त करो क्योंकि वह चीज़, जो अल्लाह के पास है तुम्हें, अल्लाह के आज्ञापालन के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।[2] —शरहुस्सुन्नह, बैहक़ी : शोबुल ईमान

तौहीद की मर्यादा

1. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से प्रत्येक को चाहिए कि वह अपनी समस्त आवश्यकताओं के लिए अपने रब (पालनकर्त्ता स्वामी) से ही सवाल करे, यहाँ तक कि यदि उसके जूते का तसमा (चमड़े का फ़ीता) टूट जाए तो वह भी उसी से माँगे।[3] —तिरमिज़ी

2. हज़रत मुग़ीरा बिन शोबा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) फ़र्ज़ नमाज़ों के पश्चात यह पढ़ा करते थे : "कोई इलाह (पूज्य) नहीं सिवाय एक अल्लाह के, उसका कोई सहभागी नहीं। राज्य उसी का है, प्रशंसा एवं स्तुति (हम्द) उसी के लिए है। और उसे हर चीज़ का सामर्थ्य प्राप्त है (अर्थात वह

---

1. मनुष्य के हिस्से की जो रोज़ी है वह उसे मिलकर रहेगी, इसलिए उसे रोज़ी हासिल करने में वैध व अवैध और हलाल व हराम का सदैव ध्यान रखना चाहिए। उसे प्रत्येक अवस्था में अल्लाह से डरते रहना चाहिए और रोज़ी प्राप्त करने के लिए वही साधन अपनाने चाहिएँ जिनसे न किसी का हक़ मारा जाता हो और न ही किसी के साथ अन्याय होता हो।
2. यदि किसी समय रोज़ी मिलने में देरी हो तो कदापि अधीर न होना चाहिए और न ही घबराकर कोई ऐसा क़दम उठाना चाहिए जो ग़लत हो। अल्लाह की ओर से यदि पाक रोज़ी मिल सकती है तो अल्लाह के आज्ञापालन द्वारा ही मिल सकती है। अवैध और ग़लत रास्तों से मनुष्य जो कुछ भी हासिल करता है वह उसके लिए पाक नहीं है। उसे यदि कोई ईश्वर की प्रदत्त वस्तु समझता है तो इसे एक धोखे के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता।
3. अर्थात तौहीद (एकेश्वरवाद) का अर्थ यह भी है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए अल्लाह ही से प्रार्थना करे और उसी से सहायता चाहे। इसलिए कि वास्तविक कार्य-साधक अल्लाह ही है। दूसरे सभी उसके आश्रित हैं। जो लोग अल्लाह को छोड़कर दूसरों को अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए पुकारते हैं वे बड़ी अज्ञानता में ग्रस्त हैं।

सर्वशक्तिमान है)। ऐ अल्लाह! तू जो दे दे, उससे कोई रोकनेवाला नहीं और जो तू न दे उसका देनेवाला कोई नहीं। और तेरे सामने किसी वैभवशाली का वैभव भी (उसको) कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता।"[1] —बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि जब नबी (सल्ल०) बीमार हुए तो आपकी कुछ पत्नियों ने उस गिरजा की चर्चा की जिसे मारियह कहते थे (यह गिरजा हबशा में था)। उम्मे सलमा और उम्मे हबीबा हबशा जा चुकी थीं। जब उन्होंने उसकी सुन्दरता और उसके चित्रों का ज़िक्र किया तो आप (सल्ल०) ने अपना सिर उठाया और कहा : जब उनमें कोई भला व्यक्ति मर जाता तो वे उसकी क़ब्र पर एक इबादतगाह (उपासना-गृह) का निर्माण कर देते और उसमें उसके चित्र बना देते थे।[2] ये अल्लाह के सृष्टि-जीवों में सबसे बुरे हैं।[3]

—बुख़ारी, मुसलिम

4. अता इब्ने यसार कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) प्रार्थना करते थे : "ऐ अल्लाह! मेरी क़ब्र को बुत न बना देना कि उसकी पूजा की जाने लगे। अल्लाह का ग़ुस्सा उन लोगों पर भड़क उठा जिन्होंने अपने नबियों की क़ब्रों को सजदागाह (उपासना-गृह) बना लिया।"[4] —मालिक : हदीस मुरसल

---

1. अर्थात अल्लाह के यहाँ किसी का धन-वैभव काम आने का नहीं है, वहाँ जो चीज़ काम आ सकती है वह है सत्यनिष्ठा, हृदय की शुद्धता और पुण्यकर्म। अल्लाह ही के अधिकार में सब कुछ है। जिसको जो कुछ मिलता है उसकी आज्ञा से मिलता है। वह जिसको चाहता है वंचित रखता है। उसका गौरव और महिमा अपार है। उसका कोई भी काम तत्वदर्शिता और शुभहेतु से रिक्त नहीं। कोई नहीं जो उसके फ़ैसले को बदल सके, कोई नहीं जो उसके कामों में हस्तक्षेप कर सके।
2. इस प्रकार वे लोग शिर्क (बहुदेववाद) की बुनियाद डाल देते थे।
3. इसलिए कि ये स्वयं पथभ्रष्ट होते और दूसरे लोगों की पथभ्रष्टता का कारण बनते। अल्लाह की उपासना के बदले सृष्टि-पूजा और समाधि-पूजा की नींव डालते।
4. अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की इबादत और उपासना शिर्क है। शिर्क निकृष्टतम पाप है। पिछले आसमानी ग्रन्थों (Heavenly Books) में भी शिर्क की निन्दा की गई है और इसको ज़िना और व्यभिचार की उपमा दी गई है। क़ुरआन में भी इसकी ओर संकेत किए गए हैं। देखिए सूरा अन-नूर, आयत : 3, सूरा अल-फ़ुरक़ान, आयत : 68। क़ुरआन शिर्क को अत्यन्त भारी अन्याय कहता है। शिर्क से बढ़कर अल्लाह की हक़तलफ़ी (स्वत्वहरण) दूसरी नहीं हो सकती। पिछले ग्रन्थों में भी शिर्क पर रोष प्रकट

5. हज़रत जुनदुब (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) से सुना, आप कहते थे कि सुन लो ! तुमसे पहले जो लोग थे उन्होंने अपने नबियों और अच्छे लोगों की क़ब्रों को सजदागाह (उपासना-गृह) बना लिया करते थे।[1] सावधान ! तुम क़ब्रों को सजदागाह न बनाना, मैं तुम्हें इस कर्म से बाज़ रहने की ताकीद करता हूँ।[2]

—मुसलिम

6. इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने क़ब्रों पर जानेवाली स्त्रियों पर लानत की है और उन लोगों पर जो उनको (क़ब्रों को) सजदागाह (उपासना गृह) बनाते और उनपर दीपक जलाते हैं।

—अबू दाऊद, तिरमिज़ी, नसई

7. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के

किया गया है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं :

"तुझको किसी दूसरे उपास्य की उपासना नहीं करनी होगी इसलिए कि परमेश्वर जिसका नाम स्वाभिमानी है, वह स्वाभिमानी ईश्वर है भी। अतः ऐसा न हो कि तू उस देश के निवासियों से कोई अनुबन्ध कर ले और जब वे अपने इष्टदेवों के अनुसरण में व्यभिचारी (ज़िनाकार) ठहरें और अपने इष्टदेवों के लिए क़ुरबानी करें और कोई तुझको आमंत्रित करें और तू उसकी क़ुरबानी में से कुछ खा ले। और तू उनकी बेटियों का विवाह अपने बेटों से करे और उनकी बेटियाँ अपने उपास्यों के अनुसरण में व्यभिचारिणी ठहरें और तेरे बेटों को भी अपने उपास्यों के अनुसरण में व्यभिचारी बना दें।"

—निर्गमन, 34 : 14-18

"(उन्होंने) विमुख होकर अपने बाप-दादा की तरह विश्वासघात किया। और धोखा देनेवाले धनुष की तरह एक ओर को झुक गए, क्योंकि उन्होंने अपने ऊँचे स्थानों के कारण उसके प्रकोप को उत्तेजित किया और अपनी खोदी हुई मूर्तियों से उसे ग़ैरत दिलाई।"

—ज़बूर, तीसरा भाग, 78 : 57-58

"चालीस वर्ष तक मैं इस नस्ल से विरक्त रहा और मैंने कहा कि ये वे लोग हैं जिनके दिल आवारा हैं और इन्होंने मेरी राहों को नहीं पहचाना। इस कारण मैंने अपने प्रकोप की क़सम खाई कि ये लोग मेरे विश्राम में कभी प्रवेश न करेंगे।"

—ज़बूर, चौथा भाग, 95 : 10-11

1. अर्थात उन्हें सजदा करते थे हालाँकि उनके लिए कदापि उचित न था कि किसी दूसरे के आगे सिर झुकाएँ और नतमस्तक हों।
2. खेद की बात है कि बहुत-से लोग नबी (सल्ल०) की इस वसीयत और उपदेश को भूल गए और क़ब्रों और मज़ारों के साथ वह सब कुछ करने लगे जिससे आपने रोका था।

रसूल (सल्ल०) ने कहा : अपशकुन का विचार एक प्रकार का शिर्क है। आ
यह (ताकीद के रूप में) तीन बार कहा।[1] —अबू दाऊद, तिरमि

8. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के र
(सल्ल०) ने कहा : रोग का लग जाना, हामह, नक्षत्र, सफ़र इनकी व
वास्तविकता नहीं है।[2] —मुसलि

---

1. अपशकुन के विचार में मनुष्य केवल एक शंका की चीज़ को प्रभावकारी सम
लगता है और अल्लाह की वास्तविक कार्यसाधकता और अधिकार को भूल जाता
यह चीज़ 'शिर्क' है और शिर्क की भूमिका है। इसी लिए आप (सल्ल०) ने ताकीद
कि इससे बचा जाए।

2. केवल आशंका के आधार पर यह समझना कि रोग उड़कर एक से दूसरे को लग ज
हैं, सही नहीं। किसी रोग के विषय में निश्चित रूप में उसके फैलने के कारणों
अनुसंधान कर लिया गया हो तो यह दूसरी बात है, उनके मानने में कोई दोष नहीं
इस्लाम कार्य-कारण का इनकार नहीं करता। वह हमें जिस चीज़ से बचाना चाहत
वह है अन्धविश्वास और निर्मूल बातों में विश्वास रखना। अन्धविश्वास मनुष्य
वास्तविकता और सच्चाई से दूर कर देता है और उसे विभिन्न प्रकार की पथभ्रष्टता
फँसा देता है, चाहे उनका सम्बन्ध विचार और धारणा से हो या व्यवहार और कर्म से

हामह और सफ़र से क्या अभिप्रेत है, इसमें मतभेद है। अज्ञान काल में एक धार
यह थी कि जब मारे गए व्यक्ति के ख़ून का बदला नहीं लिया जाता, तो उसकी आ
एक पक्षी के रूप में पुकारती फिरती है कि मैं प्यासी हूँ, मेरा बदला लिया जाए। स
एक धारणा के अनुसार ऐसा जन्तु है जिसके काटने से भूख का एहसास होता
इसके अतिरिक्त इस तरह की कुछ दूसरी धारणाएँ भी हैं। इस्लाम ने उन सबको निम
ठहराकर मनुष्य के मन और मस्तिष्क को अन्धविश्वास से मुक्त किया है।

अज्ञानकाल में अरब वर्षा को नक्षत्रों से सम्बद्ध करते थे। इस विचार का खण
किया गया और बताया गया कि धरती और आकाश की समस्त शक्तियों का मालि
अल्लाह है। जो कुछ होता है उसी के फ़ैसले के अन्तर्गत होता है। इसलिए हम
भरोसा उसी पर होना चाहिए न कि हम तारों और नक्षत्रों पर भरोसा करने लग जा
कार्य-कारण की दुनिया में तारों का जो कुछ प्रभाव पड़ता हो उसमें, वैज्ञानिक रूप
जो बातें सिद्ध हो चुकी हों उनके मानने में हमारे लिए कोई दोष नहीं है। दोष की ब
यह है कि कोई व्यक्ति अन्धविश्वास के कारण अल्लाह को छोड़कर दूसरी चीज़ों
भरोसा करने लग जाए और उन्हीं का उपासक बन जाए और उन्हीं को अपना इष्ट
बना ले।

9. उम्मे कुर्ज़ कहती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना, आप कहते थे : पक्षियों को उनके अपने घोंसलों में बैठे रहने दो (उन्हें उड़ाकर अच्छे या बुरे शकुन का विचार न करो)। —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

10. हज़रत मुआविया बिन हकम (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! कुछ बातें हम अज्ञानकाल में किया करते थे (उनके बारे में आप क्या कहते हैं)। हम काहिनों के पास (परोक्ष की बातें मालूम करने के लिए) जाया करते थे। आपने कहा : उनके पास न जाओ।[1] उन्होंने कहा कि हम पक्षी उड़ाकर शकुन-अपशकुन का विचार करते थे। आपने कहा : यह ऐसी चीज़ है जिसका तुम्हारे दिलों पर असर तो होगा (इसलिए कि तुम यह काम करते आए हो) परन्तु चाहिए कि यह चीज़ तुम्हारे लिए रुकावट न बनने पाए।[2] वे कहते हैं कि मैंने कहा कि हमारे कुछ लोग रेखाएँ खींचते थे।[3] आप (सल्ल०) ने कहा : नबियों में एक 'नबी' रेखा खींचते थे। अब किसी की रेखा उसके अनुरूप हो जाती होगी तो वह भी ठीक होता होगा (परन्तु यह कैसे मालूम हो कि किसी की खींची हुई रेखा उनके अनुरूप है।)[4] —मुसलिम

---

1. ग़ैब और परोक्ष की बातें अल्लाह के सिवा कोई दूसरा नहीं जानता। दूसरों की सारी बातें अटकल और अनुमान पर अवलम्बित होती हैं जिसमें ग़लती की आशंका सदा बनी रहती है।
2. अर्थात ऐसा नहीं होना चाहिए कि तुम उसके कारण अपने किसी प्रोग्राम को बदल दो।
3. अर्थात रेखा खींचकर, हिसाब लगाकर कुछ बातें मालूम करते थे।
4. एक 'हदीस' में आपने ऐसे अवसर के लिए कुछ शब्द पढ़ने की शिक्षा दी है जिससे हृदय पर पड़े हुए बुरे प्रभाव मिट जाते हैं, मनुष्य अल्लाह पर भरोसा करने लगता है और उसे धैर्य और सन्तोष की परम निधि मिल जाती है; वे पवित्र शब्द ये हैं :

اَللّٰهُمَّ لَا يَأْتِىْ بِالْحَسَنَاتِ إِلَّا أَنْتَ وَلَا يَدْفَعُ السَّيِّئَاتِ إِلَّا أَنْتَ وَلَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ إِلَّا بِاللّٰهِ. (ابوداؤد)

"ऐ अल्लाह तू ही भलाई पहुँचाता है और तू ही बलाओं को दूर करता है, और न कोई बचाव है और न कोई शक्ति है सिवाय अल्लाह की इच्छाओं के।" —अबू दाऊद

तक़दीर पर ईमान

तक़दीर पर ईमान

तक़दीर पर ईमान वास्तव में अल्लाह पर ईमान ही का एक अंश है। क़ुरआन में इसको इसी हैसियत से बयान भी किया गया है। उदाहरणार्थ देखिए सूरा आले इमरान आयत 26, 73; अन-निसा आयत 78; अल-आराफ़ आयत 128; अल-फ़ुरक़ान आयत 2-3; अल-हदीद आयत 22-23। अल्लाह के मानने में वस्तुतः तक़दीर का मानना भी सम्मिलित है। तक़दीर का इनकार वास्तव में अल्लाह का इनकार है। हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं : "तक़दीर पर ईमान से तौहीद (एकेश्वरवाद) की व्यवस्था सम्बद्ध है। जो व्यक्ति ईमान लाए और तक़दीर का इनकार करे तो उसने तौहीद (एकेश्वरवाद) का क्षय कर दिया।" (दे० किताबुस्सुन्नह—इमाम अहमद (रह०), पृष्ठ 123)

तक़दीर पर ईमान वास्तव में अल्लाह की प्रभुता और उसकी महानता को स्वीकार करना है। यह इस बात को मानना है कि अल्लाह सर्वशक्तिमान और परम शासक है। उसका ज्ञान सबको अपनी परिधि में समेटे हुए है। कोई भी चीज़ उसकी ज्ञान-परिधि से बाहर नहीं। उसने हर चीज़ का अन्दाज़ा ठहराया है, कोई भी चीज़ उससे बाहर नहीं जा सकती। उसकी शक्ति और अधिकार के अन्तर्गत हर चीज़ है। वह हर चीज़ के आरंभ और अन्त को जानता है। यह संसार उसकी सोची-समझी योजना (Scheme) के अन्तर्गत चल रहा है। कोई उसे उसकी योजना में असफल नहीं कर सकता। फिर हानि-लाभ की सारी शक्तियाँ उसके अधिकार में हैं। जीवन प्रदान करनेवाला और मृत्यु देनेवाला वही है। रोज़ी का मालिक वही है। जिसे चाहे अधिक दे, जिसकी रोज़ी चाहे कम कर दे। आदर-सम्मान, वैभव, शक्ति, बल, शासन आदि सबकुछ उसके अधिकार में है। वह अपनी तत्वदर्शिता की दृष्टि से जिसको जितना चाहता है प्रदान करता है। उसकी हिकमत (तत्वदर्शिता) त्रुटिहीन है, उसमें किसी प्रकार की अपूर्णता नहीं पाई जाती। उसका कोई काम और उसका कोई फ़ैसला व्यर्थ और निरुद्देश्य नहीं है। इस लोक में धन, सिद्धि, सुन्दरता, बल और दूसरी चीज़ें सबको समान रूप से नहीं मिली हैं। यह व्यवस्था उसी की स्थापित की हुई है। और इसमें पूर्ण रूप से हिकमत (Wisdom) और शुभ हेतु पाया जाता है। उसकी हिकमतों को पूर्ण रूप से जान लेना मनुष्य के लिए संभव नहीं। न किसी में यह सामर्थ्य है कि वह अल्लाह की निर्मित व्यवस्था को बदल सके। हमें चाहिए कि हम उन सीमाओं में रहते हुए अपने उन कर्त्तव्यों को पूरा करें जो अल्लाह ने हमारे लिए निर्धारित किए हैं। सफलता और

असफलता सब उसी के हाथ में है। वही है जो गिरे हुए को उठाता और उठे हुए को गिराता है। वही असफलताओं में सफलता की राहें निकालता है। वही उन लोगों को—जो अपनी सरकशी और उद्दण्डता में रत और अपनी धन-सामग्री पर गर्व कर रहे होते हैं, असफलता के बुरे दिन दिखाता है।

तक़दीर को मानने से मनुष्य के विचार और दृष्टि में बड़ी व्यापकता आ जाती है। उसे अपार शक्ति और बल मिल जाता है, वह निश्चिन्त और धैर्यवान हो जाता है। उसका भरोसा अपने पालनकर्त्ता अल्लाह पर होता है। अल्लाह पर भरोसा उसमें संकल्प और उत्साह की वह शक्ति उत्पन्न कर देता है जिसका मुक़ाबला नहीं किया जा सकता। वह चेष्टा और परिश्रम से नहीं भागता, प्रयास और कर्म के द्वारा उसे अपने रब (पालनकर्त्ता स्वामी) की सहायता और उसकी कृपा की खोज होती है। वह कभी हताश नहीं होता। अल्लाह और तक़दीर को मानने से आत्मसम्मान और निश्चिन्तता के साथ-साथ उसकी आत्मा को ऐसी शुद्धता और पवित्रता प्राप्त होती है जिसपर संसार की प्रत्येक वस्तु निछावर की जा सकती है। लोभ, वासना और ईर्ष्या एवं द्वेष की तुच्छ भावनाएँ उसके हृदय में स्थान नहीं बना सकतीं। उसे यदि सबकुछ मिल जाए तो वह गर्व नहीं करता, और यदि तंगी और संकट का सामना करना पड़े तो वह अधीर नहीं होता। वह अल्लाह का एक कर्त्तव्यपरायण, धैर्यवान और कृतज्ञ सेवक होता है। अल्लाह के गुणगान और स्मरण को मूल जीवन-निधि जानता है।

तक़दीर पर ईमान और उसका महत्व

1. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बन्दा उस समय तक ईमानवाला नहीं होता जब तक कि तक़दीर की भलाई और बुराई पर ईमान न लाए, और जब तक कि यह न जान ले कि जो चीज़ (भलाई और बुराई) उसको पहुँच गई यह असंभव था कि वह उसे न पहुँचती। और (इसी तरह) जो नहीं पहुँचा यह असंभव था कि वह उसको पहुँच जाता।[1] —तिरमिज़ी

---

1. अर्थात अल्लाह पर ईमान उसी समय पूर्ण होता है जबकि मनुष्य तक़दीर पर ईमान लाए, इसके बिना 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) की धारणा पूर्ण नहीं हो सकती। तक़दीर पर ईमान रखनेवाला यह जानता है कि जो तकलीफ़ और आराम उसे पहुँचा, वह पहुँचकर रहनेवाला था और जो नहीं पहुँचा वह पहुँचनेवाला था ही नहीं। संसार में जो कुछ होता है वह अल्लाह के फ़ैसले के अन्तर्गत ही होता है। एक बड़ी स्कीम के अन्तर्गत ईश्वर इस विश्व-व्यवस्था को चला रहा है। जिस प्रकार सम्पूर्ण विश्व और उसके

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह को बलिष्ठ ईमानवाला निर्बल ईमानवाले से अधिक प्रिय है। और हर एक में भलाई है, जो चीज़ तुम्हें लाभ पहुँचाए उसका लोभ करो और अल्लाह से सहायता की याचना करो और साहस न छोड़ो। और यदि तुम्हें कोई कष्ट पहुँचे तो यूँ न कहो कि "यदि" मैं ऐसा करता तो यूँ हो जाता, बल्कि कहो : अल्लाह ने जो चाहा किया, इसलिए कि (यह) यदि शैतान के कर्म का द्वार खोल देता है।[1] —मुसलिम

3. हज़रत सह्ल बिन सअद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : (कभी ऐसा होता है कि) बन्दा जहन्नम में जानेवालों का-सा कर्म करता है और होता है वह जन्नत में जानेवाला और इसी प्रकार (कभी ऐसा होता है कि) वह जन्नतवालों का-सा कर्म करता है और होता है वह जहन्नम में

विभिन्न भागों में परस्पर सामंजस्य और अनुकूलता पाई जाती है, उसी प्रकार इस संसार में छोटी या बड़ी जो घटना भी घटित होती है वह स्थायी रूप से कोई अलग घटना नहीं होती, बल्कि वह विश्व की घटनाओं के क्रम की एक कड़ी होती है और वह उस बड़े उद्देश्य के अन्तर्गत ही घटित होती है जिसकी पूर्ति के लिए इस विश्व का सृष्टिकर्ता इस विश्व-व्यवस्था को चला रहा है। इस व्यवस्था के पीछे जो उद्देश्य काम कर रहा है यदि उसकी पूर्ति वर्तमान व्यवस्था से उत्तम किसी व्यवस्था से हो सकती तो निश्चय ही अल्लाह उसी को स्थापित करता। इस संसार में हर्ष के साथ शोक, सुख के साथ दुःख यदि पाया जाता है तो यूँ ही नहीं, बल्कि यह महान तत्वदर्शिता (Wisdom) के अन्तर्गत ही पाया जाता है। यह हमारी अदूरदर्शिता होगी यदि हम इसे अलल-टप्प या अन्याय पर आधारित व्यवस्था समझने लग जाएँ।

1. अर्थात ऐसा ईमानवाला जो साहसी और संकल्प का दृढ़ हो, अल्लाह को उस ईमानवाले से अधिक प्रिय है जिसे तनिक भी असफलता हुई तो हिम्मत हार बैठता है। ईमान रखनेवाले व्यक्ति का काम यह है कि वह किसी हालत में भी साहस न छोड़े, अल्लाह से सहायता का इच्छुक हो। यदि कोई मुसीबत या तकलीफ़ पेश आए तो समझे कि इसका आना पहले से तय था, इसलिए सब्र से काम ले। ईमानवाले व्यक्ति के लिए यह किसी तरह उचित नहीं कि वह ऐसे समय पर यह कहने लगे कि यदि मैं ऐसा करता तो यह मुसीबत न आती और यदि मैंने अमुक उपायों को अपनाया होता तो इस तकलीफ़ से बच जाता। सोचने की यह नीति उसे विह्वलता, सन्ताप और दुःख का ग्रास बनाकर हतोत्साह कर देगी। और शैतान यही चाहता है कि किसी न किसी तरह वह ईमानवाले व्यक्ति को उसके वास्तविक लक्ष्य से विमुख कर दे।

जानेवाला, और बात यह है कि कर्म में एतिबार अन्त ही का होता है।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

4. अबू ख़िज़ामह अपने पिता के माध्यम से कहते हैं कि उनका बयान है कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! यह तो बताइए कि जो झाड़-फूँक हम करते हैं या दवाएँ जिनको हम प्रयोग में लाते हैं या बचाव की चीज़ें जिनसे हम अपनी रक्षा करते हैं क्या अल्लाह की (निश्चित की हुई) तक़दीर को फेर सकती हैं? आपने कहा : ये सब चीज़ें अल्लाह की निश्चित की हुई तक़दीर में से हैं।[2] —तिरमिज़ी, इब्ने माजा, अहमद

तक़दीर पर ईमान लाने का मानव-चरित्र पर प्रभाव

1. इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि एक दिन मैं नबी (सल्ल०) के पीछे सवारी पर सवार था। आपने कहा : ऐ लड़के! मैं तुम्हें कुछ बातों की शिक्षा देता हूँ—अल्लाह का ख़याल रखो अल्लाह तुम्हारा ख़याल रखेगा। अल्लाह का ख़याल रखो, उसे अपने सामने पाओगे। जब माँगो तो अल्लाह से माँगो और जब सहायता की याचना करो तो अल्लाह की सहायता की याचना करो। जान लो कि यदि सारे लोग मिलकर तुम्हें फ़ायदा पहुँचाने के लिए एकत्र हो जाएँ तो

---

1. आदमी के जीवन का अन्त यदि कुफ़्र (अधर्म) पर होता है तो वह दोज़ख़ (नरक) में जाएगा भले ही उसका सम्पूर्ण जीवन इस्लाम पर चलने में व्यतीत हुआ हो। उसने स्वयं अपने ईमान और शुभ कर्म को रद्द कर दिया। इसके विपरीत यदि आदमी की मृत्यु इस्लाम पर होती है और वह अन्तिम समय में इस्लाम को अपना लेता है तो उसकी गणना जन्नतवालों में होगी, इसलिए कि उसने सच्चाई को अपनाकर अन्त में ईश्वर की दासता स्वीकार कर ली और अधर्म का मार्ग को छोड़ दिया। यह हदीस बताती है कि आदमी को अपने परिणाम की ओर से कभी भी ग़ाफ़िल नहीं रहना चाहिए।
2. अर्थात दुआ, इलाज और रक्षा के उपायों को अपनाना अल्लाह की निश्चित की हुई तक़दीर के विरुद्ध चेष्टा करना नहीं है, बल्कि ये तक़दीर ही के सिलसिले की चीज़ें हैं। इनमें और तक़दीर में कोई टकराव और विरोध नहीं पाया जाता। इसलिए इन चीज़ों को अपनानेवाला तक़दीर के विरुद्ध नहीं चलता, बल्कि वह जो कुछ भी करता है तक़दीर ही के अन्तर्गत करता है।

तुम्हें फ़ायदा नहीं पहुँचा सकते सिवाय उसके जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दिया है। और यदि सब लोग इकट्ठा होकर तुम्हें हानि पहुँचाना चाहें तो, वे तुम्हें हानि नहीं पहुँचा सकते सिवाय उसके जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दिया है। लेखनियाँ (क़लमें) उठा ली गई हैं और काग़ज़ों की स्याही सूख चुकी है।[1]

—तिरमिज़ी, अहमद

2. हज़रत सौबान (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तक़दीर को कोई चीज़ नहीं फेर सकती सिवाय दुआ के, और आयु को कोई चीज़ बढ़ा नहीं सकती सिवाय नेकी के, और निश्चय ही आदमी गुनाह की शामत से कभी रोज़ी से भी वंचित हो जाता है।[2]

—इब्ने माजा

---

1. यह हदीस बताती है कि तक़दीर पर ईमान लाने से बहुत-से नैतिक लाभ भी मनुष्य को पहुँचते हैं। मनुष्य लोगों से निर्भय हो जाता है, उसे भय होता है तो केवल ईश्वर का। वह ईश्वर के सिवा किसी से न फ़ायदे की आशा करता है और न किसी हानि की उसे आशंका होती है। वह समझता है कि मुझे जो मिलना है मिलकर रहेगा और जो चीज़ मेरे हिस्से में नहीं है वह किसी के देने से मुझे नहीं मिल सकती। इसलिए वह भय और लोभ से रहित होकर सत्य मार्ग में आगे बढ़ने की कोशिश करता है। न कोई भय उसे सत्य मार्ग से विचलित कर सकता है और न कोई लालच और आशा उसे सत्य से फेर सकती है।
2. यह हदीस बताती है कि तक़दीर पर ईमान लाने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि आदमी कर्म और उपाय आदि से किनारा खींच ले। तक़दीर पर ईमान लाने से कर्म और उपाय आदि का निषेध नहीं होता। ये चीज़ें तो हमारी तक़दीर को निश्चित करती हैं। दुआ से तक़दीर बदलती या निश्चित होती है यह बात वास्तव में हमारे एतिबार से कही गई है, ईश्वरीय ज्ञान में तो हर चीज़ पहले से निश्चित होती है। मिसाल के तौर पर अल्लाह को पहले से मालूम है कि अमुक व्यक्ति मुसीबत में पड़कर दुआ करेगा या नहीं। साधन, कार्य-कारण आदि तक़दीर से भिन्न नहीं हैं। दुआ को लीजिए, दुआ कोई बेजान-सी पुकार नहीं है, बल्कि वह मनुष्य के लिए अतुल बल है। हज़रत यूनुस (अलै०) की जातिवालों पर अल्लाह की यातना टूट पड़नेवाली थी, परन्तु जातिवालों के विलाप, दुआ और विनय से अज़ाब टल गया। यदि ये लोग ईश्वर की ओर न झुकते और दुआ और तौबा का सहारा न लेते तो अल्लाह इन्हें विनष्ट कर देने का फ़ैसला कर चुका था। इनको तबाही से कोई चीज़ नहीं बचा सकती थी। दुआ की इसी विशेषता के कारण यह बात कही गई कि तक़दीर को कोई चीज़ फेर सकती है तो वह दुआ है,

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हमा
पास बाहर आए। उस समय हम लोग तक़दीर के विषय में वाद-विवाद कर र
थे इसपर आप क्रुद्ध हुए, यहाँ तक कि आपका चेहरा लाल हो गया मानो अना
के दाने आपके चेहरे पर निचोड़ दिए गए हों। फिर आपने कहा : क्या तुम्हें इ
बात का हुक्म दिया गया था या मैं इसके लिए तुम्हारे पास रसूल बनाकर भेज
गया हूँ। तुमसे पहले जो लोग गुज़रे हैं जब वे इस विषय में उलझने लगे तो व
विनष्ट हो गए। मैं तुम्हें ताकीद करता हूँ कि तुम कदापि इस बारे में
झगड़ना।[1] —तिरमिज़ी, इब्ने माज

मनुष्य के उपायों में सबसे बड़ा उपाय दुआ ही है। यही कारण है कि जब आदमी क
सारी तदबीरें विफल हो जाती हैं तो वह दुआ का सहारा लेता है।

आयु के बढ़ने का कारण स्वास्थ्य-रक्षक नियमों का पालन और स्वास्थ्यवर्द्धक
चीज़ों का सेवन ही नहीं है, बल्कि इन भौतिक कारणों के अतिरिक्त नेकी-भलाई औ
लोगों के हक़ को अदा करना, लोक-सेवा आदि नैतिक और आध्यात्मिक कारण भ
प्रभावकारी शक्तियाँ हैं जिनसे मनुष्य की आयु में वृद्धि होती है। इसी प्रकार रोज़ी क
कमी या रोज़ी से वंचित रह जाने का कारण केवल यही नहीं होता कि मनुष्य ने रोज़
कमाने में कोई कोताही की है, आदमी अपने गुनाहों के कारण भी रोज़ी से वंचित ह
सकता है। इस हदीस से मालूम होता है कि तक़दीर में बन्दों की दुआओं, उनक
नेकियों और उनके भले-बुरे कर्मों तक का लिहाज़ रखा जाना संभव है। जो लोग
तक़दीर को जब्र और विवशता का नाम देते हैं वे ग़लतफ़हमी पर हैं। लोगों को जिस
हद तक कर्म और संकल्प की स्वतंत्रता प्राप्त है तक़दीर उसे लोगों से छीनती नह
बल्कि यह स्वतंत्रता तो तक़दीर ही की देन है, फिर दोनों में टकराव कैसे हो सकता है
यहाँ यह बात समझ लेने की है कि लोगों को जो कुछ सामर्थ्य और अधिकार प्राप्त
वह सर्वशक्तिमान ईश्वर ही का दिया हुआ है। जिस प्रकार मनुष्य का अस्तित्व औ
उसका जीवन ईश्वर की शक्ति, बल और उसकी कृपा पर आश्रित है, ठीक उसी प्रका
मनुष्य अपने कर्म, संकल्प आदि में भी उसी का मुहताज है। मनुष्य को जो कुछ शक्ति
और सामर्थ्य प्राप्त है वह ईश्वर की शक्ति और सामर्थ्य पर अवलम्बित है। मनुष्य के
पास अपना कुछ भी नहीं है, जो कुछ है, ईश्वर ही का दिया हुआ है।

1. एक दूसरी हदीस भी सामने रहनी चाहिए। हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि
अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति चाहता है कि उसकी रोज़ी
कुशादगी पैदा की जाए और उसकी मृत्यु में विलम्ब किया जाए, उसे नातेदारों के सा
अच्छा व्यवहार करना चाहिए। —बुख़ारी, मुसलिम

तक़दीर का विषय कठिन और गूढ़ है इसलिए इसपर झगड़ने और वाद-विवाद करने से रोका गया। लोगों को इसका ध्यान दिलाया गया कि उन्हें अपने कर्त्तव्यों के पालन में लगना चाहिए, जो उनके जीवन का मूल उद्देश्य है, जिसकी शिक्षा देने के लिए अल्लाह ने रसूलों को भेजा है। तक़दीर पर ईमान लाना काफ़ी है, इस विषय में ज़्यादा खोद-कुरेद करना उचित नहीं, समस्त ईश्वरीय रहस्यों को जान लेना मनुष्य के लिए संभव भी नहीं है।

रिसालत (ईशदूतत्व) की धारणा

मनुष्य को संसार में जहाँ भोजन, जल और प्रकाश आदि की आवश्यकता
वहीं उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि कोई एक मार्गदर्शक हो जो उ
अल्लाह का मार्ग बता सके। जो उसे बता सके कि उसके जीवन का वास्तवि
ध्येय क्या है? अल्लाह ने उसे संसार में क्यों भेजा है? मार्गदर्शन (Guidance
के बिना मनुष्य ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन-यापन नहीं कर सकता, हालाँ
अल्लाह की प्रसन्नता और शाश्वत सफलता की प्राप्ति के लिए आवश्यक है f
मनुष्य का जीवन अल्लाह की दासता और आज्ञापालन में व्यतीत हो। ज
अल्लाह हमारी छोटी-छोटी आवश्यकताओं को नहीं भूलता, बल्कि उन्हें पूरी कर
की व्यवस्था करता है, उससे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह हमें यूँ
संसार में भटकने के लिए छोड़ देगा और हमारे मार्गदर्शन की कोई व्यवस्था
करेगा।

मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए एक मार्गदर्शक तो अल्लाह ने मनुष्य के अप
अन्तर में रख दिया है। अल्लाह ने मानव-प्रकृति को ऐसे साँचे में ढाला है कि व
अच्छे-बुरे विचार और भले-बुरे कर्म में अन्तर कर सके। इसके साथ ही अल्लाह
विश्व में अपनी निशानियाँ और चिह्न फैला रखे हैं जिनके द्वारा मनुष्य को सत्य
लिए दिशा-दर्शन मिल सकता है। किन्तु मानवीय मार्गदर्शन के लिए अन्तर्बोध व
सहज ज्ञान सम्बन्धी (Intuitional) और ऐहिक (Cosmic) दिशा-दर्शन को
पर्याप्त नहीं समझा गया, बल्कि इसके साथ अल्लाह ने मनुष्यों के बीच अप
रसूलों और नबियों को भेजा ताकि वे लोगों को जीवन का सत्य और स्वाभावि
मार्ग दिखाएँ और उन्हें आचार-विचार की प्रत्येक पथभ्रष्टता से बचाएँ। अल्लाह
जिन महान पुरुषों को रिसालत (ईशदूतत्व) का पद प्रदान किया उन्हें उस
असाधारण ज्ञान और सूझ-बूझ दी ताकि वे स्वयं सत्यमार्ग पर स्थिर रह सकें औ
दूसरे लोगों को सत्यमार्ग दिखाने के प्रति अपने दायित्वों को पूरा कर सकें
पथभ्रष्टता और गुमराही से बचने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य रसूल पर ईमा
लाए और उसके आदेशों का पालन करे। रसूल अल्लाह के सन्देष्टा होते हैं
उनपर ईमान लाए बिना न अल्लाह के विषय में मनुष्य की धारणा और कल्प
ठीक हो सकती है और न दूसरी परोक्ष सम्बधी वास्तविकताओं के सम्बन्ध में उ

ऐसा ज्ञान मिल सकता है जिसपर पूरा भरोसा किया जा सके और न ही उसका जीवन ईश्वरीय इच्छा के अनुसार व्यतीत हो सकता है।

फिर रिसालत (ईशदूतत्व) पर ईमान ही वह चीज़ है जो सारे मनुष्यों को एक आस्था और विश्वास पर संगठित कर सकती है। लोगों में धारणा एवं विचार सम्बन्धी जितने भी मतभेद पाए जाते हैं उनका कारण वास्तव में गुमान, अटकल और अनुमान का अनुपालन है। वास्तविकता विभिन्न नहीं हो सकती। रसूलों के पास अल्लाह का दिया हुआ वास्तविक ज्ञान होता है। उन्होंने एक सत्य की ओर लोगों को आमंत्रित किया। संसार के विभिन्न भागों में जितने भी रसूल आए सबकी मौलिक शिक्षा एक थी। सबने लोगों को एक एकेश्वरवाद, ईश-दासता और ईश-उपासना की ओर बुलाया और उन्हें आख़िरत के दिन से सचेत किया। अल्लाह के रसूल ने जो आदेश भी दिया वह अल्लाह की ओर से दिया और जीवन की जिस पद्धति की शिक्षा भी दी वह वही है जो अल्लाह की ओर से उन्हें मिली थी। अल्लाह के रसूलों ने जो शिक्षा दी है वह सत्य और न्याय पर अवलम्बित है। वह अटकल, अनुमान और तुच्छ इच्छाओं और वासनाओं से रहित है।

अल्लाह की ओर से लोगों के मार्गदर्शन के लिए बहुत-से रसूल और नबी आए जिनमें से कुछ का क़ुरआन में उल्लेख भी हुआ है। सबके अन्त में अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अपना रसूल और पैग़म्बर बनाकर भेजा। आपका जीवन-चरित्र और आपके जीवन-वृत्तांत विस्तार के साथ सुरक्षित हैं। आपकी लाई हुई किताब उन्हीं शब्दों के साथ मौजूद है जिन शब्दों में आपने उसे संसार के सामने प्रस्तुत किया था। पिछले नबियों के जीवन-चरित्र और उनकी शिक्षाएँ आज अपने वास्तविक रूप में सुरक्षित नहीं हैं। उनसे जिस चीज़ का भी सम्बन्ध जोड़ा जाता है, वह ऐसा नहीं जिसको पूरे भरोसे के साथ लोगों के सामने प्रस्तुत किया जा सके। पिछले नबियों की मौलिक शिक्षाएँ क्या थीं और उन्होंने लोगों को किस मार्ग की ओर बुलाया था इसे मालूम करने का एक ही साधन ऐसा है जिसपर पूरा विश्वास किया जा सकता है। वह है अल्लाह के अन्तिम रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का चरित्र, उनकी जीवनी और उनका लाया हुआ सन्देश, जो अपने वास्तविक रूप में हमारे सामने मौजूद है। आपने संसार को जिस मार्ग की ओर बुलाया है वही वह मार्ग है जिसकी ओर पिछले नबियों ने भी लोगों को आमंत्रित किया था।

पिछले नबियों की नुबूवत (ईशदूतत्व) विशेष समय और विशेष लोगों के लिए थी जिनमें वे आए थे। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत को अल्लाह ने किसी विशेष युग या किसी विशेष जाति तक सीमित नहीं किया; बल्कि आपको अल्लाह ने क़ियामत तक के लिए और सारे संसार का रसूल बनाकर भेजा। आपके द्वारा अल्लाह ने दीन (धर्म) को पूर्ण कर दिया। मार्गदर्शन की जो जीवनदायिनी निधि पिछले नबियों के द्वारा भेजी जाती रही है, पूर्ण कर दी गई। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के पश्चात न किसी नवीन नुबूवत की आवश्यकता है और न आपके पश्चात कोई नया नबी आनेवाला है। अब सत्य-मार्ग पाने और शाश्वत-सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य आपका अनुसरण करे। जिसने आप (सल्ल०) का इनकार किया उसके लिए संभव नहीं कि वह सही रास्ते को पा सके और दोनों लोक में सफल हो सके। आप (सल्ल०) का इनकार वास्तव में पिछले सभी नबियों का इनकार है। इसलिए कि आप (सल्ल०) उसी धर्म के आमंत्रणदाता हैं जिसका आमंत्रण पिछले नबियों ने दिया है। समस्त नबियों का सम्बन्ध एक गिरोह से है।

रहा यह प्रश्न कि नबियों और रसूलों के द्वारा अल्लाह ने अपना सन्देश क्यों भेजा? जो अल्लाह रसूलों को अपनी इच्छा और अपने सन्देश की सूचना दे सकता था, वह सीधे (Directly) प्रत्येक व्यक्ति को मार्ग क्यो नहीं दिखाता? यह प्रश्न केवल दृष्टि की संकीर्णता के कारण ही किया जाता है। विश्व की वर्तमान व्यवस्था और मार्गदर्शन की इस रीति में कि अल्लाह प्रत्यक्ष प्रत्येक व्यक्ति को सम्बोधित करे, कोई सम्पर्क नहीं है। रहस्यमयता इस जगत का सामान्य नियम (General law) है। संसार की प्रत्येक वस्तु अपने अस्तित्व को स्थिर रखने और अपने विकास के लिए हर क्षण ईश्वरीय अनुदान पर आश्रित है, परन्तु फिर भी बीच में कार्य-कारण के इतने परदे डाले गए हैं कि वास्तविकता का प्रत्यक्ष निरीक्षण किसी के लिए संभव नहीं है। रहस्यमयता के नियम से मनुष्य को अलग कर देने का अर्थ यह है कि रहस्यमयता की समस्त व्यवस्था निरर्थक हो जाए। इसलिए रिसालत और वह्य (दैवी प्रकाशन, Revealation) या रिसालत ही मार्गदर्शन का वह साधन है जो वर्तमान जगत के अनुकूल है। रिसालत ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य को जीवन के स्पष्ट आदेश भी मिल सकते हैं और साथ-साथ रहस्यमयता का नियम भी शेष रह सकता है। इस छिपाव और रहस्यमयता से अभीष्ट वास्तव में मनुष्य की अन्तःप्रेरणा और उसके संकल्प आदि की परीक्षा है।

रिसालत पर ईमान

1. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़सम है उस (अल्लाह) की जिसके हाथ में मुहम्मद के प्राण हैं, यदि मूसा तुम्हारे सामने प्रकट हों और तुम उनका अनुसरण करो और मुझे छोड़ दो, तो निश्चय ही तुम सीधे मार्ग से भटक जाओगे। यदि मूसा जीवित होते और मेरी नुबूवत (के समय) को पाते, तो मेरा अनुसरण करते।[1] —दारमी, मुसनद अहमद

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : उस (अल्लाह) की क़सम जिसके हाथ में मुहम्मद के प्राण हैं, इस उम्मत (अर्थात उस दौर) का जो कोई भी—यहूदी हो या ईसाई—मेरी ख़बर सुन ले फिर वह उस चीज़ पर ईमान लाए बिना मर जाए, जिसे देकर मुझे भेजा गया है, तो वह (जहन्नम की) आगवालों में ही होगा।[2] —मुसलिम

3. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) के पास आया, उसने कहा : "ऐ अल्लाह के रसूल ! ईसाइयों में से एक व्यक्ति है जो 'इनजील' को दृढ़तापूर्वक पकड़े हुए है (अर्थात इनजील के आदेशों

---

1. हज़रत उमर (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की सेवा में तौरात की कोई प्रति लेकर आए। उस अवसर पर आपने यह बात कही है जिसका वर्णन इस 'हदीस' में हुआ है। आपका ध्येय वास्तव में इस बात को मन में बिठाना था कि सत्य-मार्ग पाने के लिए यह बात आवश्यक है और पर्याप्त भी कि तुम मेरा अनुवर्तन करो। आज यदि हज़रत मूसा (अलै०) मौजूद होते, जिनपर तौरात का अवतरण हुआ था, तो उनके लिए भी अनिवार्य होता कि वे मेरी लाई हुई शरीअत (धर्म विधान) का पालन करें। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की लाई हुई शरीअत में ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं कि वह क़ियामत तक बदलते हुए समयों में साथ दे सके और समस्त लोगों के ग्रहण करने योग्य हो सके। पिछली शरीअत और उनके आदेश विभिन्न समयों और विभिन्न जातियों के लिए उतरे थे।
2. अर्थात् जिस व्यक्ति को भी आप (सल्ल०) की नुबूवत और रिसालत की सूचना मिल जाए उसके लिए आवश्यक है कि वह आप (सल्ल०) की नुबूवत और रिसालत पर ईमान ले आए और आपका अनुवर्तन करे। यहूदी या ईसाई ही क्यों न हों, जो पिछले नबियों और अल्लाह की पिछली किताबों पर ईमान रखते हैं, उनके लिए भी आवश्यक है कि वे आप (सल्ल०) पर ईमान लाएँ।

का पूर्णतः पालन करता है) और यहूदियों में एक व्यक्ति है जो 'तौरात' व
दृढ़तापूर्वक पकड़े हुए है, वह अल्लाह और रसूल पर ईमान भी रखता है फिर भ
वह आप (की लाई हुई शरीअत अर्थात धर्म-विधान) का अनुसरण नहीं करता, त
कहिए उसके विषय में आप क्या कहते हैं?" आपने कहा : "जिस यहूदी य
ईसाई ने मेरे बारे में सुना फिर उसने मेरा अनुसरण नहीं किया तो वह (जहन्न
की) आग में (जानेवाला) है।" —दारक़ुतन

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसू
(सल्ल०) ने कहा : मैं (नबियों में) मरयम के बेटे ईसा से सबसे ज़्यादा करीब ह
दुनिया में भी और आख़िरत में भी। नबी परस्पर सौतेले भाई की तरह होते ह
जिनका बाप एक होता है और माएँ अलग-अलग होती हैं, और उनका दीन (धर्म
एक है[1] और हम दोनों के बीच कोई नबी नहीं है।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

5. हज़रत उबादा बिन सामित (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसू
(सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति इसकी गवाही दे कि अल्लाह के सिवा कोई इला

---

1. अर्थात यद्यपि अल्लाह के नबी विभिन्न युगों और विभिन्न देशों में पदार्पण करते
परन्तु उनका दीन (धर्म) एक ही होता है। सभी ने एक ही मार्ग दिखाया। सभी ने
अल्लाह की बन्दगी की ओर लोगों को बुलाया। सब एक ही अल्लाह के 'रसूल' य
नबी थे। समय और परिस्थिति के अनुसार आदेशों और क़ानून में जो भी अन्तर रह
हो, परन्तु मूल धर्म और मौलिक धारणाओं और विचारों में कोई अन्तर नहीं था
हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) संसार के समक्ष ठीक वही धर्म प्रस्तुत कर रहे हैं जो दूस
नबियों ने प्रस्तुत किया है।
2. अर्थात हज़रत ईसा (अलै०) के पश्चात हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ही को अल्लाह ने
रसूल (अपना सन्देष्टा) बनाकर भेजा था, बीच में कोई और नबी नहीं आया। रिवायतों
से मालूम होता है कि हज़रत ईसा मसीह (अलै०) को अल्लाह ने आसमान पर उठा
लिया। वे अभी जीवित हैं। उनका आसमान की ओर उठाया जाना वास्तव में उनकी
हिजरत है। क़ियामत के निकट वे संसार में पदार्पण करेंगे। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०
की रिसालत और हज़रत ईसा मसीह (अलै०) के दोबारा पदार्पण के बीच में कोई नबी
या रसूल आनेवाला नहीं है। बाइबिल में जिन बारह रसूलों का उल्लेख हुआ है वे
अल्लाह के रसूल नहीं बल्कि हज़रत मसीह (अलै०) के उत्तराधिकारी और सन्देशवाहक
या दूत थे। (दे० लूक़ा 6 : 13)

(पूज्य) नहीं, और मुहम्मद उसके बन्दे और उसके रसूल हैं और ईसा अल्लाह के बन्दे, और उसके रसूल हैं, उसका कलिमा (शब्द) जो उसने मरयम की ओर भेजा और उसकी ओर की आत्मा[1] हैं और जन्नत और (जहन्नम की) आग सत्य हैं, अल्लाह उसे जन्नत में दाखिल करेगा जिस कर्म पर वह हो।[2] —बुख़ारी

6. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से कोई ईमानवाला न होगा यहाँ तक कि उसकी इच्छा

---

1. क़ुरआन में भी है : "मसीह, सुत मरयम तो बस अल्लाह के रसूल हैं, उसका 'कलिमा' (शब्द, हुक्म) है जो उसने मरयम की ओर भेजा और उसकी ओर की आत्मा, तो अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाओ और तीन (ईश्वर) न कहो। बाज़ आ जाओ तुम्हारे लिए यही अच्छा है। अल्लाह तो केवल अकेला इलाह (पूज्य) है यह उसकी महिमा के प्रतिकूल है कि उसके कोई बेटा हो, उसी की हैं सारी चीज़ें जो आकाशों और धरती में हैं और अल्लाह का कार्य साधक होना काफ़ी है।" —क़ुरआन 4 : 171
हदीस, और क़ुरआन की इस आयत से स्पष्ट है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) भी अल्लाह के रसूल और उसके बन्दे हैं और हज़रत मसीह (अलै०) भी अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं। हज़रत मसीह (अलै०) को ईश्वर या ईश्वर का बेटा कहना वास्तविकता के विरुद्ध और अन्याय है। यह सत्य है कि हज़रत मसीह (अलै०) बिना पिता के पैदा हुए हैं। इसलिए वे अल्लाह की एक बड़ी निशानी अवश्य हैं, परन्तु उन्हें अल्लाह या अल्लाह का बेटा समझना सत्य के सर्वथा प्रतिकूल है। वे उसी तरह अल्लाह के शब्द कुन (हो जा) से पैदा हो गए हैं जिस प्रकार हज़रत आदम (अलै०) को अल्लाह ने अपने हुक्म से पैदा किया है। अल्लाह के 'कुन' शब्द और धरती के तत्वों में अल्लाह की ओर से आत्मा का संचार होने से जिस तरह आदम (अलै०) बिना माँ-बाप के पैदा हो गए उसी तरह मसीह (अलै०) भी अल्लाह के कलिमा 'कुन' (हो जा शब्द अर्थात अल्लाह के हुक्म) और मरयम के गर्भाशय में अल्लाह की ओर से आत्मा के डाले जाने से बिना पिता के पैदा हो गए हैं। क़ुरआन में एक जगह कहा भी गया है : "ईसा का हाल अल्लाह की दृष्टि में ऐसा ही है जैसे आदम का, अल्लाह ने उसे मिट्टी से पैदा किया, फिर उससे कहा : हो जा, तो वह हो जाता है।" —क़ुरआन 3 : 59
2. अर्थात जो व्यक्ति तौहीद (एकेश्वरवाद), रिसालत, और आख़िरत पर ईमान रखता है और अल्लाह के दीन का इनकार नहीं करता वह जन्नत में अवश्य दाख़िल होगा। यह दूसरी बात है कि किसी के कर्म अच्छे न हों और उसे जन्नत में दाख़िल होने से पहले सज़ा भुगतनी पड़े। "जिस कर्म पर वह हो" का एक अर्थ यह भी हो सकता है कि जन्नत में मनुष्य का स्थान उसके कर्म के अनुसार होगा।

उस (धर्म-विधान) के अधीन हो जाए जिसे लेकर मैं आया हूँ।[1] —शरहुस्सुन्नह

वह्य-अवतरण

1. हज़रत उबादा बिन सामित (रज़ि०) कहते हैं कि जब नबी (सल्ल०) पर वह्य आती तो उस (की सख़्ती) से आपको तकलीफ़ होती और आपके चेहरे का रंग बदल जाता। एक रिवायत में है कि (उस समय) आप अपने सिर को झुका लेते और आपके सहाबा भी अपने सिरों को झुका लेते।[2] फिर जब वह्य का अवतरण समाप्त हो जाता तो आप अपना सिर उठाते। —मुसलिम

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर वह्य का अवतरण होता तो जब तक वह्य का अवतरण समाप्त न हो जाता हममें से किसी की मजाल न थी कि वह आपकी ओर निगाह उठा सकता।[3] —मुसलिम, हाकिम

---

1. मतलब यह है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर ईमान लाने का हक़ उस वक़्त अदा होता है जब आदमी अपनी इच्छा को उस शिक्षा के अनुकूल बनाए जिसे लेकर आप आए हैं और अपनी मनमानी करने के बदले आपकी शिक्षाओं और आदेशों का पालन किया जाए। यहाँ तक कि अपनी इच्छाओं और आपके लाए हुए धर्मादेशों में कोई भेद शेष न रहे। मन की शुद्धता और विकास के पश्चात यह बात अपने आप प्राप्त हो जाती है कि मनुष्य पूरी रुचि और अनुराग के साथ अल्लाह के रसूल के आदेश और आपके लाए हुए ग्रन्थ के अनुसार जीवन यापन करने लग जाए।
2. अर्थात जब आपपर वह्य अवतरित होती और दिव्य-लोक में प्रत्यक्षतः आपका सम्पर्क होता तो स्वभावतः आपकी लौकिक चेतना और अलौकिक अनुभव शक्ति में एक प्रकार का संघर्ष होता जिसके कारण आपको एक प्रकार की तकलीफ़ होती, यहाँ तक कि इसका प्रभाव आपके चेहरे से भी व्यक्त होता था। उस समय आप अपना सिर झुका लेते थे। वह्य की कठिनाई के अतिरिक्त वह्य की महानता और उसकी प्रतिष्ठा के लिए भी यह आवश्यक था कि उस समय आपका सिर झुक जाए। और उन लोगों के सिर भी झुक जाएँ जो उस समय आपके पास मौजूद हों। क़ुरआन अल्लाह की वह्य ही है जिसके बारे में कहा गया है : "यदि हम इस क़ुरआन को किसी पर्वत पर उतारते तो तुम उस (पर्वत) को देखते कि सहमा हुआ है और फटा जाता है अल्लाह के डर से।"
—क़ुरआन, 59 : 21
3. वह्य-अवतरण के समय नबी (सल्ल०) की जो हालत होती थी उससे ऐसे तेज और प्रताप का प्रदर्शन होता था कि उस समय कोई व्यक्ति इसका साहस नहीं कर सकता था कि आपकी ओर निगाह उठा सके।

3. हज़रत आइशा (रजि०) से उल्लिखित है कि हारिस बिन हिशाम (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा : ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) आपपर वह्य कैसे आती है? अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कभी-कभी वह मुझपर इस प्रकार आती है जैसे घण्टी की आवाज़ हो और यह मुझपर सबसे अधिक कठिन होता है।[1] फिर इसका सिलसिला मुझसे कट जाता है और जो कुछ कहा गया होता है उसे मैं सुरक्षित कर चुका होता हूँ।[2] और कभी-कभी फ़रिश्ता एक पुरुष के रूप में मेरे सामने प्रकट होता है, 'वह मुझसे बात करता है, तो जो कुछ वह कहता है मैं याद कर लेता हूँ।[3] आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि मैंने आपको देखा कि कड़ाके के जाड़े के दिन में आपपर वह्य अवतरित हुई फिर उसका सिलसिला समाप्त हुआ और हालात यह थी कि आपके ललाट से पसीना बह रहा था।[4]

—बुख़ारी

4. हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) कहते हैं कि (एक बार) अल्लाह ने अपने रसूल पर वह्य उतारी, उस समय आपकी रान मेरी रान पर थी। उसका मुझपर इतना बोझ पड़ा कि मुझे भय हुआ कि कहीं मेरी रान न टूट जाए।[5] —बुख़ारी

---

1. अर्थात इस प्रकार की वह्य के समय जिसमें घण्टी की-सी आवाज़ महसूस होती है, मुझे कठिन हालत से गुज़रना पड़ता है।
2. अर्थात वह्य के अवतरण के पश्चात वह्य का विषय और वार्ता मुझे पूर्ण रूप से याद हो जाती है और वह्य के द्वारा जो सन्देश मुझ तक अल्लाह की ओर से आता है वह मुझे कण्ठस्थ हो जाता है।
3. अर्थात कभी ऐसा होता है कि अल्लाह का फ़रिश्ता मानव-रूप में मेरे पास आता है, वह अल्लाह की ओर से जो सन्देश भी सुनाता है उसे मैं याद कर लेता हूँ।
4. अर्थात कड़ाके के जाड़े में भी मैंने देखा कि जब आपपर वह्य का अवतरण हुआ तो आपका ललाट पसीने से भीग गया।
5. यह हज़रत ज़ैद बिन साबित का अपना व्यक्तिगत निरीक्षण है। वे नबी (सल्ल०) के अत्यन्त निकट थे। नबी (सल्ल०) की रान उनकी रान पर थी। संयोग से आप (सल्ल०) पर वह्य उतरने लगी। वह्य के कारण आपकी रान का भार इतना बढ़ गया कि हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) को ऐसा लगा कि जैसे उनकी रान टूट जाएगी। कभी ऐसा भी होता था कि नबी (सल्ल०) ऊँटनी पर सवार होकर सफ़र कर रहे होते थे कि आप पर वह्य उतरने लगती थी। ऊँटनी पर उसका इतना बोझ पड़ता कि वह बोझ से दब जाती थी और ऐसा लगता था कि वह बोझ को सहन न कर सकेगी और ज़मीन पकड़ लेगी।

5. सफ़वान बिन याला (रज़ि०) से उल्लिखित है कि याला (रज़ि०) ने उमर (रज़ि०) से कहा कि मुझे नबी (सल्ल०) को दिखाना जब आपपर 'वह्य' का अवतरण हो।[1] वे कहते हैं कि उस बीच में जबकि आप जेराना[2] में थे और आपके साथ कुछ सहाबा भी थे. . . . आपपर वह्य का अवतरण हुआ। उमर (रज़ि०) ने याला (रज़ि०) को संकेत किया। याला आए। उस समय अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के ऊपर एक कपड़ा था जिसके द्वारा आपपर छाया की गई थी। उन्होंने भीतर सिर डाला तो क्या देखा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का मुखमण्डल लाल हो गया है और घरघराहट की आवाज़ आ रही है।[3] फिर (थोड़ी देर में) आपकी यह हालत समाप्त हुई। —बुख़ारी

रसूल (सल्ल०) का रूप-वर्णन

1. हज़रत अली इब्ने अबू तालिब (रज़ि०) जब नबी (सल्ल०) की विशेषता का वर्णन करते तो कहते कि आप न तो बहुत अधिक लम्बे थे और न क़द के छोटे थे, बल्कि लोगों में आप मध्य क़द के थे।[4] आपके केश न बहुत घुँघराले थे

---

1. अर्थात हज़रत याला (रज़ि०) चाहते थे कि जब नबी (सल्ल०) पर वह्य आए तो उस समय देखें कि आपकी क्या हालत होती है।
2. यह मक्का और ताइफ़ के मध्य एक स्थान है।
3. वह्य की सख़्ती के कारण आपका चेहरा लाल हो गया था और गले से घरघराहट की आवाज़ आ रही थी। जब वह्य अवतरित हो चुकी तो आपकी यह असाधारण दशा शेष नहीं रही बल्कि आप सामान्य रूप से जैसे वह्य के पहले थे, उसी हालत में आ गए।

   वह्य-अवतरण के सिलसिले में और बहुत-सी रिवायतें हैं, यहाँ उदाहरणार्थ कुछ रिवायतें प्रस्तुत की गई हैं। इन रिवायतों (उल्लेखों) से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह्य अवतरण के समय नबी (सल्ल०) पर विशेष प्रकार की कैफ़ियत छाई होती थी और आपकी हालत बदल जाती थी जिसका एहसास आपके निकट रहनेवाले लोगों को भी हो जाता था। और वे समझ जाते थे कि इस समय आपपर वह्य अवतरित हो रही है। वह्य-अवतरण के पश्चात आप सहाबा (रज़ि०) को सूचित करते थे कि आपपर अल्लाह की ओर से क्या सन्देश अवतरित हुआ है। क़ुरआन करीम जो वह्य के द्वारा आपपर अवतरित हो रहा था, उसे आप नियमित रूप से वह्य समाप्त होने के पश्चात लिपिबद्ध करा दिया करते थे।
4. रिवायतों से मालूम होता है कि जब आप लोगों के बीच होते तो आपका क़द दूसरों से

और न बहुत सीधे थे, बल्कि हल्का बल खाए हुए थे। आप न तो बहुत मोटे थे और न छोटे चेहरेवाले थे। चेहरा (बिलकुल मंडलाकार होने के बदले) हल्की गोलाई लिए हुए[1] और श्वेत लालिमा लिए था।[2] आपकी आँखें काली और पलकें लम्बी थीं[3], हड्डियों के सिरे अर्थात जोड़ मोटे थे। शरीर पर अधिक बाल न थे। सीने से नाभि तक बालों की एक पतली रेखा थी। हथेलियाँ और पाँव मांसयुक्त थे।[4] जब चलने को क़दम उठाते तो ऐसा मालूम होता मानो ऊँचाई से ढाल में उतर रहे हैं।[5] जब किसी ओर ध्यान देते तो पूरे शरीर के साथ ध्यान देते।[6] आपके दोनों कन्धों के बीच नुबूवत की मुह्र (छाप) थी।[7] और आप नबियों

निकला हुआ मालूम होता था। आप इतने ज़्यादा लम्बे न थे कि बुरा लगता, आपका क़द लम्बाई लिए हुए अवश्य था।

1. रिवायत में का-न असीलुलख़द्द (आप लम्बे मुखारबिन्दुवाले थे) के शब्द आते हैं।
2. आपका रंग गोरा लावण्य (सलोनापन) लिए हुए सरस, सौन्दर्य था।
3. आंतरिक गुणों के साथ अल्लाह ने आपको शारीरिक सुन्दरता भी प्रदान की थी। रिवायतों से मालूम होता है कि सुन्दरता और आकर्षण की समस्त चीज़ें अल्लाह ने आपको प्रदान की थीं। आपका माथा चौड़ा था। मुख अत्यन्त पवित्र था। मुखमंडल उच्च विचारों की प्रतीक और निगाहें पवित्र भावों की सूचक थीं। अधिकतर आप सोच-विचार में डूबे रहते। लोगों से मिलते तो होठों पर मुस्कराहट खेलती होती। आवाज़ में भारीपन था और उसमें अपनी ओर आकृष्ट कर लेने की अद्‌भुत क्षमता थी। आपकी ख़ामोशी में भी मनोहरता होती थी। आपके सौन्दर्य और गम्भीरता में आनन्द-तत्व पाया जाता था। आपकी कोई अदा भी मनोहरता से वंचित न होती थी।
4. तलवे कुछ गहरे थे। आपके शुभ चरण बहुत ही चिकने थे। एड़ियों पर मांस बहुत कम था।
5. आप चलते तो बलपूर्वक आगे को तनिक झुककर चलते थे। तेज़ गति से चलते। क़दम जमाकर रखते थे। देखने पर ऐसा लगता मानो आप ढालू भूमि में उतर रहे हैं। आपकी चाल-ढाल आदि हर चीज़ से आपके सन्तुलित जीवन और चरित्र का पता चलता।
6. अर्थात किसी की ओर रुख़ करते तो अभिमानी व्यक्तियों की तरह नहीं बल्कि उदार और विनयशील व्यक्ति की तरह पूरे तौर पर रुख़ करते थे। आप किसी ओर मुख करते तो उसमें किसी समय भी किसी तरह की बेपरवाई नहीं होती थी।
7. रिवायतों से मालूम होता है कि आपके दोनों कन्धों के बीच बाएँ कन्धे की नर्म हड्डी के पास कबूतर के अण्डे की तरह मांस इकट्ठा था जिसपर सियाह तिल थे। यह भी दूसरी

के समापक थे। आप लोगों में उदार और दानशील और ज़बान के अत्यन्त सच्चे थे। स्वभाव अत्यन्त कोमल और जाति के अत्यन्त भद्र और श्रेष्ठ थे। जो को: आपको एकाएक देखता वह आपसे भयभीत हो जाता और जो पहचानकर आपसे मिलता-जुलता वह आपका अनुरागी बन जाता।[1] आपकी प्रशंसा करनेवाल कहता है कि मैंने आप (सल्ल०) जैसा कोई नहीं देखा, न आपसे पहले और न आपके बाद—आपपर अल्लाह की दयालुता और सलामती हो। —तिरमिज़ी

2. अबू उबैदा बिन मुहम्मद बिन अम्मार बिन यासिर कहते हैं कि मैंने रबीअ बिन्त मुअव्विज़ बिन अफ़रा से कहा कि हमसे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के गुण बयान कीजिए। उन्होंने कहा : बेटे ! यदि तुम उन्हें देखते तो इस तरह देखते जैसे सूर्य उदय हुआ है।[2] —दारमी

3. हज़रत कअब बिन मालिक (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को जब (किसी कारण) प्रसन्नता होती तो आपका मुखमंडल ऐसा चमक उठता मानो आपका मुख चाँद का टुकड़ा है और हम इससे परिचित होते थे।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

निशानियों की तरह आपकी नुबूवत का एक प्रत्यक्ष लक्षण था। इसे मुह्र नुबूवत कहते थे।

1. अर्थात पहले-पहल जो कोई आपको देखता उसपर हैबत और रोब छा जाता था, परन्तु जो आपके क़रीब और आपके सम्पर्क में आता और निकट से आपको देखता और आपसे मिलता-जुलता वह आपसे प्रेम करने लगा। मित्रों के अलावा इस बात की गवाही शत्रुओं तक ने दी है। हुदैबिया की सन्धि के अवसर पर क़ुरैश ने उरवा बिन मसऊद को अपना प्रतिनिधि बनाकर आपके पास भेजा। उसने वापसी पर क़बीला क़ुरैश के सम्मुख बयान दिया : "ऐ क़ुरैश के लोगो। मैं किसरा के पास उसके शाही दरबार में जा चुका हूँ। क़ैसर के पास उसके शाही दरबार में जा चुका हूँ। और नज्जाशी के पास उसके शाही दरबार में जा चुका हूँ। अल्लाह की क़सम ! किसी जाति में किसी भी बादशाह की वह शान (भव्यता) नहीं देखी जो शान मुहम्मद की मैंने उसके साथियों के बीच देखी। सच कहता हूँ मैंने ऐसे लोगों को देखा है जो किसी भी हालत में उसका साथ नहीं छोड़ सकते। अब तुम सोच लो।"
2. अर्थात अल्लाह ने आपको पूर्ण रूप से सौन्दर्य, महिमा और प्रतिष्ठा प्रदान की थी।
3. अर्थात उस चमक को देखकर हमें आपकी प्रसन्नता का ज्ञान हो जाता था। आपके पवित्र हुलिए के विषय में रिवायतें बहुत-सी हैं। यहाँ उदाहरणार्थ केवल तीन रिवायतें दी गई हैं। नबी अपनी जातिवालों में विशिष्ट व्यक्तित्व का अधिकारी होता है। उसका चरित्र उसके सच्चे और सत्य पर होने का प्रत्यक्ष प्रमाण होता है। मनुष्य का

आप (सल्ल०) की मिसाल

1. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि कुछ फ़िरिश्ते नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए जबकि आप सो रहे थे। उन्होंने (आपस में) कहा : तुम्हारे इस साथी (अर्थात नबी सल्ल०) की एक मिसाल है उसे इनके सामने बयान करो। उनमें से किसी ने कहा : वे तो सो रहे हैं। इसपर दूसरे ने कहा : निस्संदेह आँखें सोती हैं परन्तु मन जाग्रत है। फिर उन्होंने कहा : आपकी मिसाल ऐसी है जैसे किसी व्यक्ति ने एक घर बनाया और उसमें खाने का एक दस्तरख़्वान लगाया और बुलानेवाले को भेजा (कि लोगों को खाने के लिए बुलाए) जिसने इस बुलानेवाले की बात मान ली। वह घर में दाख़िल हुआ और उसने दस्तरख़्वान से खाना खाया। और जिसने बुलानेवाले की बात नहीं मानी वह न घर में दाख़िल हुआ और न दस्तरख़्वान से खाना खाया। फिर उन्होंने कहा : आपके लिए इस (मिसाल) को स्पष्ट करो ताकि आप (सल्ल०) इसे समझ जाएँ। तो उनमें से किसी ने कहा : वे सो रहे हैं और उनमें से कुछ ने कहा : (ऐसा नहीं है) आँखे सो

मुख उसके व्यक्तित्व, कर्म, स्वभाव और उसके चरित्र का प्रतीक होता है। किसी की दृष्टि में यदि दोष न हो तो वह नबी को देखने के बाद अवश्य ही उसके सच्चे होने की गवाही देगा। इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि केवल मुख देखकर लोगों ने आपके सच्चे होने की गवाही दी। हुसैन यहूद के एक प्रगाढ़ विद्वान थे। नबी (सल्ल०) जब मदीना पहुँचे तो वे आपको देखने के लिए गए। बाद में उन्होंने लोगों से कहा : मैंने जैसे ही आपको देखा, समझ गया कि आपका चेहरा एक झूठे मनुष्य का चेहरा नहीं हो सकता। इसी प्रकार जब अबू रमसह तैमी अपने बेटे के साथ नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और लोगों ने दिखाया कि अल्लाह के रसूल ये हैं, तो देखते ही उन्होंने कहा कि वास्तव में यह अल्लाह के नबी हैं (शमाइल- तिरमिज़ी)। एक बार मदीना में एक तिजारती क़ाफ़िला आया और नगर से बाहर ठहरा। नबी (सल्ल०) ने उससे एक ऊँट का सौदा किया और मूल्य चुका देने का वादा करके ऊँट लेकर चले आए। बाद में क़ाफ़िलेवालों को चिन्ता हुई कि बिना जान-पहचान के मामला किया है, कहीं ऐसा न हो कि हमारा धन मारा जाए। इस अवसर पर एक प्रतिष्ठित महिला ने कहा : इतमिनान रखो, मैंने उसका चेहरा देखा है जो पूर्णिमा की भाँति प्रकाशमान था। वह कदापि तुम्हारे साथ बुरा मामला करनेवाला नहीं हो सकता। यदि ऐसा व्यक्ति (ऊँट का धन) अदा न करे तो मैं अपने पास से अदा कर दूँगी।

—अल मवाहिबुल-लदुननियह, भाग 1, पृ० 244

रही हैं परन्तु मन जाग्रत है। इसपर उन्होंने कहा : घर (से अभिप्रेत) जन्नत है और बुलानेवाले मुहम्मद (सल्ल०) हैं, तो जिस किसी ने मुहम्मद (सल्ल०) की आज्ञा का पालन किया, उसने अल्लाह की आज्ञा का पालन किया और जिसने मुहम्मद (सल्ल०) की अवज्ञा की, उसने प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह की अवज्ञा की।[1]

---

1. इस हदीस में नबी (सल्ल०) के लिए जो मिसाल पेश की गई हैं उससे स्पष्ट रूप से यह बात सामने आ जाती है कि आपका स्थान क्या है। इस मिसाल से मालूम हुआ कि अल्लाह ने आपको आवाहक बनाकर भेजा है। आप लोगों को उस घर की ओर बुलाते हैं जो शाश्वत सफलता और सलामती का घर है जिसे जन्नत कहते हैं, जिसे अल्लाह ने अपने उन बन्दों के लिए तैयार किया है जो उसके आवाहक की पुकार को सुनें और मानें। ऐसे लोग जन्नत में प्रवेश करेंगे और उसमें चुने हुए खानों को खाएँगे और उसकी चीज़ों से फ़ायदा उठाएँगे। सदैव का सुख और आनन्द उन्हें प्राप्त होगा। कुरआन में भी कहा गया है—"(तुम नाशवान जीवन पर रीझते हो) और अल्लाह तुम्हें सलामती के घर (जन्नत) की ओर बुलाता है और जिसे चाहता है सीधे रास्ते पर लगा देता है।" —कुरआन, 10 : 25

   इस हदीस से एक मौलिक बात यह भी मालूम हुई कि अल्लाह का आज्ञाकारी बनने का एक मात्र उपाय यह है कि आदमी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के आदेशों का पालन करे। आप अल्लाह के रसूल हैं। आप लोगों को जिन आदेशों के पालन का हुक्म देते हैं वे अल्लाह ही के दिए हुए आदेश हैं। मनुष्य तक अल्लाह के आदेश रसूलों ही के द्वारा पहुँचते हैं। अल्लाह की बन्दगी और उसके आज्ञापालन से जो आनन्द और परितोष प्राप्त होता है वह कहीं नहीं मिल सकता। प्राचीन ग्रन्थों में भी अल्लाह के आदेश और उसके दिए हुए नियमों को अनुपम और मनोरम विधि कहा गया है।

   "प्रभुवर का (दिया हुआ) धर्मविधान पूर्ण है, वह प्राण को बहाल करता है... प्रभुवर के नियम सिद्ध हैं, वे मन को आनन्दित करते हैं... प्रभुवर की आज्ञा दोषरहित है, वह आँखों में ज्योति ले आती है : प्रभुवर के आदेश सत्य हैं और पूर्ण रूप से ठीक हैं, वे स्वर्ण बल्कि कुन्दन से भी बढ़कर प्रिय हैं, वे मधु से और (मधु के) छत्ते के टपकों से भी मधुर हैं।" (ज़बूर, भजन संहिता 19 : 7-12)

   इसपर भी मनुष्य अल्लाह के बुलावों पर ध्यान नहीं देता और उस घर की ओर नहीं चलता जिसकी ओर वह बुला रहा है तो वह एक भटका हुआ और आवारा मनुष्य है। "अपने मकान से आवारा उस पक्षी के समान है जो अपने घोंसले से भटक जाए।" अमसाल (नीति वचन 27 : 8)

और (वास्तव में) मुहम्मद (सल्ल०) लोगों के बीच अन्तर कर देनेवाले हैं।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

2. रबीआ जुरशी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) की सेवा में फ़रिश्ता उपस्थित हुआ तो आपसे कहा गया कि आपकी आँखों को सो जाना चाहिए और कानों को सुनना और दिल को समझना चाहिए। आप कहते हैं कि मेरी आँखें सो गईं, मेरे कानों ने सुना और मेरे दिल ने समझा। आप कहते हैं कि उस समय मुझसे कहा गया कि एक सरदार ने एक घर बनाया और (उसमें) दस्तरख़्वान चुना और एक बुलानेवाले को भेजा, तो जिस किसी ने उस बुलानेवाले के आमंत्रण को स्वीकार किया उसने घर में प्रवेश किया और ख़्वान में से खाया और उससे वह सरदार भी प्रसन्न हो गया और जिस किसी ने उस बुलानेवाले के आमंत्रण को स्वीकार नहीं किया उसने न घर में प्रवेश किया और न उसने दस्तरख़्वान से खाना खाया और सरदार भी उससे अप्रसन्न हुआ। कहा: अल्लाह सरदार (स्वामी) है और मुहम्मद (सल्ल०) बुलानेवाले हैं और वह घर इस्लाम है और दस्तरख़्वान जन्नत है।[2] —दारमी

3. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल

---

1. अर्थात आप सत्य और असत्य को जानने की कसौटी हैं। आपके द्वारा सत्य और असत्य का भेद स्पष्ट रूप से सामने आ गया। आपके कारण अल्लाह के आज्ञाकारी और अवज्ञाकारी दोनों अलग-अलग हो गए। भले और बुरे एक-दूसरे से पृथक पहचाने गए और न्याय और अन्याय तथा सत्य और असत्य में भ्रम की कोई संभावना शेष नहीं रही।
2. इससे पहले जो हदीस गुज़री है उसमें घर से अभिप्रेत जन्नत है। इस हदीस में घर से अभिप्रेत इस्लाम है। दोनों मिसालों का अभिप्राय एक ही है। 'जन्नत' में प्रवेश पाने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य इस्लाम में प्रवेश करे। इस्लाम को अपनाना परिणाम की दृष्टि से जन्नत में प्रवेश करना ही है। दोनों हदीसों में विशेषतः ज़ोर इस बात पर दिया गया है कि जन्नत मनुष्य को उसी दशा में मिल सकती है जबकि वह नबी (सल्ल०) के आमंत्रण को स्वीकार करे और आपपर ईमान ले आए। आपके आदेशों का पालन करने लगे। इससे जन्नत में प्रवेश पाने का अधिकार भी उसे प्राप्त होगा और अल्लाह की ख़ुशी और प्रसन्नता भी उसे मिल सकेगी जो समस्त अमूल्य निधियों से बढ़कर है; परन्तु यदि वह दूसरी नीति गृहण करता है तो उसे जन्नत में प्रवेश भी प्राप्त न हो सकेगा और अल्लाह के प्रकोप का वह अलग भागी ठहरेगा।

(सल्ल०) ने कहा : मेरी मिसाल और उस चीज़ की मिसाल जिसे देकर अल्लाह ने मुझे भेजा है ऐसी है जैसे कोई व्यक्ति अपनी जातिवालों के पास आए और कहे : ऐ मेरी जाति के लोगो ! मैंने (शत्रुओं की) एक सेना अपनी आँखों से देखी है और मैं खुले रूप में डरानेवाला हूँ तो (विपत्ति से) छुटकारा पाने की चिंता करो। उसकी जातिवालों में से कुछ लोगों ने उसकी बात मान ली और वे इतमीनान से रातों-रात निकल खड़े हुए और अपनी सामान्य चाल से चलते रहे और (अपने वैरियों से) छुटकारा पा गए। और उनमें से कुछ लोगों ने झुठलाया और प्रातः काल तक अपने स्थानों पर ठहरे रहे। (शत्रुओं की) सेना प्रातः काल उनपर टूट पड़ी और उन्हें पूर्णतः विनष्ट कर डाला और उनका पूर्ण रूप से उन्मूलन कर दिया। बस यही मिसाल उस व्यक्ति की है जिसने मेरा हुक्म माना और जो कुछ मैं लेकर आया हूँ उसका पालन किया। और यही मिसाल उस व्यक्ति की है जिसने मेरी अवज्ञा की और जो कुछ मैं लेकर आया हूँ उसे झुठला दिया।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

4. अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरी मिसाल उस व्यक्ति जैसी है जिसने आग जलाई, परन्तु जब उसने अपने वातावरण को भली-भाँति प्रकाशमान कर दिया तो पतंगे और वे कीड़े जो

---

1. इस मिसाल से भी नबी (सल्ल०) के दायित्व और आपके स्थान का ज्ञान होता है। अरब में लूटमार साधारणतः भोर में होती थी; इसी लिए दुआ देने का यह तरीक़ा वहां प्रचलित रहा है कि वे एक-दूसरे से कहते थे कि ईश्वर तुम्हारा प्रातः समय अच्छा रखे। अरब लोगों में यह प्रथा भी थी कि किसी क़बीले पर कोई विपत्ति आती और कोई वैरी आक्रमण करने के ध्येय से चढ़ आता तो जो व्यक्ति उसे पहले देखता वह किसी ऊँची जगह चढ़कर अपने कपड़े उतारकर सिर पर रख लेता और उनको हिलाता और चिल्ला-चिल्लाकर लोगों को संकट की सूचना देता। ऐसे व्यक्ति की हैसियत प्रत्यक्षदर्शी गवाह की मानी जाती और उसकी दी हुई सूचना पर सभी लोग विश्वास कर लेते। आगे चलकर लोगों को डराने और सावधान करने की यह रीति हर ऐसी परेशानी और विपत्ति के समय अपनाई जाने लगी जो अचानक सामने आई हो। नबी (सल्ल०) ने लोगों को समझाने के लिए अपने लिए खुले रूप में डरानेवाले की मिसाल बयान की ताकि लोग चौंकें और अपनी ज़िम्मेदारियों को समझें और अल्लाह के अज़ाब से बचने की उन्हें चिन्ता हो। आपने पहाड़ी पर चढ़कर भी लोगों को पुकारा था और उन्हें आनेवाले कठिन दिन (क़ियामत) से सावधान किया था।

आग पर गिरा करते हैं उसमें गिरने लगे। और वह है कि उन्हें रोक रहा है और वे हैं कि उसे विवश करके उसमें घुसे पड़ते हैं तो (मेरी और अपनी मिसाल ऐसी समझो कि) मैं तुम्हें आग (में पड़ने) से रोकता हूँ और तुम हो कि उसमें घुसे पड़ते हो।[1]

—बुख़ारी

आप (सल्ल०) से प्रेम

1. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से कोई व्यक्ति ईमानवाला नहीं हो सकता जब तक कि मैं उसको उसके बाप और उसकी औलाद और समस्त मनुष्यों से बढ़कर प्रिय न हो जाऊँ।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. मुस्लिम की हदीस के अन्तिम शब्द ये हैं : आपने कहा : यह मेरी और तुम्हारी मिसाल है कि मैं तुम्हारी कमरें पकड़-पकड़कर (जहन्नम की) आग से बचाता हूँ। (कहता हूँ) आग से बचो, आग से बचो। तुम मुझे विवश करके उसमें घुसे जाते हो।"

   इस मिसाल से नासमझ लोगों की नादानी और अल्लाह के रसूल के करुणभाव और हित-कामना का वास्तविक और जागरूक चित्र सामने आ जाता है। पतंगों को नहीं मालूम कि अग्नि उनके कोमल और निर्बल शरीर को भस्म कर डालेगी, वे उसमें गिरे पड़ते हैं। ठीक यही दशा उन लोगों की है जो अल्लाह के अज़ाब और उसकी भड़काई हुई आग से निर्भय होकर ईश्वरीय सीमाओं का उल्लंघन करते हैं और ईश-प्रकोप के भागी बनते हैं। अल्लाह का रसूल उन्हें अज़ाब से बचाने की हर वह कोशिश करता है जो उसके बस में है। फिर भी कोई नहीं सँभलता तो वह अपनी तबाही का स्वयं उत्तरदायी है।

2. जो सम्बन्ध नबी (सल्ल०) का मुसलमानों से और मुसलमानों का आपसे है उसका मुक़ाबला कोई दूसरा नाता या रिश्ता नहीं कर सकता। क़ुरआन में भी कहा गया है : "नबी का सम्बन्ध ईमानवालों के साथ उससे अधिक है जितना उन लोगों का अपने आप से है।" (33 : 6) नबी (सल्ल०) को मुसलमानों से जितना ममत्व और प्रेम है उसके तुल्य माता-पिता का स्नेह और ममत्व भी नहीं हो सकता। बल्कि आपकी शुभाकांक्षा तो उससे भी बढ़कर है जितनी कि किसी व्यक्ति को अपने लिए होती है। मनुष्य को उसके माता-पिता पथभ्रष्ट कर सकते हैं, उसके साथ स्वार्थपरता का व्यवहार कर सकते हैं। इसी प्रकार पत्नी और बच्चे भी मनुष्य को हानि पहुँचा सकते हैं। मनुष्य स्वयं अपने हाथों अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार सकता है; परन्तु नबी (सल्ल०) केवल वही करेंगे जिसमें हमारा कल्याण हो। आप हमारे लिए केवल वही प्रस्ताव कर सकते हैं जिसमें हमारा हित हो। ऐसी दशा में मुसलिमों का भी कर्त्तव्य होता है कि वे सबसे

2. हज़रत अब्दुल्लाह बिन हिशाम (रज़ि०) कहते हैं कि हम नबी (सल्ल०) के साथ थे। आप उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) का हाथ अपने हाथ में लिए हुए थे उमर (रज़ि०) ने आपसे कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! आप मुझे अपने प्राण के सिवा हर चीज़ से ज़्यादा प्रिय हैं। आपने कहा : नहीं, उस (अल्लाह) की क़सम जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं जब तक तुमको मैं अपने प्राण से भी बढ़कर प्रिय न हो जाऊँ (तुम मोमिन नहीं हो सकते)। उमर (रज़ि०) ने कहा : अब तो अल्लाह की क़सम आप मुझे मेरे प्राण से भी अधिक प्रिय हो गए। आपने कहा : अब ऐ उमर ! (तुम ईमानवाले हो)।[1] —बुख़ारी

3. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह से प्रेम करो इसलिए कि वह तुम्हें विभिन्न प्रकार की नेमतें (सुख सामग्री) प्रदान करता है, और मुझसे प्रेम करो अल्लाह से प्रेम के कारण और मेरे घरवालों से प्रेम करो मुझसे प्रेम के कारण।[2] —तिरमिज़ी

4. हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने

अधिक यहाँ तक कि अपने माता-पिता, पत्नी, बच्चे और अपने प्रमाण से भी बढ़कर आप (सल्ल०) से प्रेम करें। उनके लिए आप (सल्ल०) दुनिया की प्रत्येक वस्तु से अधिक प्रिय हों। वे आपके आदेशों का पालन करें। आपका जो फ़ैसला या आदेश हो उसके आगे नतमस्तक हो जाएँ। मन में तनिक भी उन्हें यह चीज़ अप्रिय न लगे।

1. इस हदीस में भी वही बात कही गई है जो पहली हदीस में कही गई है। कोई भी व्यक्ति वास्तविक रूप से मोमिन (ईमानवाला) उसी समय होता है जबकि वह हर चीज़ से बढ़कर अल्लाह और उसके रसूल से प्रेम करे। वह अल्लाह और उसके रसूल के प्रेम पर हर चीज़ निछावर कर सके। अल्लाह की राह में यदि माल व औलाद को भी छोड़ना पड़े तो छोड़ दे। यहाँ तक कि प्राण देने का अवसर आए तो इससे भी पीछे न हटे।
2. मतलब यह है कि यदि तुम अल्लाह के इसी उपकार पर विचार करो कि वह तुम्हें तरह-तरह की नेमतें प्रदान करता है तो तुम्हारे मन में उसके प्रति कृतज्ञता और आदर की भावना जाग्रत होगी और तुम अपने पालनकर्ता प्रभु से प्रेम करने लग जाओगे। जब अल्लाह से प्रेम होगा तो उसके रसूल से भी तुम्हें प्रेम होगा और रसूल से प्रेम होगा तो अवश्य रसूल के घरवालों से भी तुम प्रेम करोगे। प्रेम का मूलाधार और केन्द्र तो अल्लाह है। ईश-प्रेम को अपेक्षित है कि मनुष्य अल्लाह के रसूल और उसके नातेदारों और सम्बन्धियों से भी प्रेम करे।

नबी (सल्ल०) से पूछा : वह घड़ी (क़ियामत) कब आएगी ? आपने कहा : तुमने उसके लिए क्या तैयार कर रखा है ? उसने कहा : मैंने उसके लिए कुछ ज़्यादा तैयार नहीं किया है, न ज़्यादा नमाज़ें ही, न रोज़े और न सदक़ा परन्तु मैं अल्लाह और उसके रसूल से प्रेम करता हूँ। आपने कहा : तुम उन्हीं के साथ होगे जिनसे तुम्हें प्रेम है।[1]

—बुख़ारी

5. हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुग़फ़्फ़ल (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ और कहा : मैं आपसे प्रेम करता हूँ। आपने कहा : देख क्या कहता है ? उसने तीन बार कहा : अल्लाह की क़सम मैं आपसे प्रेम करता हूँ। आपने कहा : यदि तू (अपनी बात में) सच्चा है तो मुहताजी और फ़ाक़े का मुक़ाबला करने के लिए हथियार तैयार कर ले। जो लोग मुझसे प्रेम करते हैं उनकी ओर मुहताजी और फ़ाक़ा उससे अधिक तेज़ी के साथ बढ़ते हैं जितना पानी की बाढ़ निचाई की ओर।[2]

—तिरमिज़ी

---

1. हदीस का अन्तिम वाक्य विभिन्न अवसरों पर आपके मुख से निकला है। इब्न मसऊद (रज़ि०) की रिवायत (अर्थात उनकी उल्लिखित हदीस) में है कि जब सहाबा ने आपसे ऐसे व्यक्ति के बारे में पूछा जो किसी जमाअत या गिरोह से प्रेम करता है परन्तु उसका कर्म उस जमाअत के लोगों के बराबर नहीं है तो आपने यही उत्तर दिया : "मनुष्य (आख़िरत में) उसी के साथ होगा जिससे वह प्रेम करता था।" हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने मुसलमानों को इस्लाम के पश्चात किसी चीज़ से उतना प्रसन्न होते नहीं देखा जितना इस शुभ-सूचना से उन्हें प्रसन्न होते देखा। यह हदीस बताती है कि प्रेम का फल आख़िरत का साहचर्य है। किसी को जितना अधिक आप से प्रेम होगा उसे उतना ही अधिक आख़िरत में आपका सामीप्य और साहचर्य प्राप्त होगा।
2. अर्थात तुम्हें यदि वास्तव में मुझसे प्रेम है तो फिर हर प्रकार की कठिनाइयों और संकटों का मुक़ाबला करने के लिए तैयार रहो। मुझसे प्रेम है तो तुम्हें वह मार्ग अपनाना होगा जिसका ज्ञान अल्लाह ने मुझे प्रदान किया है। इस मार्ग में नाना प्रकार की बाधाएँ सामने आती हैं। इसमें मुहताजी और फ़ाक़े तक की नौबत भी आ सकती है। इस राह पर चलनेवाले असत्य से किसी क़ीमत पर भी साँठ-गाँठ नहीं कर सकते। वे सत्य के लिए अपने प्राण दे सकते हैं, परन्तु अन्याय और असत्य के आगे अपना सिर नहीं झुका सकते। इस मार्ग पर वही चल सकता है जिसका अल्लाह पर पूरा भरोसा हो और आख़िरत पर पूर्ण ईमान हो। तुम्हें यदि अल्लाह के रसूल से प्रेम है तो फिर आराम, सुख और विलास की अपेक्षा उस मुहताजी और फ़ाक़े को प्रिय जानो जो अल्लाह की राह में पेश आता है।

दुरूद व सलाम

1. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि जो व्यक्ति मुझपर एक बार दुरूद भेजता है; अल्लाह उसपर दस बार दुरूद भेजता है।[1] —मुसलिम

---

1. एक दयाशील पिता को अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की चिन्ता होती है। वह अपने बच्चों को जीवन के सारे नियम सिखाता है। यहाँ तक कि वह उन्हें इसकी भी शिक्षा देता है कि वे अपने बड़ों और माता-पिता का आदर-सत्कार किस प्रकार करें। इसी प्रकार अल्लाह के रसूल भी, जिसकी हैसियत आध्यात्मिक दृष्टि से लोगों के बीच एक पिता ही की होती है, अपने अनुयायियों को छोटी-बड़ी हर चीज़ की शिक्षा देता है। नितान्त प्रेम और दया के साथ वह उन्हें इसकी भी शिक्षा देता है कि उन्हें अपने रसूल और नायक से कितना गहरा सम्बन्ध होना चाहिए।

   इस हदीस में 'ईमानवालों' को इसकी शिक्षा दी जा रही है कि उन्हें अपने रसूल पर दुरूद भेजना चाहिए। यह उस सम्बन्ध की स्वाभाविक माँग है जो सम्बन्ध कि ईमानवालों को अल्लाह के रसूल से होता है। ईमानवालों पर रसूल के उपकार अगणित हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ही के द्वारा उन्हें सत्य का प्रकाश मिला है। धर्म, ईमान और नैतिक-उच्चता उन्हें रसूल (सल्ल०) ही के द्वारा मिल सकी है। अब यह कृतज्ञता की बात है कि वे अपने रसूल को प्राण और हृदय से भी अधिक प्रिय जानें, अल्लाह से उनके लिए दुआ करें और उनके सच्चे आज्ञाकारी बनकर रहें। दुरूद के लिए अरबी में सलात शब्द आया है। 'सलात' शब्द जब अला के सिला के साथ आता है तो इसके तीन अर्थ होते हैं। एक, किसी की ओर प्रेमपूर्वक रुख़ करना, उसपर झुकना और किसी की ओर प्रवत्त होना। दूसरे, किसी की प्रशंसा करना। तीसरे, किसी के लिए दुआ करना। इस दुरूद में प्रेम का अर्थ भी सम्मिलित है और प्रशंसा व स्तुति का अर्थ भी। इसके अतिरिक्त रहमत अर्थात दयालुता (Divine Favour or Blessing) का अर्थ भी इसमें सम्मिलित है। रसूल पर दुरूद भेजने का अर्थ यह है कि हम रसूल के अनुरागी हो जाएँ। उनकी प्रशंसा करें। उनकी विशेषताओं को मानें और अल्लाह से उनके लिए रहमत की दुआ करें।

   यह जो कहा कि जो मुझपर दुरूद भेजता है, अल्लाह उसपर दस बार दुरूद भेजता है, इसका अर्थ यह है कि ऐसे व्यक्ति पर अल्लाह की विशेष कृपा-दृष्टि होती है। ऐसा व्यक्ति अल्लाह को प्रिय हो जाता है। अल्लाह की उसपर दया और कृपा होती है। वह उसकी प्रशंसा करता है, उसके कार्य में बरकत देता है और उसे सम्मान और उच्चता प्रदान करता है। अल्लाह के रसूल से गहरे हार्दिक सम्बन्ध और प्रेम के पीछे

2. आमिर बिन रबीआ अपने बाप से रिवायत करते हैं कि उनका बयान है कि मैंने रसूल (सल्ल०) को भाषण देते और कहते सुना है कि जो व्यक्ति मुझपर दुरूद भेजता है फ़रिश्ते उसपर दुरूद भेजते रहते हैं जब तक कि वह मुझपर दुरूद भेजा रहता है।[1] —अहमद, इब्ने माजा

3. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन मेरे साथ रहने का सबसे ज़्यादा हक़दार वह होगा जो मुझपर सबसे ज़्यादा दुरूद भेजेगा।[2] —तिरमिज़ी

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो लोग किसी मजलिस में बैठें और उसमें अल्लाह का ज़िक्र न करें और न अपने नबी पर दुरूद भेजें तो अवश्य ही वह मजलिस उनके हक़ में तबाही होगी, अल्लाह चाहे उन्हें यातना दे और चाहे उन्हें क्षमा कर दे।

—तिरमिज़ी

वास्तव में ईश-कामना की भावना ही काम करती है। रसूल से हमारे प्रेम और आसक्ति का कारण इसके अतिरिक्त और क्या है कि वे हमें अल्लाह का मार्ग दिखाते और हमें अल्लाह की इच्छा से परिचित करते हैं। इसलिए उस व्यक्ति की ओर जो रसूल पर दुरूद भेजता है अल्लाह की रहमत और दयालुता का प्रवृत्त होना स्वाभाविक बात है।

क़ुरआन में भी नबी (सल्ल०) पर दुरूद व सलाम भेजने का हुक्म हुआ है। कहा गया है : "निस्सन्देह अल्लाह और उसके फ़रिश्ते नबी पर दुरूद (रहमत) भेजते हैं। ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! तुम भी उनपर दुरूद भेजो और ख़ूब सलाम भेजो।"

—क़ुरआन, 33 : 56

1. अर्थात अल्लाह के फ़रिश्ते उससे अत्यन्त प्रेम करते हैं और उसके लिए अल्लाह से दुआएँ करते हैं।
2. मनुष्य हृदय से इस्लाम और ईमान को जितनी अधिक मान्यता देगा उतना ही ज़्यादा उसे नबी (सल्ल०) के उपकारों की अनुभूति होगी। और नबी (सल्ल०) के एहसानों का जितना ज़्यादा एहसास होगा उतना ही ज़्यादा वह आपपर दुरूद भेजेगा। दुरूद की अधिकता एक मापदण्ड है जिससे मालूम होता है कि मनुष्य को दीन (धर्म) से कितना लगाव है। आपपर ज़्यादा से ज़्यादा दुरूद भेजने का अर्थ यह है कि आदमी को आपके लाए हुए धर्म से गहरा सम्पर्क है, आप उसे सबसे बढ़कर प्रिय हैं। इसलिए अवश्य ही क़ियामत में उसे आपका विशेष सामीप्य प्राप्त होगा। दूसरी रिवायतों से मालूम होता है कि आदमी उसी के साथ होगा जिससे उसको प्रेम होगा।

5. हज़रत अली (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कृपण है वह व्यक्ति जिसके सामने मेरा ज़िक्र किया जाए और वह मुझपर दुरूद न भेजे ।[1]

—तिरमिज़ी

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो कोई मुझे सलाम करता है तो अल्लाह मेरी आत्मा को मुझपर पलटाता है यहाँ तक कि मैं उसके सलाम का उत्तर देता हूँ ।[2]

—अबू दाऊद

7. अबू हुमैद साइदी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि लोगों ने निवेद्रन किया : ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हम आपपर किस तरह दुरूद भेजें ? आपने कहा : कहो, "ऐ अल्लाह ! रहमत (दयालुता) भेज मुहम्मद पर और उनकी पत्नियों और उनकी सन्तति पर, जिस प्रकार तूने रहमत भेजी इबराहीम पर । और बरकत प्रदान कर मुहम्मद को और उनकी पत्नियों और उनकी सन्तति को जिस प्रकार तूने बरकत प्रदान की इबराहीम को, निस्संदेह तू प्रशंसा (हम्द, दानशीलता) का अधिकारी और गौरववाला है ।"[3]

—बुख़ारी, मुसलिम

---

1. इससे बढ़कर कृपणता और बख़ीली की बात और क्या हो सकती है कि आदमी के सामने उसके सबसे बड़े उपकारकर्त्ता का ज़िक्र आए और वह चुप रह जाए, उसके मुख से अपने उपकारकर्त्ता के लिए कोई प्रशंसा और शुभ कामना व्यक्त करनेवाले शब्द या दुआ न निकलें ।
2. अर्थात अल्लाह सलाम करनेवाले के सलाम-रूपी उपहार को मुझ तक पहुँचा देते हैं और मेरी आत्मा को ऐसी दशा में लाते हैं कि मैं उसके सलाम का उत्तर दे सकूँ । इस तरह मृत्यु के पश्चात भी आपको लोगों के दुरूद का ज्ञान होता है ।
3. हदीसों में नबी (सल्ल०) के सिखाए हुए और बहुत-से दुरूद मिलते हैं । इस दुरूद से मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) ने ऐसा नहीं किया कि इस दुआ को अपने ही लिए रखें । आपने अपनी पत्नियों और अपनी सन्तति को भी इसमें सम्मिलित कर लिया है । कुछ दुरूदों में आपने अपनी आल (अपने लोगों) को भी शामिल किया है । उदाहरणार्थ बुख़ारी और मुस्लिम में कअब बिन उजरह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हमारे पास आए तो हमने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! हमने आपपर सलाम भेजने का तरीक़ा तो मालूम कर लिया, मगर आपपर दुरूद किस तरह भेजें ? आपने कहा : यूँ कहा करो : "ऐ अल्लाह ! दुरूद भेज मुहम्मद और मुहम्मद की आल (लोगों) पर जिस प्रकार तूने दुरूद भेजा इबराहीम पर । निस्सन्देह तू

आप (सल्ल०) का आज्ञापालन

1. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से कोई ईमानवाला न होगा जब तक कि उसकी इच्छा उस दीन के अधीन न हो जाए जिसे लेकर मैं आया हूँ।[1] —शरहुस्सुन्नह

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय के सब लोग जन्नत में दाख़िल होंगे सिवाय उसके जो इनकार कर दे। (सहाबा ने) कहा : इनकार कौन करता है? आपने कहा : जिसने मेरी आज्ञा का पालन किया, वह जन्नत में जाएगा और जिसने मेरी अवज्ञा की निश्चय ही उसने मेरा इनकार किया।[2] —बुख़ारी

3. हज़रत मालिक बिन अनस (रज़ि०) से एक मुरसल रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं तुम्हारे बीच दो चीज़ें छोड़े जा रहा हूँ जब तक उन्हें थामे रहोगे कदापि पथभ्रष्ट न होगे—अल्लाह की किताब और

प्रशंसा (हम्द, दानशीलता) का अधिकारी और गौरववाला है। ऐ अल्लाह! बरकत प्रदान कर मुहम्मद और मुहम्मद की आल (लोगों) को जिस प्रकार तूने बरकत प्रदान की इबराहीम को। निस्सन्देह तू प्रशंसा (हम्द, दानशीलता) का अधिकारी और गौरववाला है।"

आल में नबी (सल्ल०) के घर और घराने के लोगों के अतिरिक्त वे लोग भी आ जाते हैं जो आपके अनुयायी और आपके माननेवाले हों।

1. वास्तव में मोमिन (ईमानवाला) वही है जो आचार-विचार की उस पद्धति को अपनाए जिसकी ओर नबी (सल्ल०) ने लोगों को आमंत्रित किया है। और दिल से यह मान ले कि सत्य वही है जिसे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सत्य कहा और जिसे आपने असत्य कहा वह वास्तव में असत्य है। ईमान का वास्तविक भाव यही है कि मनुष्य की रुचि और उसकी कामनाएँ और इच्छाएँ उस मार्गदर्शन के अधीन हो जाएँ जिसे लेकर अल्लाह का रसूल संसार में आया है। जिसने नबी के मार्गदर्शन (Guidance) को छोड़कर अपनी तुच्छ इच्छाओं का पालन किया वह सीधे और सत्य मार्ग से दूर जा पड़ा। कुरआन में भी कहा गया है : "उससे बढ़कर पथभ्रष्ट कौन होगा जिसने अल्लाह के मार्गदर्शन के बिना अपनी (तुच्छ) इच्छाओं का अनुसरण किया, अल्लाह अन्यायी लोगों को राह पर नहीं लगाता।" —कुरआन, 28 : 50
2. अर्थात जो आपकी अवज्ञा करता है और आपके आदेशों का पालन नहीं करता वह वास्तव में आपका इनकार करता है।

उसके रसूल क़ी सुन्नत (तरीक़ा)।[1] —मुवत्ता

4. हज़रत अबू राफ़ेअ (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं कदापि तुममें से किसी व्यक्ति को न पाऊँ कि वह अपनी मसनद पर तकिया लगाए बैठा हो और उसे मेरे उन आदेशों में से कोई आदेश पहुँचे जिनका मैंने हुक्म दिया हो या जिनसे मैंने रोका हो तो वह कहे कि मैं नहीं जानता, जो कुछ मैंने अल्लाह की किताब में पाया उसका अनुसरण किया।[2]

—अहमद, अबू दाऊद, तिरमिज़ी, इब्ने माजा

5. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (ख़ुतबा देते हुए) कहा : ईश-प्रशंसा और सलाम के पश्चात (अब यह बात सुन लो कि) उत्तम कलाम (वाणी) अल्लाह की किताब (क़ुरआन) है और उत्तम मार्ग मुहम्मद का (दिखाया हुआ) मार्ग है और बुरी बातें वे हैं जो (दीन में) नई निकली हों और (दीन में) हर नई और बढ़ाई हुई बात गुमराही (पथभ्रष्टता) है।[3] —मुसलिम

---

1. मालूम हुआ कि गुमराही और पथभ्रष्टता से बचने के लिए जहाँ अल्लाह की किताब का अनुसरण आवश्यक है वहीं हमारे लिए यह भी आवश्यक है कि हम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सुन्नत (तरीक़े) और आपके आदेशों का पालन भी करें। आपके आदेशों और उपदेशों से बेपरवाह होकर तो कोई वास्तविक रूप में अल्लाह की किताब का अनुयायी भी नहीं बन सकता। अल्लाह ने अपने रसूल (सल्ल०) को अपनी किताब का भाष्यकार बनाकर भेजा है। आपके कथन, आपका चरित्र वास्तव में अल्लाह की किताब (क़ुरआन) की ही व्याख्या और विस्तार है। आपकी जहाँ और बहुत-सी ज़िम्मेदारियाँ थीं वहीं एक महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारी यह भी थी कि आप लोगों को किताब और हिकमत (Wisdom) की शिक्षा दें। देखें : क़ुरआन, 2 : 129, 3 : 164, 62 : 2
2. मोमिन (ईमानवाले व्यक्ति) के लिए आवश्यक है कि वह अल्लाह की किताब की तरह उन आदेशों का भी पालन करे जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ओर से उस तक पहुँचे हैं। आपकी सुन्नत (तरीक़ा) क़ुरआन की व्याख्या की हैसियत रखती है। (क़ुरआन, 16 : 44) व्याख्या के लिए व्यवहार सम्बन्धी आदेश भी अल्लाह की ओर से आपको प्राप्त हुए। क़ुरआन में आपके बारे में कहा गया है : "वह (नबी) उन्हें नेकियों का हुक्म देता और उन्हें बुराई से रोकता है और उनके लिए पाक चीज़ें (शुद्ध वस्तुएँ) हलाल (वैध) करता है और उनके लिए नापाक चीज़ें हराम (वर्जित) करता है।"

   —क़ुरआन, 7 : 157
3. हज़रत आइशा (रज़ि०) का बयान है कि आपने कहा : "जिसने हमारे इस 'दीन' में कोई ऐसी नई बात निकाली जो उसमें नहीं है, वह अस्वीकृत है।" —बुख़ारी, मुसलिम

6. हज़रत ग़ुज़ैब बिन हारिस सुमाली (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस जाति ने (दीन में) कोई नई बात निकाली उसी जैसी एक सुन्नत (उस जाति से) उठा ली गई, तो 'सुन्नत' (नबी के तरीक़े) को दृढ़ता से पकड़े रहना नई बात निकालने से अच्छा है।[1] —अहमद

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस किसी ने मेरे अनुयायी समुदाय के बिगाड़ के समय में मेरी सुन्नत (तरीक़े) को अपनाया उसके लिए सौ शहीदों का सवाब (पुण्य) है।[2] —बैहक़ी

दीन में किसी नई चीज़ का दाख़िल करना गुमराही है। दीन में किसी परिवर्द्धन या संशोधन और निरसन का अधिकार किसी को प्राप्त नहीं। अल्लाह की ओर से दीन (धर्म) जिस रूप में हम तक पहुँचा है, हमें उसे उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए। दीन में किसी प्रकार का परिवर्द्धन करना वास्तव में दीन को विकृत करना और उसका रूप बिगाड़ना है। पिछली जातियों का इतिहास साक्षी है कि जब उनके दीन में बिदअतों (मनगढ़ंत नई बातों) को दाख़िल होने का अवसर मिला तो इस चीज़ में दीन को बिगाड़कर रख दिया। विचार और धारणा से लेकर व्यवहार और कर्म तक सारी चीज़ों में बिगाड़ इतना पैदा हो गया कि यह पता लगाना भी असंभव हो गया कि उनका वास्तविक और मूल धर्म क्या था।

1. बिदअत (दीन में मनगढ़ंत नई बातों) का सुन्नत (नबी के तरीक़े) के साथ कोई जोड़ नहीं लग सकता। जिस प्रकार की मनगढ़ंत चीज़ दीन में शामिल की जाएगी उसी प्रकार की सुन्नत लोगों के बीच से उठ जाएगी। दीन अपनी जगह पूर्ण है, उसमें न किसी परिवर्द्धन की आवश्यकता है और न गुंजाइश। बिदअत जब भी दाख़िल होगी वह किसी सुन्नत की जगह ले लेगी। उदाहरणार्थ नमाज़ का एक तरीक़ा नबी (सल्ल०) का सिखाया हुआ है। अब यदि कोई व्यक्ति अपनी ओर से नमाज़ में कोई बात दाख़िल करे तो इससे नमाज़ के उस भाग को आघात पहुँचेगा जिसमें वह अपनी ओर से कोई बात सम्मिलित कर रहा है। और फिर इस नमाज़ का पूरा ढाँचा प्रभावित होगा। बुद्धिमानी यह नहीं है कि आदमी दीन में मनगढ़ंत बातों का परिवर्द्धन करता रहे, बल्कि बुद्धिमानी की बात यह है कि आदमी सुन्नत (नबी के तरीक़े) से चिमटा रहे। भलाई, बरकत और कल्याण सबकुछ सुन्नत ही से सम्बद्ध है।
2. ऐसे समय में जबकि समुदाय में बिगाड़ पैदा हो गया हो और लोग दीन से ग़ाफ़िल हो गए हों, तरह-तरह की बिदअतें प्रचलित हो गई हों, दीन के नाम पर तरह-तरह की आपत्ति सामने आ रही हो, ऐसे कठिन समय में नबी (सल्ल०) की सुन्नत का पालन करना और उसे उजागर करना महान जिहाद (धर्मयुद्ध) से कम नहीं है। इसलिए इसका बदला भी अल्लाह के यहाँ बहुत ज़्यादा है।

8. हज़रत बिलाल हारिस मुज़न्नी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसने मेरी किसी ऐसी सुन्नत (तरीक़ा) को जीवित किया जो मेरे पश्चात मुरदा हो गई हो तो उसके अनुसार आचरण करनेवालों के बराबर उसे बदला मिलेगा बिना इसके कि उन आचरण करनेवालों के सवाब और बदले में कुछ कमी की जाए। और जिस व्यक्ति ने पथभ्रष्टता की कोई ऐसी बात निकाली जिससे अल्लाह और उसका रसूल प्रसन्न और सहमत नहीं तो उस (नई बात) के अनुसार आचरण करनेवालों के गुनाहों के बराबर उसके हिस्से में गुनाह आएगा बिना इसके कि उन (आचरण करनेवालों) के बोझ में कुछ कमी की जाए।
—तिरमिज़ी, इब्ने माजा

सारे संसार के रसूल

1. हज़रत हसन (रज़ि०) से मुरसल रूप से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं उनका भी रसूल हूँ जो (इस समय) जीवित हैं और उनका भी जो मेरे पश्चात पैदा होंगे।[1] —इब्ने सअद : अलकंज़ वल ख़साइस

2. हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : उसे एक मुबारकबाद (बधाई) जिसने मुझे देखा और मुझपर ईमान लाया और उसे सात बार मुबारकबाद जिसने मुझे नहीं देख और मुझपर ईमान लाया।[2]
—अहमद

3. हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : पहले नबी केवल अपनी जातिवालों की ओर भेजा जाता था, और मैं समस्त मनुष्यों की ओर भेजा गया हूँ।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात आपकी नुबूवत का सम्बन्ध केवल आपके जीवन काल से ही नहीं है बल्कि आपकी रिसालत क़ियामत तक के लोगों के लिए है।
2. इस हदीस में बाद में आनेवालों के लिए तसल्ली का सामान है। आपने उन्हें बार-बार मुबारकबाद इसलिए दी है कि वे आपको न देखने के बावजूद आपकी रिसालत का इक़रार करेंगे और आपको अपने प्राण से बढ़कर प्रिय समझेंगे। दूसरे पहलुओं से सहाबा (रज़ि०) को जो श्रेष्ठता प्राप्त है उसमें उनका शरीक कौन हो सकता है।
3. अर्थात यह आपकी विशेषता है कि आप सारे मनुष्यों के लिए रसूल बनाकर भेजे गए हैं जबकि पहले नबी केवल अपनी जाति की ओर नबी बनाकर भेजे गए थे। जो मार्गदर्शन और ज्ञान लेकर आप आए हैं वह समस्त मनुष्यों की सम्मिलित विरासत है।

4. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं काले और गोरे सबकी ओर भेजा गया हूँ।[1]

नुबूवत की समाप्ति

1. अबू हाज़िम से उल्लिखित है, वे कहते हैं कि मैं अबू हुरैरा (रज़ि०) के साथ पाँच वर्ष रहा हूँ। मैंने उन्हें नबी (सल्ल०) से यह हदीस बयान करते सुना है कि आपने कहा : बनी इसराईल का नेतृत्व नबी किया करते थे। जब कोई नबी मर जाता तो दूसरा नबी उसका उत्तराधिकारी होता, परन्तु मेरे बाद कोई नबी नहीं है बल्कि 'ख़लीफ़ा' होंगे और वे बहुत होंगे। लोगों ने कहा : (उनके बारे में) आप हमें क्या हुक्म देते हैं ? कहा : जो पहले (ख़लीफ़ा) हो उसकी बैअत (अनुपालन प्रतिज्ञा) पूरी करना। तुम उनका हक़ अदा करते रहना उस निगरानी और ज़िम्मेदारी के विषय में अल्लाह स्वयं उनसे पूछेगा जो उसने उन्हें सौंपी है।[2] —बुख़ारी, मुसलिम, इब्ने माजा, अहमद

वह किसी विशेष जाति की विशिष्ट निधि नहीं है। वह किसी के लिए पराई कदापि नहीं है। यही कारण है कि नबी (सल्ल०) ने धर्म-प्रचार और सत्य आमंत्रण के शुभ कार्य को अपनी जाति या अरब तक सीमित नहीं रखा, बल्कि बाहर के लोगों को भी आपने इस्लाम की ओर आमंत्रित किया। विभिन्न बादशाहों और शासकों को आपने आमंत्रण-पत्र लिखे। इसी उद्देश्य के लिए अल्लाह ने आपको एक ऐसा मुस्लिम समुदाय प्रदान किया जिसका दायित्व यह ठहरा कि वह अपने मिशन (Mission) को लेकर उठे और सत्य-सन्देश को सारे संसार में फैलाए। क़ुरआन में भी विभिन्न स्थानों पर स्पष्ट शब्दों में बयान किया गया है कि आप समस्त मनुष्यों के लिए रसूल बनाकर भेजे गए हैं। उदाहरणार्थ क़ुरआन की सूरा सबा (34), आयत 28 पढ़िए : "और (ऐ नबी!) हमने तो तुम्हें समस्त मनुष्यों के लिए शुभसूचना देनेवाला और सचेत करनेवाला बनाकर भेजा है; परन्तु अधिकतर लोग नहीं जानते।" एक दूसरी जगह है : "और ऐ नबी! कहो : यह क़ुरआन मेरी ओर 'वह्य' किया गया है ताकि मैं इसके द्वारा तुम्हें और जिस किसी को यह पहुँचे सबको सचेत कर दूँ।"

—सूरा अल-अनआम (61), आयत 19

पिछले नबियों की नुबूवत विशेष काल और विशेष जाति के लिए थी, यह स्वयं उनके काम, उनकी कोशिश और उनके कथनों से सिद्ध है।

1. अर्थात मेरी नुबूवत किसी विशेष रंग और नस्ल की जाति के लिए नहीं है, बल्कि मैं समस्त मनुष्यों के लिए रसूल बनाकर भेजा गया हूँ।
2. यह हदीस बताती है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के अन्तिम नबी हैं। नुबूवत

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरी मिसाल और मुझसे पहले गुज़रे हुए 'नबियों' की मिसाल

का सिलसिला आपपर समाप्त है। यह हदीस वास्तव में क़ुरआन की इस आयत की व्याख्या है : "(ऐ लोगो !) मुहम्मद तुम्हारे पुरुषों में से किसी के पिता नहीं हैं, परन्तु वे अल्लाह के रसूल और नबियों के समापक हैं। और अल्लाह को हर चीज़ का ज्ञान है।"

—क़ुरआन, 33 : 40

नुबूवत वास्तव में एक पद है जिसपर अल्लाह विशेष आवश्यकता से किसी व्यक्ति को नियुक्त करता है। यह आवश्यकता जब होती है, तो अल्लाह की ओर से 'नबी' की नियुक्ति हो जाती है। जब आवश्यकता नहीं होती तो नबी नहीं भेजे जाते। क़ुरआन के अध्ययन से मालूम होता है कि चार हालतों में नबी भेजे गए हैं : (1) किसी विशेष जाति में कोई नबी न आया हो, और किसी दूसरी जाति में आए हुए नबी का सन्देश भी उस तक न पहुँच सकता हो तो उस जाति के मार्गदर्शन के लिए अल्लाह की ओर से नबी आता है। (2) गुज़रे हुए नबी की शिक्षाओं को लोगों ने भुला दिया हो या उस नबी की शिक्षा में लोगों ने अपनी ओर से कुछ घटा-बढ़ा दिया हो कि सत्य और असत्य में अन्तर करना कठिन हो गया हो और वास्तविक रूप में उस नबी का अनुसरण संभव न हो। (3) एक नबी के साथ उसकी सहायता और सहयोग के लिए किसी और नबी की आवश्यकता हो। (4) गुज़रे हुए नबी के द्वारा जो शिक्षा दी गई हो वह पूर्ण न हो अब उसे पूर्ण करने के लिए किसी नबी के आने की आवश्यकता हो।

नबी (सल्ल०) के आने के पश्चात इनमें से कोई भी आवश्यकता शेष नहीं है। आप सम्पूर्ण संसार को सीधा मार्ग दिखाने के लिए रसूल बनाकर भेजे गए हैं। आपकी नुबूवत के समय से लेकर निरन्तर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती गई हैं कि आपका सन्देश सारे संसार में पहुँचाया जा सकता है और पहुँच रहा है। आपके बाद अलग-अलग जातियों में नबियों को नियुक्त करने की आवश्यकता शेष नहीं रही। क़ुरआन इस बात का साक्षी है और नबी (सल्ल०) की जीवनी और हदीसों का महान भण्डार इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि आपकी लाई हुई शिक्षा अपने वास्तविक रूप में सुरक्षित है। आपकी लाई हुई किताब अक्षरशः उसी रूप में मौजूद है जिस रूप में आपने उसे संसार के समक्ष प्रस्तुत किया था। आपके कथन, उपदेश और आपका सम्पूर्ण जीवन इस प्रकार हम तक पहुँचा है मानो आप हमारे बीच मौजूद हैं। नबी (सल्ल०) के द्वारा अल्लाह ने दीन (धर्म) को पूर्ण कर दिया। सुधारकर्ता आपकी सूचना के अनुसार मुसलिम समुदाय में बराबर उठते रहे हैं और उनके द्वारा धर्म के पुनरुत्थान और उसे नवीनता प्रदान करने का कार्य होता रहा है।

ऐसी है जैसे किसी व्यक्ति ने एक घर बनाया और उसे अत्यन्त सुन्दर और छवि-सम्पन्न बनाया परन्तु एक कोने में एक ईंट की जगह छूट हुई थी। लोग उस (घर) के चारों ओर फिरते और उसकी मनोहरता पर विस्मय प्रकट करते और कहते थे : यह ईंट भी क्यों न रख दी गई? तो वह ईंट मैं हूँ और मैं नबियों का समापक हूँ।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हम सबसे अन्तिम हैं और क़ियामत के दिन सबसे पहले हो जाएँगे, केवल इतनी बात है कि पहले लोगों को किताब हमसे पहले दी गई है और हमें उनके बाद दी गई है।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम, नसई

4. हज़रत जुबैर इब्ने मुतइम (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को कहते सुना : मेरे कई नाम हैं, मैं मुहम्मद हूँ, और मैं अहमद हूँ, और मैं माही हूँ कि मेरे द्वारा अल्लाह कुफ़्र (अधर्म) को मिटाएगा[3], और मैं हाशिर हूँ, वह हाशिर जिसके बाद लोग हश्र (प्रलय-क्षेत्र) में एकत्र किए जाएँगे[4] और मैं आक़िब (पीछे आनेवाला) हूँ। आक़िब उसे कहते हैं जिसके बाद कोई नबी न हो।

—बुख़ारी, मुसलिम

---

1. 'मुसलिम' में इस विषय की चार हदीसें आई हैं। एक हदीस में ये शब्द मिलते हैं : "तो मैं आया और मैंने नबियों के सिलसिले को समाप्त कर दिया।" मुसनद अबू दाऊद तयालसी में यह हदीस जाबिर बिन अब्दुल्लाह की उल्लिखित हदीसों के सिलसिले में आई है। उसके अन्तिम शब्द ये हैं : "मेरे द्वारा 'नबियों' का सिलसिला समाप्त हो गया।" इस हदीस से मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) के आने से नुबूवत का भवन पूर्ण रूप से निर्मित हो गया और कोई जगह बाक़ी नहीं रही जिसे भरने के लिए किसी नबी के आने की आवश्यकता हो। नुबूवत और रिसालत का सिलसिला आप (सल्ल०) पर पूर्ण हो गया। आपके बाद जो व्यक्ति भी अपने नबी होने का दावा करे वह झूठा, फ़रेबी और मक्कार है।
2. इस रिवायत से भी मालूम हुआ कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की रिसालत (ईश-दूतत्व) अन्तिम रिसालत है। आपपर वह्य (ईश्वरीय संकेत) और 'रिसालत' का सिलसिला समाप्त हो गया। इस हदीस से आपके समुदाय की श्रेष्ठता पर भी प्रकाश पड़ता है।
3. आपकी यह बात पूरी होकर रही, कुफ़्र जो आपसे संघर्ष कर रहा था, परास्त हुआ और धरती के एक बड़े भाग पर अल्लाह का दीन क़ायम हुआ।
4. अर्थात मेरे बाद क़ियामत ही आएगी। मेरे बाद कोई नबी न होगा।

5. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल० ने हमारे सामने अपने ये नाम बयान किए है : मैं मुहम्मद हूँ, अहमद हूँ, मुक़फ़्फ़ हूँ[1], हाशिर हूँ[2] तौबावाला नबी हूँ[3] और रहमतवाला नबी हूँ।[4] —मुसलिम

6. अब्दुल्लाह बिन इबराहीम बिन क़ारिज़ कहते हैं कि मैं गवाही देता हूँ वि मैंने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) को कहते सुना है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल० ने कहा : मैं अन्तिम नबी हूँ और मेरी मसजिद अन्तिम मसजिद है।[5]

—मुसलिम, नसई

7. अबू तुफ़ैल से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मे

---

1. अर्थात मैं समस्त नबियों के अन्त में आनेवाला हूँ। मेरे बाद कोई नवीन नुबूवत क़ायम न होगी।
2. अर्थात क़ियामत के दिन लोगों को एकत्र करनेवाला। मेरे बाद क़ियामत ही आएगं जिसमें लोग अल्लाह के सामने एकत्र किए जाएँगे।
3. नबी (सल्ल०) अल्लाह के सामने अधिक तौबा किया करते थे। आप बहुत ज़्याद अल्लाह की ओर पलटते और उससे क्षमा की प्रार्थनाएँ किया करते थे।
4. आप (सल्ल०) सम्पूर्ण संसार के लिए रहमत (सर्वथा दयालुता) बनाकर भेजे गए। आ सारे संसार के नायक और सारे मनुष्यों को मुक्ति, कल्याण और सफलता का मा दिखानेवाले हैं। कुरआन में भी कहा गया है : "और (ऐ मुहम्मद !) हमने तुम्हें सा संसार के लिए रहमत (दयालुता) ही बनाकर भेजा है।" — कुरआन, 21 : 10
5. नसई की रिवायत में आख़िर के बदले ख़ातिम शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ वह है जो आख़िर का होता है।

   दूसरी हदीसों से मालूम होता है कि संसार में तीन मसजिदें ऐसी हैं जिन्हें साधारण मसजिदों के मुक़ाबले श्रेष्ठता प्राप्त है। इनमें नमाज़ पढ़ने का सवाब (पुण्य) दूसर मसजिदों में नमाज़ पढ़ने से हज़ार गुना अधिक है। इसी कारण इन मसजिदों मे 'नमाज़' पढ़ने के लिए सफ़र करके जाना वैध है। जबकि दूसरी किसी मसजिद को यह हक़ नहीं पहुँचता कि आदमी अन्य मसजिदों को छोड़कर उसमें नमाज़ अदा करने के लिए सफ़र करे। इन श्रेष्ठतम मसजिदों में पहली मसजिद वह है जो मसजिदे हराम (Inviolable Place of Worship) के नाम से प्रसिद्ध है। यह आदर और विशे प्रतिष्ठावाली मस्जिद है। इसके निर्माणकर्त्ता हज़रत इबराहीम (अलै०) थे। दूसरी मसजिद मसजिदे अक़सा (Sacred Place of Jerusalem) है जिसे हज़रत सुलैमा (अलै०) ने बनाया था। तीसरी मसजिद मदीना की मसजिदे नबवी जिसकी बुनियाद नबी (सल्ल०) ने रखी है।

पश्चात नुबूवत नहीं है, केवल शुभसूचक बातें हैं। कहा गया : वे शुभसूचक बातें क्या हैं, ऐ अल्लाह के रसूल ! कहा : "अच्छा स्वप्न" या कहा "ठीक स्वप्न" ।[1]

—मुसनद अहमद, नसई, अबू दाऊद

8. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुमसे पहले के समुदायों में मुहद्दस हुए हैं, यदि मेरे समुदाय में कोई (मुहद्दस) है तो वह उमर है ।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

9. हज़रत सौबान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय में तीस बड़े झूठे होंगे, उनमें से प्रत्येक अपने नबी होने का दावा करेगा, हालाँकि मैं नबियों का समापक हूँ, मेरे बाद कोई नबी नहीं ।[3] —मुसलिम

---

1. अर्थात मेरे बाद वह्य व नुबूवत की संभावना नहीं है। किसी को अल्लाह की ओर से कोई संकेत मिलेगा तो वह अच्छे स्वप्न के रूप में मिलेगा।
2. अर्थात मेरे समुदाय में यदि मुहद्दस हैं तो उनमें से निश्चय ही दूसरों के अतिरिक्त एक उमर (रज़ि०) भी हैं। कुछ रिवायतों के शब्द ये हैं : "तुमसे पहले बनी इसराईल में ऐसे लोग हुए हैं जिनसे कलाम किया जाता था बिना इसके कि वे नबी हों। मेरे समुदाय में यदि कोई हुआ तो वह उमर होंगे"। मुहद्दस और मुकल्लम का अर्थ एक ही है। मुहद्दस या मुकल्लम उसे कहेंगे जो ईश्वरीय वार्तालाप या ईश्वरीय सम्बोधन से सम्मानित हो या जिसके साथ ग़ैब के परदे (परोक्ष) से बात की जाए। मुसलिम की कुछ रिवायतों में मुल-हमून शब्द भी प्रयुक्त हुआ है अर्थात वे लोग जिनको 'इलहाम' होता हो, जिनके मन में ईश्वर की ओर से बातें डाली जाती हों। जिनको दैवी प्रेरणाएँ प्राप्त होती हों। अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से मरफ़ूअ तरीक़े पर उल्लिखित है नबी (सल्ल०) से पूछा गया कि मुहद्दस कैसा होता है ? आपने कहा : ये वे लोग हैं कि फ़रिश्ते इनकी जिह्वा से बोलते हैं। विद्वानों ने इसका विभिन्न अर्थ समझा है। अधिकतर लोगों का विचार है कि यह वह व्यक्ति है जिसका ख़याल अधिकतर सही होता हो, जिसके दिल में अल्लाह के निकटवर्ती फ़रिश्तों की ओर से कोई बात इस तरह डाली जाए मानो उससे किसी ने कह दी है। किसी के विचार में मुहद्दस वह है जिसकी ज़बान से सत्य और ठीक बात अकस्मात बिना संकल्प के निकले।
3. इस हदीस में तीस बड़े मक्कारों का उल्लेख हुआ है। नबी (सल्ल०) ने मुस्लिम समुदाय को सचेत कर दिया कि नुबूवत आप (सल्ल०) पर समाप्त है। आपके बाद नुबूवत का जो भी दावेदार होगा वह झूठा होगा। आपकी यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। आपके बाद अल्लाह की ओर से कोई नबी नहीं आया। आपकी सूचनानुसार नुबूवत के झूठे दावेदार अवश्य उठे, परन्तु वे अपने छल और षड्यंत्र को

नबी (सल्ल०) की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मुझे नबियों से छः बातों में श्रेष्ठता प्रदान की गई है : मुझे संक्षिप्त और व्यापक अर्थयुक्त बात कहने की योग्यता दी गई है।[1] रोब के द्वारा मुझे सहायता प्रदान की गई[2], ग़नीमत के माल को मेरे लिए हलाल किया गया[3], धरती को मेरे लिए मसजिद और पवित्रता प्राप्त करने का साधन बना दिया गया।[4] मुझे सारे संसार के लिए रसूल बनाकर भेजा

छिपाने में सफल न हो सके। उनका छल और उनकी मक्कारी खुलकर रही। उनमें नुबूवत का कोई तेज और पवित्रता नहीं पाई गई। इंजील में बयान हुआ है : "झूटे नबियों से सावधान रहो जो तुम्हारे पास भेड़ों के भेष में आते हैं, परन्तु अन्तर में फाड़नेवाले भेड़िए हैं। उनके फलों से तुम उन्हें पहचान लोगे। क्या झाड़ियों से अंगूर या ऊँट-कटारों से अंजीर तोड़ते हैं!" —मत्ती, 6 : 15-16

1. अर्थात मुझे ऐसी योग्यता प्रदान की गई है कि मेरे संक्षिप्त शब्द अत्यन्त सारगर्भित और व्यापक अर्थ से युक्त होते हैं। नबी (सल्ल०) के शब्द स्पष्ट होते हैं परन्तु उनको विस्तृत कीजिए तो प्रत्येक विस्तार का वे ऐसा साथ देते हैं कि मानो वे उसी के लिए आपके मुख से निकले हैं। क़ुरआन के बाद यह हदीस का ही चमत्कार है कि स्पष्ट और संक्षिप्त होने पर भी उसमें अत्यन्त व्यापकता पाई जाती है।
2. अर्थात दुश्मन पर रोब डालकर उसे आतंकित करके मेरी सहायता की गई।
3. इस्लामी युद्ध में शत्रु का जो माल हाथ आता है उसे ग़नीमत कहते हैं। पिछले नबियों के समय में इस माल को अपने काम में लाना अवैध था, परन्तु अल्लाह ने अपनी कृपा से ग़नीमत के माल को नबी (सल्ल०) की शरीअत (धर्म विधान) में हलाल (वैध) कर दिया है।
4. अर्थात मेरी शरीअत (धर्म विधान) में नमाज़ केवल मसजिद और पूजागृहों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि धरती पर हर जगह नमाज़ पढ़ी जा सकती है और यदि पानी न मिले तो वुज़ू (शुद्धता के लिए हाथ-पाँव और मुँह आदि धोने) के बदले तयम्मुम से काम चलाया जा सकता है और इसी तरह पानी न मिलने पर स्नान के बदले मिट्टी से तयम्मुम किया जा सकता है। तयम्मुम से अभिप्रेत यह है कि शुद्ध मिट्टी पर अपने दोनों हाथ मारे फिर सारे मुँह पर भली-भाँति मले इसी तरह दोबारा मिट्टी पर दोनों हाथों को मारकर दोनों हाथों की कुहनियों तक मले। यह नमाज़ का आदर और पवित्रता की भावना को बाक़ी रखने का एक उत्तम और मनोवैज्ञानिक उपाय है।

गया ।[1] और मुझपर नबियों के सिलसिले को समाप्त कर दिया ।[2]

—मुसलिम, तिरमिज़ी, इब्ने माजा

2. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन नबियों में सबसे अधिक संख्या मेरे अनुयायियों की होगी। और मैं प्रथम व्यक्ति हूँगा जो जन्नत का द्वार खुलवाएगा। —मुसलिम

3. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं पहला व्यक्ति हूँ जो जन्नत में सिफ़ारिश करूँगा ।[3] नबियों में से किसी की उतनी तसदीक़ (समर्थन एवं पुष्टि) नहीं की गई जितनी मेरी तसदीक़ की गई। और नबियों में से एक नबी ऐसे हैं जिनकी तसदीक़ उनके समुदाय के केवल एक व्यक्ति ने की है ।[4] —मुसलिम

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं क़ियामत के दिन आदम की औलाद का सरदार हूँगा। और सबसे पहला व्यक्ति जो अपनी क़ब्र से उठेगा मैं हूँगा। सबसे पहले मैं सिफ़ारिश करूँगा और सबसे पहले मेरी सिफ़ारिश क़ुबूल की जाएगी। —मुसलिम

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : नबियों में से हर एक नबी को चमत्कारों में से उतना ही प्रदान किया गया जिसपर मनुष्य ईमान ला सके और जो चीज़ मुझे प्रदान की गई वह वह्य (ईश्वरीय वाणी) है जिसे अल्लाह ने मेरी ओर भेजी ।[5] इसलिए मुझे आशा

---

1. अर्थात मैं सारे संसार का रसूल हूँ। मुझे किसी विशेष जाति और देश के लिए रसूल बनाकर नहीं भेजा गया है। मैं तो सारे संसार को सत्यमार्ग दिखाने आया हूँ।
2. अर्थात मेरे बाद कोई दूसरी नुबूवत क़ायम होनेवाली नहीं है। मैं अल्लाह का अन्तिम नबी (संदेशवाहक और दूत) हूँ।
3. अर्थात मेरी सिफ़ारिश से बहुत-से लोग जन्नत में जाएँगे और बहुत-से लोगों के दर्जे मेरी सिफ़ारिश से उच्च कर दिए जाएँगे।
4. अर्थात मेरी नुबूवत को माननेवालों की संख्या सबसे अधिक है। एक नबी तो ऐसे गुज़रे हैं जिनको उनके समुदाय में से केवल एक व्यक्ति ने माना, शेष सब लोगों ने उनका विरोध ही किया और उन्हें नबी मानने से इनकार कर दिया।
5. मतलब यह है कि हर नबी को उसके अपने युग और परिस्थिति के अनुसार चमत्कार (Miracles) प्रदान किए गए थे। मुझे अल्लाह ने जो विशेष चमत्कार प्रदान किया है वह वह्य एवं दैवी प्रेरणा (Inspiration) का चमत्कार है। क़ुरआन जो वह्य के द्वारा

है कि क़ियामत के दिन मेरे अनुयायियों की संख्या समस्त नबियों के अनुयायियों से अधिक होगी। —बुख़ारी, मुसलिम

अत्युक्ति से परहेज़

1. हज़रत राफ़ेअ बिन ख़दीज (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) मदीना आए तो उस समय मदीनावाले खजूर की ताबीर[1] किया करते थे। आपने कहा :

मुझपर अवतरित हुआ है एक सर्वकालिक चमत्कार है। इसके द्वारा क़ियामत तक लोग सीधा मार्ग पाते रहेंगे। मुझे जो चमत्कार मिला है उसकी विलक्षणता का कभी अन्त नहीं हो सकता।

कुरआन पर जिस पहलू से विचार कीजिए वह एक चमत्कार सिद्ध होगा। भाषा, साहित्य, वर्णनशैली, विषय, आशय आदि जिस पहलू से भी देखिए वह एक चमत्कार है। क़ुरआन जैसा कलाम पेश करने में सारा जग असमर्थ है। मानवीय मार्गदर्शन के लिए क़ुरआन काफ़ी है। विचार और धारणा से लेकर व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यों और प्रयासों के लिए क़ुरआन एक मार्गदर्शक ग्रन्थ है।

कुरआन के चमत्कार का उल्लेख स्वयं क़ुरआन में भी हुआ है। उदाहरणार्थ एक स्थान पर कहा गया है : "और यह क़ुरआन ऐसा नहीं है कि अल्लाह के सिवा कोई अपनी ओर से गढ़ लाए, बल्कि यह तो जो कुछ इससे पहले (आ चुका) है उसकी तसदीक़ और (अल्लाह की) किताब का विस्तार है—इसमें कोई संदेह नहीं—यह सारे संसार के रब (पालनकर्ता स्वामी) की ओर से है। क्या ये लोग कहते हैं कि इस (नबी) ने उसे स्वयं गढ़ लिया है? कहो : यदि तुम (अपने दावे में) सच्चे हो तो एक ही सूरा उसकी तरह बना लाओ। और अल्लाह के अतिरिक्त जिसको चाहो (इस कार्य में) अपनी सहायता के लिए बुला लो। —क़ुरआन, 10 : 37-38

1. खजूर की ताबीर से अभिप्रेत एक प्रकार की पैवन्दकारी है। खजूर के मादा वृक्ष के शगूफ़े में नर वृक्ष का शगूफ़ा रख दिया करते थे। इस प्रकार नर व मादा के मिलने से फ़सल अच्छी आती थी। नबी (सल्ल०) ने ताबीर के बारे में सहाबा से पूछा तो वे इसके सिवा कुछ न बता सके कि हम इसे करते आए हैं। आपने कुछ संकोच के साथ इसे छोड़ देने की सम्मति दी तो फ़सल कम आई।

इस हदीस से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आप (सल्ल०) एक मनुष्य थे, कोई अलौकिक व्यक्तित्व आपका नहीं था। इसलिए यह आवश्यक नहीं था कि बाग़बानी के बारे में आपका अनुमान सही ही निकलता। आप बाग़बानी, कृषि, और शिल्प कला आदि सिखाने आए भी नहीं थे। परन्तु जिन मामलों में दीन (धर्म) ने मार्ग दिखाया है, उनमें आपका अनुसरण अनिवार्य है। और उनमें आपके कथन के सत्य होने में कुछ

यह क्या करते हो? लोगों ने कहा : हम ऐसे ही करते आए हैं। आपने कहा : यदि तुम ऐसा न करो तो शायद अच्छा हो। लोगों ने इसको छोड़ दिया। फलतः पैदावार कम हो गई। उन्होंने आप (सल्ल०) से इसका ज़िक्र किया तो आपने कहा : मैं तो केवल एक मनुष्य हूँ, जब मैं तुम्हें तुम्हारे 'दीन' के (धर्म सम्बन्धी) किसी मामले में हुक्म दूँ तो तुम उसे ले लो और जब तुम्हें अपनी सम्मति से कुछ बताऊँ तो बस मैं एक मनुष्य हूँ।[1]

—मुसलिम

2. हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मुझे हद से न बढ़ाओ जैसा कि नसारा (ईसाइयों) ने मरयम के बेटे (हज़रत ईसा मसीह अ०) को हद से बढ़ा दिया। मैं तो बस अल्लाह का बन्दा और उसका 'रसूल' हूँ। अतः मुझे अल्लाह का बन्दा और उसका 'रसूल' कहा करो।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने ज़ुह्र (की नमाज़) में पाँच (रक्अतें) पढ़ीं। आपसे कहा गया कि क्या नमाज़ में इज़ाफ़ा (परिवर्द्धन) हुआ है? आपने कहा : नहीं। तो (सहाबा ने) कहा : आपने पाँच रक्अतें पढ़ीं, तो आपने दो सजदे किए, इसके पश्चात कि आप सलाम फेर चुके थे (अर्थात नमाज़ पूरी कर चुके थे)। एक रिवायत में है कि आपने कहा : मैं तुम जैसा एक मनुष्य हूँ, जैसा तुम भूलते हो मैं भी भूलता हूँ, तो जब मैं भूलूँ तो मुझे याद दिला दो। और जब तुममें से किसी को अपनी नमाज़ में संदेह हो तो वह सही बात को जानने की कोशिश करे, फिर उसके अनुसार

सन्देह न होना चाहिए। जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि समस्त क्षेत्र दीन में सम्मिलित हैं और आपने अल्लाह की ओर से इन सभी क्षेत्रों और विभागों में मार्गदर्शन का कार्य किया है। इनमें आपके आदेशों का पालन करना हमारे लिए आवश्यक है।

1. दूसरी रिवायत में है कि आपने कहा : "सांसारिक मामलों में तुम अधिक ख़बर रखते हो।"
2. अर्थात मैं तो अल्लाह का बन्दा हूँ। उसने मुझे अपना रसूल अवश्य बनाया है, इससे अधिक मैं कुछ नहीं हूँ। कहीं ऐसा न हो कि तुम अत्युक्ति से काम लो और मुझसे ऐसी विशेषताओं का सम्बन्ध जोड़ने लगो जो केवल अल्लाह के लिए विशिष्ट है। ईसाइयों ने हज़रत मसीह को अल्लाह का बेटा कहा और उन्हें मानवीय स्तरीय से उच्च दर्जा दे दिया। तुम ऐसा न करना कि मुझे ईश्वर या ईश्वर का बेटा या अवतार समझने लग जाओ। मैं ईश्वर कदापि नहीं हूँ, केवल अल्लाह का बन्दा हूँ।

नमाज़ पूरी करे, फिर सलाम फेरे[1] और दो सजदे करे। —बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं एक मनुष्य ही हूँ। तुम लोग अपने झगड़े लेकर मेरे पास आते हो, सम्भव है कि तुममें से कोई अपने प्रमाण को बना-सँवारकर बयान करने में दूसरे से बढ़कर हो और मैं (उसके बयान से प्रभावित होकर) जैसा उससे सुनूँ उसके अनुसार उसके हक़ में फ़ैसला कर दूँ, तो यदि मैं किसी के भाई के हक़ का फ़ैसला उसके हक़ में कर दूँ तो वह उसे कदापि न ले क्योंकि जो कुछ इस फ़ैसले से उसे मिला है वह उसके लिए आग का एक अँगारा है।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम

नबी (सल्ल०) की विनम्रता एवं बन्दगी की भावना

1. मुतर्रिफ़ बिन अब्दुल्लाह बिन शिख़्ख़ीर अपने पिता से रिवायत करते हैं कि उन्होंने कहा : मैं एक बार नबी (सल्ल०) की सेवा में हाज़िर हुआ। उस समय आप नमाज़ पढ़ रहे थे। आपके सीने से व्यग्र और भयभीत स्वर में ऐसी आवाज़ निकल रही थी जैसे हाँडी के जोश मारने की आवाज़ होती है। दूसरी रिवायत में है : मैंने आपको 'नमाज़' पढ़ते देखा और रोने के कारण आपके सीने से चक्की जैसी आवाज़ आ रही थी।[3] —अहमद, नसई, अबू दाऊद

2. हज़रत मुग़ीरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल० नमाज़ में) इतनी देर तक खड़े रहे कि आपके पाँव सूज गए। इसपर आपसे कहा गया कि आपके तो अगले-पिछले सब गुनाह क्षमा किए जा चुके हैं, आप यह कष्ट क्यों करते हैं? आपने कहा : तो क्या मैं (अल्लाह का) कृतज्ञ बन्दा न बनूँ?[4] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. इस हदीस से मालूम हुआ कि नबी (सल्ल०) मनुष्य होने की दृष्टि से दूसरे मनुष्यों की तरह मनुष्य थे।
2. यह हदीस इस विषय में स्पष्ट है कि नबी (सल्ल०) अल्लाह के रसूल होने के बावजूद मनुष्य ही थे। अतः आपके बारे में अत्युक्ति से बचना चाहिए। आपको किसी ऐसे गुण से युक्त समझना सही न होगा जिससे केवल ईश्वरीय सत्ता ही युक्त हो सकती है। जैसे ग़ैब का जाननेवाला होना, सर्वशक्तिमान होना आदि।
3. इस हदीस से भली-भाँति इसका अन्दाज़ा किया जा सकता है कि आपको अल्लाह की महानता और उसके प्रताप एवं प्रतिष्ठा का कितना एहसास था। और आपका हृदय बन्दगी की भावना से कितना परिपूर्ण था।
4. अर्थात यद्यपि अल्लाह मेरा रक्षक है और उसने मेरी भूल-चूक को क्षमा भी कर दिया है

3. हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे बारे में अत्युक्ति से काम न लो जैसा कि नसारा (ईसाइयों) ने मरयम के बेटे (हज़रत ईसा मसीह) के बारे में अत्युक्ति से काम लिया। मैं तो बस अल्लाह का बन्दा (दास, सेवक) और उसका एक रसूल हूँ। अतः मुझे अल्लाह का बन्दा और उसका रसूल कहो।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि एक रात मैंने नबी (सल्ल०) को शय्या पर न पाया तो मैंने आपको तलाश किया तो मेरा हाथ आपके पाँव के तलवों पर पड़ गया, आप सजदे में थे और कह रहे थे : ऐ अल्लाह ! मैं तेरे क्रोध एवं प्रकोप से तेरी प्रसन्नता की शरण लेता हूँ, और तेरे दण्ड एवं यातना से तेरी क्षमा की शरण लेता हूँ और तेरी पकड़ से तेरी ही शरण लेता हूँ। पूर्ण रूप से तेरी प्रशंसा करने का मुझे सामर्थ्य नहीं है, तू वैसा ही है जैसी तूने स्वयं अपनी प्रशंसा की है।[2] —मालिक, तिरमिज़ी, अबू दाऊद

5. हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि नबी (सल्ल०) का हाल यह

परन्तु यह उसकी दया और कृपा है। और उसकी इस दयालुता पर स्वभावतः बन्दे को और अधिक उसका कृतज्ञ होना चाहिए और ज़्यादा से ज़्यादा उसकी सेवा में विनम्रता और अपनी बन्दगी प्रदर्शित करना चाहिए।

1. अर्थात मेरी ऐसी प्रशंसा न करना कि मुझे बन्दगी के स्तर से उच्च देखने लगो, इससे पहले ईसाइयों ने ऐसा दुस्साहस किया है। उन्होंने हज़रत मसीह की प्रशंसा में अत्युक्ति से काम लिया और उन्हें ईश या ईश्वर का पुत्र बना लिया, हालाँकि मसीह (अलै०) अल्लाह के केवल एक चुने हुए श्रेष्ठ बन्दे और पैग़म्बर हुए थे। मुझे तुम अल्लाह का एक बन्दा और उसका रसूल ही समझो, इससे अधिक मैं और कुछ नहीं हूँ।

2. इस हदीस से भी नबी (सल्ल०) की हालत और आपकी मनोदशा पर प्रकाश पड़ता है। 'हदीसों' में आपकी बहुत-सी दुआओं और प्रार्थनाओं का उल्लेख किया गया है जिनके अध्ययन से प्रत्यक्षतः यह बात मालूम होती है कि आप बन्दगी के उच्च स्थान पर पहुँचे हुए थे। आपकी भावनाएँ, मनोवेग और अन्तर्तरंगें बन्दगी के रंग में रंगी थीं। आपकी दुआएँ वास्तव में ईश-ज्ञान की महान निधि हैं। ये दुआएँ बताती हैं कि आपको अल्लाह से कितना गहरा और हार्दिक सम्बन्ध था। आपका हृदय सूक्ष्म एवं पवित्रतम भावों का आगार था। आपका हृदय सदैव अल्लाह के प्रताप एवं सौन्दर्य की अनुभूति से ओतप्रोत रहता था। अल्लाह के मुक़ाबले में सारे संसार की विवशता एवं दुर्बलता आपपर दिन के प्रकाश की भाँति विदित थी।

था कि जब वायु तेज़ चलती तो आप कहते : "ऐ अल्लाह ! मैं तुझसे माँगता अच्छाई इस वायु की, और अच्छाई उसकी जो कुछ कि इसमें है और अच्छा उसकी जिस (उद्देश्य) के लिए यह भेजी गई है। और मैं तेरी शरण चाहता बुराई से इस वायु की, और उसकी बुराई से जो कुछ कि इसमें है और उसव बुराई से जिस (उद्देश्य) के लिए यह भेजी गई है।" और जब आकाश में बाद आता तो आपका रंग बदल जाता था और घबराहट में कभी बाहर आते औ कभी भीतर जाते, कभी आगे आते और कभी पीछे हटते, फिर जब वर्षा हो जा तो आप (सल्ल०) की यह हालत दूर हो जाती।[1] हज़रत आइशा (रज़ि०) आपकी इस हालत को महसूस किया तो आपसे (इस बारे में) पूछा। आपने कहा ऐ आइशा ! कदाचित यह बादल ऐसा ही हो जिसके बारे में आद जाति ने क था : जब उन्होंने बादल को अपने मैदानों की ओर बढ़ते देखा तो कहने लगे– यह घटा उठी है जो हमपर वर्षा करेगी।[2] —बुख़ारी, मुसलि

6. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) कहते हैं कि एक बार सूर्यग्रहण लगा तो न (सल्ल०) घबराकर उठ खड़े हुए। आप (सल्ल०) डर रहे थे कि कहीं व (क़ियामत की) घड़ी न आ गई हो। मसजिद में आए और इतने लम्बे-लम

---

1. हज़रत आइशा की इस हदीस से भी यह बात मालूम होती है कि नबी (सल्ल०) हृदय पर अल्लाह का भय और डर कितना ज़्यादा छाया रहता था। तनिक भी तेज़ ह चले तो आप घबरा जाते और अल्लाह से प्रार्थना करने लगते थे कि ऐ अल्लाह ! य इसमें कोई बुराई और आपदा है तो हमें उससे बचा ले और यदि इसमें कोई अच्छ और भलाई है तो हम तुझसे उसके इच्छुक हैं। बादल देखते तो आपका रंग बद जाता। आपको अल्लाह का यह प्रकोप याद आ जाता जो आद नामक जाति पर हु था। हज़रत हूद (अलै०) की सरकश और अवज्ञाकारी जाति 'आद' पर अज़ाब बाद के रूप में आया था। (दे० कुरआन सूरा 46 : 24) जब उनके लोगों ने बादल अपने भूभाग की ओर बढ़ते हुए देखा तो लगे ख़ुशियाँ मनाने कि वर्षा होगी हालाँ वह अज़ाब की आँधी थी जो तबाही लेकर आई थी। आद जाति जिस क्षेत्र में आब थी उसे कुरआन में 'अल-अहक़ाफ़' कहा गया है। इससे अभिप्रेत अरब का दक्षि भूभाग है। किसी समय में यह एक हरे-भरे मैदान के रूप में था।
2. नबी (सल्ल०) ने यहाँ कुरआन से एक आयत का टुकड़ा पेश किया है। आयत का शे भाग यह है : "(कहने लगे : यह घटा उठी है जो हमपर वर्षा करेगी) जी नहीं, यह तो है जिसकी तुमने जल्दी मचा रखी थी। आँधी है, दुखदायी अज़ाब लिए हुए।" (कुरआन, 46 : 2

क़ियाम[1], रुकूअ [2] और सजदों [3] के साथ नमाज़ पढ़ी कि मैंने इतने लम्बे क़ियामत व रुकूअ करते आपको कभी नहीं देखा।[4] (नमाज़ अदा करने के बाद) आपने कहा : ये निशानियाँ अल्लाह किसी की मृत्यु या जीवन के कारण नहीं दिखाता, बल्कि इनके द्वारा अल्लाह अपने बन्दों को डराता है। जब इस प्रकार की कोई चीज़ देखो तो दौड़ पड़ो उसकी याद की ओर उससे प्रार्थना करने और क्षमायाचना के लिए।[5] —बुख़ारी, मुसलिम

7. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने

---

1. नमाज़ में खड़े होने की स्थिति।
2. नमाज़ में अल्लाह के सम्मुख झुकने की स्थिति।
3. नमाज़ में अल्लाह के सामने बिलकुल बिछ जाने की स्थिति।
4. आँधी, ग्रहण आदि के अवसर पर अल्लाह की महानता, प्रताप और गौरव का एहसास हद दर्जा बढ़ जाता था। आप ऐसे अवसर पर अल्लाह की सेवा में अधिक से अधिक अपनी विनम्रता, दीनता और निर्बलता का प्रदर्शन करते थे। इस प्रदर्शन का उत्तम साधन 'रुकूअ' और सजदे ही हो सकते हैं।
5. अर्थात इन निशानियों का सम्बन्ध किसी के मरने या जीने से कदापि नहीं है जैसा कि अज्ञान के कारण कुछ लोग समझते हैं, बल्कि यह निशानियाँ तो अल्लाह की बड़ाई और उसके बल और सामर्थ्य को प्रदर्शित करती हैं। इस तरह की निशानियों को देखकर दिलों में अधिक से अधिक अल्लाह का भय उत्पन्न होना चाहिए और उससे अपनी भलाई और कल्याण के लिए अधिक से अधिक प्रार्थनाएँ करनी चाहिएँ। इन निशानियों को देखने के बाद भी यदि मनुष्य अल्लाह को याद न करे और उसकी ओर से असावधान ही रहे, न तो उसकी ओर पलटे और न उससे क्षमा की प्रार्थना करे तो समझ लेना चाहिए कि उसका हृदय मर चुका है। उसमें वास्तविक चेतना और जीवन शेष नहीं है। ग्रहण आदि को देखकर साधारणतया हमारा ध्यान उसके भौतिक एवं प्राकृतिक कारणों की ओर जाता है। हम उससे वह शिक्षा ग्रहण नहीं करते जो वास्तव में हमें ग्रहण करनी चाहिए।

   एक 'हदीस' में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "अज्ञान काल में लोग कहते थे कि चन्द्रमा और सूर्य में ग्रहण पृथ्वी के किसी महान व्यक्ति की मृत्यु ही पर लगता है और वास्तविकता यह है कि उनको न तो किसी की मृत्यु से ग्रहण लगता है और न उसके जन्म के कारण, ये दोनों (चन्द्र और सूर्य) अल्लाह के पैदा किए हुए हैं। अल्लाह जो चाहता है अपनी पैदा की हुई चीज़ में परिवर्तन कर देता है, अतः जब इनमें किसी को ग्रहण लगे तो नमाज़ पढ़ो यहाँ तक कि ग्रहण समाप्त हो जाए या अल्लाह कोई दूसरी बात ज़ाहिर करे।" —नसई

कहा : तुममें से किसी का कर्म उसे जन्नत में नहीं ले जाएगा और न उसे (दोज़ख़ की) आग से बचा सकेगा और न मुझे ही (मेरा कर्म जन्नत में ले जाएगा और यातना से बचाएगा।) परन्तु अल्लाह की दयालुता से।[1] —मुसलिम

8. हज़रत अबू-उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे रब (पालनकर्ता प्रभु) ने मेरे सामने यह बात रखी कि मक्का की उपत्यका (तराई) को सोना बना दे। मैंने कहा : नहीं, ऐ रब! बल्कि (यह चाहता हूँ कि) मैं एक दिन तृप्त हूँ और एक दिन भूखा रहूँ। जब मैं भूखा हूँ तो तेरे आगे विनम्रता दिखाऊँ और तुझे याद करूँ, और जब तृप्त हूँ तो मैं तेरी हम्द (प्रशंसा) करूँ और तेरे आगे कृतज्ञता दिखलाऊँ।[2] —अहमद, तिरमिज़ी

9. हज़रत असवद (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने हज़रत आइशा (रज़ि०) से पूछा : नबी (सल्ल०) अपने घर में क्या किया करते थे? उन्होंने कहा : अपने घरवालों की आवश्यकताएँ पूरी करते थे परन्तु जब नमाज़ का समय आता तो तुरन्त नमाज़ के लिए जाते।[3] —बुख़ारी

10. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि सहाबा (रज़ि०) की निगाह में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से अधिक कोई प्रिय न था, फिर भी जब वे आपको देखते तो खड़े न

---

1. आपके इस कथन से मालूम होता है कि आप इस बात को कभी नहीं भूलते थे कि आप अल्लाह के दास और बन्दे हैं। और अल्लाह महान और प्रतापवान है। आपके हृदय पर अल्लाह का भय और डर हर समय छाया रहता था। आप किसी समय भी निर्भय और स्वच्छन्द नहीं रहते थे। आप सदा अल्लाह के आदेशों और उसकी इच्छा के अधीन रहकर भी जीवन व्यतीत करते थे।
2. अर्थात मैं धन-दौलत का अभिलाषी नहीं हूँ बल्कि मुझे जो धन अपेक्षित है वह है विनयभाव और बन्दगी। मैं तो यह समझता हूँ कि तेरी हम्द (प्रशंसा) करूँ, तेरा कृतज्ञ बनूँ और विवशता की हालत में तेरे आगे गिड़गिड़ाऊँ और तुझे याद करूँ।

   मालूम हुआ कि मनुष्य के लिए भूख और तृप्ति दोनों ही अभीष्ट हैं। परन्तु शर्त यह है कि वह भूख में अल्लाह के सामने विनम्रता एवं विनयभाव का प्रदर्शन करे और जब तृप्त हो तो अल्लाह ही हम्द (प्रशंसा) करे और उसके आगे कृतज्ञता दिखलाए। मनुष्य के जीवन में मूल्यवान वस्तु यही विनयभाव, हम्द (प्रशंसा) और कृतज्ञता है, न कि क़ारून या कुबेर का धन, वैभव और सांसारिक सुख और चैन।
3. यह अल्लाह की बड़ाई का ही एहसास था कि 'नमाज़' का समय आ जाने पर आप (सल्ल०) नमाज़ के अलावा किसी दूसरी चीज़ की ओर ध्यान नहीं देते थे, बल्कि तुरन्त नमाज़ की तैयारी करते थे।

होते क्योंकि वह जानते थे कि यह बात (नबी सल्ल० को) नापसन्द है।[1] —तिरमिज़ी

11. हज़रत अब्दुल्लाह बिन सलाम (रज़ि०) से उल्लिखित है कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) बैठे हुए बातें करते तो प्रायः आप (सल्ल०) आकाश की ओर निगाह उठाते रहते।[2] —अबू दाऊद

12. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ऐ आइशा ! यदि मैं चाहूँ तो मेरे साथ सोने के पहाड़ चला करें। मेरे पास एक फ़रिश्ता आया जिसकी कमर काबा के बराबर थी।[3] उसने कहा कि तुम्हारा रब तुम्हें सलाम कहता है और कहता है कि यदि चाहो तो बन्दा पैग़म्बर[4] बनो और चाहो तो 'बादशाह पैग़म्बर' बनो। मैंने जिबरील की ओर देखा। उन्होंने कहा कि अपने आपको पस्त (विनम्र) कर दो[5]—इब्न अब्बास (रज़ि०) की एक रिवायत में है कि फ़रिश्ते की बात सुनकर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जिबरील की ओर रुख़ किया मानो उनसे परामर्श चाहा। जिबरील ने अपने हाथ से संकेत किया कि विनम्रता अपनाओ—मैंने कहा : मैं बन्दा पैग़म्बर बनना चाहता हूँ। हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि इसके बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कभी तकिया लगाकर खाना नहीं खाया। आप कहते थे : मैं इस तरह खाना खाता हूँ जैसे दास खाता है और इस तरह बैठता हूँ जिस तरह दास बैठता है। —शर्हुस्सुन्नह

---

1. एक दूसरी रिवायत अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है। वे कहते हैं कि एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) लाठी का सहारा लिए हुए बाहर आए। हम आपके आदर एवं सम्मान के लिए खड़े हो गए। आपने कहा : "उस तरह खड़े मत हुआ करो जिस तरह अजम के लोग (ग़ैर अरब) खड़े होकर एक-दूसरे का सम्मान करते हैं।" इन रिवायतों से मालूम हुआ कि आपको वह तरीक़ा पसन्द था जिसमें ज़्यादा से ज़्यादा मनुष्य की बन्दगी का प्रदर्शन होता हो। जिस रीति से दास्य-भाव एवं दास्य-रीति को आघात पहुँचता हो उसे आप कभी भी पसन्द नहीं करते थे।
2. अल्लाह से आप (सल्ल०) को हर समय आशा लगी रहती, उसके आदेशों का आपको इंतिज़ार रहता। अल्लाह की महानता आपके लिए केवल कल्पना मात्र चीज़ नहीं थी, बल्कि जीवन की सबसे बड़ी प्रत्यक्ष वास्तविकता थी। अपने जीवन में आप सबसे अधिक जिस चीज़ का ध्यान रखते थे वह अल्लाह की प्रसन्नता के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ न थी।
3. अर्थात फ़रिश्ता बहुत ही बड़े आकार का था।
4. अर्थात वह पैग़म्बर जिसकी विशेषता दासता और दीनता ही हो।
5. अर्थात विनम्र एवं विनयशील बनो।

आप (सल्ल०) का स्वर्गवास

1. हज़रत उक़बा बिन आमिर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उहुद के शहीदों पर आठ वर्ष के पश्चात नमाज़ पढ़ी[1] मानो आप जीवित लोगों और मुरदों को रुखसत कर रहे हैं। फिर आपने मिंबर पर पदार्पण किया और कहा : "मैं तुम्हारे आगे इस तरह जा रहा हूँ जैसे क़ाफ़िले का 'मीर मंज़िल'[2] प्रस्थान करता है।[3] मैं तुमपर गवाह हूँ और तुम्हारे वादे का स्थान हौज़ है, और मैं अपनी इस जगह खड़ा हुआ उसे देख रहा हूँ।[4] और मुझे ज़मीन के खज़ानों की कुंजियाँ प्रदान की गई हैं।[5] तुम्हारे बारे में मुझे इसका तो डर नहीं कि तुम मेरे बाद शिर्क करोगे; परन्तु मुझे तुम्हारे बारे में इसका डर है कि दुनिया की चाहत में पड़ जाओ।"[6] कुछ उल्लेखकारों ने इस रिवायत में ये शब्द ज़्यादा

---

1. कुछ लोगों के विचार में यहाँ नमाज़ से अभिप्रेत नमाज़ जनाज़ा है जो मुरदों की भलाई और उनके हक़ में अल्लाह से दुआ करने के लिए पढ़ी जाती है। आपने उहुद के युद्ध में वीरगति को प्राप्त होनेवाले शहीदों के लिए अल्लाह से दुआ की।
2. अर्थात क़ाफ़िले या यात्री-दल से आगे ठिकाने पर पहुँचकर खाने-पीने और दूसरी आवश्यक चीज़ों की व्यवस्था करनेवाला प्रधान कर्मचारी।
3. अर्थात जिस प्रकार क़ाफ़िले का 'मीर मंज़िल' क़ाफ़िले से आगे बढ़कर मंज़िल पर क़ाफ़िले की आवश्यकताओं की सामग्री जुटाता और क़ाफ़िले की सुविधा के लिए उचित व्यवस्था करता है ताकि क़ाफ़िले के लोग जब वहाँ पहुँचें तो उन्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो, उसी प्रकार इस दुनिया से कूच करना भी 'मीर मंजिल' की हैसियत से है। मैं तुम्हें आख़िरत में मीर मंज़िल की हैसियत से मिलूँगा।

   नबी (सल्ल०) ने यहाँ अपने प्रिय साथियों और अनुयायियों को तसल्ली दी है ताकि वे आपकी जुदाई से होनेवाले शोक और दुख को सहन कर सकें।
4. मैंने सत्य तुम तक पहुँचा दिया है। अब मैं हौज़ कौसर (हौज़ कौसर का वर्णन आख़िरत के अध्याय में देखिए) पर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। तुम उस हौज़ पर मुझसे मिलने की चेष्ट करो।
5. अर्थात तुम्हारे लिए अल्लाह विजय के द्वार खोल देगा। धरती पर तुम्हें राजसत्ता प्राप्त होगी। तुमसे जो टकराएगा, टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। कितने ही राज्य तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में आएँगे। इस्लामी इतिहास का अध्ययन करनेवाले जानते हैं कि नबी (सल्ल०) की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। थोड़े ही समय में धरती के विस्तृत क्षेत्र पर मुसलमानों का क़बज़ा हो गया।
6. अर्थात ऐसा तो न होगा कि तुम सब 'मुशरिक' (बहुदेववादी) बन जाओ परन्तु इसकी

बयान किए हैं : "फिर तुम आपस में लड़ाई करो और विनष्ट हो जिस प्रकार तुमसे पहले लोग विनष्ट हुए।"[1] —बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब अल्लाह अपने बन्दों में से किसी समुदाय पर दयालुता का निश्चय करता है तो उसके नबी को उस समुदाय से पहले (संसार से) उठा लेता है और उसे उस समुदाय का मीर मंज़िल और अग्रगामी बना देता है। और जब वह किसी समुदाय को विनष्ट करने का निश्चय करता है तो उसके 'नबी' के जीवन ही में उसको यातना देता है और नबी की आँखों के सामने उसे विनष्ट कर देता है, ताकि उसको विनष्ट करके नबी की आँखों को ठंडक प्रदान करे जबकि उस समुदाय ने उस (नबी) को झुठलाया और उसकी अवज्ञा की है।[2] —मुसलिम

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़सम है उस (अल्लाह) की जिसके हाथ में मुहम्मद के प्राण हैं, तुममें से प्रत्येक पर एक दिन ऐसा आएगा कि वह मुझे न देखेगा। फिर उसे मेरा देखना अपने घरवालों और अपने माल से बढ़कर प्रिय होगा। —मुसलिम

4. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि जिस दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मदीना में प्रवेश किया तो (आपके आने से) हर चीज़ प्रकाशमान हो गई, फिर जब वह दिन आया जब आपका स्वर्गवास हुआ तो हर चीज़ प्रकाशहीन हो गई और हम अभी आपके दफ़्न के कार्य में ही लगे थे, अपने हाथ की मिट्टी को झाड़ा भी न था कि हमने अपने दिलों को बदला हुआ, अजनबी पाया।[3] —तिरमिज़ी

पूरी संभावना है कि तुम दुनिया से प्रेम करने लगो और आख़िरत के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भुला दो।

1. अर्थात तुम आपस ही में लड़ने लगो और इस तरह तुम्हारा जत्था छिन्न-भिन्न हो जाए और तुम्हारी शक्ति क्षीण हो जाए।
2. अर्थात वह अवज्ञाकारी और सत्य-विरोधी लोगों के बुरे परिणाम को अपनी आँखों से देख ले।
3. अर्थात हमारे दिलों की वह हालत बाक़ी न रही जो आपकी संगति और आपकी मौजूदगी में रहती थी। आपके प्रस्थान के पश्चात हम कितनी ही बरकतों से वंचित हो गए। साफ़ मालूम होता था कि एक प्रकाश हमसे छिन गया। अब प्रत्येक चीज़ हमें अन्धकार में डूबी हुई दीख पड़ती थी। एक वह दिन था जब आपने मदीना में पदार्पण किया था और आपके आने से हर चीज़ चमक उठी थी। आपने यहाँ से प्रस्थान किया

5. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (अपनी मृत्यु के पश्चात) न तो कोई दीनार छोड़ा, न दिरहम, न कोई बकरी और न ऊँट और न आपने किसी चीज़ की वसीयत की।[1] —मुसलिम

6. हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हमारा कोई वारिस नहीं होता[2], जो कुछ हम छोड़ें वह सदक़ा (दान) है। —बुख़ारी, मुसलिम

7. हिशाम बिन उरवा, अब्बाद बिन अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर से 'रिवायत' करते हैं कि उन्हें नबी (सल्ल०) की पत्नी हज़रत आइशा (रज़ि०) ने ख़बर दी कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को आपकी मृत्यु से पहले कहते सुना जबकि आप उनके सीने से तकिया लगाए हुए थे और वे आपकी ओर झुकी हुई दत्तचित थीं : ऐ अल्लाह! मुझे क्षमा कर, मुझपर दया कर और मुझे 'रफ़ीक़ आला' (परम संगी) से मिला।[3] —मुवत्ता : इमाम मालिक

तो हर चीज़ पर उदासी छा गई।

1. इससे बढ़कर आपके एक सच्चे रसूल होने का क्या प्रमाण हो सकता है कि संसार में आपने न तो अपने लिए कोई सम्पत्ति संचित की और न कोई महल और प्रासाद निर्माण कराया। इस लोक में यात्री के समान आए और यात्री ही की तरह यहाँ से वापस हुए। जीवन में जिस चीज़ की ओर आपका विशेष ध्यान रहा वह यह कि अल्लाह का संदेश लोगों तक पहुँचाने में कोई असावधानी न हो और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के प्रयास में कोई कोताही न होने पाए।
2. अर्थात नबियों और रसूलों का कोई वारिस नहीं होता। यह बात उनकी महानता से गिरी हुई है कि वे अपनी औलाद के लिए धन-सम्पत्ति एकत्र कर जाएँ। उनकी दौड़-धूप और कोशिशें सारे ही लोगों के लिए होती हैं।
3. रफ़ीक़ आला (परम संगी) से संकेत नबियों की जमाअत है जिसका निवास 'आला इल्लिय्यीन' में है। देखिए सूरा अत-ततफ़ीफ़ आयत 18-19।

   इल्लिय्यीन का अर्थ होता है—बहुत ऊँचे लोग, इस आयत में इससे अभिप्रेत उनका स्थान है।

   एक विचार यह भी है कि रफ़ीक़ आला (परम संगी) अल्लाह ही का एक नाम है। मृत्यु के समय नबी (सल्ल०) के अन्तिम शब्द यही थे : "अल्लाहुम्मर-रफ़ीक़ल आला" (ऐ अल्लाह रफ़ीक़ आला!) हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित। —बुख़ारी, मुसलिम

नबी (सल्ल०) के सहाबा (रज़ि०)

1. हज़रत इमरान बिन हुसैन (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : "मेरे समुदाय के उत्तम लोग मेरे समय के लोग हैं। फिर वे लोग उत्तम हैं जो उनके सन्निकट हैं, फिर वे लोग जो उनके सन्निकट हैं। फिर उनके पश्चात वे लोग होंगे जो बिना माँगे गवाही देंगे। और ख़ियानत (विश्वासघात और कपट) करेंगे, उनकी अमानतदारी (विश्वसनीयता) पर भरोसा नहीं किया जाएगा। वे नज्र (भेंट, मन्नत) मानेंगे, किन्तु उसे पूरा नहीं करेंगे। और उनमें मांसलता ज़ाहिर होगी।" और एक रिवायत में है : "वे क़सम खिलाए बिना क़सम खाएँगे।"[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय में मेरे सहाबा (खाने) भोजन में नमक की तरह हैं। नमक के बिना भोजन रुचता नहीं, ठीक नहीं होता।[2]

—शर्हुस्सुन्नह

3. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे सहाबा को बुरा न कहो इसलिए कि यदि कोई तुममें से उहुद के बराबर सोना ख़र्च करे तो वह सहाबा के एक मुद्द या आधा मुद्द[3] को भी नहीं पा सकता।"[4]

—बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात उनमें अधिकतर लोग ऐसे होंगे जो सत्यनिष्ठा, सज्जनता, मानवता और ज़िम्मेदारी के एहसास से बिलकुल ख़ाली होंगे।

   इस हदीस से सहाबा (रज़ि०) की महानता और श्रेष्ठता का पता चलता है। सहाबा को नबी (सल्ल०) का शुभ जीवन काल प्राप्त हुआ। यह बहुत बड़े सौभाग्य की बात है। एक हदीस में है कि आपने कहा : मेरे सहाबा की प्रतिष्ठा और आदर करो क्योंकि वे तुममें सबसे अच्छे हैं। फिर वे लोग जो उनके सन्निकट हैं, फिर वे लोग जो उनके सन्निकट हैं। इसके बाद झूठ फैल जाएगा। —नसई

2. इस हदीस से भी सहाबा की श्रेष्ठता विदित होती है। यदि नमक न हो तो भोजन बेमज़ा मालूम होता है। नमक बहुत-से हानिकर तत्त्वों का निवारक और सुधारक भी है। सहाबा मुसलिम समुदाय के लिए मंज़िल के प्रतीक और उनका सौन्दर्य और शोभा हैं। उनके अनुसरण में ही मुसलिम समुदाय का जीवन और जागृति का रहस्य निहित है।
3. एक नाप और पैमाना है जिसमें सेर-भर जौ आता है।
4. ईमानवालों का कर्त्तव्य है कि वे सहाबा का आदर करें और अपशब्द उनके बारे में

4. हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब तुम उन लोगों को देखो जो मेरे सहाबा को बुरा कहते हैं तो तुम कहो : तुम्हारी शरारत (इस बुरी हरकत) पर अल्लाह की लानत (धिक्कार) हो ।[1]

—तिरमिज़ी

5. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय में, मेरे समुदाय पर सबसे अधिक दयाशील अबू बक्र हैं, और अल्लाह के आदेश के मामले में सबसे ज़्यादा सख़्त (कड़े) उमर हैं, और उनमें सबसे सच्चे लज्जावान उसमान, विरासत-विधान के सबसे बढ़कर ज्ञानी ज़ैद बिन साबित, सबसे बढ़कर क़ारी उबैय बिन कअब और हलाल व हराम (वैध व अवैध) का सबसे अधिक ज्ञान रखनेवाले मआज़ बिन जबल हैं। हर समुदाय का एक अमीन (विश्वसनीय व्यक्ति) होता है। इस समुदाय के अमीन अबू उबैदा बिन जर्राह हैं ।[2]

—अहमद, तिरमिज़ी

6. हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : अबू बक्र जन्नत में हैं। उमर जन्नत में हैं, उसमान जन्नत में हैं, अली

कदापि प्रयोग न करें। सहाबा और विशेष रूप से नबी (सल्ल०) के मुख्य सहाबा का पद और स्थान अत्यन्त उच्च है। कोई व्यक्ति यदि उहुद पर्वत के बराबर सोना अल्लाह की राह में ख़र्च कर दे तो उसका यह सदक़ा (दान) सहाबा के एक या आधे मुद्द के बराबर भी नहीं हो सकता। सहाबा को जिस दर्जा का ईमान और हृदय की शुद्धता प्राप्त थी वह किसी दूसरे को कहाँ प्राप्त हो सकती है। अल्लाह की दृष्टि में वास्तविक रूप से मूल्यवान वस्तु आदमी का ईमान, उसकी सत्यप्रियता और आत्मशुद्धि ही है।

1. मालूम हुआ कि सहाबा से द्वेष या वैर रखना या उन्हें बुरा कहना किसी बुराई और अनाचार से कम नहीं है। और यह तिरस्कृत और घृणित कर्म है जिससे बचना आवश्यक है। माननीय सहाबा का आदर और प्रतिष्ठा करना हमारे ईमान का आवश्यक अंग है।
2. इस हदीस में नबी (सल्ल०) के कुछ मुख्य सहाबा (साथियों) की विशेषता का उल्लेख किया गया है। दयाशीलता हो या लज्जा या अमानतदारी (विश्वसनीयता) या नियम और विधान सम्बन्धी ज्ञान हो, इन सबका मुस्लिम समाज में बड़ा महत्त्व है। नैतिकता, ज्ञान, कर्म आदि सभी गुणों से समुदाय के लोग सम्पन्न हों इसकी आवश्यकता पहले भी थी और हमारे युग में भी इसकी आवश्यकता है। इसके बिना धर्म की स्थापना और स्थायित्व असंभव है। इसके बिना धर्म का पालन संभव ही नहीं है।

जन्नत में हैं, तलहा जन्नत में हैं, ज़ुबैर जन्नत में हैं, अब्दुर्रहमान बिन औफ़ जन्नत में हैं, सअद बिन अबी वक़्क़ास जन्नत में हैं, सईद बिन ज़ैब जन्नत में हैं और अबू उबैदा बिन जर्राह जन्नत में हैं।[1] —तिरमिज़ी

7. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जन्नत तीन आदमियों की अभिलाषी है : अली, अम्मार, और सलमान की।

—तिरमिज़ी

8. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : चार आदमियों से क़ुरआन सीखो अर्थात अब्दुल्लाह बिन मसऊद, सालिम मौला अबू हुज़ैफ़ा, उबैय बिन कअब और मआज़ बिन जबल से। —बुख़ारी, मुसलिम

9. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : 'ईमान' का लक्षण 'अनसार' से प्रेम करना है और 'निफ़ाक़' (कपट नीति) का लक्षण 'अनसार' से द्वेष व वैर है।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. इन दस व्यक्तियों को नबी (सल्ल०) ने दुनिया ही में शुभ सूचना दे दी कि ये जन्नत के बाग़ों में दाख़िल होंगे। इस हदीस के कारण इन मुख्य सहाबा को "अशरए मुबश्शरा" (दस शुभ सूचना प्राप्त व्यक्ति) की उपाधि दी गई है। इन श्रेष्ठ व्यक्तियों को अल्लाह के आज्ञापालन का उच्च पद प्राप्त था कि जन्नत की ख़ुशख़बरी पाने के बाद भी ये कभी अल्लाह से निर्भय नहीं हुए और न कभी अपनी ज़िम्मेदारियों की ओर से ग़ाफ़िल हुए। अल्लाह की महानता का एहसास और उसके 'रसूल' का जो प्रेम उनके मन में बस गया था वह कभी निकल न सका। ये लोग जीवन के रहस्य और उसकी वास्तविकता को पा चुके थे। सत्यमार्ग के सिवा इनका कोई दूसरा मार्ग कैसे हो सकता था। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) पर तो अल्लाह का ऐसा भय छा जाता था कि वे ऐसी आहें भरते थे कि अव्वाहुम्मुनीब' (बहुत आहें भरनेवाला) उनका लक़ब पड़ गया था।
2. अनसार (मदीना के मुस्लिम लोग जो नबी के सहायक हुए) ने नबी (सल्ल०) के लाए हुए दीन (धर्म) को उस समय स्वीकार किया जबकि मक्कावाले उसका इनकार कर चुके थे। अनसार ने आपको और आपपर ईमान लानेवाले मुसलमानों को अपने यहाँ जगह दी और हर तरह से उनकी मदद की जबकि मक्कावालों ने मुसलमानों का जीना दूभर कर दिया था और उनकी दुश्मनी यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि वे नबी (सल्ल०) को शहीद कर देने की योजना बना चुके थे। अनसार की सेवाओं को कभी भुलाया नहीं जा सकता। यही कारण है कि उनके प्रेम को ईमान की निशानी और उनसे वैर रखने को निफ़ाक़ (कपट नीति) कहा गया।

10. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि हज़रत जिबरील (अलै०) नबी (सल्ल०) के पास आए तो कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! ये ख़दीज़ा (रज़ि०) आ रही हैं। इनके साथ बरतन है जिसमें सालन या खाना है। जब वे आपके पास आ जाएँ तो आप उन्हें उनके रब की ओर से सलाम कहिए और मेरी ओर से भी।[1] और उन्हें एक मोती के महल की शुभ सूचना दीजिए जो जन्नत में (उनके लिए) होगा जिसमें न शोर व कोलाहल होगा और न कष्ट व क्लेश होगा।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम

11. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : सारे संसार की स्त्रियों में केवल इनकी श्रेष्ठता मालूम कर लेना तुम्हारे लिए काफ़ी है : इमरान की बेटी मरयम, ख़ुवेलद की बेटी ख़दीजा, मुहम्मद की बेटी फ़ातिमा और फ़िरऔन की पत्नी आसिया।[3]

—तिरमिज़ी

12. हज़रत अबू सलमा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) ने बयान किया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (एक दिन) कहा : "ऐ आइशा !

---

1. नबी (सल्ल०) की पत्नी हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की श्रेष्ठता का अन्दाज़ा इससे कीजिए कि उन्हें अल्लाह के विशेष फ़रिश्ते हज़रत जिबराईल (अलै०) ही का नहीं अल्लाह का भी सलाम आया है।
2. हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को तसल्ली दी जा रही है कि वे संसार के दुःख और कष्ट की तनिक भी चिन्ता न करें। ये सारी तकलीफ़ें समाप्त होनेवाली हैं। अल्लाह उन्हें 'जन्नत' के ऐसे महल में जगह देगा जिसमें किसी प्रकार का शोर और कोलाहल न होगा और न ही वहाँ किसी प्रकार का दुःख और क्लेश होगा।
3. संसार में यूँ तो कितनी ही पुण्यवती और महान व्यक्तित्व की स्त्रियों ने जन्म लिया है जिनका जीवन अत्यन्त उज्ज्वल था। उनमें ये चार पुण्यवती स्त्रियाँ ही बहुत हैं यदि हम इनके जीवन से शिक्षा प्राप्त करना चाहें। इनकी पवित्रता और आदर्श जीवन के विषय में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। हज़रत मरयम और हज़रत आसिया के बारे में कुरआन में कहा गया है : "अल्लाह ईमान लानेवालों के लिए फ़िरऔन की पत्नी को मिसाल में पेश करता है। जब उसने कहा : 'रब' ! मेरे लिए अपने पास जन्नत में एक घर बना और मुझे फ़िरऔन और उसके कर्म से छुटकारा दे, और छुटकारा दे मुझे ज़ालिम लोगों से; और इमरान की बेटी मरयम को (मिसाल में पेश करता है) जिसने सतीत्व की रक्षा की, फिर हमने उसमें अपनी (ओर से) रूह फूँकी। और उसने अपने रब की बातों और उसकी 'किताबों' की तसदीक़ की और वह आज्ञाकारी और विनयभाववाले व्यक्तियों में से थी।"

—कुरआन, 66 : 11-12

ये जिबरील हैं, तुम्हें सलाम कह रहे हैं।" हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि मैंने कहा : "व अलैहिस्सलाम व रहमतुल्लाह।" वे कहती हैं कि आप वह कुछ देखते थे जो मैं न देखती थी।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

13. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मुझे जन्नत दिखाई गई, मैंने वहाँ अबू तलहा की पत्नी को देखा और अपने आगे मैंने क़दमों का चाप सुना। देखा तो बिलाल थे।[2] —मुसलिम

नबी (सल्ल०) का अनुयायी समुदाय

1. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मुसलमानों और यहूद और नसारा (ईसाई) की मिसाल ऐसी है जैसे एक व्यक्ति ने एक जाति को निश्चित मज़दूरी पर रात तक के लिए कार्य पर लगाया। उन्होंने (उस जातिवालों ने) दोपहर तक उसका कार्य किया। फिर कहने लगे कि हमें तुम्हारी मज़दूरी की आवश्यकता नहीं, जो तुमने हमारे लिए निश्चित की थी, और हमने जो काम किया वह अकारथ हुआ। उसने कहा : ऐसा न करो, अपना शेष कार्य पूरा कर लो और अपनी पूरी मज़दूरी ले लो। उन्होंने इनकार किया और छोड़ गए। उसने उनके बाद दूसरे लोगों को मज़दूरी पर लगाया और कहा कि तुम शेष दिन पूरा काम कर दो जो मज़दूरी मैंने उनके लिए निश्चित की थी वह तुम्हें मिलेगी। उन्होंने काम किया यहाँ तक कि जब 'अस्र' की 'नमाज़' का समय हुआ तो बोले : हमने तुम्हारा जो काम किया वह अकारथ हुआ और तुमने जो मज़दूरी हमारे लिए निश्चित की थी वह हमने तुझे छोड़ दी। उसने कहा : तुम अपना शेष कार्य पूरा कर दो, बस अब तो बहुत थोड़ा दिन रह गया है। उन्होंने इनकार किया। फिर उसने दूसरे लोगों को मज़दूरी पर लगाया जो शेष दिन कार्य करें। उन्होंने कार्य किया और दोनों गिरोहों की पूरी मज़दूरी भी ले ली। यह है

---

1. अर्थात हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल थे, आप परोक्ष लोक की कितनी ही वस्तुएँ देखते थे जिनको मैं न देख पाती थी।

   इस रिवायत से मालूम होता है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) को भी अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त था। हज़रत जिबरील तक उन्हें सलाम कहते थे। वे लोग कितने नादान हैं जो ऐसी पुण्यवती स्त्री से, जिसे मुस्लिम समुदाय की माता होने का सौभाग्य प्राप्त है, द्वेष रखते हैं।

2. नबी (सल्ल०) के सहाबा की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में रिवायतें बहुत मिलती हैं, यहाँ उदाहरण के रूप में केवल कुछ ही हदीसों का उल्लेख किया गया है।

मिसाल उनकी और मिसाल है उस प्रकाश की जिसे उन्होंने स्वीकार किया।[1]

—बुख़ारी

2. हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दूसरे समुदायों की मुद्दत और आयु की अपेक्षा तुम्हारी आयु और मुद्दत इतनी है जितना पूरे दिन के मुक़ाबले में अस्र की नमाज़ से सूर्यास्त तक का समय होता है और तुम्हारी मिसाल और यहूद व नसारा (ईसाई) की मिसाल बस ऐसी है जैसे एक व्यक्ति ने कुछ मज़दूरों को कार्य कर लगाया और कहा कि कौन दोपहर तक एक-एक 'क़ीरात' (एक मुद्रा, सिक्का) पर मेरा कार्य करेगा? तो यहूद ने कार्य किया। फिर उसने कहा कि कौन दोपहर से अस्र की नमाज़ तक एक-एक क़ीरात पर मेरा कार्य करेगा? तो नसारा ने कार्य किया। फिर कहा कि कौन है जो 'अस्र' की नमाज़ से सूर्यास्त तक दो-दो 'क़ीरात' के बदले में मेरा कार्य करेगा? जान लो कि ये तुम (मुस्लिम लोग) हो जिन्होंने अस्र की नमाज़ से सूर्यास्त तक कार्य किया। सुन लो! तुम्हारे लिए दोहरा प्रतिकार है। इसपर यहूद व नसारा क्रुद्ध हुए और कहा कि हमारा कार्य अधिक है और मिला कम। अल्लाह ने कहा : क्या मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है कि तुम्हारे हक़ में कोई कमी की हो? उन्होंने कहा: नहीं। अल्लाह ने कहा : फिर यह तो मेरा फ़ज़ल

---

1. इस मिसाल में मुसलिम समुदाय की बड़ाई बयान हुई है। यहूद और नसारा (यहूदी और ईसाई) ने स्वयं जब अपने आपको अल्लाह की दयालुता से वंचित कर लिया और अल्लाह की दयालुता और अनुकम्पा की उपेक्षा की तो अल्लाह ने उन्हें उच्च पद से हटाकर मुस्लिम समुदाय को नायकता के श्रेष्ठ पद पर नियुक्त किया। और आख़िरत में मिलनेवाला प्रतिकार भी उसे प्रदान किया। यहूद और नसारा जिन्होंने अवज्ञा और विद्रोह की नीति अपनाई, उनके लिए आख़िरत में कोई पारितोषिक और प्रतिकार नहीं, बल्कि वे उल्टे अज़ाब में ग्रस्त होंगे।

   मुस्लिम समुदाय के लिए किताबवालों (यहूद व नसारा) की अपेक्षा दोहरा बदला और प्रतिकार है। क़ुरआन में कहा गया है, "ऐ ईमानवालो! अल्लाह का डर रखो और उसके रसूल पर ईमान लाओ। वह तुम्हें अपनी दयालुता से दो हिस्से प्रदान करेगा। और तुम्हारे लिए एक प्रकाश कर देगा जिसके साथ तुम चलोगे-फिरोगे और तुम्हें क्षमा कर देगा, अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दयावन्त है।" —क़ुरआन, 57 : 28-29

   इंजील (Gospel) की उपमा में भी इसकी ओर प्रत्यक्ष संकेत मिलता है।

   —देखें मत्ती, 20 : 1-16।

(अनुग्रह) है जिसे चाहूँ प्रदान करूँ ।[1] —बुख़ारी

3. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय का हाल वर्षा के सदृश है जिसके बारे में नहीं कहा जा सकता कि उसका प्रथम अच्छा है या अन्तिम अच्छा है ।[2] —तिरमिज़ी

4. अब्दुर्रहमान बिन अला हज़रमी कहते हैं कि मुझसे यह 'हदीस' उस व्यक्ति ने बयान की जिसने उसे नबी (सल्ल०) से सुना कि आपने कहा : इस समुदाय के अन्त में एक जनसमूह होगा। उन (समूहवालों) का प्रतिफल उनके पहले लोगों के प्रतिफल के सदृश होगा। वे लोगों को भलाई का हुक्म देंगे और बुराई से रोकेंगे और फ़ितना फैलानेवालों (उपद्रवकारी लोगों) से लड़ेंगे ।[3] —बैहक़ी

5. अम्र बिन शुऐब अपने पिता से और वे अपने पितामह के माध्यम से कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सहाबा से पूछा : ईमान की दृष्टि से सृष्टिजीव में तुम्हें कौन सबसे अधिक प्रिय है ? उन्होंने कहा : 'फ़रिश्त'। आपने

---

1. अर्थात यह तो मेरी दया और कृपा है कि मैंने मुसलिम समुदाय के लिए दोहरा प्रतिफल रखा है। तुम्हारे साथ मैंने कोई अन्याय तो नहीं किया है। इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि यह अन्तिम मुद्दत, जिसके पश्चात क़ियामत ही आनेवाली है, पिछली मुद्दतों के मुक़ाबले में कोई अधिक लम्बी मुद्दत नहीं है बल्कि इसकी मुद्दत ऐसी ही कम है जैसे सम्पूर्ण दिन के मुक़ाबले में अस्र और सूर्यास्त के बीच का समय होता है।
2. यूँ तो मुसलिम समुदाय के प्रारम्भिक अथवा प्रथम युग को दूसरे समस्त युगों की अपेक्षा प्रधानता एवं श्रेष्ठता प्राप्त है, परन्तु अन्तिम युग में भी इस समुदाय में ऐसे लोग पैदा होंगे जिनकी गणना अल्लाह के श्रेष्ठतम आज्ञाकारी बन्दों में होगी और वे इस्लाम की महान सेवा करेंगे, जैसा आगे आनेवाली हदीस से विदित है। अल्लाह के ऐसे सच्चे और सत्यनिष्ठ बन्दे वास्तव में अपने समय की आबरू (मान) हैं।

   इस हदीस में बादवालों को तसल्ली दी गई है कि उन्हें इसका दुख न होना चाहिए कि वे प्रथम युग में क्यों नहीं पैदा हुए। इस्लाम के इतिहास में अन्तिम युग को भी किसी न किसी पहलू में महत्व प्राप्त होगा।
3. अर्थात उनकी विशेषता यह होगी कि वे लोगों को भलाई और नेकी की ओर बुलाएँगे, उन्हें बुराई से रोकेंगे और सत्य-विरोधी शक्तियों से लड़ेंगे। जिस प्रकार अन्धकार और प्रकाश में समझौता संभव नहीं ठीक उसी तरह असत्य के उपासकों और उपद्रवकारी लोगों से उनका भी समझौता न हो सकेगा। उन्हें असत्य के सामने झुकाया न जा सकेगा। वे असत्य से लड़ेंगे और ज़मीन से फ़ितना और बिगाड़ दूर करने की कोशिश करेंगे।

कहा : वे आख़िर ईमान क्यों न लाते जबकि वे अपने 'रब' के क़रीब रहते हैं। उन्होंने कहा : फिर हम नबियों को अच्छा जानते हैं। आपने कहा : वे आख़िर क्यों ईमान न लाते जबकि उनपर वह्य आती है। उन्होंने कहा : फिर अपने आपको अच्छा समझते हैं। आपने कहा : तुम आख़िर क्यों ईमान न लाते जबकि मैं तुम्हारे बीच मौजूद हूँ। उल्लेखकर्ता कहते हैं कि इसके बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं बताता हूँ—ईमान की दृष्टि से वे लोग सबसे अच्छे हैं जो मेरे बाद होंगे। वे मसहफ़ (सजिल्द ग्रन्थ, क़ुरआन) पाएँगे, जिसमें आदेश अंकित होंगे और वे उनपर ईमान लाएँगे।[1] —बैहक़ी

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय में मुझसे अत्यधिक प्रेम करनेवाले वे लोग हैं जो मेरे बाद पैदा होंगे। उनमें से प्रत्येक चाहेगा कि क्या ही अच्छा होता कि मुझे देखता और अपने घरवालों और अपने माल को मुझपर निछावर करता।[2] —मुसलिम

7. अबू मालिक अशअरी से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह ने तुम्हें तीन चीज़ों से सुरक्षा प्रदान की है—यह कि तुम्हारा नबी तुम्हें श्राप न दे कि तुम सब विनष्ट हो जाओ और यह कि अनृतवादी सत्यवालों पर आधिपत्य प्राप्त न कर सकें[3] और यह कि तुम सब गुमराही पर एकत्र न हो।[4] —अबू दाऊद

---

1. बाद के लोगों ने नबी (सल्ल०) को देखा नहीं फिर भी वे आपपर और आपकी लाई हुई किताब (क़ुरआन) पर ईमान लाएँगे और आपके दिए हुए आदेशों को स्वीकार करेंगे। इस पहलू से उनके ईमान का बड़ा महत्व है। इस हदीस में पश्चातवर्ती लोगों को तसल्ली दी गई है कि उनके ईमान और कर्म को असाधारण महत्व प्राप्त है।
2. आज हम देखते हैं कि साधारण से साधारण मुसलमान को भी अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के दर्शन की कामना संसार की समस्त वस्तुओं से अधिक प्रिय है।
3. अर्थात तुम्हारा नबी न तो तुम्हारे विनष्ट हो जाने की दुआ करेगा और न असत्य के पुजारी कभी तुम्हारी धारणाओं और तुम्हारे दीन और धर्म को दलील, प्रमाण और तर्क से पराजित कर सकेंगे। यदि सत्य के लिए असत्य के अनुयायियों से तुम्हारा युद्ध हुआ तो अन्त में विजय तुम्हीं को प्राप्त होगी, परन्तु इसके लिए शर्त यह है कि तुम्हें ईमान की शक्ति प्राप्त हो और तुम्हारी लड़ाई वास्तव में ईश्वर के मार्ग में हो और तुम अल्लाह की दी हुई शक्ति और क्षमता से पूर्ण रूप से काम लो।
4. अर्थात ऐसा कभी न होगा कि सम्पूर्ण मुसलिम समुदाय पथभ्रष्ट हो जाए। बड़े से बड़े फ़ितने, उपद्रव (Persecution) और बिगाड़ के समय में भी मुसलिम समुदाय की कोई न कोई जमाअत सत्य पर अवश्य ही रहेगी।

8. अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरा समुदाय दयापात्र समुदाय है[1], आख़िरत में उसपर अज़ाब न होगा। दुनिया में उसका अज़ाब फ़ितना, (उपद्रव, बिगाड़) भूकम्प और हत्या है ।[2]

—अबू दाऊद

9. हज़रत मुग़ीरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय में से एक गिरोह सदैव अविचल और छाया हुआ रहेगा यहाँ तक कि अल्लाह का हुक्म आ पहुँचेगा। और वे छाए हुए ही रहेंगे ।[3]

—बुख़ारी, मुसलिम

10. हज़रत मुआविया (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को कहते सुना : मेरे समुदाय में एक गिरोह सदैव अल्लाह के हुक्म पर क़ायम रहेगा, उसका न वह व्यक्ति कुछ बिगाड़ सकेगा जो उसकी सहायता करनी छोड़ देगा और न वह व्यक्ति जो उसका विरोध करेगा यहाँ तक कि अल्लाह का हुक्म आ पहुँचेगा और वह इसी हालत पर होगा। —बुख़ारी, मुसलिम

11. अम्र बिन क़ैस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हम अन्त में हैं परन्तु क़ियामत के दिन हम अग्रसर रहनेवाले हैं ।[4] और मैं एक बात कहता हूँ किन्तु गर्व से नहीं ।[5] इबराहीम अल्लाह के ख़लील (घनिष्ट मित्र) हैं, मूसा सफ़ीउल्लाह (अल्लाह के चुने हुए महान व्यक्ति) हैं और मैं अल्लाह का हबीब

---

1. अर्थात इस समुदाय पर ईश्वर की विशेष कृपा और दया है।
2. अर्थात मुस्लिम समुदाय को यथासंभव आख़िरत के अज़ाब से बचाया जाएगा। गुनाहों और ग़लतियों के सिलसिले में उसे दुनिया ही में क़त्ल, भूकम्प, फ़ितना और बिगाड़ आदि के रूप में दण्ड मिल जाएगा। उसकी आख़िरत ज़्यादा से ज़्यादा प्रिय और शोभायमान रूप में सामने आएगी। आख़िरत में उसे अज़ाब न होगा यह बात सामूहिक दृष्टि से कही गई है, यूँ तो इस समुदाय के कितने ही लोग अपने अनुचित कार्य के कारण उस दिन मुसीबत में ग्रस्त होंगे। यह दूसरी बात है कि अन्त में उन्हें अज़ाब से छुटकारा मिल जाएगा और वे जन्नत में प्रवेश करेंगे।
3. अर्थात सत्य के अनुयायियों का यह गिरोह अन्त तक सत्य पर दृढ़ रहेगा, कोई भी शक्ति उसे सत्य से हटा न सकेगी।
4. अर्थात यद्यपि संसार में हमारा समय सबसे अन्त में है, परन्तु आख़िरत में हमें प्राथमिकता और श्रेष्ठता प्राप्त होगी।
5. अर्थात यह बात मैं किसी गर्व से नहीं कहता बल्कि यह तो केवल ईश्वर की दयालुता और उसकी अनुकम्पा की चर्चा मात्र है।

(प्रिय) हूँ[1], और क़ियामत के दिन मेरे साथ प्रशंसा (हम्द) की पताका होगी।[2] और अल्लाह ने मुझसे मेरे समुदाय के बारे में वादा किया है और मेरे समुदाय को अल्लाह ने तीन चीज़ों से सुरक्षित रखा है—उसे सर्व-अकाल में विनष्ट न करेगा और न शत्रु उसका उन्मूलन कर सकेगा[3] और न ही सम्पूर्ण समुदाय गुमराही पर एकत्र (सहमत) होगा। —दारमी

नबी (सल्ल०) की कुछ भविष्यवाणियाँ

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कर्म में जल्दी करो उस फ़ितने (उपद्रव) से पहले जो अँधेरी रात के टुकड़े की तरह होगा। मनुष्य प्रातःकाल एक ईमानवाले व्यक्ति के रूप में उठेगा और संध्या को काफ़िर होगा और सन्ध्या को ईमानवाला होगा और प्रातःकाल काफ़िर होगा। वह अपने दीन (धर्म) को सांसारिक सामग्री के बदले बेच देगा।"[4] —मुसलिम

2. हज़रत सौबान (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं जिन लोगों से अपने समुदाय के बारे में डरता हूँ वे पथभ्रष्ट करनेवाले नायक

---

1. अर्थात आपमें वे समस्त विशेषताएँ एकत्र हो गई हैं जो हज़रत इबराहीम (अलै०) और हज़रत मूसा (अलै०) सरीखे नबियों को प्राप्त हुई हैं।
2. अर्थात 'क़ियामत' के दिन अल्लाह मुझे विशेष सम्मान और ख्याति प्रदान करेगा।
3. मतलब यह कि ऐसा कभी न होगा कि मेरा अनुयायी समुदाय पूरा का पूरा अकाल में ग्रस्त होकर तबाह हो जाए और न यही संभव होगा कि कोई शत्रु उसका उन्मूलन करने में सफल हो सके। मेरे समुदाय को कोई मिटा न सकेगा। यह समुदाय धरती पर सत्य के दीप्त चिह्न के सदृश है, इसे मिटाना संभव नहीं। मेरे समुदाय को क़ियामत तक संसार में जीवित रहना और संसार के लिए प्रकाश-स्तंभ बनना है। इस स्तम्भ की अनुपस्थिति में तो क़ियामत ही आ जाएगी।
4. अर्थात एक समय बड़ी आज़माइश का आनेवाला है, वह समय अत्यन्त कठिन होगा उसमें अपने ईमान की रक्षा करना कोई सरल कार्य न होगा। लोगों की दशा यह होगी कि वे अपने धर्म और ईमान को सांसारिक लाभ के लिए त्याग देंगे। ईमान का क्या महत्व है इसका एहसास बिलकुल मिट-सा जाएगा। इस कठिन समय में जो लोग दीन (धर्म) पर क़ायम रहेंगे उनके लिए ईश्वर के यहाँ बड़ा प्रतिफल और पुरस्कार है हज़रत माक़िल बिन यसार (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा "फ़ितने के समय की इबादत' को मेरी ओर, हिजरत करने का दर्जा प्राप्त है।"

हैं। और जब मेरे समुदाय में तलवार चल जाएगी तो फिर क़ियामत के दिन तक रुकने की नहीं।[1] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : किसरा (फ़ारिस का सम्राट) विनष्ट होगा और उसके बाद कोई किसरा न होगा और क़ैसर (रूम का सम्राट) भी विनष्ट होकर रहेगा, फिर उसके बाद कोई क़ैसर न होगा। और इन दोनों के ख़ज़ाने अल्लाह के मार्ग में बाँटे जाएँगे।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. नबी (सल्ल०) के समुदाय अर्थात आपके अनुयायियों के लिए सबसे बड़ा फ़ितना और बिगाड़ का कारण पथभ्रष्ट करनेवाले और ग़लत रास्ते पर ले जानेवाले नायक और राज्याधिकारी लोग ही हैं। नबी (सल्ल०) के इस बयान में इस बात की ओर प्रत्यक्ष संकेत किया गया था कि 'मुस्लिम समुदाय को इस भयानक फ़ितने का सामना करना पड़ेगा। इस समुदाय में परस्पर लड़ाई और युद्ध का सिलसिला शुरू होगा। ईमानवालों की शक्ति पारस्परिक कलह-विग्रह और संघर्ष में नष्ट होगी।' उनमें तलवार चलेगी और इस मुसीबत से अन्त तक छुटकारा न मिल सकेगा। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की दी हुई यह सूचना अक्षरशः पूरी होकर रही। ख़लीफ़ा हज़रत उसमान (रज़ि०) के समय में सबसे पहले तलवार निकली तो फिर वह रुक न सकी। और मुस्लिम समुदाय की कहानी एक दुखद कहानी बनकर रही। कितने ही करबला और जमल-युद्ध इस समुदाय के हिस्से में आए।
2. नबी (सल्ल०) ने जो कहा था वही हुआ, मुसलमानों ने फ़ारिस और रूम पर विजय प्राप्त की और उनके ख़ज़ाने मुसलमानों के क़बज़े में आए और अल्लाह के मार्ग में ख़र्च हुए।

   यहाँ मिसाल के तौर पर केवल कुछ ही भविष्य-कथन का उल्लेख किया गया। आपके भविष्य-कथन अगणित हैं जिनको हदीस की किताबों में देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ बद्र की लड़ाई के अवसर पर आप (सल्ल०) जब बद्र में ठहरे तो आप भूमि पर हाथ रख-रखकर बताते जाते थे कि यहाँ अमुक (मुशरिक) व्यक्ति गिरेगा और यहाँ अमुक व्यक्ति गिरेगा। हदीस के उल्लेखकर्ता का बयान है कि (सब उसी स्थान पर मारे गए जहाँ उनके मारे जाने की सूचना आपने दी थी।) उनमें से कोई न था जो आपके बताए हुए स्थान से तनिक भी कहीं अलग गिरा हो।

   —मुसलिम, हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित

   आपने हिज्जतुलविदा (अपने अन्तिम हज) के अवसर पर कहा था : जान लो! शैतान सदैव के लिए इस बात से निराश हो गया कि तुम्हारे इस नगर में उसकी इबादत की जाए, (इब्न माजा, तिरमिज़ी)। मतलब यह था कि अब ऐसा न होगा कि मक्का में मूर्ति की पूजा हो और शिर्क और कुफ़्र (बहुदेववाद और अधर्म) फैले। यह और इस

4. हज़रत नाफ़ेअ बिन उतबा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम (मेरे बाद) प्रायद्वीप अरब में लड़ोगे, अल्लाह तुम्हें उसपर विजय प्रदान करेगा। फिर तुम फ़ारिस से लड़ोगे अल्लाह उसपर भी तुम्हें विजय प्रदान करेगा। फिर तुम रूम से लड़ोगे अल्लाह उसपर भी तुम्हें विजय प्रदान करेगा। फिर तुम दज्जाल से लड़ोगे[1] और अल्लाह उसपर भी विजय प्रदान करेगा। —मुसलिम

5. हज़रत नोमान बिन बशीर (रज़ि०) हुज़ैफ़ा (रज़ि०) के माध्यम से कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें नुबूवत उस समय तक रहेगी जब तक अल्लाह चाहेगा, फिर अल्लाह नुबूवत को उठा लेगा और उसके बाद नुबूवत के तरीक़े पर ख़िलाफ़त क़ायम होगी जब तक अल्लाह चाहेगा, फिर अल्लाह उसे उठा लेगा। फिर उसके बाद क्रूर और परपीड़क बादशाहत होगी जब तक अल्लाह चाहेगा, फिर अल्लाह उसे उठा लेगा। फिर जब्र (अत्याचार) की हुकूमत होगी और जब तक अल्लाह चाहेगा रहेगी, फिर अल्लाह उसे उठा लेगा। और फिर नुबूवत के तरीक़े पर ख़िलाफ़त क़ायम होगी। फिर आप मौन हो गए।[2] —अहमद, अल-बैहक़ी : दलायलुन्नुबूवत

प्रकार के अगणित भविष्य-कथन इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि आप अल्लाह के सच्चे रसूल थे और भविष्य में पेश होनेवाली बातों की सूचना आपने वह्य (ईश्वरीय संकेत) के द्वारा दी। यदि आप नुबूवत के झूठे दावेदार होते तो इस प्रकार भविष्य के बारे में कोई बात न कह सकते। यह बात बुद्धिमानी के भी विरुद्ध थी कि कोई व्यक्ति अकारण भविष्य के प्रति केवल अटकल और अनुमान से कुछ सूचनाएँ देने लगे और इस बात को भूल जाए कि उसके भविष्य-कथनों में से यदि कोई असत्य सिद्ध हुआ तो इससे स्वयं उसकी नुबूवत का खण्डन हो जाएगा। और अटकल से कही हुई बातों में ग़लती ही की सम्भावनाएँ अधिक रहती हैं।

1. दज्जाल का विस्तारपूर्वक उल्लेख क़ियामत की निशानियों के सिलसिले की हदीस में मिलेगा।
2. इस हदीस में जिन कालावधि (Periods) का उल्लेख किया गया है उनमें से नुबूवत, ख़िलाफ़त और बादशाही का समय व्यतीत हो चुका है। इस समय जब्र का शासन है। अब इसके बाद नुबूवत के तरीक़े पर चलनेवाली ख़िलाफ़त की बारी है। संसार ने समस्त जीवन-प्रणालियों; वादों और इज़्मों की असफलता देख ली। वह इस समय मृत्यु के दहाने पर पहुँच चुका है। यदि उसे जीवन और अपनी जटिल समस्याओं का समाधान अभीष्ट है तो उसे अवश्य ही इस्लाम की ओर पलटना होगा। 'ख़िलाफ़त में शासन-व्यवस्था ईश्वर के दिए हुए नियम और क़ानून पर आधारित होती है। राज्य की व्यवस्था के लिए जो अधिकारी चुने जाते हैं, वे भी क़ानून के उसी तरह पाबन्द होते हैं जिस प्रकार जनसाधारण उसके पाबन्द होते हैं।

6. हज़रत सौबान (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस तरह खाना खानेवाले एक दूसरे को दस्तरख़्वान की ओर बुलाते हैं उसी तरह जल्द ही ऐसा होगा कि (शत्रु) जातियाँ तुमपर टूट पड़ेंगी। एक पूछनेवाले ने पूछा : क्या ऐसा हमारे कम संख्या में होने के कारण होगा? आपने कहा : नहीं, बल्कि उस समय तुम बहुत ज़्यादा होगे, परन्तु तुम ऐसे होगे जैसे जल-प्लावन के झाग से मिले हुए खर-पतवार होते हैं। तुम्हारे दुश्मन के दिलों से तुम्हारा भय निकल जाएगा और तुम्हारे दिलों में 'वह्न' (निर्बलता एवं सुस्ती) का रोग पैदा हो जाएगा। एक पूछनेवाले ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल 'वह्न' क्या है? कहा : संसार का मोह और मौत से नफ़रत।[1]

—अबू दाऊद, अल-बैहक़ी : दलायलुन्नुबूवत

1. इस हदीस में जिस समय का उल्लेख किया गया है वह संभवतः यही है जिसमें आज हम साँस ले रहे हैं। आज संसार में मुसलमान करोड़ों की संख्या में हैं, परन्तु शत्रुओं के दिलों से उनका भय निकल चुका है। वे उन्हें अपना नर्म चारा समझते हैं। अमेरिका के इशारे पर इसराईल ने 5 जून सन् 1967 ई० को अरबों पर जो आक्रमण किया है वह इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। हमारी अस्त-व्यस्तता और पराजय का मूल कारण इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि हमारे ईमान की शक्ति क्षीण हो गई है, हममें ईमान की वह ज्योति और अन्तर्दृष्टि भी नहीं रही जो सामुदायिक जीवन के प्रत्येक मोड़ पर और बदले हुए समय की विभिन्न अवस्था में हमारा पथ-प्रदर्शन कर सके और हमारे अपने वास्तविक दायित्व से हमें अवगत कराती रहे।

अल्लाह की किताब

अल्लाह ने अपने बन्दों के मार्गदर्शन के लिए अपने रसूलों पर किताबें उतारीं। अल्लाह की अन्तिम किताब 'कुरआन मजीद' है जो अल्लाह के अन्तिम रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर अवतीर्ण हुआ है। कुरआन अपने शब्द और अर्थ दोनों पहलुओं से अल्लाह का 'कलाम' है। यह किताब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की अपनी रचना कदापि नहीं है। रसूल का काम तो यह है कि वह एक अमानतदार की तरह उस किताब को जो अल्लाह की ओर से उसके दिल पर अवतीर्ण हुई है, अल्लाह के बन्दों तक पहुँचाए और अपनी ओर से उसमें कोई कमी-बेशी न करे। अल्लाह की दी हुई सूझ-बूझ से इस किताब की व्याख्या करे और अपनी शिक्षा और अपने चरित्र द्वारा लोगों के आचार-विचार को ठीक करे। उनके जीवन में क्रान्ति लाए और उन्हें एक उत्तम गिरोह या समुदाय बनाए। एक ऐसा गिरोह जिसके द्वारा संसार में भलाई फैले और बुराई समाप्त हो।

तौरात, इनजील, ज़बूर आदि अल्लाह की ओर से बहुत-सी किताबें अवतीर्ण हुईं, परन्तु उनमें से कितनी किताबें हैं जो बिलकुल लुप्त हो चुकी हैं। जो किताबें आज पाई जाती हैं उनमें कुरआन के सिवा कोई किताब अपने वास्तविक शब्दों और अर्थों के साथ सुरक्षित नहीं है। उनमें अल्लाह के कलाम के साथ मानवीय कलाम भी सम्मिलित हो गया है। लोगों ने उनमें बहुत-सी बातें अपनी ओर से मिला दी हैं। और कितनी ही बातों को लोगों ने बदलकर रख दिया है। अब यह निर्णय करना बहुत ही मुश्किल है कि उनमें कितना सत्य है और कितना असत्य। कुरआन की विशेषता यह है कि वह अपने उन्हीं शब्दों और अर्थों के साथ मौजूद है जिन शब्दों और अर्थों के साथ अल्लाह के अन्तिम रसूल ने उसे दुनिया के सामने प्रस्तुत किया था। इस किताब की भाषा आज भी संसार की एक जीवित भाषा है। इसकी भाषा को बोलने और समझनेवाले करोड़ों की संख्या में दुनिया में मौजूद हैं। यह किताब दिव्य मार्गदर्शन का अन्तिम और नवीनतम संस्करण है जिसमें क़ियामत तक के लिए और संसार के सारे ही लोगों के मार्गदर्शन की सामग्री है। इस किताब के बाद किसी और किताब की आवश्यकता शेष नहीं रहती। सीधा मार्ग पाने और अल्लाह की इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने के लिए जिन बातों की आवश्यकता थी वे सभी बातें इस किताब 'कुरआन' में बयान कर दी गई हैं। इस किताब में वे समस्त विशेषताएँ पाई जाती हैं जो पिछली 'किताबों' और सहीफ़ों में अलग-अलग थीं। कुरआन को

आचार-विचार सम्बन्धी दिशा-दर्शन और व्यावहारिक जीवन के लिए पूर्ण जीवन-व्यवस्था और ऐसे क़ानून की हैसियत प्राप्त है जिसका पालन करना प्रत्येक के लिए अनिवार्य है। जिसने इस किताब की उपेक्षा की उसने अपना सम्बन्ध वास्तविक जीवन- स्रोत से काट लिया।

क़ुरआन मनुष्य को जिस दीन (धर्म) की ओर आमंत्रित करता है वही मानव का वास्तविक और स्वाभाविक धर्म है। यही कारण है कि उसने लोगों को उनकी बुद्धि और सूझ-बूझ के मार्ग से आमंत्रित किया है। दूसरे शब्दों में उसने उनकी प्रकृति को आकर्षित किया है। उसने मानवीय प्रकृति में निहित तथ्यों से लोगों को परिचित किया है। मानव को उसकी वास्तविक प्रकृति और उसकी माँग का स्मरण कराया है। इसी लिए वह अपने आपको ज़िक्र व तबसरा (अनुस्मारक व आँखें खोल देने की सामग्री) के नाम से प्रस्तुत करता है। फिर वह ज्ञान, विश्वास और चिन्तन और सोच-विचार के लिए ऐसी दृढ़ बुनियाद संचित करता है जिसे संदेह और शंका कभी हिला नहीं सकते। इस दृष्टि से वह हुदा और तिबयान (मार्गदर्शन व स्पष्टकर्ता) हक़ व बुरहान (सत्य व प्रमाण) है और हमारे लिए बसायर व नूर (अन्तरदृष्टियों की सामग्री व प्रकाश) है।

क़ुरआन जो अल्लाह की वह्य है इसी के द्वारा मनुष्य को वास्तविक जीवन प्राप्त होता है। यही हमारे शाश्वत जीवन का साधन है। इसके द्वारा हमें जीवन का सीधा और सुगम मार्ग मिलता है। अल्लाह की वह्य वह पवित्र आहार है जिससे हमारा आत्मिक जीवन सम्बद्ध है। मूसा (अलै०) की किताब में है : "मनुष्य केवल रोटी से नहीं जीवित रहता, बल्कि उस कलिमा (शब्द) से जीवित रहता है जो प्रभु (ईश्वर) की ओर से आता है" (मत्ती, 4 : 4)। हज़रत मूसा (अलै०) कहते हैं : मनुष्य केवल रोटी ही से नहीं जीता बल्कि जो कुछ प्रभु के मुख से निकलता है उससे जीवन पाता है" (व्यवस्था विवरण 8 : 3)। हज़रत मसीह (अलै०) की प्रार्थना है : "हमारी रोज़ की रोटी हमें रोज़ दिया कर" (लूक़ा 11 : 3)।

क़ुरआन में भी कहा गया है कि वह्य और मार्गदर्शन की हैसियत "रिज़्क हसन" अर्थात अच्छी रोज़ी की है। सूरा हूद (11), आयत 88 में कहा गया है : "(शुऐब ने) कहा : ऐ मेरी जातिवालो ! देखो तो, यदि मैं अपने रब की खुली दलील पर हूँ, और उसने मुझे (अपनी ओर से) "रिज़्क हसन" (अच्छी रोज़ी) प्रदान किया है (तो मैं कैसे तुम्हारी तुच्छ इच्छाओं का पालन कर सकता हूँ)।" इस रोज़ी से वंचित रह जाना बड़े दुर्भाग्य की बात है।

किताब पर ईमान

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि किताबवाले (यहूदी व ईसाई) इबरानी में तौरात को पढ़ते और मुसलमानों के लिए अरबी में उसकी व्याख्या करते थे, इसपर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम किताबवालों की न तसदीक़ करो और न उनको झुठलाओ[1] और कहो : हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस चीज़ पर जो हमारी ओर उतारी गई।[2] —बुख़ारी

क़ुरआन की महानता

1. हज़रत उसमान बिन अफ़्फ़ान (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें उत्तम व्यक्ति वह है जिसने क़ुरआन सीखा और उसे सिखाया। —बुख़ारी

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब भी लोग अल्लाह के घरों में से किसी घर (मसजिद) में एकत्र होकर क़ुरआन की तिलावत करते और उसे आपस में पढ़ते-पढ़ाते हैं तो

---

1. मतलब यह है कि अल्लाह की ओर से पिछले नबियों पर भी किताबें उतरी हैं और मुसलमान अल्लाह की ओर से आई हुई सभी किताबों पर ईमान रखते हैं। परन्तु किताब रखनेवाले यहूदी और ईसाई आज जो कुछ तौरात और इनजील के नाम से प्रस्तुत करते हैं उसके बारे में नहीं कहा जा सकता कि उनकी कितनी बातें वास्तव में तौरात व इनजील की हैं और कितनी बातें लोगों की अपनी घड़ी हुई हैं। आसमानी किताबें आज अपने वास्तविक रूप में सुरक्षित नहीं है, अतः उचित बात यही है कि किताबवाले ईश्वरीय ग्रंथ के नाम से जो कुछ प्रस्तुत करते हैं उनके बारे में चुप रहा जाए। न उनका समर्थन किया जाए और न ही उनका इनकार किया जाए। हाँ, जिन बातों की पुष्टि क़ुरआन से होती है उनकी तसदीक़ की जाएगी और जिन बातों का असत्य होना क़ुरआन से सिद्ध है उन्हें असत्य कहा जाएगा।
2. यह संकेत क़ुरआन की एक विशेष आयत की ओर है। पूरी आयत यूँ है : "कहो हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस चीज़ पर जो हमारी ओर उतारी गई, और उसपर जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़ और याक़ूब और (याक़ूब की) औलाद की ओर उतारी गई है, और जो मूसा और ईसा को दी गई, और जो दूसरे सभी नबियों को उनके रब की ओर से मिलती रही है, हम उनके बीच कोई अन्तर नहीं करते, और हम उसके मुसलिम (आज्ञाकारी) हैं।" —क़ुरआन, 2 : 136

उनपर सकीनत (शान्ति) अवतरित होती है और अल्लाह की दयालुता उन्हें ढाँक लेती है[1], और फ़रिश्ते उन्हें घर लेते हैं और अल्लाह उनकी चर्चा अपने पासवालों में करता है। और जिस व्यक्ति का कर्म उसे पीछे कर दे उसका वंश उसे आगे नहीं बढ़ा सकता।[2] —मुसलिम, अबू दाऊद, तिरमिज़ी

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हर एक नबी को कुछ चमत्कार दिए गए जिनके अनुसार लोग उनपर ईमान लाए। मेरा चमत्कार जो मुझे प्रदान हुआ, वह्य है जिसे अल्लाह ने मेरी ओर भेजा है। और मुझे आशा है कि क़ियामत के दिन मेरे अनुयायी समस्त नबियों से अधिक होंगे।[3] —बुख़ारी, मुसलिम, अहमद

4. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०)

---

1. सकीनत (शान्ति) से अभिप्रेत दिल का इतमीनान, स्थिरता और धैर्य है। क़ुरआन के पाठ में यह आध्यात्मिक प्रभाव पाया जाता है कि उससे दिल में इतमीनान (Conviction) और शान्ति का अवतरण होता है। संदेह और हर प्रकार की खटक दूर हो जाती है। शैतान के हस्तक्षेप से आदमी बच जाता है। क़ुरआन एक ऐसा प्रकाश है जिससे दिलों के सभी गोशे प्रकाशित हो जाते हैं। अँधकार लेशमात्र को भी शेष नहीं रहता। दिल की बेचैनी दूर हो जाती है। ईमान में दृढ़ता और निखार आ जाता है। फिर आदमी को सच्चाई के लिए प्राण तक देने में कोई झिझक नहीं होती। अल्लाह के मार्ग में चलने ही में उसके दिल को शान्ति और ठंडक मिलती है।
2. अर्थात अल्लाह के यहाँ जिस चीज़ का वास्तव में महत्व है वह यह है कि मनुष्य ने सत्य और सच्चाई को पहचान लेने के पश्चात कहाँ तक उसे अपने जीवन में अपनाया और कहाँ तक उसके तक़ाज़े पूरे किए। जो व्यक्ति कर्म सम्बन्धी अपने दायित्व के प्रति असावधान रहा वह आख़िरत में केवल इस कारण ऊँचा दर्जा न पा सकेगा कि उसका जन्म एक उच्च और पवित्र वंश में हुआ था। इसलिए मनुष्य को वंश-श्रेष्ठता पर भरोसा करने के बदले ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान कर्म की ओर देना चाहिए।
3. पिछले नबियों को अल्लाह ने विभिन्न चमत्कार प्रदान किए थे। उन चमत्कारों से यह सिद्ध होता था कि वे उसी अल्लाह के भेजे हुए रसूल या नबी हैं जिसका अखिल विश्व पर शासन है। स्वयं नबी (सल्ल०) को भी बहुत-से चमत्कार प्रदान किए गए, परन्तु आपका सबसे बड़ा चमत्कार क़ुरआन है जो क़ियामत तक शेष रहनेवाला है। क़ुरआन अपने विषय, वर्णन-शैली, साहित्य आदि प्रत्येक दृष्टि से एक महान चमत्कार है। क़ुरआन एक ऐसा चमत्कार है जिसे देखकर क़ियामत तक लोग प्रभावित होते रहेंगे। नबी (सल्ल०) के अनुयायी समस्त नबियों के अनुयायियों से अधिक होंगे।

अपनी नमाज़ में तशह्हुद के बाद कहा करते थे : सबसे अच्छा कलाम अल्लाह का कलाम है और सबसे अच्छा तरीक़ा मुहम्मद (सल्ल०) का तरीक़ा है।

—नसई

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ुरआन पाँच प्रकार की बातों पर अवतरित हुआ है[1] : हलाल-हराम, अटल[2], उपलक्षित[3] और मिसालें[4], तो तुम हलाल (वैध) को हलाल जानो, हराम (अवैध) को हराम समझो, अटल का पालन करो, उपलक्षित पर ईमान लाओ और मिसालों से शिक्षा ग्रहण करो। —मसाबीह-बैहक़ी

6. हज़रत वासिला (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से उल्लेख किया है कि (आपने कहा :) मुझे तौरात के बदले में सब्अ तिवाल मिली हैं और ज़बूर के बदले में मिईन और इनजील के बदले में मसानी और मुफ़स्सल के साथ मुझे श्रेष्ठता प्रदान की गई।[5] —अहमद व अल-कबीर

---

1. अर्थात क़ुरआन में पाँच प्रकार की चीज़ें मिलती हैं।
2. ऐसी आयतें जिनका अर्थ बिलकुल स्पष्ट है। जिनमें वे सभी बातें स्पष्ट रूप से बता दी गई हैं जिनकी ओर आमंत्रित करने के लिए क़ुरआन का अवतरण हुआ है। उदाहरणार्थ ईमान और मौलिक धारणा सम्बन्धी बातें। भलाई क्या है? बुराई किसे कहते हैं? सत्य क्या है? असत्य क्या है? इनके अतिरिक्त वे सभी बातें जिनका सम्बन्ध व्यावहारिक जीवन और समाज से है।
3. उपलक्षित और अस्पष्ट (Allegorical) आयतें वे हैं जिनमें वे बातें बयान हुई हैं जिन तक हमारी बुद्धि नहीं पहुँच सकती। जिन्हें पूर्ण रूप से समझना हमारे लिए संभव नहीं। उदाहरणार्थ अल्लाह की सत्ता, आख़िरत (परलोक) में पेश आनेवाली बातें आदि। इन बातों के बारे में एक हद तक जानना मनुष्य के लिए आवश्यक था। इसलिए कि जब तक इनके बारे में कुछ बातें न बता दी जाएँ, जीवन की कोई रूप-रेखा नहीं प्रस्तुत की जा सकती और न इसके बिना कोई जीवन-दर्शन ही प्रस्तुत किया जा सकता था।
4. मिसालों से अभिप्रेत उदाहरण, उपमाएँ और प्राचीन जातियों की कथाएँ हैं जिनका उल्लेख क़ुरआन में जगह-जगह हुआ है।
5. क़ुरआन की सात आरंभिक सूरतें तिवाल कहलाती हैं। इसके बाद ग्यारह सूरतें मिईन कहलाती हैं और इसके बाद की बीस सूरतें मसानी। इसके बाद क़ुरआन के अन्त तक मुफ़स्सल हैं। कुछ सूरतों के बारे में मतभेद भी है कि वे तिवाल में से हैं या मिईन में सम्मिलित हैं। इसी प्रकार कुछ सूरतों के बारे में यह मतभेद भी पाया जाता है कि वे

7. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ुरआन पढ़नेवाले मोमिन (ईमानवाले व्यक्ति) की मिसाल तुरूंज (एक प्रकार का नींबू) की तरह है कि उसकी महक भी अच्छी और उसका मज़ा भी अच्छा है और उस ईमानवाले व्यक्ति की मिसाल जो क़ुरआन नहीं पढ़ता खजूर की तरह है कि उसमें महक नहीं होती परन्तु उसका मज़ा मीठा होता है। और उस मुनाफ़िक़ की मिसाल जो क़ुरआन पढ़ता है 'रैहान' (एक महकता पौधा) की तरह है कि उसकी महक तो अच्छी है परन्तु उसका मज़ा कड़ुवा होता है। और उस मुनाफ़िक़ की मिसाल जो क़ुरआन नहीं पढ़ता इंद्रायन की तरह है जिसमें कोई महक नहीं होती और उसका मज़ा भी कड़ुवा होता है।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम, नसई, इब्ने माजा

8. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ुरआनवाले व्यक्ति से[2] (क़ियामत के दिन) कहा जाएगा कि पढ़ते जाओ और चढ़ते जाओ और उसी तरह सँभाल-सँभालकर (क़ुरआन) पढ़ो जिस तरह से दुनिया में सँभाल-सँभालकर पढ़ते थे इसलिए कि तुम्हारा स्थान तुम्हारी तिलावत (पठन) की अन्तिम आयत पर होगा।[3] —तिरमिज़ी, अबू दाऊद, इब्ने माजा

मसानी हैं या मुफ़स्सल हैं। मालूम हुआ कि जो आसमानी किताबें पहले अवतीर्ण हो चुकी हैं क़ुरआन में उन सबकी मिसाल मौजूद है। इसके अलावा मुफ़स्सल इस क़ुरआन की विशेष चीज़ हैं; इसकी मिसाल पिछली किताबों में नहीं मिलती।

1. मतलब यह है कि जो मोमिन क़ुरआन पढ़ता है वह बाह्य और आन्तरिक हर प्रकार के गुणों से युक्त होता है। जो मोमिन क़ुरआन नहीं पढ़ता उसमें एक दोष रह जाता है; परन्तु उसके आंतरिक अस्तित्व को श्रीहीन नहीं कहा जा सकता, इसलिए कि ईमान उसके दिल में मौजूद है। मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) का आंतरिक अस्तित्व श्रीहीन होता है। वह पढ़ने को तो क़ुरआन पढ़ रहा होता है, परन्तु उसके दिल में निफ़ाक़ (कपट) का रोग मौजूद होता है। ऐसा मुनाफ़िक़ जो क़ुरआन नहीं पढ़ता उसके न बाह्य अस्तित्व में सुन्दरता होती है और न उसके आन्तरिक जीवन में कोई अच्छाई पाई जाती है।
2. अर्थात उस व्यक्ति से जो क़ुरआन पढ़ता और अपने जीवन को क़ुरआन के अनुसार बनाने की कोशिश करता है।
3. अर्थात क़ुरआन की तिलावत (पठन) के अनुसार तुम्हारे दर्जे ऊँचे होते जाएँगे। क़ुरआन की प्रत्येक आयत मनुष्य के दर्जे को बढ़ानेवाली है। मनुष्य यदि वास्तव में समझकर और जी लगाकर क़ुरआन की तिलावत करे तो सांसारिक जीवन में ही वह अपने विचार और कर्म की दृष्टि से ऊँचा होता चला जाएगा। विचार, स्वभाव और कर्म की

9. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि जो व्यक्ति सर्वोच्च अल्लाह की किताब में से एक अक्षर पढ़े उसे प्रत्येक अक्षर के बदले एक नेकी मिलेगी और हर नेकी दस नेकी के बराबर होगी। मैं "अलिफ़० लाम० मीम०" को एक अक्षर नहीं कहता अलिफ़० एक अक्षर है, लाम० एक अक्षर है और मीम० एक अक्षर है।[1] —तिरमिज़ी

10. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! कौन-सा कर्म अल्लाह को बहुत प्रिय है? आपने कहा : सफ़र समाप्त करनेवाला और फिर सफ़र शुरू करनेवाला। उस व्यक्ति ने कहा : सफ़र समाप्त करने और फिर शुरू करनेवाले से क्या अभिप्रेत है? कहा : इससे अभिप्रेत वह व्यक्ति है जो क़ुरआन को शुरू से अन्त तक पूरा करके फिर शुरू करता है और इसी तरह सफ़र समाप्त करता और फिर शुरू कर देता है।[2] —तिरमिज़ी

11. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : यह क़ुरआन ईश्वरीय दस्तरख़्वान है, तो तुम उसके दस्तरख़्वान की ओर बढ़ो जहाँ तक तुमसे हो सके। यह क़ुरआन अल्लाह की रस्सी है और प्रत्यक्ष प्रकाश है। और लाभदायक आरोग्यकर है। उस व्यक्ति के लिए बचाव और सुरक्षा (की सामग्री) है जो उसे दृढ़ता के साथ पकड़े और उस

दृष्टि से जो उच्चता उसे सांसारिक जीवन में प्राप्त होती है उसी का पूर्ण प्रकाशन आख़िरत के जीवन में होगा।

1. अर्थात क़ुरआन के प्रत्येक शब्द और उसके प्रत्येक अक्षर की तिलावत (पठन) पुण्य और नेकियों का कारण बनती है। अल्लाह अपनी विशेष कृपा से प्रत्येक अक्षर पर दस नेकियों का सवाब प्रदान करता है। क़ुरआन ऐसा अनुपम और कल्याणकारी ग्रन्थ है कि आदमी को उसके प्रत्येक शब्द से प्रेम होना चाहिए। एक नेकी पर दस नेकियों का सवाब प्रदान करना अल्लाह का सामान्य नियम है, क़ुरआन में है : "जो व्यक्ति एक नेकी लेकर आएगा उसे उस जैसी दस नेकियों का सवाब दिया जाएगा।"—6 : 160
2. इस हदीस में क़ुरआन पढ़ने को नबी (सल्ल०) ने सफ़र (यात्रा) की उपमा दी है। यह ऐसा सफ़र है जो कभी समाप्त नहीं होता। क़ुरआन ऐसी किताब है जिससे कभी कोई तृप्त नहीं हो पाता। इसका ज्ञान और तत्व की बातें कभी समाप्त होने की नहीं है। यह ग्रन्थ सदैव नवीन ही रहता है। पढ़नेवाला यदि समझ-बूझ रखता है तो उसका प्रत्येक सफ़र नवीन ही रहेगा, इस किताब का पठन और इसकी आयतें सोच-विचार और चिन्तन करनेवालों के लिए अत्यन्त आनन्ददायक हैं।

व्यक्ति के लिए छुटकारा एवं मुक्ति (का साधन) है जो उसका अनुसरण करे। न वह राह से हटेगा कि उसके प्रबोधन की आवश्यकता पड़े और न टेढ़ा होगा कि सीधा करने की आवश्यकता पड़ सके। और उसके चमत्कार एवं विलक्षणताएँ कम होने को नहीं[1] और न अधिक पढ़ने से वह पुराना होता है।[2] अल्लाह तुम्हें उसकी तिलावत (पठन) पर हर अक्षर के बदले दस नेकियाँ प्रदान करेगा। मैं यह नहीं कहता कि 'अलिफ़० लाम० मीम०' एक अक्षर है, बल्कि अलिफ़० एक अक्षर है, और लाम० एक अक्षर है और मीम० एक अक्षर है। —हाकिम

12. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने "कुल हुवल्लाहु अहद" के बारे में कहा कि यह तिहाई क़ुरआन के बराबर है।[3] —मुसलिम

---

1. इस हदीस से मालूम हुआ कि क़ुरआन समस्त गुणों और विशेषताओं से युक्त है। इससे हमें आत्मिक और सोच-विचार सम्बन्धी आहार प्राप्त होता है और कर्म-क्षेत्र में उतरने की शक्ति मिलती है। वह अल्लाह की रस्सी और मज़बूत सहारा है जो किसी हालत में टूट नहीं सकता। क़ुरआन के अनुकूल जीवन व्यतीत करनेवाला कभी भी ग़लत राह पर नहीं पड़ सकता। यह किताब ज्ञान, साहित्य और सत्य की व्याख्या की वह निधि है जिसके रहस्यों को हम पूर्ण रूप से जान नहीं सकते। क़ुरआन के प्रेमी सदैव क़ुरआन में सोच-विचार करते रहेंगे और उनपर क़ुरआन का अर्थ खुलता जाएगा और वे सदैव ज्ञान के मोतियों से अपने दामन को भरते रहेंगे। ऐसा कभी न होगा कि वे कह सकें कि हमने क़ुरआन के समझने का हक़ अदा कर दिया। वे यही कहते रहेंगे कि हमने जो कुछ क़ुरआन से प्राप्त किया, वह उसके मुक़ाबले में बहुत थोड़ा है, जो अभी हम हासिल नहीं कर सके हैं।
2. क़ुरआन का मामला दूसरी किताबों से भिन्न है। इस किताब को जितना अधिक पढ़िए और इसमें सोच-विचार कीजिए उतना ही अधिक आनन्द बढ़ता जाएगा। इस किताब में सदैव एक नयापन महसूस होता है जबकि दूसरी किताबों का हाल यह है कि उनके बार-बार पढ़ने से आनन्द में कमी होती चली जाती है।
3. क़ुरआन में मौलिक रूप से तीन बातें बयान हुई हैं—तौहीद, रिसालत और आख़िरत। उनमें सबसे महत्वपूर्ण तौहीद (एकेश्वरवाद) है। सूरा अल-इख़लास 'कुल हुवल्लाहु अहद' वास्तव में तौहीद की सूरा है। यूँ तो तौहीद का प्रकाश पूरे क़ुरआन में फैला हुआ है, लेकिन इस सूरा में विशेष रूप से तौहीद की प्रकाशमान किरणें केन्द्रित हो गई हैं। इसलिए आपने इस सूरा को तिहाई क़ुरआन कहा।

   हदीसों में क़ुरआन की दूसरी सूरतों की विशेषताओं का भी वर्णन मिलता है,

13. हज़रत अली (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि हर चीज़ का एक शृंगार होता है, कुरआन का शृंगार सूरा अर-रहमान है।[1]
—बैहक़ी

14. हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह इस किताब के द्वारा बहुत-से लोगों को उच्चता प्रदान करता है और इसके द्वारा बहुत-से लोगों को पस्त करता है।[2] —मुसलिम

15. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसने कुरआन पढ़ा उसने नुबूवत को अपने अंकपालिका (आग़ोश) में ले लिया, अन्तर केवल यह है कि उसकी ओर वह्य नहीं की जाती। कुरआनवाले व्यक्ति को यह बात शोभा नहीं देती कि वह क्रोध करनेवाले के साथ स्वयं क्रोध करने लगे या झगड़नेवाले के साथ झगड़े, जबकि उसके सीने में

जिनसे मालूम होता है कि कुरआन की प्रत्येक सूरा का अपने स्थान पर बड़ा महत्व है। सूरतों के अतिरिक्त कुरआन की विशिष्ट आयतों के गुणों का उल्लेख भी हदीस में किया गया है जिससे उन आयतों की महानता और उनकी सार्थकता का अनुमान किया जा सकता है। हदीसों में जिन सूरतों के गुणों का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है, वे ये हैं : अल-फ़ातिहा, अल-बक़रा, आले इमरान, या० सीन०, अल-वाक़िआ, अल-मुल्क, अलिफ़० लाम० मीम० तनज़ील, अल-कहफ़, अर-रहमान, अल-आला, अज़-ज़िलज़ाल, अत-तकासुर, अल-काफ़िरून, अल-इख़लास, अल-फ़लक़, अन-नास। कुरआन की जिन 'आयतों' की विशेष रूप से महानता और विशेषता बयान हुई हैं वे ये हैं : आयतुल कुरसी, (अर्थात सूरा अल-बक़रा की आयत 255), सूरा अल-बक़रा की अंतिम दो आयतें (285-286), आले इमरान की आयतें 190-200, सूरा अल-कहफ़ की आरंभिक और अन्तिम दस-दस आयतें।

1. सूरा अर-रहमान ऐसी सूरा है जिसमें स्पष्टतः सौंदर्य पाया जाता है जिसको प्रत्येक व्यक्ति यहाँ तक कि अरबी भाषा न जाननेवाले भी महसूस कर लेते हैं। यूँ तो प्रत्येक सूरा सुन्दरता ही का प्रतीक है।
2. मतलब यह है कि जो लोग कुरआन को पढ़ते और उसके आदेशों का पालन करते हैं और वास्तव में उसे अपने जीवन में एक मार्गदर्शक ग्रंथ समझते हैं अल्लाह उन्हें उच्चता, आदर और शक्ति प्रदान करता है यहाँ तक कि संसार में उन्हें प्रभुसत्ता और अधिकार भी प्रदान करता है और आख़िरत में उनके दर्जे बढ़ाता है। इसके विपरीत जो लोग इस किताब के हक़ को नहीं पहचानते, अल्लाह भी उन्हें पस्ती में डाल देता है, जिससे वे कभी निकल नहीं पाते।

अल्लाह का कलाम मौजूद है ।[1] —हाकिम

16. हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन अर्श (ईश्वरीय सिंहासन) के नीचे तीन चीज़ें होंगी[2] । कुरआन जो बन्दों से झगड़ेगा[3]—उसका एक बाह्य है और उसका एक अन्तर है[4]—अमानत (न्यास) और रिश्ता-नाता । यह (रिश्ता-नाता) पुकारकर कहेगा : सुन लो ! जिसने मुझे मिलाया उसे अल्लाह अपनी दयालुता से मिलाएगा और जिसने मुझे तोड़ा अल्लाह उसे तोड़ डालेगा ।[5] —शरहुस्सुन्नह

17. हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति कुरआन (की व्याख्या) में बिना ज्ञान के कोई बात कहे वह अपना ठिकाना (जहन्नम की) आग में बना ले ।[6] —तिरमिज़ी, नसई, अहमद

---

1. कुरआन बहुत बड़ी नेमत और नुबूवत का सार है । कुरआन के प्रेमी को चाहिए कि वह उसका सम्मान करें और अपने चरित्र और कर्म को उच्च-से-उच्च रखने का प्रयास करें ।
2. अर्थात कुरआन, अमानत और नाते-रिश्ते के मामले विशेष रूप से क़ियामत के दिन अल्लाह के सामने पेश होंगे और इनके बारे में अल्लाह ही फ़ैसला करेगा । इन तीनों चीज़ों को मानव-जीवन में मौलिक महत्व प्राप्त है । कुरआन जीवन में एक प्रकाश-स्तम्भ और मार्गदर्शक है । अमानतदारी और नाते-रिश्ते का हक़ अदा करना वास्तव में दीन (धर्म) और नैतिकता का सारांश है । इसलिए क़ियामत में सफल होने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य इन तीनों के हक़ को पहचाने और उन्हें अदा करने की कोशिश करे ।
3. अर्थात कुरआन एक दलील और प्रमाण के रूप में लोगों के सामने पेश होगा । जिन लोगों ने कुरआन के आदेशों और उसकी निश्चित की हुई सीमाओं का आदर किया होगा वे उस दिन सफल होंगे । परन्तु उन लोगों की कमर उस दिन टूट जाएगी जो गर्व और अहंकार के मद में कुरआन के आदेशों का निरादर करते और अपनी तुच्छ इच्छाओं के पालन में लगे रहते हैं ।
4. कुरआन में जहाँ नियम, अनुशासन, क़ानून आदि की शिक्षा दी गई है वहीं उसमें ऐसे आंतरिक ज्ञान और सूक्ष्म वास्तविकताओं की ओर भी संकेत किए गए हैं जिन तक अपनी चेतना और बुद्धि-स्तर के अनुसार मनुष्य की पहुँच होती है । इसके लिए सोच-विचार, चिन्तन और आत्मा की शुद्धता एवं विकास आवश्यक है ।
5. मतलब यह है कि जिन लोगों ने मेरा हक़ अदा किया होगा उन्हीं पर अल्लाह की दया होगी । मेरे हक़ को दबानेवाले आज असफल और घाटे में होंगे ।
6. कुरआन की सही तफ़सीर (टीका, व्याख्या) वही है जो ज्ञान और सूझ-बूझ पर

क़ुरआन का पाठ (तिलावत)

1. हज़रत इब्ने उमर(रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा: इन दिलों को भी ज़ंग लग जाता है जैसे लोहे को ज़ंग लग जाता है जबकि उसपर पानी पहुँच जाए। कहा गया : ऐ अल्लाह के रसूल! इन (दिलों) को चमक प्रदान करनेवाली क्या चीज़ है? कहा : मृत्यु को अधिक याद करना और क़ुरआन की तिलावत (पाठ)।[1] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

अवलम्बित हो। जो लोग क़ुरआन का अर्थ करने में ज्ञान के स्थान पर अपनी तुच्छ इच्छाओं का पालन करते हैं, वे अल्लाह की किताब पर अत्याचार करते हैं। उनका ठिकाना जहन्नम ही हो सकता है। क़ुरआन में सोच-विचार और चिन्तन करना ग़लत और अनुचित बात कदापि नहीं है। क़ुरआन ने स्वयं सोच-विचार और चिन्तन करने का आह्वान किया है। क़ुरआन में एक जगह है : "तो क्या ये लोग क़ुरआन में सोच-विचार नहीं करते या दिलों पर ताले डाले पड़े हुए हैं?" (47 : 24) जिस चीज़ से हमें रोका गया है वह यह है कि हम ऐसी नीति न अपनाएँ कि क़ुरआन का अनुसरण करने के बदले ख़ुद क़ुरआन को अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और रुचि का अनुवर्ती बनाने लगें। क़ुरआन की किसी आयत का जो अर्थ भी हम लें वह ऐसा होना चाहिए जिसका समर्थन संदर्भ और वाणी-व्यवस्था आदि से होता हो। इसके लिए भाषा और साहित्य का गहरा ज्ञान और दीन की गहरी सूझ-बूझ अपेक्षित है। जो लोग न तो अरबी भाषा और अरब साहित्य का पूरा ज्ञान रखते हैं और न ही ही जिनमें अल्लाह का डर और ज़िम्मेदारी का एहसास होता है वे जब क़ुरआन की तफ़सीर (टीका) करने बैठेंगे तो स्पष्ट है कि वे क़ुरआन को विकृत करके रख देंगे।

क़ुरआन की आयतों के बारे में जो कुछ कहा जाए वह ज्ञान पर अवलम्बित हो, केवल अटकल और गुमान से क़ुरआन के बारे में कुछ कहना बहुत ही ग़ैर ज़िम्मेदारी की बात है। एक हदीस में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "जो व्यक्ति क़ुरआन की तफ़सीर (टीका) अपनी सम्मति से करे और और वह सही निकले तब भी वह गुनहगार होगा।" —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

1. मृत्यु की याद मन की तुच्छ इच्छाओं और वासनाओं की दासता से छुटकारा दिलाएगी और क़ुरआन के पाठ से उसे वास्तविकता और सत्य का परिचय मिलेगा। हृदय की शुद्धता के लिए ये दोनों चीज़ें आवश्यक हैं। इच्छाओं और वासनाओं पर जब तक व्यक्ति को नियंत्रण प्राप्त न हो अभीष्ट भाव मन में नहीं पल सकते। हृदय कभी असावधानी और अस्वच्छता से छुटकारा नहीं पा सकता।

2. हज़रत बरा इब्ने आज़िब (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम अपनी आवाज़ों से क़ुरआन को विभूषित करो।[1]

—अबू दाऊद, नसई, इब्ने माजा

3. ताऊस से मुरसल तरीक़े से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) से पूछा गया कि क़ुरआन पढ़ने में कौन व्यक्ति अधिक अच्छी आवाज़वाला है? कहा : वह व्यक्ति कि जब तू उसे पढ़ता हुआ सुने तो तुझे ऐसा लगे कि वह अल्लाह से डरता है।[2] ताऊस कहते हैं कि तल्क़ ऐसे ही थे। —दारमी

4. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उनसे कहा : तुम्हें आले दाऊद के मिज़मारों (एक बाजा) में से मिज़मार प्रदान किया गया है।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात अच्छी आवाज़ के साथ क़ुरआन पढ़ो। उसे बिगाड़कर न पढ़ो। क़ुरआन जहाँ अपने अभिप्रायों, अर्थों और वास्तविकता के सूक्ष्म रहस्यों की दृष्टि से महान ग्रंथ है वहीं उसकी ध्वनि और स्वर में भी पूर्ण संगति और सौंदर्य पाया जाता है। एक हदीस में कहा गया है : "अल्लाह किसी चीज़ को भी उतने ध्यान से नहीं सुनता जितने ध्यान से वह नबी को क़ुरआन गुनगुनाते हुए सुनता है।" (बुख़ारी, मुस्लिम, अबू दाऊद, नसई)
   एक दूसरी हदीस है : "वह व्यक्ति हममें से नहीं है जो क़ुरआन को अच्छी आवाज़ से न पढ़े।" —बुख़ारी
   इन रिवायतों से ज़ाहिर है कि क़ुरआन को जहाँ तक हो सके उत्तम ढंग से पढ़ना चाहिए। दिल में द्रवणशीलता, कोमलता और तड़प, हो, स्वर में रमणीयता और शब्दों के साथ-साथ क़ुरआन के अर्थ एवं अभिप्राय की ओर भी ध्यान हो।
2. वास्तव में रमणीय और सुन्दर स्वर में उसी समय सजीवता आती है जब उसमें मन के भाव भी सम्मिलित हों। ऐसा स्वर, जिसमें मन के भाव भी मिले हों, सीधे दूसरे दिलों को प्रभावित करते हैं। मन के भावों में सबसे बढ़कर रस और सौंदर्य ईश-भय के भाव में है और यही भाव बन्दगी, विनयशीलता का प्राण है। प्रेम को भी यह भाव अभीष्ट है, ज्ञानी जन इस तथ्य को भली-भाँति जानते हैं।
3. हज़रत अबू मूसा अशअरी असाधारण तौर पर सुकण्ठ और अच्छी आवाज़वाले थे। वे क़ुरआन पढ़ रहे थे। नबी (सल्ल०) उधर से गुज़रे तो आप उनकी आवाज़ सुनकर खड़े हो गए और देर तक क़ुरआन सुनते रहे। जब वे क़ुरआन पढ़ चुके तो आपने वह बात कही जिसका उल्लेख इस हदीस में हुआ है। आपने अबू मूसा (रज़ि०) की आवाज़ और स्वर की मिठास को मिज़मार की ध्वनि की उपमा दी। हज़रत दाऊद (अलै०)

5. हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसके अन्तर में क़ुरआन में से कुछ न हो वह उजाड़ घर के समान है।[1]

—तिरमिज़ी, दारमी, हाकिम

6. हज़रत सअद बिन उबादा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति क़ुरआन पढ़े और फिर उसे भुला दे, वह क़ियामत

अत्यन्त सुकण्ठ थे। आपके कथन का अभिप्राय यह है कि अबू मूसा (रज़ि०) को दाऊद (अलै०) के स्वर में हिस्सा मिला है।

1. मालूम हुआ कि क़ुरआन दिलों की आबादी का कारण बनता है। पवित्र से पवित्र और सुन्दर से सुन्दर वाणी भी क़ुरआन का स्थान नहीं ले सकती। क़ुरआन हमें हमारी प्रकृति और उस अभिरुचि से परिचित कराता है जिसके बिना हमारा जीवन भावहीन हो रह जाता।

क़ुरआन हृदय-लोक ही की शोभा नहीं बल्कि वह हमारे घरों की भी शोभा और बहार है। एक हदीस में आया है : "अपने घरों को क़ब्रिस्तान न बनाओ। निश्चय ही शैतान उस घर से भागता है जिसमें सूरा अल-बक़रा पढ़ी जाती हो।"

—मुस्लिम, नसई, तिरमिज़ी, अबू दाऊद, अहमद

मालूम हुआ कि जिस घर में क़ुरआन की तिलावत न हो वह घर क़ब्रिस्तान के समान उजाड़ है। उसमें कोई जीवन नहीं है। 'शैतान' यही चाहता है कि लोग वास्तविक जीवन से दुनिया और आख़िरत में वंचित रहें। परन्तु यदि घर में क़ुरआन की 'तिलावत' होती है तो 'शैतान' की मक्कारी और चाल वहाँ नहीं चल सकती। सूरा अल-बक़रा क़ुरआन की सबसे बड़ी सूरा है और उसमें वह सब कुछ मौजूद है जिसके द्वारा मनुष्य शैतानी हथकंडों से अपने आपको सुरक्षित रख सकता है। इस पहलू से इस हदीस में सूरा अल-बक़रा का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है।

क़ुरआन-पाठ और नमाज़ में गहरा सम्बन्ध है। इसी लिए हदीसों में क़ुरआन की तिलावत (पठन) की तरह नमाज़ के बारे में भी यह आदेश दिया गया है कि मनुष्य उसके द्वारा अपने घर को आबाद रखे और उसे उजाड़ भूमि न बनाए। हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "अपनी नमाज़ों का कुछ हिस्सा अपने घरों में अदा करो और उन्हें क़ब्रिस्तान न बनाओ" (मुसनद अहमद)। हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "आदमी की घर में नमाज़ मेरी इस मसजिद से उत्तम है, सिवाय फ़र्ज़ (अनिवार्य) नमाज़ के", (अबू दाऊद)। मसजिद के अतिरिक्त अपने घर में भी नमाज़ पढ़ते रहने का अर्थ यह होता है कि नमाज़ आदमी के जीवन में पूर्णतः सम्मिलित हो चुकी है, उसकी हैसियत किसी परिशिष्ट की कदापि नहीं है।

के दिन अल्लाह से इस दशा में मिलेगा कि उसका हाथ कटा हुआ होगा ।[1]

—अबू दाऊद

7. हज़रत जुन्दुब बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ुरआन पढ़ो जब तक तुम्हारे दिलों की रुचि उसकी ओर रहे और जब उकता जाओ तो उठ खड़े हो ।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

8. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बरकतवाले सर्वोच्च पालनकर्ता स्वामी का कहना है कि जिस व्यक्ति को क़ुरआन ने व्यस्त रखा और उसे इतना अवकाश न दिया कि वह मेरा ज़िक्र करता या मुझसे माँगता, मैं उसे उससे बढ़कर प्रदान करूँगा जो माँगनेवालों को प्रदान करता हूँ ।[3] दूसरे कलामों की तुलना में अल्लाह के कलाम की श्रेष्ठता ऐसी ही है जैसी स्वयं अल्लाह की श्रेष्ठता एवं उच्चता उसकी पैदा की हुई चीज़ों के मुक़ाबले में है । —तिरमिज़ी, दारमी, बैहक़ी : शोबुल ईमान

9. हज़रत उबैदा मुलैकी से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ऐ क़ुरआनवालो ! तुम क़ुरआन से पाठ न करो ।[4] रात-दिन क़ुरआन की 'तिलावत' (पाठ) करो जैसा कि उसकी तिलावत का हक़ है । उसे फैलाओ[5], उसे गुनगुनाओ (अच्छी आवाज़ से पढ़ो), और जो कुछ उसमें है उसमें चिन्तन और

---

1. क़ुरआन से विमुख होकर मनुष्य स्वयं अपने व्यक्तित्व और अपने अस्तित्व को क्षति पहुँचाता है ।
2. मतलब यह है कि क़ुरआन को हार्दिक लगाव और प्रफुल्ल मन से पढ़ना चाहिए । जब उकताहट पैदा हो तो तुरन्त तिलावत (पढ़ना) बंद कर देनी चाहिए ।
3. अर्थात यदि किसी व्यक्ति को क़ुरआन से ऐसा अनुराग है कि उसका अधिक समय क़ुरआन पढ़ने और उसमें सोच-विचार और चिन्तन करने में व्यतीत होता है, दुआ, ज़िक्र आदि के लिए उसके पास समय कम ही रहता है तो वह यह ख़याल न करे कि वह घाटे में रहेगा । अल्लाह के यहाँ ऐसे व्यक्ति का जो क़ुरआन से गहरा लगाव रखता है अत्यन्त उच्च स्थान है । ऐसे व्यक्ति को वह उससे कहीं बढ़कर प्रदान करेगा जो ज़िक्र और दुआएँ करनेवालों को प्रदान करेगा ।
4. अर्थात क़ुरआन की ओर से असावधान न हो । उसके हक़ को पहचानो और उन्हें अदा करने की कोशिश करो ।
5. अर्थात् क़ुरआन के प्रचार में हिस्सा लो । पठन-पाठन और अर्थ, टीका आदि द्वारा क़ुरआन की शिक्षा को प्रसारित करो ।

सोच-विचार करो[1], कदाचित् तुम सफल हो जाओ।[2] उसके सवाब (पुण्य) में जल्दी न करो, उसका पुण्य और सवाब तो रखा हुआ है।

—बैहक़ी : शोबुल ईमान

क़ुरआन के अनुसार आचरण

1. हज़रत ज़ियाद बिन लबीद (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने एक (भयानक) चीज़ का ज़िक्र किया और कहा कि यह उस समय होगा जबकि (दीन का) ज्ञान उठ जाएगा। मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! ज्ञान कैसे मिटेगा जबकि हम क़ुरआन पढ़ रहे हैं और अपनी औलाद को पढ़ा रहे हैं, और हमारे बेटे उसे अपनी औलाद को पढ़ाएँगे? आपने कहा : तुम्हें तुम्हारी माँ खोए। ऐ ज़ियाद! मैं तो तुम्हें मदीना का अत्यन्त समझदार व्यक्ति समझता था। क्या ये यहूदी और ईसाई तौरात और इनजील को नहीं पढ़ते, परन्तु उनमें से किसी चीज़ को व्यवहार में नहीं लाते।[3]

—इब्ने माजा

2. हज़रत सुहैब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ुरआन पर ईमान नहीं लाया वह व्यक्ति जिसने उसकी हराम की हुई

---

1. अर्थात् क़ुरआन में सोच-विचार से काम लो क्योंकि इसके बिना क़ुरआन की बहुमूल्यता का अनुमान नहीं हो पाता और न ही क़ुरआन के गहरे अर्थ और रहस्यों से मनुष्य परिचित हो पाता है। क़ुरआन से पूर्णतः लाभान्वित होने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य उसमें सोच-विचार और चिन्तन से काम ले। क़ुरआन को हमारी पूरी रुचि और ध्यान अभीष्ट है, इसके बिना हमारी पहुँच क़ुरआन के उच्च और पवित्र उद्देश्यों तक नहीं हो सकती।
2. अर्थात् इस प्रक्रिया से आशा की जा सकती है कि तुम्हें दुनिया और 'आख़िरत' में सफलता प्राप्त हो सकेगी।
3. अर्थात जब ज्ञान के अनुसार मनुष्य का कर्म और व्यवहार न हो तो समझ लेना चाहिए कि ज्ञान शेष नहीं रहा। ज्ञान से फ़ायदा उठानेवाले न हों तो किताब के पृष्ठों में उसके मौजूद होने का कोई अर्थ नहीं होता। यदि क़ुरआन के अनुसार हम चलते हैं तो निश्चय ही आख़िरत में हमें सफलता प्राप्त होगी। परन्तु यदि क़ुरआन से बेपरवा होकर हम जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो फिर यही क़ुरआन हमारे विरुद्ध हुज्जत होगा। हम अपनी बेअमली का कोई उज्र भी अल्लाह के सामने पेश न कर सकेंगे। एक हदीस में आता भी है : क़ुरआन तुम्हारे हक़ में हुज्जत (दलील व तर्क) होगा या तुम्हारे विरुद्ध हुज्जत होगा।"

—मुस्लिम, तिरमिज़ी, इब्ने माजा, अहमद, दारमी

चीज़ों को हलाल (वैध) कर लिया।[1] —तिरमिज़ी

3. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को कहते सुना : इस समुदाय में कुछ लोग पैदा होंगे, उनकी नमाज़ के सामने तुम अपनी नमाज़ को तुच्छ समझोगे। वे क़ुरआन पढ़ेंगे परन्तु वह उनके गले के नीचे न उतरेगा। दीन (धर्म) से वे इस प्रकार साफ़ निकल जाएँगे जैसे तीर शिकार से निकल जाए। तीर चलानेवाला अपने तीर की लकड़ी, उसके लोहे और परों को देखता है और उसके पिछले भाग को देखता है कि उसमें कुछ ख़ून भी लगा (या नहीं)।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत बुरैदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति क़ुरआन पढ़े और उसके द्वारा लोगों से खाए[3] वह 'क़ियामत' के दिन इस दशा में आएगा कि उसका चेहरा हड्डी ही हड्डी होगा, उसपर मांस न होगा।[4] —अल-बैहक़ी : शोबुल ईमान

5. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ईर्ष्या के योग्य दो ही व्यक्ति हैं—एक वह जिसे अल्लाह ने क़ुरआन (का ज्ञान)

---

1. ऐसा हृदयहीन व्यक्ति जिसके मन और मस्तिष्क और आचार व व्यवहार में क़ुरआन के पढ़ने के बाद भी कोई परिवर्तन न हो, क़ुरआन पढ़ने के बाद भी वही कुछ करता है जिससे क़ुरआन रोकता है, ऐसा व्यक्ति वास्तव में क़ुरआन को मानता ही नहीं। क़ुरआन के मानने का तो अर्थ यह होता है कि मनुष्य अपने आपको बिलकुल क़ुरआन के नेतृत्व में दे दे। उन सभी चीज़ों से बाज़ आ जाए जिनसे क़ुरआन रोकता है।
2. मतलब यह है कि जिस प्रकार शिकार के शरीर को फाड़कर कोई तीर निकल जाए और उसमें कुछ भी ख़ून का धब्बा न लग सके यहाँ तक कि शिकारी तीर को ध्यान से देखे फिर भी उसे इस बात में संदेह ही रहे कि उसमें ख़ून का कुछ धब्बा लगा भी या नहीं। ठीक इसी प्रकार कुछ लोग दीन (धर्म) से बिलकुल निकल भागेंगे। वे दीन से कुछ भी प्रभावित न हो सकेंगे। क़ुरआन पढ़ेंगे परन्तु क़ुरआन का उनके दिल पर कुछ भी असर न होगा। हालाँकि उनकी नमाज़ें देखने में ऐसी शुद्ध और सुन्दर होंगी कि देखनेवालों के मन में उनके प्रति प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न होगी।
3. अर्थात क़ुरआन को दुनिया हासिल करने का साधन बनाए।
4. अल्लाह ऐसे व्यक्ति का सम्मान और उसके मुख का तेज और कांति छीन लेता है जो क़ुरआन का निरादर करता और उसे तुच्छ उद्देश्य के लिए प्रयोग करता है। आख़िरत में पूर्ण रूप से उसकी अपमानित दशा लोगों के सामने होगी। सांसारिक जीवन में भी उसकी हीनता निगाह रखनेवाले व्यक्तियों से छिपी हुई नहीं रहती।

दिया तो वह रात-दिन के समयों में उसे क़ायम करता है[1] और दूसरा वह जिसे अल्लाह ने माल दिया तो वह उसे रात-दिन (अल्लाह के मार्ग में) ख़र्च करता है।

—बुख़ारी, मुसलिम, तिरमिज़ी, इब्ने माजा, अहमद, दारमी

1. अर्थात उसका हक़ अदा करने में लगा रहता है। उसकी तिलावत (पठन) करता, नमाज़ों में उसे पढ़ता, उसकी शिक्षाओं का पालन करता, उसके सन्देशों का संसार में प्रचार करता और उन्हें व्यावहारिक रूप में मानव-जीवन में लाने की कोशिश करता है। क़ुरआन की तिलावत (पठन) और उसके आदेशों के पालन के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसे दूसरों तक पहुँचाया जाए। उसकी शिक्षाओं को अधिक से अधिक प्रसारित किया जाए। हदीस में आया भी है : "मेरी ओर से (दूसरों तक) पहुँचाओ, चाहे एक ही आयत हो।" —बुख़ारी, तिरमिज़ी, अहमद, दारमी

आख़िरत की धारणा

आख़िरत से अभिप्रेत वह जीवन है जो मृत्यु के पश्चात मनुष्यों को प्रदान किया जाएगा। वर्तमान लोक को अल्लाह तोड़-फोड़कर नष्ट कर देगा और नए सिरे से एक स्थायी और उच्च श्रेणी के लोक का निर्माण किया जाएगा। मनुष्यों को पुनः जीवित करके उठाया जाएगा और उनसे उनके कर्मों का हिसाब लिया जाएगा। उनके कर्म के अनुसार अल्लाह उनके अन्तिम परिणाम के बारे में निर्णय करेगा। आख़िरत की धारणा में उन बहुत-से प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है जो इस जीवन में मनुष्य के मन में उठते रहते हैं।

संसार में इसपर कम ही लोग विचार करते हैं कि यह संसार क्या है? इसका सृष्टिकर्ता कौन है? जीवन क्या है? इसका प्रारंभ कैसे हुआ? इस जीवन का वास्तविक उद्देश्य और अभिप्राय क्या है? इन प्रश्नों पर गहरे विचारक ही सोचते और चिन्तन करते हैं। परन्तु मृत्यु की घटना एक ऐसी घटना है जो सभी को चौंका देती है। हर व्यक्ति यह सोचने पर विवश होता है कि मृत्यु के पश्चात क्या होगा? यह अभिलाषा प्रत्येक को होती है कि क्या ही अच्छा होता यदि वह झाँककर देख सकता कि मृत्यु के उस पार क्या है? मरकर मनुष्य कहाँ जाता है और उस पार का लोक कैसा है? क्या मृत्यु के पश्चात भी कोई जीवन है? या मृत्यु के पश्चात मनुष्य सदैव के लिए मिट्टी में मिल जाता है? मनुष्य के मन में स्वभावतः उठनेवाले इन प्रश्नों के मानव-मस्तिष्क ने विभिन्न उत्तर दिए हैं। परन्तु यह एक वास्तविकता है कि आख़िरत की धारणा के रूप में इन प्रश्नों का जो उत्तर इस्लाम ने दिया है वही उत्तर सबसे अधिक दिल को लगता है। इस लोक में फैली हुई अल्लाह की निशानियों से भी इसी धारणा की पुष्टि होती है। इसी धारणा की शिक्षा अल्लाह के सभी नबियों ने दी है।

यह मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा है कि उसे ऐसा जीवन प्राप्त हो जो कभी समाप्त होनेवाला न हो। जिसमें हर प्रकार का सुख और आनन्द हो और किसी प्रकार के कष्ट और दुख का सामना न करना पड़े। मनुष्य एक ऐसी बहार का स्वप्न देखता है जो पतझड़ से मुक्त हो। मनुष्य की यह कामना वर्तमान जीवन में पूर्ण नहीं हो सकती। यहाँ किसी व्यक्ति को शाश्वत जीवन प्राप्त नहीं है और न इसकी वर्तमान लोक में कोई संभावना पाई जाती है कि कोई सदैव जीवित रह

सके। फिर इस जीवन में जहाँ सुख है वहीं दुख भी है। स्वास्थ्य के साथ रोग और जवानी के साथ बुढ़ापे की मुसीबत भी लगी हुई है। किसी भी चीज़ को यहाँ स्थायित्व प्राप्त नहीं है। मनुष्य की इच्छाएँ यदि पूरी हो सकती हैं और उसके स्वप्न साकार हो सकते हैं तो वह किसी ऐसे जीवन में सिद्ध हो सकते हैं जो इसके पश्चात आनेवाला हो।

एक और पहलू से विचार कीजिए। इस संसार में मनुष्य यदि न्याय करता है तो बहुत-से ऐसे लोग भी होते हैं जिनका मानो व्यवसाय ही यह है कि वे संसार को अन्याय और अत्याचार से भर दें। फिर इसके साथ बहुधा ऐसा भी होता है कि अत्याचारी व्यक्ति संसार में सुख और चैन से जीवन व्यतीत करता है और सच्चाई के रास्ते पर चलनेवाला व्यक्ति मुसीबत और दुख से ग्रस्त होता है। न्याय की बात यह है कि ज़ालिम को उसके ज़ुल्म की सज़ा मिले और सत्य-प्रिय एवं सज्जन और सुधारक को उसकी सेवाओं का पूरा-पूरा बदला दिया जाए। न्याय की यह माँग उसी समय पूरी हो सकती है जबकि यह मान लिया जाए कि इस जीवन के पश्चात भी कोई जीवन है जिसमें हर एक को उसके कर्मों का पूरा-पूरा बदला दिया जाएगा।

मनुष्य की यह कामना भी आख़िरत के जीवन में ही पूरी हो सकती है कि वह उन वास्तविकताओं को जान ले जिनका निरीक्षण इस संसार में संभव नहीं। वे वास्तविकताएँ जिनपर आज परोक्ष का आवरण पड़ा हुआ है आख़िरत ही में अनावृत हो सकेंगी।

वह अल्लाह जो विशाल विश्व का निर्माता है, जिसने हमें इस संसार में जीवन प्रदान किया, उसके लिए यह कुछ भी मुश्किल काम नहीं है कि वह इस वर्तमान विश्व को अस्त-व्यस्त करके नए सिरे से एक-दूसरे जगत् का निर्माण करे और मृत्यु के पश्चात मनुष्यों को दोबारा जीवन प्रदान करे। जिस अल्लाह की दयालुता और न्याय पर वर्तमान विश्व की व्यवस्था क़ायम है उसकी दयालुता और न्याय ही की माँग है कि इस संसार के पश्चात वह एक दूसरे जगत् की रचना करे और इस जीवन के पश्चात मनुष्यों को एक नया जीवन प्रदान करे। इसलिए अल्लाह इस जगत् के नष्ट-भ्रष्ट होने के पश्चात एक दूसरे जगत् का निर्माण अवश्य करेगा और मनुष्यों को उनकी मृत्यु के पश्चात दोबारा जीवन प्रदान करेगा। लोगों के अन्तिम परिणाम का निर्णय उनके कर्म के अनुसार करेगा। अच्छे लोग जन्नत में दाख़िल होंगे जहाँ उनके लिए वह सुख और

आनन्द है जिसकी आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। बुरे लोगों का ठिकाना जहन्नम (नरक) होगा। जहन्नम अज़ाब और यातनाओं का घर है, जहाँ किसी प्रकार की शान्ति और आराम नहीं।

आख़िरत सम्बन्धी धारणा की समस्या केवल एक दार्शनिक समस्या नहीं है। इस धारणा का मनुष्य के नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन से गहरा सम्बन्ध है। आख़िरत को मानने के पश्चात मनुष्य अवश्य ही अपने आपको अल्लाह के सामने उत्तरदायी समझेगा। वह संसार में यह समझते हुए सारे काम करेगा कि एक दिन उसे अल्लाह के यहाँ अपने कामों का हिसाब देना है। उसके अपने कर्मों पर ही उसके भविष्य की सफलता अथवा असफलता अवलम्बित है। आख़िरत को माननेवाला कभी भी न्याय, सच्चाई और सत्यवादिता की उपेक्षा नहीं कर सकता। भले ही इसके कारण संसार में उसे हानि ही हो। इसलिए कि वह जानता है कि आख़िरत का लाभ ही वास्तविक लाभ है। और आख़िरत की हानि ही वास्तविक हानि है। सांसारिक जीवन अस्थायी और नाशवान है और आख़िरत का जीवन इससे उत्तम और स्थायी है। उसकी दृष्टि में यह बड़ी ही नादानी की बात है कि मनुष्य सांसारिक सुख और वैभव के लिए अपनी आख़िरत को तबाह होने दे। इसके विपरीत जो व्यक्ति आख़िरत को नहीं मानता, जिसे किसी आनेवाले जीवन के बनने-बिगड़ने की आशंका नहीं है, वह बस इसी सांसारिक जीवन के लाभ-हानि को अपने सामने रखेगा। वह आगा उसके हाथ में डालने से तो अवश्य बचेगा, इसलिए कि वह जानता है कि आग हाथ को जला देगी, परन्तु झूठ, अन्याय, विश्वासघात, धोखा, वचन-भंग, ज़िना, निर्लज्जता, कुकर्म और ऐसे ही दूसरे उन कर्मों से बचना उसके लिए मुश्किल है जिनका फल पूर्ण रूप से वर्तमान जीवन में सामने नहीं आता।

आख़िरत पर ईमान

1. हज़रत अली बिन अबू तालिब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कोई बन्दा उस समय तक मोमिन (ईमानवाला) नहीं हो सकता जब तक कि चार चीज़ों की गवाही न दे—अल्लाह के सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं, मैं अल्लाह का रसूल हूँ, मुझे हक़ के साथ भेजा गया है, मृत्यु पर और मृत्यु के पश्चात उठाए जाने पर ईमान लाए और तक़दीर पर ईमान लाए।[1] —तिरमिज़ी

---

1. अर्थात मोमिन होने के लिए जिस तरह यह आवश्यक है कि आदमी तौहीद

आलमे बरज़ख़

1. हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से कोई मर जाता है तो प्रातः समय और सन्ध्या को उसके सामने उसका ठिकाना पेश किया जाता है। यदि मरनेवाला जन्नतवालों में से है, तो जन्नतवालों के ठिकानों में से और यदि वह (जहन्नम की) आगवालों में से है तो आगवालों के ठिकानों में से (उनके सामने पेश किया जाता है) और कहा जाता है कि यह तेरी मंज़िल है, यहाँ तक कि अल्लाह क़ियामत के दिन तुझे दोबारा उठाकर उस तक पहुँचा देगा।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : जब मरनेवाला क़ब्र में पहुँचता है (यदि वह नेक और मोमिन है) तो वह बिना भय और घबराहट के क़ब्र में बैठता है, फिर उससे कहा जाता है कि तुम किस (दीन)

(एकेश्वरवाद) और रिसालत (ईशदूतत्व) पर ईमान लाए, उसी तरह इसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह इसपर विश्वास रखता हो कि मरने के पश्चात भी कोई जीवन है। मृत्यु के पश्चात उसे दोबारा उठाया जाएगा और उसके जीवन-कर्म की जाँच की जाएगी और उसके कर्म के अनुसार उसे जन्नत या जहन्नम में दाख़िल किया जाएगा।

1. यह हदीस बताती है कि मरने के पश्चात मनुष्य बिलकुल लुप्त नहीं हो जाता। उसकी आत्मा अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के साथ शेष रहती है। प्रातः समय और सायंकाल उसे उसके वास्तविक ठिकाने की झाँकी दिखाई जाती है। जन्नत को देखकर जन्नतवाले को जो प्रसन्नता होगी उसकी आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इसी तरह जहन्नम (नरक) को देखकर नारकी की जो दशा होगी और वह जिस दुख और सन्ताप में ग्रस्त होगा उसका अनुमान करना भी हमारे लिए असंभव है। क़ुरआन मजीद से भी इस 'हदीस' के बयान की पुष्टि होती है। (दे० सूरा या-सीन, 36 : 26 -27) सूरा अल-मोमिनून, 40 : 45-46 में फ़िरऔन के लोगों के बारे में कहा गया है : "तो जो चाल वे चल रहे थे उसकी बुराइयों से अल्लाह ने उसे बचा लिया, और फ़िरऔन के लोगों को बुरी यातना ने आ घेरा। आग है जिसके सामने वे प्रातः समय और सायंकाल पेश किए जाते हैं; और जिस दिन वह घड़ी (अर्थात 'क़ियामत') क़ायम होगी (कहा जाएगा) : फ़िरऔन के लोगों को सख़्त अज़ाब में दाख़िल करो"।

मालूम हुआ कि मृत्यु के पश्चात मनुष्य बिलकुल लुप्त और विनष्ट नहीं हो जाता, केवल उससे उसका वर्तमान शरीर छिन जाता है। उसका व्यक्तित्व मृत्यु के पश्चात भी शेष रहता है। उसे दुख-सुख का एहसास भी होता है।

में थे? वह कहता : मैं इस्लाम में था। फिर कहा जाता है कि यह व्यक्ति कौन है? वह कहता है कि ये मुहम्मद, अल्लाह के रसूल हैं, जो अल्लाह की ओर से प्रकाशमान प्रमाणों के साथ आए, हमने इनकी तसदीक़ की। फिर उससे कहा जाता है कि क्या तुमने अल्लाह को देखा है? वह कहता है कि किसी के लिए संभव नहीं कि वह (संसार में) अल्लाह को देख सके। फिर उसके लिए (जहन्नम की) आग की ओर एक खिड़की खोली जाती है। वह उसकी ओर देखता है कि उसका कुछ हिस्सा कुछ हिस्से को खाए जा रहा है। फिर उससे कहा जाता है कि उस चीज़ को देख ले जिससे अल्लाह ने तुझे बचा लिया। फिर उसके लिए जन्नत की ओर एक खिड़की खोली जाती है। वह उसकी ताज़गी और शोभा और जो कुछ उमसें है देखता है। फिर उससे कहा जाता है कि यह तुम्हारा ठिकाना है। तुम विश्वास पर स्थिर रहे, उसी पर तुम मरे और उसी पर अल्लाह ने चाहा तो तुम उठाए जाओगे।

और बुरा आदमी भी अपनी क़ब्र में बैठता है तो वह डर और परेशानी की हालत में होता है। उससे कहा जाता है कि तू किस (दीन) में था? वह कहता है कि मैं नहीं जानता। फिर कहा जाता है कि ये कौन व्यक्ति हैं? कहता है कि मैंने लोगों को जो बात कहते सुना वही बात मैंने भी कह दी। उस समय उसके लिए 'जन्नत' की ओर एक खिड़की खोली जाती है तो वह उसकी ताज़गी और शोभा और जो कुछ उसमें है देखता है। फिर उससे कहा जाता है कि उस चीज़ को ओर देखो जिसे अल्लाह ने तुम्हारी ओर से फेर दिया है। फिर उसके लिए (जहन्नम की) आग की ओर एक खिड़की खोल दी जाती है। वह उसकी ओर देखता है कि उसका कुछ हिस्सा कुछ हिस्से को खाए जा रहा है। उससे कहा जाता है कि यह तुम्हारा ठिकाना है। तुम संदेह में पड़े रहे और इसी पर तुम मरे और इसी पर अल्लाह ने चाहा तो तुम उठाए जाओगे।[1] —इब्ने माजा

1. मरने के पश्चात अपने कर्म के अनुसार मनुष्य की आत्मा या तो सुख में होती है या कष्टों और यातनाओं में ग्रस्त रहती है। शरीर से विलग होने के पश्चात भी आत्मा में व्यक्ति-विशेषता शेष रहती है। शरीर से विलग होने के पश्चात आत्मा विनष्ट नहीं होती बल्कि अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ, जिसका निर्माण विचारों, भावनाओं और कर्मों के द्वारा सांसारिक जीवन में होता है, शेष रहती है। मृत्यु के पश्चात से लेकर क़ियामत के दिन तक आत्मा जिस लोक में रहती है और उसे जिन चीज़ों का सामना करना पड़ता है उसे पूरे तौर पर समझना हमारे लिए मुश्किल है। मरने के बाद से लेकर

3. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : जब मुर्दे को क़ब्र में दाखिल किया जाता है तो उसके सामने सूर्य के अस्त होने के निकट के समय का दृश्य प्रस्तुत किया जाता है। वह अपनी आँखें मलता हुआ उठ बैठता है और कहता है कि मुझे छोड़ो, नमाज़ अदा कर लेने दो।[1] —इब्न माजा

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब मोमिन (ईमानवाले व्यक्ति) की मृत्यु का समय आ जाता है तो रहमत (दयालुता) के फ़रिश्ते सफ़ेद रेशमी वस्त्र लेकर आते हैं और कहते है कि निकल आओ—इस अवस्था में कि तुम उस (अल्लाह) से राज़ी हो और वह तुमसे राज़ी है—अल्लाह की रहमत (दयालुता) और सुगन्धित फूल-पौधों की ओर और रब (पालनकर्ता स्वामी) की ओर जो क्रुद्ध नहीं है तो वह (आत्मा) निकलती है अत्यन्त उत्तम कस्तूरी की सुगन्ध की भाँति यहाँ तक कि हाथों-हाथ उसे

क़ियामत के दिन तक आत्मा जिस लोक में रहती है उसे आलमे बरज़ख़ कहते हैं। क़ब्र की तकलीफ़ या आराम से अभिप्रेत वास्तव में आलमे बरज़ख़ की तकलीफ़ या आराम है। मरनेवाला चाहे ज़मीन में गाड़ दिया गया हो या उसके शव को जला दिया जाए या दरिया में डाल दिया जाए, यदि वह अज़ाब और यातना का भागी है तो वह अवश्य यातना में ग्रस्त होगा। और यदि उसके कर्म अच्छे हैं और वह अल्लाह की कृपा और दयालुता का अधिकारी है तो उसकी आत्मा को वे समस्त सुख और आनन्द प्राप्त होंगे जिनका अन्दाज़ा करना भी हमारे लिए कठिन है। मरने के बाद तकलीफ़ और आराम का सम्बन्ध प्रत्यक्षतः मनुष्य की आत्मा से होता है जबकि सांसारिक जीवन में शरीर बीच में माध्यम का कार्य करता है। बरज़ख़ की अवस्था का अन्दाज़ा स्वप्न देखनेवाले व्यक्ति के आराम और तकलीफ़ के अनुभव से लगाया जा सकता है। यदि स्वप्न देखनेवाले की नींद न टूटे तो स्वप्न में उसपर जो कुछ गुज़रेगा वह उसके लिए वास्तविकता होगी, वह उसे स्वप्न नहीं समझ सकता। क़ुरआन और हदीस में आलमे बरज़ख़ के वृतान्तों को उन्हीं मिसालों और उपमाओं के द्वारा बुद्धिगम्य बनाने की कोशिश की गई है जिनसे हम सांसारिक जीवन में परिचित हैं।

1. क़ब्र या बरज़ख़ में उठने और बातचीत करने का असल सम्बन्ध शरीर से नहीं है बल्कि मनुष्य के आत्मिक अस्तित्व से है। इस हदीस में एक मोमिन व्यक्ति का उल्लेख किया गया है जिसे सांसारिक जीवन में नमाज़ की चिन्ता लगी रहती थी। ऐसे व्यक्ति के पास जब फ़रिश्ते आएँगे तो उसे ऐसा लगेगा जैसे शाम हो रही है और उसने अभी अस्र की नमाज़ अदा नहीं की है। उसको सबसे पहले अपनी नमाज़ की चिन्ता होगी और यह उसकी सफलता का प्रत्यक्ष प्रमाण होगा।

एक-दूसरे से लेते हैं यहाँ तक कि आसमान के दरवाज़ों पर लेकर पहुँचते हैं। (आसमानवाले फ़रिश्ते) कहते हैं : क्या ही अच्छी है यह सुगन्ध जो धरती की ओर से तुम्हारे पास आई है ! फिर उसे ईमानवालों की आत्माओं के पास लाते हैं तो वे उससे मिलकर उससे कहीं अधिक प्रसन्न होते हैं जितनी प्रसन्नता कि तुममें से किसी को अनुपस्थित व्यक्ति से मिलकर होती है जो उसके पास आए। फिर वे उससे पूछते हैं कि अमुक व्यक्ति का क्या हाल है और अमुक व्यक्ति का क्या हाल है? तो (उनमें से कुछ लोग) कहते हैं : इन्हें छोड़ो कि ये संसार के दुख में पड़े हुए थे (इन्हें कुछ आराम करने दो) फिर जब कहता है कि ये अमुक व्यक्ति का तो देहान्त हो गया क्या वह तुम्हारे पास नहीं आया? वे कहते हैं : उसे उसके ठिकाने हावियाह (जहन्नम) की ओर ले गए।

और जब काफ़िर के मरने का समय आता है तो यातना के फ़रिश्ते टाट लेकर आते हैं फिर कहते हैं कि निकलो—इस अवस्था में कि तुम उस (अल्लाह) से अप्रसन्न और वह तुमसे अप्रसन्न है—अल्लाह की यातना की ओर, तो वह मुर्दार की अत्यन्त तीव्र दुर्गन्ध की तरह निकलती है यहाँ तक कि उसे धरती के दरवाज़े पर लाते हैं तो वे कहते हैं कि कैसी दुर्गन्ध है, यहाँ तक कि उसे काफ़िरों की आत्माओं में पहुँचा देते हैं।[1]

—नसई

क़ियामत के लक्षण

1. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मुझे रसूल बनाकर (संसार में) भेजा जाना और वह (क़ियामत की) घड़ी इन दो उँगलियों के समान है।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम

---

1. इस हदीस से मालूम होता है कि बरज़ख़ एक अलग लोक है जिसकी व्यवस्था और नियम आदि का वर्तमान जीवन में सही अन्दाज़ा नहीं किया जा सकता। हदीसों में उस लोक के बारे में जो बातें बताई गई हैं उनसे मालूम होता है कि बरज़ख़ एक विस्तृत लोक है। वहाँ पहुँचनेवाली आत्माओं का उन आत्माओं से मिलन भी होता है जो उनसे पहले वहाँ पहुँची होती हैं। वे दुनिया का हाल भी पूछती हैं। इससे मालूम हुआ कि संसार से उनका कुछ न कुछ सम्बन्ध और लगाव शेष रहता है। इस हदीस से इस बात का भी पता चलता है कि आलमे बरज़ख़ में नेक लोगों का निवास बुरे लोगों से अलग होता है। अच्छे लोगों को उच्च स्थान मिलता है। बुरों को अधमस्थल में डाल दिया जाता है।
2. नबी (सल्ल०) ने अपनी दोनों उँगलियाँ उठाकर यह बात कही थी। मतलब यह था कि

2. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कह : क़ियामत क़ायम नहीं होगी जब तक कि ऐसा समय न आ जाए कि धरती मे अल्लाह-अल्लाह न कहा जाए। और एक रिवायत के शब्द ये हैं : क़ियामत क़ायम न होगी किसी ऐसे व्यक्ति पर जो अल्लाह-अल्लाह कहता हो।[1] —मुसलिम

3. हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत केवल बुरे लोगों पर क़ायम होगी।[2] —मुसलिम

4. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के कहते सुना कि 'क़ियामत' के चिह्न ये हैं : ज्ञान उठा लिया जाएगा[3], अज्ञान अधिक होगा, ज़िना (व्यभिचार) की अधिकता होगी, शराब बहुत पी जाने लगेगी पुरुष कम स्त्रियाँ अधिक हो जाएँगी यहाँ तक कि पचास स्त्रियों का सिरधरा एक (पुरुष) होगा। —बुख़ारी, मुसलिम, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा, अहमद

जिस प्रकार ये दोनों उँगलियाँ क़रीब-क़रीब हैं, दोनों के बीच कोई तीसरी उँगली नहीं है ठीक इसी तरह मेरे बाद क़ियामत ही आएगी।

1. अर्थात जब तक धरती पर अल्लाह पर नाम लेनेवाले मौजूद होंगे, यह धरती औ आकाश शेष रहेंगे, क़ियामत नहीं आएगी। परन्तु जब धरती पर अल्लाह का नाम लेनेवाला कोई न होगा तो फिर इस दुनिया को ख़त्म कर दिया जाएगा। यह कितनी विचित्र बात है कि संसार में साधारणतया उन्हीं लोगों पर ज़ुल्म और अत्याचार किया जाता है जिनके अल्लाह का नाम लेने के कारण ही यह ज़मीन और आसमान क़ायम हैं।
2. अर्थात जिस समय क़ियामत आएगी उस समय ज़मीन पर वही लोग होंगे जो चरित्रहीन और अल्लाह को भूले हुए होंगे।
3. ज्ञान से अभिप्रेत दीन (धर्म) का ज्ञान है। आशय यह है कि दीन का ज्ञान रखनेवाले ढूँढ़ने से नहीं मिलेंगे। लोग धर्म एवं ज्ञान के अनुसार आचरण करना छोड़ देंगे अल्लाह के आदेश के बदले लोग अपनी तुच्छ इच्छाओं और वासनाओं के दास हो जाएँगे। अज्ञान का राज्य होगा। ऐसा ज्ञान जिसे प्राप्त करने के पश्चात मनुष्य अल्लाह से अपरिचित ही रहे वह ज्ञान नहीं अज्ञान है, भले ही उसका मनोविज्ञान, दर्शन, नैतिक शास्त्र आदि सुन्दर-से-सुन्दर नाम क्यों न रख लिया जाए। ऐसे ज्ञान और ऐसे विद्याओं की बहुतायत इस बात का लक्षण कदापि नहीं है कि ज्ञान मौजूद है। ज्ञान तो वही है जिससे अल्लाह की पहचान हो सके, जिससे मनुष्य को अल्लाह की इच्छा अथवा अनीच्छा का ज्ञान हो सके और जीवन के समस्त मामलों में वह अल्लाह का आज्ञाकारी बन सके।

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) बातें कर रहे थे कि एक आराबी (ग्रामीण) आया और उसने कहा : क़ियामत कब होगी? आपने कहा : जब अमानत (न्यास, धरोहर) नष्ट हो जाए तो क़ियामत की प्रतीक्षा करो। उसने कहा : वह कैसे नष्ट होगी? आपने कहा : जब मामले अयोग्य व्यक्ति के हाथ में दे दिए जाएँ तो क़ियामत की प्रतीक्षा करो।[1] —बुख़ारी

6. हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कियामत उस समय तक घटित न होगी जब तक सबसे बढ़कर सौभाग्यशाली वह व्यक्ति न बन जाए जो अधम और मूर्ख हो और अधम और मूर्ख की पुत्र हो।[2] —तिरमिज़ी, बैहक़ी

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत नहीं आएगी जब तक कि माल-दौलत की रेल-पेल न हो जाए यहाँ तक कि आदमी अपने माल की ज़कात निकालेगा तो उसे ऐसा कोई व्यक्ति न मिलेगा जो उसे क़बूल कर ले। और क़ियामत नहीं आएगी। जब तक कि अरब की भूमि (मरुस्थल) लहलहाते शस्यस्थलों और नहरों में न परिवर्तित हो जाए।[3] —मुसलिम

---

1. अर्थात जब हुकूमत, राज्यसत्ता, अधिकार और मामला ऐसे लोगों के हाथों में आ जाए जो अयोग्य और अल्लाह से विमुख हों तो समझ लो कि क़ियामत दूर नहीं है। कुछ हदीसों से मालूम होता है कि क़ियामत के निकट अज्ञान छा जाएगा। हर तरह के फ़ितने और आपदाएँ सिर उठाएँगी। आदमी अपने दायित्व को भूल बैठेगा। एक रिवायत के शब्द ये हैं : "समय जल्द-जल्द आएगा, कर्म कम हो जाएगा। कृपणता और लोभ छाया होगा। फ़ितने (उपद्रव) बढ़ेंगे, क़त्ल और लूट-पाट का बाज़ार गर्म होगा।" —बुख़ारी, मुसलिम

   एक रिवायत में है कि क़ियामत उस समय तक क़ायम न होगी जब तक कि तुम अपने इमाम (नायक, ख़लीफ़ा) की हत्या न करोगे और परस्पर एक-दूसरे पर तलवार न चलाओगे। और तुम्हारी दुनिया के वारिस (उत्तराधिकारी) तुम्हारे दुर्जन और दुराचारी लोग न हो जाएँगे।" —तिरमिज़ी

2. अभिप्राय यह है कि अधमता और अयोग्यता में जो अग्र होंगे वही संसार में मान-सम्मान और धन-सम्पत्ति के स्वामी बन बैठेंगे।

3. मालूम हुआ कि क़ियामत के निकट संसार धर्म और नैतिकता से रिक्त होगा, परन्तु सांसारिक उन्नति चरम सीमा को पहुँच रही होगी। अरब में पेट्रोल और सोने आदि खनिज पदार्थ की खोज से धन की जो बहुतात हो रही है और वहाँ के मरुस्थल की तह

8. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अरब के अक्खड़ बद्दू नबी (सल्ल०) के पास आते और आपसे पूछते कि क़ियामत कब आएगी ? आप उनमें सबसे कम आयुवाले व्यक्ति की ओर देखते और कहते यदि यह जीवित रहा तो यह बूढ़ा न हो पाएगा कि तुमपर तुम्हारी 'क़ियामत' आ जाएगी ।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

9. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा: जब 'फ़ै' (ग़नीमत का माल) धन ठहरा लिया जाए, और अमानत (न्यास) को 'ग़नीमत' (लड़ाई में मिला दुश्मन का माल जिसका उपभोग वैध है) समझा जाए और 'ज़कात' को तावान समझा जाए और ज्ञान दीन (धर्म) के अतिरिक्त दूसरी चीज़ के लिए प्राप्त किया जाए और पुरुष-स्त्री का आज्ञाकारी हो जाए और अपनी माता का अवज्ञाकारी हो और उसे दुख दे, और अपने मित्र को पार्श्ववर्ती बनाए और अपने पिता को दूर कर दे और मसजिदों में आवाज़ें ऊँची होने लगें और क़बीले की सरदारी क़बीले का एक पापाचारी व्यक्ति करे, और जाति का नायक जाति का नीच और कमीना व्यक्ति हो और आदमी की प्रतिष्ठा उसकी बुराई से बचने के लिए की जाए, और गानेवाली बाँदियाँ और बाजे फैल जाएँ और शराबें पी जाने लगें और इस समुदाय के पिछले लोग इसके अगले लोगों को बुरा कहने लगें, तो उस समय प्रतीक्षा करो लाल आँधी, भूकम्प, भूमि के धँसने, चेहरों के विकृत होने, पत्थरों के बरसने की और उन निरन्तर निशानियों की मानो मोतियों की एक टूटी हुई लड़ी हैं जिससे मोती लगातार गिर रहे हों ।[2] —तिरमिज़ी

में जिस निहित बड़े जलाशय का पता चला है उसे सामने रखते हुए यह बात कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं मालूम होती कि निकट भविष्य में अरब की भूमि लहलहाते खेतों या शस्यस्थलों में बदल जाए और वहाँ नहरें बहने लगें। वैज्ञानिक संसाधनों को अपनाकर बंजर और मरुभूमि को कृषि के योग्य बनाया जा सकता है और नहरें निकाली जा सकती हैं।

1. अर्थात तुम्हारी मृत्यु आ जाएगी जो किसी क़ियामत से कम नहीं। संसार का अन्त कब होगा ? इसके बारे में सोचने के बदले मनुष्य को यह देखना चाहिए कि उसे कितनी मुहलत हासिल है जिसमें वह आख़िरत की तैयारी कर सकता है। जीवन में वास्तविक महत्व रखनेवाली चीज़ मनुष्य के विचार और कर्म हैं, न कि कोई दूसरी चीज़।
2. मतलब यह है कि यह बात भी क़ियामत की निशानियों में से है कि हर प्रकार की बुराइयाँ फैल जाएँ, खेल-तमाशा, निर्लज्जता और कमीनापन साधारण-सी बात हो। शान्ति और निश्चिन्तता दुर्लभ हो जाए, आसमानी और भूमि की आपदाओं से सुरक्षित रहना कठिन हो जाए।

10. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत नहीं आएगी जब तक तीस दज्जाल मिथ्याचारी न पैदा हो लें, उनमें से हर एक का दावा होगा कि वह अल्लाह का रसूल है (हालाँकि वह झूठा और मक्कार होगा।[1]

—अबू दाऊद, तिरमिज़ी

11. हज़रत हुज़ैफ़ा बिन उसैद ग़िफ़ारी (रज़ि०) कहते हैं कि एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल०) हमारी मजलिस में आए और हम आपस में बातचीत कर रहे थे। आपने कहा : तुम लोग किस चीज़ का ज़िक्र कर रहे हो? कहा : हम क़ियामत की चर्चा कर रहे थे। आपने कहा : वह कदापि क़ायम न होगी जब तक उससे पहले दस निशानियाँ ज़ाहिर न हो जाएँ। फिर आपने उनका ज़िक्र किया : धुआँ, दज्जाल, दाब्बा (जानवर), पश्चिम से सूर्य का उदय होना, मरियम के पुत्र ईसा का उतरना, याजूज व माजूज, तीन बड़े ख़स्फ़ (भूमि का धँसना)—एक पूर्वदिशा में, दूसरा पश्चिम में तीसरा अबर प्रायद्वीप में। अन्त में एक बड़ी आग जो यमन से उठेगी और लोगों को हाँकती हुई उनके महशर (प्रलय क्षेत्र) की ओर ले जाएगी।[2]

—मुसलिम

---

1. नुबूवत के झूठे दावेदार तो न मालूम कितने होंगे। तीस के लगभग तो वे होंगे जो बड़े उपद्रवी और सरकश होंगे, चालें चलने और धोखा देने में जिनकी टक्कर का मिलना मुश्किल होगा।
2. इस हदीस में क़ियामत की दस बड़ी निशानियों का उल्लेख हुआ है। धुआँ से अभिप्रेत सम्भवतः वह धुआँ है जिसका उल्लेख क़ुरआन, 44 : 10 में मिलता है। यह धुआँ अज़ाब के रूप में आसमान में ज़ाहिर होगा। क़ियामत से पहले एक दज्जाल ज़ाहिर होनेवाला है यह बात विभिन्न 'हदीसों' से मालूम होती है। हदीसों में उसके उपद्रव और षड्यंत्रों आदि का उल्लेख भी किया गया है। रिवायत से यह भी मालूम होता है कि वह कैसा होगा और उसकी क्या विशेषताएँ होंगी। दाब्बा का उल्लेख क़ुरआन में भी किया गया है। कहा गया है :

"जब हमारी बात उनपर पूरी (होने को) होगी (अर्थात क़ियामत क़रीब आ जाएगी जिसका वादा हमने कर रखा है) तो हम उनके लिए एक दाब्बा (धर्ती का एक विशेष जानवर) ज़मीन से निकालेंगे जो उनसे बातें करेगा कि लोग हमारी आयतों पर विश्वास नहीं करते थे।"

—क़ुरआन, 27 : 82

सूर्य का पूर्व व बजाए पश्चिम से उदय होना भी क़ियामत की बड़ी निशानियों में से है। हज़रत ईसा मसीह का आना वास्तव में दज्जाल के उपद्रव को शान्त करने के लिए होगा। यहूद की रिवायतों (Traditions) और उनके इतिहास से मालूम होता है

कि हज़रत सुलैमान (अलै०) के पश्चात जब यहूदियों पर बुरे दिन आए, यहाँ तक i
बाबिल और असीरिया के राज्यों ने उन्हें ग़ुलाम बनाकर उनके जातीय संगठन
छिन्न-भिन्न कर दिया और वे तितर-बितर हो गए तो 'बनी इसराईल' के नबियों ने उ
एक मसीह के आगमन की शुभ सूचना दी, जिसके द्वारा वे अपमान से मुक्ति
सकेंगे। यहूदी यह आस लगाए बैठे थे कि आनेवाला मसीह एक प्रभावशाली शा
के साथ उभरेगा, वह एक योद्धा, सैनिक, विजेता और नेता होगा। वह उन्हें वह
वापस दिलाएगा जिसे वे अपनी मीरास समझते हैं। हज़रत मसीह (अलै०) आए तो
कोई सेना लेकर नहीं आए। यहूदियों ने उन्हें मानने से इनकार कर दिया और उन
दुश्मन हो गए। आज तक यहूद मसीह की प्रतीक्षा में हैं। मध्यपूर्व (Middle Eas
की वर्तमान अवस्था इस बात का पता दे रही है कि उस 'दज्जाल' के प्रकट होने
समय दूर नहीं जो यहूद का "मसीह मौऊद" (वह मसीह जिसका वादा किया गया
बनकर उठेगा और महान उपद्रव का आयोजन करेगा। इसराईल की योजना यह है
वह न केवल यह कि सीरिया, लेबनान, उरदुन और लगभग पूरे इराक़ को अ
अधिकार-क्षेत्र में सम्मिलित कर ले बल्कि उसकी स्कीम यह है कि वह टरकी
इस्कन्द्रोन, मिस्र से सीना और डेल्टा का अधिक्षेत्र और सऊदी अरब से ऊपरी हिज
और नज्द का क्षेत्र जिसमें मदीना भी सम्मिलित है ले ले। इसराईल को जब
अवसर प्राप्त होगा वह अपनी योजना को सफल बनाने की कोशिश करेगा।
अवसर पर दज्जाल उनका "मसीह" बनकर प्रकट होगा। हदीसों से मालूम होता है
वह समय मुसलमानों के लिए अत्यन्त कठिन होगा। फिर अल्लाह की कृपा होगी,
यहूद के मसीह के मुक़ाबले के लिए वास्तविक मसीह अर्थात हज़रत मरयम के
हज़रत ईसा मसीह (अलै०) को भेजेगा। हज़रत ईसा मसीह (अलै०) ठीक उस स
पर दिमिश्क़ में उतरेंगे जबकि दज्जाल 70 हज़ार यहूदियों की सेना लेकर सीरिया
घुसेगा और दिमिश्क़ के सामने पहुँच चुका होगा। हज़रत मसीह (अलै०) मुसलम
को लेकर उसके मुक़ाबले के लिए निकलेंगे। दज्जाल परास्त होकर इसराईल की
भागेगा। हज़रत मसीह (अलै०) उसका पीछा करेंगे। वह लुद (Lydda) के स्थान
आपके हाथों मारा जाएगा। यहूदी इस तरह मारे जाएँगे कि उनके समुदाय का विन
हो जाएगा। हज़रत मसीह (अलै०) के दोबारा आने के बाद ईसाई धर्म भी शेष
रहेगा। इस्लाम को प्रभुत्व प्राप्त होगा।

याजूज-माजूज का फैल पड़ना भी 'क़ियामत' की निशानियों में से
याजूज-माजूज (Gog and Magog) का उल्लेख क़ुरआन में भी हुआ है। इस
अतिरिक्त बाइबिल में भी उनका उल्लेख मिलता है। याजूज-माजूज से अभि
एशिया के उत्तरीय और दक्षिणीय क्षेत्र की असभ्य और जंगली जातियाँ हैं जो तात

12. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : "अन्तिम युग में एक ख़लीफ़ा होगा जो माल को तक़सीम करेगा और एकत्र करके (अपने पास) न रखेगा।" एक और रिवायत में है कि आपने कहा : "मेरे समुदाय के अन्त में एक ख़लीफ़ा होगा जो हाथों में भर-भरकर माल लुटाएगा और उसकी गणना न करेगा।[1]
—मुसलिम

13. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत से पहले फ़ितने (उपद्रव) होंगे जैसे अँधेरी रात के टुकड़े। आदमी प्रातःकाल मोमिन होगा, और सायंकाल काफ़िर हो जाएगा। कितने ही

मंगोल, हूण, सीथियन (Seythians) आदि नामों से जानी-पहचानी जाती हैं। ये जातियाँ प्राचीन समय से आक्रमण करके लूटमार मचाती रही हैं। ये जातियाँ एशिया और यूरोप दोनों ओर लूटमार के लिए आक्रमण करती रही हैं। बाइबिल में रूस, तूबल (Tubal) और मेसेक को याजूज-माजूज का अधिक्षेत्र बताया गया है।

—दे० हेज़कीएल (Ezekiel), अध्याय 38 और 29

तूबल (Tubal) और मेसेव (Meshech) को वर्तमान समय में तोबाल्क और मासको (Tobalak and Mascow) कहते हैं। जोसेफ़स (Josephus) ने, जो एक इबरानी इतिहासकार है, सीथियन (Seythians) जाति को याजूज-माजूज कहा है जिसका अधिक्षेत्र कृष्ण सागर (Black sea) के उत्तर और पूर्व में था। जिरोम (Jerome) के विचार में याजूज व माजूज की आबादी काकेशिया (Caucasus) के उत्तर, कैसपियन सागर (Caspian sea) के निकट पड़ती थी। इब्न बतूता के विचार में याजूज व माजूज से अभिप्रेत पूर्वी एशिया की असभ्य जातियाँ हैं (Ibn Batutah's Tranels iv P. 274)।

ख़स्फ़ से अभिप्रेत भूमि का धँस जाना (Landslide) है। इसको अपनी भयंकरता की दृष्टि से क़ियामत से एक तरह की समरूपता भी है। फिर क़ियामत की एक निशानी वह आग है जो सबको हाँककर एकत्र कर देगी। फिर इसके पश्चात क़ियामत ही आएगी।

1. यह संकेत संभवतः उस ख़लीफ़ा की ओर है जिसको कुछ रिवायतों में 'अल-महदी' की उपाधि दी गई है। 'महदी' का अर्थ है—राह पाया हुआ। हदीस से मालूम होता है कि वह आनेवाला ख़लीफ़ा ख़िलाफ़त (राज्य) की स्थापना नुबूवत की रीति के अनुसार करेगा, जबकि धरती बिगाड़, उपद्रव और अत्याचार से भर चुकी होगी और इस्लामी ख़िलाफ़त (इस्लामी राज्य-व्यवस्था) छिन्न-भिन्न हो चुकी होगी। उसके समय में धरती न्याय से भर जाएगी और अल्लाह अपनी बरकतें उतारेगा।

लोग अपने दीन (धर्म) को सांसारिक सामग्री के बदले बेंच देंगे।[1] —तिरमिज़ी

14. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत क़ायम न होगी जब तक कि समय निकट न हो जाएगा।[2] वर्ष मास के समान हो जाएगा, मास सप्ताह के समान होगा, सप्ताह एक दिन की तरह हो जाएगा। और दिन एक घड़ी की तरह होगा और घड़ी आग की एक लपट उठने के समान हो जाएगी।[3] —तिरमिज़ी

महाप्रलय

1. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं कैसे सुख-चैन से (निश्चिन्तता के साथ) रह सकता हूँ, जबकि हाल यह है कि सूरवाले (फ़रिश्ता हज़रत इसराफ़ील अलै०) सूर मुँह में लिए, अपना कान लगाए, और अपना मस्तक झुकाए प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब सूर में फूँक मारने का आदेश होता है।[4] लोगों ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! फिर आप हमें क्या आदेश देते हैं? आपने कहा : कहते रहो : "अल्लाह हमारे लिए काफ़ी है और वह उत्तम कार्यसाधक है।"[5] —तिरमिज़ी

---

1. मतलब यह है कि 'क़ियामत' के पहले का समय अत्यन्त फ़ितने और बिगाड़ का समय होगा। दीन व ईमान को सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन होगा।
2. अर्थात् समय (Time) तेज़ी से गुज़रने लगेगा। चाहे यह ब्रह्माण्ड में या मानव-लोक में किसी महान परिवर्तन के कारण हो या यह इस बात की ओर संकेत हो कि उपद्रव और कठिनाइयों के कारण वक़्त अपनी बरकतें खो देगा।
3. अर्थात जिस प्रकार आग भड़कने पर लपट उठे और तुरन्त ही बैठ जाए उसी तरह घड़ियाँ पलक झपकते ही बीत जाएँगी।
4. मतलब यह है कि सूर फूँकनेवाला फ़रिश्ता सूर में फूँक मारने के लिए बिलकुल तैयार है, केवल आज्ञा पाने की देर है। हुक्म पाते ही वह सूर फूँक देगा और क़ियामत आ जाएगी। धरती और आकाश की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी और फिर दोबारा सूर में फूँकने से पुनः संसार वुजूद में आएगा और सारे लोग जीवित होकर हश्र के मैदान (प्रलयक्षेत्र) में इकट्ठा होंगे। वहाँ उन्हें उनके कर्म के अनुसार बदला दिया जाएगा। जब स्थिति ऐसी हो तो कोई व्यक्ति आराम-चैन और निश्चिन्तता के साथ कैसे दुनिया में जीवन व्यतीत कर सकता है। उसे तो हर समय 'आख़िरत' की चिन्ता लगी रहेगी।
5. मतलब यह है कि तुम अपने मामले को अल्लाह को सौंप दो और उसपर भरोसा करो, और उसी से सहायता चाहो। सफल जीवन उन्हीं का है जो उसकी सरपरस्ती और

2. हज़रत अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो कोई क़ियामत का दिन आँखों से देखना चाहता है तो उसे इज़श्शम्सु कुव-विरत, इज़स्समाउन-फ़-त-रत, और इज़स्समाउन शक़्क़त' पढ़नी चाहिए।[1] —अहमद, तिरमिज़ी

3. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और कहा : मुझे बताइए कि कौन क़ियामत के दिन खड़ा रह सकेगा जिस दिन के बारे में प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह ने कहा है कि "जिस दिन लोग सारे संसार के रब (पालनकर्ता स्वामी) के समक्ष खड़े होंगे।" आपने कहा : "वह मोमिन के लिए हल्का होगा यहाँ तक कि वह उसके लिए फ़र्ज़ नमाज़ के समान हो जाएगा।"[2] —बैहक़ी

4. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत में हर बन्दा उस अवस्था में उठाया जाएगा जिस अवस्था में वह मरा होगा।[3] —मुसलिम

संरक्षण में और उसकी दासता और आज्ञापालन में जीवनयापन करते हैं।

1. अर्थात् कुरआन की तीन सूरतें: अत-तकवीर (सूरा नं० 81), अल-इनफ़ितार (सूरा नं० 82) और अल-इनशिक़ाक़ (सूरा नं० 84) पढ़नी चाहिए। इन सूरतों में ऐसा नक़्शा पेश किया गया है कि क़ियामत का दृश्य बिलकुल निगाहों के सामने आ जाता है। और ऐसा लगने लगता है कि मानो क़ियामत अपनी समस्त भयंकरता के साथ आ गई है।
2. मालूम हुआ कि वह दिन काफ़िरों और अल्लाह के अवज्ञाकारी लोगों के लिए अत्यन्त कठिन होगा। ईमानवालों के लिए अल्लाह उसे फ़र्ज़ नमाज़ की तरह हल्का कर देगा। नमाज़ और उस दिन अल्लाह के समक्ष हाज़िरी में जो अनुरूपता है वह स्पष्ट है।
3. मालूम हुआ कि वास्तव में भरोसे की चीज़ मनुष्य का परिणाम और उसका अंत है। यदि किसी का देहान्त ईमान पर होता है तो वह क़ियामत के दिन एक मोमिन की हैसियत से उठेगा और यदि वह कुफ़्र पर मरता है तो वह क़ियामत में एक काफ़िर ही के रूप में उठेगा। मनुष्य का परिणाम ही उसके जीवन का सार होता है। मनुष्य अपना एक नैतिक अस्तित्व रखता है। उसका एक व्यक्तित्व होता है। व्यक्तित्व ही का निर्माण जीवन की समस्त दौड़-भाग की प्राप्ति होती है। मनुष्य क्या है? इसकी पहचान इससे नहीं होती कि उसके पास कितनी दौलत है, बल्कि इससे होती है कि वह स्वयं क्या है? अल्लाह के यहाँ वास्तविक प्रश्न इसी बात का होगा कि लोगों को उनके अपने व्यक्तित्व के निर्माण का जो अवसर सांसारिक जीवन में प्रदान किया गया

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन सारे लोग तीन क़िस्मों में उठाए जाएँगे—एक क़िस्म पैदल चलनेवाले, एक क़िस्म सवार और एक क़िस्म मुँह के बल चलनेवाले। कहा गया : ऐ अल्लाह के रसूल! ये मुँह के बल कैसे चलेंगे? कहा : जिस (अल्लाह) ने उन्हें पाँव पर चलाया है उसे इसका भी सामर्थ्य प्राप्त है कि उन्हें उनके मुँह के बल चलाए। मालूम होना चाहिए कि ये लोग अपने मुँह के द्वारा ही हर टीले और काँटे से बचेंगे।[1] —तिरमिज़ी

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति भी मरेगा उसे अवश्य लज्जा और ग्लानि होगी। लोगों ने क़हा : ऐ अल्लाह के रसूल! उसे ग्लानि क्यों होगी? आपने कहा : यदि वह (मरनेवाला) सत्कर्मी है तो उसे ग्लानि होगी कि उसने और अधिक (अच्छे कर्म) क्यों न किए और यदि दुराचारी है तो उसे ग्लानि होगी कि वह (बुराई से) बाज़ क्यों न रहा।[2] —तिरमिज़ी

7. हज़रत अदी बिन हातिम (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से प्रत्येक से अल्लाह इस तरह बातचीत करेगा कि बीच

था, उन्होंने उससे कहाँ तक फ़ायदा उठाया। वे दुनिया से क्या बनकर लौटे हैं। मनुष्य के बनने-बिगड़ने की संभावनाएँ जीवन के अन्तिम क्षण तक रहती हैं, इसलिए असल एतिबार अन्त ही का है।

एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि जब अल्लाह किसी जाति पर अज़ाब उतारता है तो उस अज़ाब और यातना की लपेट में हर वह व्यक्ति आ जाता है जो उस जाति में होता है, फिर (आख़िरत में) लोगों को उनके कर्म के अनुसार उठाया जाएगा। —बुख़ारी, मुसलिम

1. जिन तीन गिरोहों का उल्लेख इस हदीस में किया गया है उनमें पैदल चलनेवाला गिरोह तो सामान्य मुस्लिमों का होगा। जो लोग सवारियों पर होंगे वे अल्लाह के विशेष बन्दे होंगे और सिर के बल और मुँह के बल चलनेवाले वे बदनसीब लोग होंगे जो सांसारिक जीवन में नबियों की शिक्षा के अनुसार सीधा चलने के बदले मरते दम तक उल्टे ही चलते रहे। क़ियामत के दिन वे अपनी उलटी चाल का परिणाम देख लेंगे। वहाँ उन्हें मुँह के बल चलना होगा। वे अत्यन्त अपमानित होंगे और जो कष्ट और दुख उनको भोगने होंगे वे अलग हैं।
2. इसलिए बुद्धिमानी की बात यह होगी कि आदमी दुनिया में अधिक-से-अधिक अच्छे काम कर ले और जहाँ तक हो सके बुराइयों से अपने आपको दूर रखे।

कोई अनुवादक न होगा और न कोई परदा होगा जो उसे छिपा सके। यह पनी दाहिनी ओर देखेगा तो सिवाय उस कर्म के जो उसने भेजा था उसे कुछ खाई न देगा, फिर अपनी बाईं ओर देखेगा तो सिवाय उसके जो उसने भेजा था से कुछ दिखाई न देगा और अपने सामने देखेगा तो सिवाय (जहन्नम की) आग और कुछ दिखाई न पड़ेगा।[1] तो उस आग से बचो, खजूर के एक टुकड़े के रा ही सही![2]

—बुख़ारी, मुसलिम

8. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हा : अल्लाह किसी मोमिन पर उसकी नेकी के सिलसिले में अन्याय नहीं रता। उसका बदला दुनिया में भी दिया जाता है और आख़िरत में भी दिया ाता है। रहा काफ़िर तो जो नेकियाँ उसने अल्लाह के लिए की थीं उनका पूरा दला दुनिया में ही दे दिया जाता है यहाँ तक कि जब वह आख़िरत में पहुँचता तो उसकी कोई ऐसी नेकी बाक़ी नहीं रहती जिसका बदला उसे दिया जाए।[3]

—मुसलिम

9. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को पनी कुछ नमाज़ों में यह दुआ करते सुना : "ऐ अल्लाह! मेरा हिसाब आसान र।" मैंने कहा : ऐ अल्लाह के नबी! आसान हिसाब का क्या अर्थ है? ापने कहा : यह कि बन्दे के कर्म-पत्र पर निगाह डाली जाए और उसे छोड़

---

1. अर्थात आदमी का मामला उस दिन प्रत्यक्षतः अपने अल्लाह से होगा। ईमान इस्लाम और अच्छे कर्म के सिवा उस दिन कोई चीज़ न होगी जो आदमी को उस आग से छुटकारा दिला सके जिसकी लपटें निगाहों के सामने उठ रही होंगी।
2. मनुष्य को जहन्नम की आग से बचने के लिए हर वह प्रयत्न करना चाहिए जो वह कर सकता है, यहाँ तक कि यदि वह खजूर का एक टुकड़ा ही सदक़ा कर सकता है तो इससे न रुके।
3. 'मोमिन' और मुस्लिम व्यक्ति पर दुनिया और आख़िरत दोनों में अल्लाह की कृपा होती है। उसे अपने सत्कर्म से इस लोक में भी लाभ होता है और आख़िरत में तो वह अपने नेक कर्मों के बदले जन्नत का वारिस होगा ही। रहा काफ़िर तो उसके पास नेकियाँ होती ही कहाँ हैं। नेकी तो वास्तव में उसी काम को कहा जाएगा जो अल्लाह के लिए किया गया हो। यदि 'काफ़िर' व्यक्ति ने कोई काम अल्लाह के लिए किया भी है तो वह सांसारिक जीवन में अल्लाह की प्रदान की हुई चीज़ों से फ़ायदा भी उठा चुका है। आख़िरत में उसके लिए यातना के अतिरिक्त कुछ न होगा। अल्लाह किसी पर ज़ुल्म नहीं करता। वह प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्म के अनुसार बदला देता है।

दिया जाए। बात यह है कि जिसके हिसाब में उस दिन जिरह की गई, ऐ आइशा ! (उसकी कुशलता नहीं) वह तबाह हुआ।[1] —अहमद

10. हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : (क़ियामत के दिन) अल्लाह मोमिन को क़रीब करेगा और फिर उसप अपना विशेष आवरण डालेगा और उसे छिपा लेगा, फिर कहेगा : क्या तुम इस गुनाह को जानते हो? क्या तुम इस गुनाह को जानते हो? वह कहेगा : हाँ ऐ मेरे रब ! यहाँ तक कि वह उससे उसके सारे गुनाह का इक़रार करा लेगा। और वह अपने मन में सोचेगा कि मैं विनष्ट हुआ। अल्लाह कहेगा : मैंने दुनिया में तेरे इन गुनाहों को छिपाया था और आज मैं इन्हें क्षमा कर देता हूँ, फिर उसे उसकी नेकियों का कर्म-पत्र दिया जाएगा।

रहे काफ़िर (अवज्ञाकारी) और मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) लोग तो उन्हें जन साधारण के सामने पुकारा जाएगा कि ये हैं वे लोग जिन्होंने झूठ गढ़कर उसे अपने रब से सम्बद्ध किया था। सावधान ! अल्लाह की लानत (फिटकार) है ऐसे ज़ालिमों पर।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

11. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उन्हें एक बार (जहन्नम की) आग का ख़याल आया और वे रो पड़ीं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा "तुम्हें किस चीज़ ने रुलाया?" कहती हैं कि मैंने कहा : मुझे (जहन्नम की) आग याद आई और उसी ने मुझे रुलाया, तो क्या आप लोग क़ियामत के दिन अपने

---

1. मतलब यह है कि इस नाज़ुक मौक़े पर वही लोग सफल होंगे जिनसे कोई जिरह और हुज्जत न हुई। केवल उनके कर्म अल्लाह के सामने पेश कर दिए गए। यही "आसान हिसाब" है, जिसका उल्लेख क़ुरआन में भी हुआ है। (दे० सूरा अल-इनशिक़ाक़ 84 आयत 7-8)। परन्तु जिस किसी से पूछताछ हुई वह अल्लाह की पकड़ से बच नहीं सकता।

2. अर्थात ऐसा मोमिन जो अपने कर्म और चरित्र की दृष्टि से अल्लाह की दयालुता और कृपा का अधिकारी होगा अल्लाह उस दिन उसके गुनाहों को लोगों की निगाहों से छिपाएगा। अल्लाह की दयालुता उसे रुसवा और अपमानित होने से बचा लेगी जिस तरह उसने दुनिया में उसे रुसवाई से बचाया था। उसे नेकियों का कर्म-पत्र दिया जाएगा, जिसे वे दूसरों को बेझिझक दिखा सके। परन्तु काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों के लिए तो वह दिन रुसवाई और दुर्गति लेकर आएगा। वे सबके सामने अपमानित होंगे और ख़ुदा की सृष्टि उनपर लानत भेजेगी। उनकी बुराइयाँ और गुनाह उस दिन सबके सामने होंगे।

घरवालों को याद रख सकेंगे? अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तीन स्थान ऐसे हैं जहाँ कोई किसी को याद न करेगा : मीज़ान (तुला) पर, जब तक यह न मालूम हो जाए कि उसका पल्ला भारी है या हलका और कर्म-पत्र मिलने के समय—जबकि दाहिने हाथ में कर्म-पत्र पानेवाला कह उठेगा कि आओ मेरा कर्म-पत्र पढ़ो—जब तक कि यह न मालूम हो जाए कि उसका कर्म-पत्र उसके दाहिने हाथ में पड़ता है या उसकी पीठ के पीछे से उसके बाएँ हाथ में आता है और सिरात पर जबकि वह जहन्नम के ऊपर रखा जाएगा (और लोगों को उसपर से गुज़रने का हुक्म दिया जाएगा)।[1] —अबू दाऊद

12. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि (क़ियामत के दिन) हमारा रब अपनी पिंडली खोलेगा।[2] उस समय प्रत्येक मोमिन पुरुष और स्त्री उसे सजदा करेंगे और वह

1. ये तीन अवसर बहुत ही कठिन होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी पड़ी होगी; इसलिए हर व्यक्ति को उस दिन की चिन्ता करनी चाहिए। किसी पर भरोसा करके नहीं बैठे रहना चाहिए। मीज़ान (तुला) से अभिप्रेत कर्म-तुला है। उस दिन सफल वही व्यक्ति होगा जिसका पलड़ा भारी रहा। वह व्यक्ति उस दिन तबाह हुआ जिसका पलड़ा उस दिन हल्का रहा (दे० क़ुरआन, 21 : 47, 7 : 8)। लोगों के कर्म-पत्र जिनमें उनके जीवन के बुरे-भले कर्म अंकित होंगे उस दिन तक़सीम किए जाएँगे। जिसके दाहिने हाथ में उसका कर्म-पत्र दिया गया तो यह उसकी सफलता का प्रमाण होगा। इसके विपरीत जिसका कर्म-पत्र उसके बाएँ हाथ में पीठ की ओर से दिया गया वह असफल रहा (दे० सूरा इन-शिक़ाक़ 84, आयत 7-12)। 'सिरात' की वास्तविकता को पूर्ण रूप से समझना वर्तमान लोक में मुश्किल है। 'क़ियामत' के दिन प्रत्येक व्यक्ति को इस सिरात (मार्ग) से गुज़रना होगा। अल्लाह के आज्ञाकारी बन्दे बेखटके उसपर से गुज़र जाएँगे। परन्तु जो अल्लाह के अवज्ञाकारी और सरकश होंगे वे उसे पार न कर सकेंगे, वे जहन्नम की आग में जा गिरेंगे। अल्लाह के दिखाए हुए मार्ग पर चलकर जिसने जीवन व्यतीत किया होगा वह इस "सिरात" से आसानी से गुज़र जाएगा। परन्तु जो व्यक्ति अपने जीवन में उस 'सिराते मुस्तक़ीम' (सरल मार्ग) से मुँह मोड़ता रहा जिसकी ओर अल्लाह ने अपने रसूलों के द्वारा बुलावा दिया था वह जहन्नम में गिरेगा। अल्लाह की दिखाई गई राह के अतिरिक्त जो कुछ है, वह तबाही है। सीधे मार्ग से मुख मोड़ने का परिणाम उस दिन सामने आ जाएगा।
2. "अपनी पिंडली खोलना" यह अरबी में प्रचलित एक मुहावरा है। इसका आशय क्या है? इसके बारे में विभिन्न बातें कही जाती हैं। इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि यह कठिनाई और सख़्ती का स्पष्टीकरण है अर्थात यह उस समय का ज़िक्र है जब

व्यक्ति सजदा न कर सकेगा जिसने केवल दिखाने और सुनाने के लिए सजदा किया होगा। वह सजदा करना चाहेगा परन्तु उसकी पीठ तख़्ते की तरह हो जाएगी (और वह सजदा न कर सकेगा)।[1] —बुख़ारी

13. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : लोग (जहन्नम की) आग पर हाज़िर होंगे (सिरात से गुज़रते हुए) फिर अपने कर्म के अनुसार उससे छुटकारा पाएँगे। उनमें जो सबसे अच्छे होंगे वे बिजली चमकने के सदृश उससे गुज़र जाएँगे। फिर वायु के सदृश, फिर घोड़े के सदृश, फिर ऊँट के सदृश फिर दौड़ते हुए व्यक्ति के सदृश फिर पैदल साधारण चाल से चलनेवाले के सदृश।[2] —तिरमिज़ी, दारमी

14. हज़रत सह्ल बिन सअद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं हौज़ पर तुम्हारा मीर मंज़िल हूँगा। जो व्यक्ति मेरे पास से गुज़रेगा (उससे) पिएगा और जो पिएगा कभी प्यासा न होगा। मेरे पास बहुत-से लोग आएँगे जिन्हें मैं पहचानता हूँगा और वे मुझे पहचानेंगे, फिर मेरे और उनके बीच कोई चीज़ रोक बना दी जाएगी। मैं कहूँगा : ये तो मेरे हैं, तो कहा जाएगा : आपको मालूम नहीं कि इन्होंने आपके पीछे क्या-क्या नई बातें पैदा कीं। (यह सुनकर) मैं कहूँगा। दूर हों दूर, जिन्होंने मेरे पीछे (दीन में) परिवर्तन किया है।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

अल्लाह की ओर से सख़्त और कठिन घड़ी आ जाएगी और लोगों में हलचल पड़ जाएगी।

1. अर्थात उस दिन मुनाफ़िक़ और अपराधी लोग सजदा न कर सकेंगे। वे सजदा करना चाहेंगे तो उनकी पीठ तख़्ते की तरह सख़्त हो जाएगी और वे सजदे के लिए झुक न सकेंगे। क़ुरआन मजीद में भी कहा गया है : "जिस दिन पिंडली खोली जाएगी (अर्थात जिस दिन हलचल पड़ेगी) और ये सजदे के लिए बुलाए जाएँगे तो सजदा न कर सकेंगे। इनकी निगाहें झुकी होंगी और उनपर ज़िल्लत छा रही होगी। और ये इस समय भी सजदे के लिए बुलाए जा रहे हैं जबकि ये भले-चंगे हैं।"

   —क़ुरआन, 68 : 42-43

2. अर्थात जिस व्यक्ति ने जितना अधिक दीन का पालन किया होगा और जितना अधिक इस्लाम के सीधे मार्ग पर चला होगा वह उसी के अनुसार तेज़ी से गुज़र जाएगा और आग से छुटकारा पा लेगा। सांसारिक जीवन में जिसकी गति अल्लाह के मार्ग में जितनी धीमी रही होगी उसका धीमापन उस दिन स्पष्ट हो जाएगा। इस प्रकार लोगों के जीवन और उनके कर्म के चित्र उनके सामने आ जाएँगे।

3. नबी (सल्ल०) की हैसियत उस दिन मीर मंज़िल की होगी जो क़ाफ़िले से पहले

15. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कोई व्यक्ति उस समय तक जन्नत में दाख़िल न किया जाएगा जब तक कि उसे वह ठिकाना न दिखा दिया जाए जो उसके लिए जहन्नम में निश्चित था यदि वह बुरे कर्म करता, ताकि उसका कृतज्ञता-भाव बढ़ जाए और (इसी प्रकार) कोई व्यक्ति जहन्नम में दाख़िल नहीं किया जाएगा जब तक कि उसे वह ठिकाना न दिखा दिया जाए जो उसके लिए जन्नत में निश्चित था, यदि वह अच्छे कर्म करता, ताकि उसका पश्चात्ताप बढ़ जाए।[1] —बुख़ारी

16. हज़रत अबू बरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मनुष्य क़ियामत के दिन अपनी जगह से हटने नहीं पाएगा, जब तक कि चार बातें (उससे) न पूछ ली जाएँ : उसकी आयु के बारे में कि उसे किस काम में समाप्त किया, उसके कर्म के बारे में कि उसने क्या कर्म किए और उसके माल के बारे में कि कहाँ से उसे कमाया और कहाँ उसे ख़र्च किया और उसके शरीर के बारे में कि किस काम में उसे घुलाया।[2] —तिरमिज़ी

पहुँचकर आनेवालों के लिए आराम और सुविधा की व्यवस्था करता है। आप (सल्ल०) हौज़ पर, जिसका नाम हौज़े कौसर होगा, अपने अनुयायियों की प्रतीक्षा करेंगे। आपके अनुयायी और उस "कौसर" से लाभ उठानेवाले, जो दुनिया में आपको प्रदान किया गया था, हौज़ से पीकर शीतलता प्राप्त करेंगे फिर उन्हें प्यास न सताएगी। किन्तु जो व्यक्ति दुनिया में आपके मार्गदर्शन के शीतल स्रोत से सिंचित न हुआ बल्कि उसे गन्दा ही करने में लगा रहा और आपके निर्मल दीन (धर्म) में मनगढ़त नई बातें सम्मिलित करके उसकी सुन्दरता को विकृत करना चाहा, वह हौज़ के निर्मल एवं शीतल जल से वंचित रहेगा। उसे आप (सल्ल०) उसे अपने पास से दूर कर देंगे।

1. अर्थात जन्नत में प्रवेश करनेवालों को केवल जन्नत पाने की प्रसन्नता न होगी बल्कि उनको इस बात की भी प्रसन्नता होगी कि अल्लाह ने उन्हें जहन्नम के अज़ाब से बचा लिया। इसी तरह जहन्नम में जानेवालों को केवल जहन्नम (नरक) में जलते रहने ही की यातना न भुगतनी पड़ेगी, बल्कि जन्नत न मिलने का दुख और सन्ताप भी उनके हिस्से में आएगा। वे पश्चाताप ही करते रहेंगे परन्तु अब इसका कोई अवसर उन्हें न मिल सकेगा कि वे अपने अपराध और गुनाह के धब्बे धोकर अपने को जन्नत में जाने योग्य बना सकें। जहन्नम में उन्हें आत्मिक और शारीरिक हर प्रकार का दुख भुगतना होगा।
2. अर्थात जब तक मनुष्य ये और इस प्रकार की महत्वपूर्ण बातों का उत्तर न दे लेगा, वह हटने नहीं पाएगा। जिन बातों के बारे में उससे प्रश्न होगा उनके अन्तर्गत मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन आ जाता है। जब तक मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन के नक़्शे को ठीक न

17. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आपने कहा : आदम के बेटे (मनुष्य) के क़दम (क़ियामत के दिन अपने स्थान से) हट न सकेंगे जब तक कि उससे पाँच बातों के बारे में प्रश्न न कर लिया जाए— उसकी आयु के बारे में कि उसे उसने किन कामों में समाप्त किया, उसकी युवावस्था के बारे में कि उसे उसने कहाँ लगाया, और उसके माल के बारे में कि उसे कहाँ से कमाया और कहाँ ख़र्च किया और जो ज्ञान उसे प्राप्त था उसके अनुसार कहाँ तक उसने आचरण किया। —तिरमिज़ी

18. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन मेरी सिफ़ारिश से वही व्यक्ति लाभ उठा सकता है जिसने अपने मन और प्राण की पूर्ण शुद्धता एवं एकाग्रता के साथ "ला इलाह इल्लल्लाह" (अल्लाह के सिवा कोई पूज्य एवं प्रभु नहीं है) कहा हो।[1] —बुख़ारी

19. हज़रत उसमान बिन अफ़्फ़ान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन तीन प्रकार के लोग (विशेष रूप से) सिफ़ारिश करेंगे नबी, फिर ज्ञानी-जन, फिर शहीद।[2] —इब्ने माजा

कर ले और हर मामले में अल्लाह के सामने अपने आपको उत्तरदायी समझकर काम न करे, वह आख़िरत की पकड़ से बच नहीं सकता।

1. अर्थात नबी (सल्ल०) की सिफ़ारिश उसी को हासिल हो सकेगी और उसी व्यक्ति के लिए आप सिफ़ारिश करेंगे जो कुफ़्र व शिर्क की गन्दगी से पाक होगा और अपने हृदय की शुद्धता के कारण इस बात का हक़ रखता होगा कि उसकी ख़ताएँ और ग़लतियाँ क्षमा कर दी जाएँ।

2. इस हदीस से मालूम हुआ कि सिफ़ारिश करने का सम्मान नबियों के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट लोगों को भी प्राप्त होगा। धर्म का ज्ञान रखनेवाले लोग, अल्लाह की राह में प्राण निछावर करनेवाले वीरगति को प्राप्त शहीद आदि दूसरे अच्छे और नेक लोगों को अपने दर्जे के अनुसार यह सम्मान प्राप्त होगा। हदीस से मालूम होता है कि छोटे-नन्हें बालक, बालिकाएँ भी अपने माँ-बाप के हक़ में सिफ़ारिश करेंगे।

   यहाँ यह बात समझ लेने की है कि शिफ़ाअत या सिफ़ारिश अपने तौर पर कोई चीज़ नहीं। अल्लाह की अनुमति के बिना कोई व्यक्ति किसी के हक़ में सिफ़ारिश न कर सकेगा, न अल्लाह के आगे ज़बान खोल सकेगा (दे० क़ुरआन, 2 : 255)। फिर सिफ़ारिश की इजाज़त उन्हीं लोगों को मिल सकेगी जो वास्तव में इसका हक़ रखते होंगे और जिनको अल्लाह क्षमा करना चाहेगा। सिफ़ारिश का अवसर प्रदान करके वास्तव में अल्लाह अपने विशेष प्रिय बन्दों के सम्मान का प्रदर्शन करेगा।

20. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) का बयान है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय में कुछ लोग होंगे जो एक जमात की सिफ़ारिश करेंगे, कुछ एक क़बीले की सिफ़ारिश करेंगे, कुछ एक घराने की सिफ़ारिश करेंगे और कुछ केवल एक व्यक्ति की यहाँ तक कि लोग 'जन्नत' में दाख़िल हो जाएँगे।[1]

—तिरमिज़ी

जन्नत और जहन्नम

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सर्वोच्च अल्लाह ने कहा : मैंने अपने नेक बन्दों के लिए वह कुछ तैयार किया है जिसे न किसी आँख ने देखा, न किसी कान ने सुना और न किसी आदमी के दिल में उसका ख़याल गुज़रा। यदि तुम चाहो (तो यह आयत) पढ़ लो : "फिर जो कुछ आँखों की ठण्डक की सामग्री (उन अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करनेवालों और रातों में अल्लाह की इबादत करनेवालों) के लिए छिपा रखी गई है, उसकी किसी जीव को ख़बर नहीं (क़ुरआन, 32 : 17)।"[2]

—बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैंने जहन्नम जैसी कोई चीज़ नहीं देखी जिससे भागनेवाला सोता हो और न जन्नत

---

1. अर्थात लोगों को अपने दर्जे और पद के अनुसार सिफ़ारिश का हक़ हासिल होगा। कोई इतने ऊँचे दर्जे का व्यक्ति होगा कि उसे एक बड़ी जमात की सिफ़ारिश का अधिकार होगा। कोई एक क़बीले की सिफ़ारिश का हक़ रखता होगा और कोई एक कुटुम्ब ही के हक़ में सिफ़ारिश कर सकेगा। कुछ लोग ऐसे होंगे कि वे केवल एक व्यक्ति की सिफ़ारिश कर सकेंगे।
2. अर्थात अल्लाह ने जन्नत में अपने आज्ञाकारी प्रिय सेवकों के लिए जो चीज़ें और उनके सुख-चैन की जो सामग्री संचित कर रखी है, वर्तमान जीवन में हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिए कामना करने की चीज़ जन्नत ही है, न यह कि मनुष्य दुनिया के पीछे अपने शाश्वत निवास-स्थान को भूल जाए। जन्नत में वही लोग प्रवेश कर सकेंगे जो अल्लाह के उपासक और उसके आज्ञाकारी होंगें जो उसकी राह में कोशिश और संघर्ष करनेवाले और उसकी इबादत के दिव्य आनन्द से परिचित होंगे। अल्लाह की बन्दगी जिनके लिए इस लोक में आँखों की ठण्डक न बन सकी, वे सरकशी और अवज्ञा ही में जीवन व्यतीत करते रहे, वे आख़िरत के उस आनन्द से दूर रखे जाएँगे जो अपने विशेष बन्दों के लिए अल्लाह ने तैयार कर रखा होगा।

जैसी कोई चीज़ देखी जिसका चाहनेवाला सोता हो।[1] —तिरमिज़ी

3. हज़रत अबू सईद (रज़ि०) और हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : एक पुकारनेवाला (जन्नतवालों को सम्बोधित करके) पुकारेगा कि (यहाँ) तुम स्वस्थ रहोगे, कभी बीमार न होगे, जीवित रहोगे तुम्हारी कभी मृत्यु न होगी। युवा रहोगे, कभी तुम पर बुढ़ापा प्रभावी न होगा। और चैन से रहोगे, कभी भी कठिनाई और दुख न देखोगे।[2] —तिरमिज़ी

4. हज़रत अबू सईद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़सम है उस (अल्लाह) की जिसके हाथ में मुहम्मद के प्राण हैं कि उनमें से (जिन्हें जन्नत में जाने की अनुमति मिल जाएगी) प्रत्येक अपने 'जन्नत' के घर को अपनी दुनिया के घर से अधिक पहचानता होगा।[3] —बुख़ारी

5. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जन्नत तुम्हारी जूती के तसमे से भी अधिक निकट है और इसी तरह (जहन्नम की) आग भी।[4] —बुख़ारी

---

1. जहन्नम की आग से बढ़कर भयानक और विनाशकारी चीज़ क्या हो सकती है जिससे मनुष्य भागे, परन्तु मनुष्य की विचित्र दशा है, वह उससे साधारणतया असावधान ही रहता है, उससे बचने की चेष्टा नहीं करता। इसी तरह जन्नत से बढ़कर प्रिय और मनोवांछित चीज़ कोई दूसरी नहीं हो सकती, जिसे प्राप्त करने में मनुष्य अपनी समस्त शक्ति और योग्यता को लगाए और उससे तनिक भी ग़ाफ़िल न हो। किन्तु मनुष्य उससे संज्ञाहीन ही रहता है।
2. अर्थात जन्नतवालों को किसी भी प्रकार का भय और आशंका न होगी। जन्नत में न कभी वे बीमार होंगे, न वहाँ उन्हें मृत्यु का सामना करना पड़ेगा और न ही उनकी शक्ति, बल और यौवन को किसी प्रकार की क्षति पहुँचेगी। सुख और आनन्द ही उनका जीवन होगा। किसी कठिनाई और दुःख को वे न देखेंगे।
3. इससे मालूम हुआ कि जन्नत का घर उसका वास्तविक निवास-स्थान होगा। उसका निवास-स्थान उसकी अपनी रुचि, भावना और कामना के अनुरूप होगा। दूसरे शब्दों में वह उसकी अभिलाषाओं का प्रत्यक्ष रूप होगा। वह निवास-स्थान ऐसा होगा जिसको यद्यपि उसने पहले देखा नहीं था, परन्तु उसकी आत्मा उससे पूर्णतः परिचित थी। इस प्रकार जन्नत के रूप में उसे अपना अतीत भी मिल जाएगा। अपना अतीत प्रत्येक को प्रिय होता है।
4. अर्थात मनुष्य से न तो उसकी जन्नत दूर है और न जहन्नम दूर है। यदि उसके कर्म अच्छे हैं तो मानो जन्नत उसके निकट आ गई है। उसके और जन्नत के बीच एक

6. हज़रत उबादा बिन सामित (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जन्नत में सौ दर्जे हैं। हर दो दर्जे के बीच इतना फ़ासला है जितना कि आकाश और धरती के बीच है। फ़िरदौस उनमें दर्जे की दृष्टि से सबसे उच्च है और उससे जन्नत के चार दरिया निकलते हैं। और उसके ऊपर रहमान (कृपाशील ईश्वर) का अर्श (सिंहासन) है, तो जब तुम अल्लाह से माँगो तो उससे उस फ़िरदौस को माँगो।[1] —तिरमिज़ी

ऊपरी आवरण के अतिरिक्त और कोई चीज़ बाधक नहीं है। इस लोक से प्रस्थान करने के पश्चात उसका निवास जन्नत की रमणीय उद्यानों में ही होगा। और यदि उसके कर्म बुरे हैं तो वह जन्नत के नहीं बल्कि जहन्नम के निकट है। उसके और 'जहन्नम' के मध्य कोई अधिक दूरी नहीं है। यदि वह सँभला नहीं तो कोई चीज़ उसे जहन्नम में गिरने से नहीं बचा सकती। बल्कि जन्नत और जहन्नम की वास्तविकता तो हमारे अच्छे या बुरे कर्म ही हैं। मानो यही हमारे कर्म ही जन्नत के सुख और जहन्नम की यातनाओं और कष्टों का रूप धारण कर लेंगे। यही कारण है कि कर्म और उनके प्रतिकार अथवा दण्ड में अत्यन्त अनुरूपता पाई जाती है। स्वयं नबी (सल्ल०) ने भी कहा है : "सावधान! समस्त नेकियाँ और भलाइयाँ अपने ओर-छोर और पहुलओं सहित जन्नत में हैं। अतः कर्म करो और अल्लाह से डरते रहो और जान लो कि तुम्हें अपने कर्मों के साथ पेश होना है, तो जो कण-भर भी कोई भलाई करेगा वह उसे देख लेगा और जो कण-भर भी कोई बुराई करेगा वह उसे देख लेगा।" —अश-शाफ़ई

यह टुकड़ा कि "जो कण-भर भी कोई भलाई करेगा वह उसे देख लेगा और जो कण-भर भी कोई बुराई करेगा वह उसे देख लेगा", क़ुरआन की सूरा अज़-ज़िलज़ाल से उद्धृत है। यही बात क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर इन शब्दों में बयान हुई है : "उस दिन तुम लोग पेश किए जाओगे, तुम्हारी कोई चीज़ छिपी नहीं रहेगी।"

—क़ुरआन, 69 : 18

1. इस हदीस में यह शिक्षा दी गई है कि मोमिन को उच्च कोटि की जन्नत का अभिलाषी होना चाहिए। उच्च कोटि की जन्नत के अधिकारी वही लोग होंगे जो ईमान, स्वभाव और कर्म की दृष्टि में सबसे उच्च होंगे। इसलिए फ़िरदौस के इच्छुक (Seeker of Paradise) को ईमान, चरित्र, आचरण और कर्म आदि प्रत्येक दृष्टि से ऊँचा उठने की कोशिश करनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति फ़िरदौस के लिए केवल दुआ और प्रार्थना ही करता है और इस सिलसिले की दूसरी ज़िम्मेदारियों को भूल जाता है तो वास्तव में फ़िरदौस का वह सच्चा अभिलाषी नहीं है।

एक हदीस में है कि जन्नतवाले अपने ऊपर के बालाख़ानेवालों को इस तरह देखेंगे जिस प्रकार तुम उस प्रकाशमान सितारे को देखते हो जो उदय और अस्त होने के

7. हज़रत अली (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जन्नत में बाज़ार है, उसमें क्रय-विक्रय न होगा, बल्कि उसमें पुरुषों और स्त्रियों के रूप होंगे। जब कोई व्यक्ति किसी रूप की इच्छा करेगा तो उसमें प्रविष्ट हो जाएगा।[1] —तिरमिज़ी

8. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह के मार्ग में प्रातः समय और सायंकाल निकलना संसार और संसार में जो कुछ है उन सबसे उत्तम है।[2]—और यदि जन्नतवालों की स्त्रियों में से कोई स्त्री धरती की ओर झाँके तो इन दोनों के बीच जो कुछ है उसे प्रदीप्त कर दे और उसे सुगन्ध से भर दे। और उसके सिर की ओढ़नी दुनिया और दुनिया में जो कुछ है सबसे उत्तम है।[3] —बुख़ारी

9. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति जन्नत में प्रवेश करेगा वह सुख और आनन्द से रहेगा, न तो उसे दुख और कष्ट पहुँचेगा और न उसके वस्त्र जीर्ण और पुराने होंगे, और न ही

समय क्षितिज में होता है। यह दर्जों और पद के उस अन्तर के कारण होगा जो उनके बीच पाया जाएगा। —बुख़ारी, मुसलिम

1. इस तरह की और बहुत-सी हदीसें हैं जिनसे मालूम होता है कि जन्नत में मनुष्य की प्रत्येक इच्छा और मनोकामनाएँ पूरी होंगी। बाह्य एवं आन्तरिक हर प्रकार की सुखदायक वस्तुएँ वहाँ उसे प्राप्त होंगी।

2. सफ़र के लिए साधारणतया लोग प्रातः समय और सायंकाल निकलते थे, इसलिए प्रातः काल और सायंकाल के निकलने का उल्लेख किया गया।

3. अर्थात सारा वातावरण उसकी सुन्दरता से चमक उठेगा और उसकी सुगन्ध से सुवासित हो जाएगा। केवल उसके सिर की ओढ़नी इतनी बहुमूल्य होगी कि सारा संसार उसका मूल्य चुकाने में असमर्थ है। इस हदीस के आरम्भिक भाग में अल्लाह की राह में निकलने और उसके दीन (धर्म) के लिए दौड़-धूप करने के महत्व का वर्णन किया गया है और अन्त में जन्नत की हूरों (मृगनैनी रूपवती स्त्रियों) की सुन्दरता और उनके वस्त्रों का उल्लेख किया गया है। इसमें वस्तुतः इस बात की ओर संकेत है कि जो लोग अल्लाह की राह में निकलते हैं और अपने घरवालों की जुदाई गवारा करते हैं उन्हें जन्नत में ऐसी पत्नियों का साथ प्राप्त होगा जिनका रूप और सौन्दर्य सम्पूर्ण संसार को सुन्दरता एवं प्रकाश प्रदान कर सकता है, जिनके केश की सुगन्ध सारे वातावरण को सुरभित कर सकती है और जिनके वस्त्र संसार की सारी चीज़ों से अच्छे और बहुमूल्य होंगे।

उसकी जवानी का अन्त होगा। —मुसलिम

10. हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जन्नत में एक बाज़ार है जिसमें हर जुमा को जन्नतवाले इकट्ठा होंगे और वहाँ उत्तरी वायु चलेगी जो उनके मुख और वस्त्रों पर सुगन्ध बिखेर देगी। और उनका सौन्दर्य और सुरूपता बढ़ जाएगी। जब वे अपने घरवालों के पास लौटकर इस हाल में जाएँगे कि उनकी सुन्दरता और सुरूपता बढ़ी हुई होगी तो उनके घरवाले उनसे कहेंगे : अल्लाह की क़सम ! हमसे अलग होकर तो तुमने अपने सौन्दर्य और सुरूपता को बढ़ा लिया। इस पर वे कहेंगे : और तुम भी अल्लाह की क़सम ! हमारे बाद सौन्दर्य और सुरूपता में बढ़ गए।[1] —मुसलिम

11. हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : जन्नतवाले जन्नत में इस तरह प्रवेश करेंगे कि उनके शरीर बालों से साफ़ होंगे, (मसें भीग रही होंगी परन्तु) दाढ़ी न निकली होगी, आँखें अंजित होंगी और तीस-तैंतीस वर्ष की आयु होगी।[2] —तिरमिज़ी

12. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति ने पूछा : ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ! क्या जन्नत के लोग सोएँगे भी? कहा : निद्रा मृत्यु की बहन है। जन्नत के लोग मरेंगे नहीं।[3]

13. हज़रत अबू सईद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह जन्नतवालों से कहेगा : ऐ जन्नतवालो ! वे

---

1. अर्थात उनके घरवालों और उनकी पत्नियों का सौन्दर्य भी पहले की अपेक्षा बढ़ा हुआ होगा।
2. वे सदैव युवा और सुन्दर ही रहेंगे। शरीर बालों से साफ़ होंगे, मसें भीग रही होंगी परन्तु दाढ़ी न निकली होगी। वे गोरे-चट्टे होंगे। शरीर गठे हुए, आँखें सुन्दर अंजित होंगी। उनकी सुरूपता और जवानी कभी ख़त्म न होगी। तिरमिज़ी में यह रिवायत हज़रत अबू सईद (रज़ि०) से भी उल्लिखित है और मुसनद अहमद में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की बयान की हुई हदीसों में भी यह बात मिलती है।
3. अर्थात वे सदैव जाग्रत और जीवित अवस्था में रहेंगे। उनका यह जागना उनके लिए आनन्दायक होगा। वे सदैव ताज़ादम रहेंगे। उन्हें किसी प्रकार की थकान और शिथिलता न छू सकेगी और न उन्हें ऊँघ आएगी।

   मधु-मक्खियों के बारे में कहा जाता है कि वे जीवन-भर जाग्रत अवस्था में रहती हैं, कभी सोती नहीं। वे विश्राम अवश्य करती हैं, सोने की आवश्यकता उन्हें नहीं होती।

कहेंगे : उपस्थित हैं हम, ऐ हमारे रब ! तेरी सेवा में उपस्थित हैं और सारी नेमतें तेरे हाथ में हैं। फिर वह कहेगा : क्या तुम राज़ी और ख़ुश हो ? वे कहेंगे : हम क्यों न राज़ी होंगे जबकि आपने हमें वह कुछ दिया जो अपने किसी सृष्टजीव को नहीं दिया था। वह कहेगा : क्या मैं तुम्हें उससे भी उत्तम एक चीज़ न दूँ ? वे कहेंगे : ऐ रब ! वह क्या चीज़ है जो इससे भी बढ़कर होगी ? (अल्लाह) कहेगा : मैं तुम्हें अपनी प्रसन्नता प्रदान करता हूँ, इसके बाद अब कभी भी मैं तुमसे नाराज़ न हूँगा।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

14. हज़रत नोअमान बिन बशीर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : (जहन्नम की) आगवालों में सबसे हल्की यातनावाला वह व्यक्ति होगा जिसकी चप्पलें और जिनके तसमे आग के होंगे। जिनसे उनका मस्तिष्क इस तरह खौलेगा जिस तरह देगची (चूल्हे पर) खौलती है और वह नहीं समझेगा कि कोई उससे बढ़कर यातना में है, हालाँकि वह समस्त जहन्नमवालों से हल्की यातना में होगा।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

15. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन (जहन्नम की) आगवालों में से एक ऐसे व्यक्ति को लाया जाएगा जो संसार का बड़ा ही सुखी और सम्पन्न व्यक्ति था और फिर उसे (जहन्नम की) आग में एक डुबकी दी जाएगी।[3] फिर उससे कहा जाएगा कि ऐ आदम के बेटे ! क्या तुमने कभी अच्छी हालत भी देखी है ? क्या कभी सुख और आनन्द का समय भी तुमपर बीता है ? वह कहेगा : कभी नहीं। अल्लाह की

---

1. अल्लाह की शाश्वत प्रसन्नता की प्राप्ति सबसे बड़ी दौलत है जो जन्नतवालों को प्राप्त होगी। क़ुरआन मजीद में भी इस ईश-अनुग्रह का उल्लेख इन शब्दों में किया गया है : "ईमानवाले पुरुषों और ईमानवाली स्त्रियों से अल्लाह ने ऐसे बाग़ों का वादा किया है जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी जिनमें वे सदैव रहेंगे—सदाबहार बाग़ों में (उनके लिए) घर होंगे—और अल्लाह की ख़ुशी और रज़ामन्दी तो बड़ी चीज़ है।" —क़ुरआन, 9 : 72
2. जब हल्के अज़ाब और यातना की सख़्ती और तकलीफ़ का यह हाल है तो कठोर यातना की क्या हालत होगी। अल्लाह हम सबको जहन्नम की यातना से बचाए। (आमीन !)
3. अर्थात जहन्नम में डालकर उसे तुरन्त निकाल लेंगे।

क़सम । ऐ रब ![1]

और जन्नत के लोगों में से एक व्यक्ति को लाया जाएगा जो संसार में सबसे अधिक कष्ट और दुख उठानेवाला होगा और उसे जन्नत में एक डुबकी दी जाएगी[2], फिर उससे कहा जाएगा : क्या तुमने कभी कोई दुख देखा है? क्या कभी तुमपर कोई कठिन समय बीता है? वह कहेगा : अल्लाह की क़सम ऐ रब ! न तो मुझपर कभी कोई तंगी और दुख का समय बीता है और न मैंने कभी कोई कठिनाई देखी है ।[3]

—मुसलिम

16. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जहन्नमवालों (नारकी लोगों) में सबसे हल्की यातना अबू तालिब को होगी वे केवल आग के जूते पहने होंगे जिसके कारण उनका दिमाग़ खौलता होगा ।[4]

—बुख़ारी

अल्लाह के दर्शन

1. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दो जन्नतें चाँदी की हैं। बरतन और जो वस्तुएँ उनमें हैं सब चाँदी की हैं। और दो जन्नतें सोने की हैं। उनके बरतन और जो चीज़ें उनमें हैं सब सोने की हैं। (जन्नत के) लोगों और उनके अपने रब की ओर देखने में कोई चीज़ रुकावट न बनेगी सिवाय महानता और बड़ाई की चादर के जो उसके मुख पर होगी सदाबहार जन्नत में ।[5]

—बुख़ारी, मुसलिम, तिरमिज़ी

---

1. इससे इसका अन्दाज़ा किया जा सकता है कि जहन्नम का अज़ाब कितना सख़्त होगा। जहन्नम का एक क्षण भी मनुष्य के सारे सुख-चैन को भुला देगा। उसे याद भी नहीं रहेगा कि कभी उसके सुख और आनन्द के दिन भी रहे हैं।
2. अर्थात जन्नत के वातावरण में पहुँचाकर तुरन्त उसे वापस लाएँगे ।
3. जन्नत में एक क्षण बिताने का यह परिणाम होगा कि मनुष्य जीवन-भर के कष्टों और दुखों को भूल जाएगा। जिन्हें सदैव के लिए जन्नत में रहने का स्थान मिल जाएगा उनके सौभाग्य का क्या कहना !
4. अबू तालिब नबी (सल्ल०) के चचा थे। जब तक वे जीवित रहे आपके साथ रहे, परन्तु चूँकि वे ईमान न लाए थे इसलिए जहन्नम की यातना से वे कभी छुटकारा न पा सकेंगे। यदि मनुष्य के पास ईमान नहीं है तो, भले ही वह ऊँचे कुल का सदस्य हो, अल्लाह की दृष्टि में उसका कोई सम्मान नहीं ।
5. अर्थात जन्नतवालों और उनके 'रब' के बीच कोई परदा नहीं होगा। यदि कोई आवरण

2. हज़रत जरीर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) कहते हैं कि हम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास बैठे हुए थे। आपने चाँद की ओर देखा, पूर्णिमा की रात थी फिर कहा : निश्चय ही तुम अपने रब को स्पष्ट रूप से देखोगे जिस तरह इस चाँद को देख रहे हो। उसके देखने में तुम्हें कोई ज़हमत (कठिनाई) न होगी[1], तो यदि तुमसे हो सके तो सूर्य के उदय और अस्त होने से पहले की 'नमाज़' के मुक़ाबले में कोई चीज़ तुम्हें पराजित न करे तो ऐसा अवश्य करो। फिर आपने (क़ुरआन का यह टुकड़ा) पढ़ा : "और तसबीह करो अपने रब की प्रशंसा (हम्द) के साथ, सूर्य उदय होने और उसके अस्त होने से पहले।"[2] —बुख़ारी, मुसलिम

होगा तो वह केवल अल्लाह की महानता और उसके प्रताप का आवरण होगा। उसकी महानता और उसके प्रताप के कारण उसकी ओर देखना साधारण बात न होगी; परन्तु अल्लाह अपनी विशेष कृपा से जन्नतवालों को अपने दर्शन से वंचित न करेगा। वह उनको देखने की ऐसी शक्ति प्रदान करेगा कि वे अपने रब के दर्शन कर सकेंगे।

नबी (सल्ल०) की सिखाई हुई एक दुआ के शब्द ये हैं; "ऐ अल्लाह! तुझसे आँख की ऐसी ठंडक का इच्छुक हूँ जो कभी छिन न सके, तुझसे तेरे फ़ैसलों पर राज़ी रहने का योग माँगता हूँ। तुझसे मृत्यु के पश्चात सुखमय जीवन चाहता हूँ। तुझसे तेरे मुखारबिन्दु के दर्शन का आनन्द चाहता हूँ, तेरी मुलाक़ात की आकांक्षा का इच्छुक हूँ जो किसी परेशान कर देनेवाली सख़्ती और गुमराह (पथभ्रष्ट) करनेवाले फ़ितने के बिना प्राप्त हो जाए।" दुआ के इन शब्दों से स्पष्ट है कि अल्लाह की मुलाक़ात और उसके दर्शन कितने आनन्ददायक हैं, इस बड़ी चीज़ की प्राप्ति की अभिलाषा स्वयं एक बड़ी नेमत है।

1. अर्थात जिस तरह चाँद देखने में तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होती, तुम सब एक साथ बिना किसी रुकावट के उसे देखते हो इसी तरह बिना किसी कठिनाई के और रुकावट के क़ियामत के दिन अपने रब को देखोगे। सांसारिक जीवन में अल्लाह का दीदार (दर्शन) संभव नहीं परन्तु आख़िरत में अल्लाह जन्नतवालों को जहाँ और बहुत-सी विशेषताएँ और गुण प्रदान करेगा वहीं वह उन्हें ऐसी योग्यता और सहन-शक्ति भी देगा कि वे अपने रब के दर्शन का आनन्द ले सकें।

   एक और रिवायत में है : "तुम अपने रब को अपनी आँखों से देखोगे।"
2. अर्थात यदि तुम अल्लाह के दर्शन के अधिकारी बनना चाहते हो तो प्रातः काल और सायंकाल की नमाज़ को विशेष रूप से पूरे मनोयोग और नियमित रूप से अदा करो और उसके महत्व को समझो। यह नमाज़ वास्तव में अल्लाह की तसबीह और उसकी हम्द (गुणगान) है, तुम्हें इससे कदापि असावधान न होना चाहिए। अल्लाह के दर्शन के अधिकारी वही लोग होंगे जो प्रातः समय और सायंकाल अपने रब के सामने खड़े होते

3. हज़रत सुहैब रूमी (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा : जब जन्नतवाले जन्नत में दाख़िल हो जाएँगे तो सर्वोच्च अल्लाह कहेगा : क्या तुम चाहते हो कि तुम्हें एक चीज़ और प्रदान करूँ? वे कहेंगे क्या आपने हमारे चेहरे उज्जवल नहीं किए? क्या आपने हमें (जहन्नम की) आग से बचाकर जन्नत में दाख़िल नहीं किया? (अब क्या चीज़ शेष है जिसकी हम इच्छा कर सकें?) आप कहते हैं कि फिर आवरण उठ जाएगा और वे अल्लाह के मुख को देख रहे होंगे। तो कोई भी चीज़ अपने रब को देखने से अधिक प्रिय उन्हें न मिली होगी।[1] फिर आपने (क़ुरआन की इस आयत, 10 : 26 का) पठन किया : "जिन लोगों ने भलाई की उनके लिए अच्छा परिणाम है और उसके सिवा और भी।" —मुसलिम

4. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि जब जन्नतवाले अपने सुख और आनन्द में होंगे, अचानक उन्हें एक तेज़ प्रकाश दीख पड़ेगा। वे अपने सिर को उठाएँगे तो क्या देखेंगे कि उनका 'रब' उनके ऊपर प्रकट है। अल्लाह कहेगा : "तुमपर सलाम हो, ऐ जन्नतवालो!" नबी (सल्ल०) ने कहा : यही सर्वोच्च अल्लाह के इस कथन का अर्थ होता है : "सलाम है, दयामय रब का उच्चारित किया हुआ।"[2] आपने कहा : फिर अल्लाह उनकी ओर देखेगा

और उसके गुण गाते हैं। जो लोग उसकी सेवा में उपस्थित नहीं होते वे कल भी उसके सामीप्य और दर्शन से वंचित रहेंगे। आख़िरत हमारे वर्तमान जीवन का स्वाभाविक परिणाम है।

1. ईश-मुखारबिन्दु के दर्शन का आनन्द जन्नत के सारे आनन्दों से बढ़ा होगा। इस लोक में अल्लाह के दर्शन की कोई संभावना नहीं। यहाँ कुछ विशेष नियम हैं जिनके अन्तर्गत मनुष्य की चेतना-शक्ति काम करती है। जो चीज़ें उन नियमों के अन्तर्गत नहीं आतीं मनुष्य को उनका बोध नहीं हो पाता। इसलिए हज़रत मूसा (अलै०) ने जब दीदार (दर्शन) की अभिलाषा व्यक्त की तो अल्लाह ने कहा कि तुम मुझे नहीं देख सकते। परन्तु आख़िरत के नियम सांसारिक नियमों से भिन्न और उच्च होंगे। वहाँ मनुष्य की चेतनशक्ति भी आज से भिन्न होगी।
2. देखिए क़ुरआन, 36 : 58। इस आयत में अल्लाह की ऐसी ही कृपाओं की ओर संकेत किया गया है। एक रिवायत में है कि जन्नतवालों में अल्लाह की दृष्टि में सबसे प्रतिष्ठित वह होगा जिसे प्रातः और सायंकाल दोनों ही समयों में अल्लाह के दर्शन मिलेंगे। इसके पश्चात नबी (सल्ल०) ने क़ुरआन की यह आयत पढ़ी : "कितने चेहरे उस दिन खिले हुए होंगे, अपने रब की ओर देख रहे होंगे।"
(अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने उमर रज़ि० से उल्लिखित)

और वे (जन्नतवाले) अल्लाह की ओर देखेंगे और वे जन्नत की सुखसामग्री में से किसी चीज़ की ओर भी ध्यान न देंगे (वे अल्लाह के दर्शन में लीन होकर रह जाएँगे)।[1] वे अल्लाह की ओर देख रहे होंगे यहाँ तक कि वह उनकी निगाहों से छिप जाएगा और उसका प्रकाश शेष रह जाएगा।[2] —इब्ने माजा

मानव के विचार और कर्म पर आख़िरत की धारणा का प्रभाव

1. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मेरा कन्धा पकड़कर कहा : तुम संसार में इस प्रकार रहो मानो तुम परदेसी हो या राह चलते राही।[3] —बुख़ारी

2. हज़रत अबू अय्यूब अनसारी (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ उसने कहा, मुझे संक्षेप में उपदेश दीजिए। आपने कहा : जब तुम नमाज़ में खड़े हो तो उस व्यक्ति की-सी नमाज़ अदा करो जो विदा किया जा रहा हो। और कोई ऐसी बात मुँह से न निकालो जिसके बारे में कल तुम्हें क्षमा माँगनी पड़े। और जो कुछ लोगों के हाथों में है उससे बिलकुल निराश हो जाओ।[4] —अहमद

---

1. अल्लाह के दर्शन की अपेक्षा कोई भी चीज़ उनके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित न कर सकेगी।
2. अर्थात ईश-दर्शन का प्रभाव बाह्यान्तर पर शेष रह जाएगा।
3. संसार में मनुष्य की वास्तविक स्थिति एक पथिक की है। उसे यहाँ इस प्रकार जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिए जैसे उसे यहाँ सदैव रहना है, बल्कि उसे संसार में एक मुसाफ़िर की तरह रहना चाहिए। मुसाफ़िर परदेस में मन नहीं लगाता। उसका मन तो अपने वतन में लगा रहता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य को आख़िरत की ओर अपना मन लगाना चाहिए जो उसका वास्तविक ठिकाना है। संसार को बिलकुल परदेस समझना चाहिए, बल्कि इससे भी आगे यदि संभव हो तो वह उस पथिक के समान जीवन व्यतीत करे जो रास्ता चल रहा होता है, वह कहीं ठहरा हुआ नहीं होता बल्कि हर क्षण अपनी मंज़िल की ओर बढ़ रहा होता है। यदि मनुष्य इस भावना के साथ संसार में जीवन व्यतीत करे तो फिर संसार उसे उसके वास्तविक उद्देश्य से कभी ग़ाफ़िल नहीं कर सकता। और न कोई लोभ और लालच उसे सीधे मार्ग से हटा सकता है।
4. मतलब यह है कि तुम अपने को हर समय आख़िरत के लिए तैयार रखो। किसी समय भी इससे असावधान न हो। नमाज़ अदा करो तो इस तरह कि मानो यह अन्तिम

3. हज़रत उक़बा बिन आमिर (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा : तेजोमय प्रतापवान अल्लाह बन्दे की अवज्ञा पर भी उसकी पसन्द और इच्छा के अनुसार दुनिया की चीज़ें दे रहा है तो समझ लो कि यह (अल्लाह की ओर से) ढील है। फिर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (क़ुरआन की इस आयत 6 : 44) को) पढ़ा : "फिर ज़ब ऐसा हुआ कि जिससे उन्हें याददिहानी कराई गई थी उन्होंने उसे भुला दिया, तो हमने उनपर हर तरह की नेमतों के द्वार खोल दिए यहाँ तक कि जब वे उसपर इतराने लगे तो अचानक हमने उन्हें पकड़ लिया, अब तो वे बिलकुल निराश थे।"[1]

—अहमद

4. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दुनिया उसका घर है (जिसका) आख़िरत में कोई घर नहीं और उसका माल है जिसका (आख़िरत में) कोई माल नहीं और उसे वही एकत्र करता है जिसके पास बुद्धि नहीं।[2]

—अहमद, बैहक़ी : शोबुल ईमान

5. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति ने अपनी दुनिया से प्रेम किया उसने अपनी आख़िरत को हानि पहुँचाई और जिसने अपनी आख़िरत से प्रेम किया उसने अपनी दुनिया को नुक़सान

नमाज़ है, इसके बाद फिर नमाज़ पढ़ने का अवसर न मिल सकेगा। और कोई बात कहो तो पूरी ज़िम्मेदारी के साथ कहो। यह भावना सदैव बनी रहनी चाहिए कि तुम्हें हर बात का अल्लाह के यहाँ उत्तर देना है। संसार में लोगों को जो कुछ सुख-वैभव और धन-दौलत प्राप्त है, उससे अपने को निरपेक्ष रखो। उसके लिए मन में किसी प्रकार का लोभ न होना चाहिए। तुम्हें आशा केवल एक ईश्वर से करनी चाहिए। यही तौहीद (एकेश्वरवाद) है और यही आख़िरत पर विश्वास करने का अभिप्राय है।

1. यह हदीस बताती है कि किसी व्यक्ति या जाति की सांसारिक दृष्टि से उन्नति और उसकी सम्पन्नता या उसका सत्ता प्राप्त कर लेना इस बात का प्रतीक नहीं है कि उससे अल्लाह प्रसन्न है। यह अल्लाह की ओर से एक ढील भी हो सकती है। इसके पश्चात अल्लाह का अज़ाब अपराधियों को अचानक आ दबोचता है, फिर उन्हें कहीं शरण नहीं मिलती और वे विनष्ट होकर रह जाते हैं।
2. अर्थात आख़िरत में उस व्यक्ति के लिए कोई ठिकाना और सुख-सामग्री नहीं जिसने संसार ही को अपना सब कुछ समझा और सांसारिक जीवन में आख़िरत की ओर से बिलकुल ग़ाफ़िल रहा। इससे बढ़कर अज्ञानता की कौन-सी बात हो सकती है कि कोई माल-दौलत के पीछे दीवाना बना रहे और अपनी आख़िरत के लिए कुछ भी सामग्री न जुटाए।

पहुँचाया, तो तुम स्थायी वस्तु को उसके मुक़ाबले में प्राथमिकता दो जो विनष्ट होनेवाली है।[1]
—अहमद, बैहक़ी : शोबुल ईमान

6. हज़रत शद्दाद बिन औस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो अपने जी को क़ाबू में रखे और मृत्यु के पश्चात के लिए कार्य करे और नादान और असमर्थ व्यक्ति वह है जो अपनी (तुच्छ) इच्छाओं का अनुपालन करे और अल्लाह से (अच्छी) कामनाएँ करे।[2]
—तिरमिज़ी, इब्ने माजा

7. हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (क़ुरआन की) इस आयत का पाठ किया—"अल्लाह जिसे (सीधा) मार्ग दिखना चाहता है उसके सीने (दिल) को इस्लाम के लिए खोल देता है।" इसके बाद आपने कहा : जब प्रकाश सीने में प्रवेश करता है तो सीना कुशादा हो जाता है। कहा गया है : ऐ अल्लाह के रसूल! क्या कोई ऐसी चीज़ है जिससे उसकी पहचान हो सके? आपने कहा : हाँ, धोखे के घर (अर्थात दुनिया) से दिल का उठ जाना और सदा रहनेवाले घर का अभिलाषी होना और मृत्यु आने से पूर्व उसके लिए तैयार हो जाना।[3]
—बैहक़ी : शोबुल ईमान

---

1. अर्थात बुद्धिमानी की बात यही है कि मनुष्य आख़िरत के जीवन को प्रिय समझे जो सदैव रहनेवाला है। दुनिया के पीछे आख़िरत को तबाह न करे। सांसारिक जीवन में बहुधा ऐसे अवसर आते हैं जबकि मनुष्य को आख़िरत के लिए सांसारिक हानि सहन करनी पड़ती है। ऐसे अवसरों पर मनुष्य को दुनिया और आख़िरत दोनों में से किसी एक को प्राथमिकता देनी पड़ती है। सफल व्यक्ति वही है जो आख़िरत के मुक़ाबले में सांसारिक लाभ को प्राथमिकता न दे। लेकिन यह उस समय संभव हो सकता है जबकि मनुष्य के मन से संसार का मोह निकल गया हो और आख़िरत की इच्छा उसके मन में करवटें लेने लगी हों।
2. अर्थात यह अत्यन्त मूर्खता की बात है कि मनुष्य सत्य को त्यागकर तुच्छ इच्छाओं का वशवर्ती होकर रहे और आशा इसकी करे कि अल्लाह उसे आख़िरत में उच्च स्थान प्रदान करेगा और उसे विभिन्न प्रकार की निधियों और सुख-सामग्री से सम्मानित करेगा, हालाँकि आख़िरत की सफलता तो उन्हीं लोगों के लिए है जो प्रत्येक अवस्था में सत्य का पालन करते हैं, अपनी इच्छाओं के दास नहीं होते।
3. मतलब यह है कि जब बन्दे के अन्दर का अन्धकार दूर हो जाता है और उसे सत्य का ज्ञान मिल जाता है तो स्वभावतः उसे आख़िरत से लगाव और प्रेम हो जाता है। दुनिया जो मृत्युलोक है उसका मोह मन से निकल जाता है। और वह उस जीवन के निर्माण में लग जाता है जो मृत्यु के पश्चात मिलनेवाला है।

8. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अबुल क़ासिम (अर्थात नबी सल्ल०) ने कहा : उसकी क़सम जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं ! जो कुछ मैं जानता हूँ यदि तुम्हें मालूम हो जाए तो तुम रोओ अधिक और हँसो कम ।[1] —बुख़ारी

9. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो डरता है वह रात के आरम्भिक भाग में चल देता है और जो रात के आरम्भ में चल पड़ता है वह मंज़िल पर पहुँच जाता है । जान रखो ! अल्लाह का सौदा बहुमूल्य है । जान रखो ! अल्लाह का सौदा जन्नत है ।[2] —तिरमिज़ी

10. हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा : ऐ अल्लाह के नबी ! लोगों में सबसे बढ़कर बुद्धिमान और दूरदर्शी कौन है ? आपने कहा : जो उनमें मृत्यु को अधिक याद करता और उनमें सबसे अधिक उसकी तैयारी करता है । ऐसे ही लोग हैं जिन्होंने सांसारिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त की और आख़िरत का सम्मान भी ।[3] —तबरानी : मोजमुस्सग़ीर

---

1. अर्थात वास्तविकता यदि इस प्रकार तुम्हारे सामने खुलकर आ जाए जिस प्रकार वह मेरे लिए प्रत्यक्ष है और तुम्हें अल्लाह के प्रताप, और आख़िरत के भयावह और मन को कंपित कर देनेवाले दृश्य का ज्ञान हो जाए तो तुम्हारा सुख-चैन सब छिन जाए।
2. अरब में साधारणतया क़ाफ़िले रात के अन्तिम भाग में चलते थे। यही कारण है कि डाकुओं और बटमारों के आक्रमण भी भोर ही में होते थे। जिस मुसाफ़िर या क़ाफ़िले को लुटेरों का भय होता, वह रात के आख़िरी हिस्से में चलने के बजाय रात के आरंभ ही में चल देता था। और इस तर कुशलतापूर्वक अपनी मंज़िल पर पहुँच जाता था। इस मिसाल के द्वारा नबी (सल्ल०) लोगों को समझाते कि जिस तरह मंज़िल की चिन्ता रखनेवाले और बटमारों से डरनेवाले मुसाफ़िर अपने आराम और अपनी नींद को क़ुरबान करके रात के आरंभ में ही चल देते हैं उसी तरह आख़िरत के मुसाफ़िर को भी चाहिए कि अपनी मंज़िल तक पहुँचने की चिन्ता करे और कदापि असावधान न हो। अपने सुख और अपनी इच्छा को इसके लिए क़ुरबान कर दे। बन्दे को अपने ईश्वर से जो चीज़ प्राप्त करनी है वह साधारण नहीं है, वह बहुमूल्य है। अल्लाह ने अपने सच्चे और वफ़ादार सेवकों के लिए जन्नत तैयार की है जिसे हासिल करने के लिए सब कुछ त्यागा जा सकता है। जन्नत का वास्तविक मूल्य यही है कि बन्दा अपने प्राण और धन को अल्लाह को समर्पित कर दे। और हर ओर से कटकर केवल एक अल्लाह का हो जाए। यही बात क़ुरआन (9 : 111) में इन शब्दों में कही गई है : "निस्संदेह अल्लाह ने ईमानवालों की जान और उनके माल को जन्नत के बदले ख़रीद लिया है।"
3. संसार में प्रतिष्ठा का पद भी उन्हीं लोगों को प्राप्त होता है जो दुनिया के लोभी नहीं

11. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से आयत—"और जो देते हैं जो कुछ कि देते हैं कि इस हाल में कि दिल उनके काँप रहे होते हैं"—के बारे में पूछा कि क्या ये वे लोग हैं जो शराब पीते हैं और चोरी करते हैं? आपने कहा : ऐ सिद्दीक़ की बेटी! नहीं, बल्कि ये वे लोग हैं जो रोज़ा रखते, नमाज़ें पढ़ते और सदक़ा करते हैं और इसपर भी डरते रहते हैं कि कहीं उनकी ये नेकियाँ अस्वीकृत न हो जाएँ।[1] यही लोग हैं जो भलाइयों की

बल्कि आख़िरत के इच्छुक होते हैं। और आख़िरत का उच्च पद और सम्मान तो उन्हीं लोगों के लिए है। दुनियादारों के लिए आख़िरत के जीवन में तिरस्कार और अपमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

1. कुरआन का यह टुकड़ा जो इस हदीस में पेश किया गया है सूरा अल-मोमिनून का है। सूरा अल-मोमिनून में एक जगह उन लोगों के गुणों का उल्लेख किया गया है जिन्हें भलाइयों से अत्यन्त लगाव होता है और जो अल्लाह की ओर तेज़ी से बढ़ते हैं। इस सिलसिले में उनका एक गुण यह बयान किया गया है कि वे देते हैं जो कुछ कि देते हैं और हाल उनका यह होता है कि उनके दिल डर से काँप रहे होते हैं। इस आयत में देने से अभिप्रेत केवल भौतिक चीज़ों का ही देना नहीं है बल्कि अरबी भाषा में देने के लिए ईता शब्द प्रयुक्त हुआ है जो अभौतिक और अन्तरात्मा से सम्बन्ध रखनेवाली चीज़ों के देने के लिए भी प्रयुक्त होता है। इस प्रकार इस आयत का अर्थ यह हुआ कि वे जो कुछ भी ख़र्च करते हैं और जो नेकी और इबादत भी करते हैं इस हालत में करते हैं कि दिल उनके काँप रहे होते हैं कि मालूम नहीं अल्लाह के यहाँ ये नेकियाँ क़बूल भी होती हैं या नहीं। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने इस आयत के बारे में पूछा कि क्या इससे संकेत उन लोगों की ओर है जो गुनाह करते हैं किन्तु वे अल्लाह से बिलकुल अभय नहीं हो जाते। नबी (सल्ल०) ने उत्तर दिया : नहीं, इस आयत में चर्चा उन लोगों की है जो अच्छे कर्म करते हैं फ़िर भी अल्लाह से डरते रहते हैं। आपने कहा कि वास्तव में ऐसे ही लोग हैं जिनके बारे में कहा गया है कि वे भलाइयों के लिए तेज़ी दिखाते हैं। इससे मालूम हुआ कि यह भावना दीन में अभीष्ट है कि मनुष्य किसी दशा में भी निश्चिन्त होकर न बैठ रहे। उसे अल्लाह से अच्छी आशा भी हो किन्तु वह अल्लाह के प्रताप से हर समय डरता भी रहे। ऐसे ही लोग दीन के मार्ग में आगे बढ़ते रहते हैं। वे ठहरते नहीं और न उनमें किसी प्रकार की शिथिलता आती है। अधिक-से-अधिक कार्य करने के बाद भी वे यही समझते हैं कि अभी वे कुछ भी नहीं कर सके हैं। अभी तो बहुत-से काम हैं जो करने को पड़े हैं। न्यूटन ने, उस समय जबकि विज्ञान-जगत् में उसकी खोजों की प्रसिद्धि थी, कहा था : हम जो कुछ मालूम कर सके हैं वह उनकी अपेक्षा बहुत कम है जिनसे हम अभी परिचित नहीं हैं। हमारी

ओर तेज़ी से बढ़ते हैं।[1]

—तिरमिज़ी, इब्न माजा

12. हज़रत मस्तूर बिन शद्दाद (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना, आप कहते थे : अल्लाह की क़सम दुनिया की मिसाल आख़िरत के मुक़ाबले में बस ऐसी है जैसे तुममें से कोई अपनी एक उँगली समुद्र में डालकर निकाले और फिर देखे कि कितना पानी उसमें लगकर आया है।[2]

—मुसलिम

13. हज़रत सह्ल बिन सअद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : यदि अल्लाह की दृष्टि में दुनिया की क़ीमत मच्छर के पर के बराबर भी होती तो किसी काफ़िर व्यक्ति को एक घूँट पानी भी न देता।[3]

—अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने माजा

14. हज़रत उमर (रज़ि०) कहते हैं कि मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ तो आप (सल्ल०) एक खुरीं चटाई पर लेटे हुए थे और उसके और आप (सल्ल०) के शरीर के बीच कोई बिस्तर न था। चटाई ने पहलू

हालत उस व्यक्ति की-सी है जिसके हाथ में समुद्र की कुछ घोंधियाँ आ गई हों जबकि समुद्र में अभी अगणित बहुमूल्य मोती मौजूद हैं। न्यूटन को इसकी अनुभूति हो गई थी कि प्रकृति (Nature) के जो नियम उसने मालूम किए हैं वे उन नियमों के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं हैं जो अभी मानव के लिए रहस्य बने हुए हैं। इसी प्रकार जब एक मुस्लिम व्यक्ति को इसका एहसास हो जाता है कि उसके ज़िम्मे कितने काम हैं जो वह कर सकता था किन्तु वे यूँ ही पड़े हुए हैं और जो काम उसने किए हैं मालूम नहीं उनमें कितनी त्रुटियाँ मौजूद हैं तो इसलिए हालत में उसके दिल का वही हाल होता है जो क़ुरआन में बयान हुआ है।

1. यह क़ुरआन का हिस्सा है। बन्दों के अभीष्ट गुणों के उल्लेख के पश्चात कहा गया कि यही लोग भलाइयों की ओर तेज़ी से दौड़ते हैं।
2. मतलब यह है कि दुनिया आख़िरत के मुक़ाबले में इतनी तुच्छ है जितना समुद्र के मुक़ाबले में उँगली में लगा हुआ पानी। आपने यह मिसाल केवल समझाने के लिए बयान की हैं, अन्यथा दुनिया और आख़िरत में यह अनुपात भी नहीं है। आख़िरत असीमित और दुनिया सीमित है। जो चीज़ सीमित हो उसका असीमित से क्या जोड़। इसी लिए आख़िरत को छोड़कर दुनिया ही को सब कुछ समझ लेना मूर्खता है।
3. आख़िरत के मुक़ाबले में दुनिया की कोई क़ीमत नहीं है, इसलिए यहाँ काफ़िरों और धर्म विरोधियों को भी फ़ायदा उठाने का मौक़ा मिल रहा है। आख़िरत में किसी काफ़िर या सत्यविरोधी को पानी की एक बूँद भी प्यास बुझाने को न मिल सकेगी।

पर निशान डाल दिए थे। आप (सल्ल०) चमड़े के एक तकिया का सहारा लगाए हुए थे जिसमें खजूर की छाल भरी हुई थी। मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! अल्लाह से प्रार्थना कीजिए कि वह आपके समुदाय को कुशादगी प्रदान करे। ये फ़ारिस और रूम भी तो हैं,—इन्हें कितनी कुशादगी प्राप्त है, हालाँकि ये अल्लाह की इबादत नहीं करते। आपने कहा : ऐ इब्ने ख़त्ताब! क्या अभी तुम इसी ख़याल में हो। ये तो वे लोग हैं जिनकी नेमतें (सुख-सामग्रियाँ) सांसारिक जीवन ही में दे दी गईं (आख़िरत में इनका कोई हिस्सा नहीं है)। और एक दूसरी रिवायत में है कि (आप (सल्ल०) ने कहा :) क्या तुम इसपर राज़ी नहीं हो कि इनके लिए दुनिया हो और हमारे लिए आख़िरत।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

15. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दुनिया ईमानवाले का कारागार है और काफ़िर की जन्नत है।[2] —मुसलिम

16. हज़रत अम्र बिन औफ़ (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह की क़सम मैं तुमपर मुहताजी और निर्धनता आने से नहीं डरता, किन्तु मुझे तुम्हारे बारे में डर है कि दुनिया तुमपर कुशादा कर दी जाए जैसे कि

---

1. नबी (सल्ल०) ने सदैव दुनिया के मुक़ाबले में आख़िरत को प्राथमिकता दी। संसार में जिस चीज़ को आपने हमेशा अपने सामने रखा वह अल्लाह की प्रसन्नता और आख़िरत की चाह थी, दुनिया कमाने की चिन्ता कभी आपने नहीं की और न आपने भोग-विलास के जीवन को पसन्द किया। आपकी धर्म पत्नी हज़रत आइशा (रज़ि०) का बयान है कि मुहम्मद (सल्ल०) के घरवालों ने कभी दो दिन निरन्तर जौ की रोटी से पेट नहीं भरा यहाँ तक कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का स्वर्गवास हो गया। (बुख़ारी, मुसलिम)
2. अर्थात आख़िरत में ईमानवालों को जो जीवन प्राप्त होगा उसके मुक़ाबले में सांसारिक जीवन एक कारावास का जीवन है। जो व्यक्ति कारागार में होता है उसकी हार्दिक इच्छा होती है कि उसे उस क़ैद से छुटकारा प्राप्त हो और वह अपने घर पहुँच जाए। ठीक इसी प्रकार जिन लोगों ने दुनिया की वास्तविकता को समझ लिया है वे उससे जी नहीं लगाते, वे तो उस जन्नत की कामना में जीते हैं जिनका उनके रब (पालनकर्ता प्रभु) ने उनसे वादा किया है। इसके विपरीत एक काफ़िर जिसका आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं है उसके लिए दुनिया ही सब कुछ है। यही उसकी जन्नत' है। यहाँ वह जितना चाहे चर-चुग ले। आख़िरत में तो उसे एक ऐसे सख़्त अज़ाब में ग्रस्त होना है जिसकी आज कल्पना करना भी हमारे लिए मुश्किल है।

उन लोगों पर कुशादा की गई थी जो तुमसे पहले थे, फ़िर तुम उसे एक-दूसरे से बढ़कर चाहने लगो जैसा कि उन्होंने उसे चाहा था और वह तुम्हें उसी प्रकार विनष्ट कर दे जैसे उन्हें विनष्ट किया।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

17. क़अब बिन इयाज़ (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना, आप (सल्ल०) कहते थे : हर समुदाय के लिए फ़ितना है और मेरे समुदाय का फ़ितना माल है।[2] —तिरमिज़ी

18. कअब बिन मालिक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दो भूखे भेड़िए जो बकरियों में छोड़ दिए गए हों उन (बकरियों) को उससे ज़्यादा तबाह नहीं करते जितना मनुष्य का धन-वैभव और

---

1. अर्थात मैं तुम्हारे बारे में ग़रीबी और मुहताजी से नहीं डरता बल्कि मुझे भय इस बात का है कि कहीं तुम्हें सांसारिक सम्पन्नता और सुख वैभव प्राप्त हो और तुम आख़िरत को भुला दो और उसके परिणामस्वरूप तबाही और बरबादी तुम्हारे हिस्से में आए। तुमसे पहले पिछली जातियों का यही हाल हुआ कि उन्हें सांसारिक सुख-वैभव प्राप्त हुआ तो उन्होंने जीवन के वास्तविक उद्देश्य को भुला दिया, वे दुनिया की उपासक बन गईं, उनमें तरह-तरह के नैतिक रोग पैदा हो गए। जब उनकी सरकशी हद से आगे बढ़ गई तो अल्लाह ने उनका सर्वनाश कर दिया।

2. इस हदीस में माल को फ़ितना अर्थात आज़माइश (Persecution) कहा गया है। क़ुरआन मजीद में भी माल और औलाद को फ़ितना की संज्ञा दी गई है [अल-अनफ़ाल (8) : 28, अत तग़ाबुन (64) : 15)]। माल और औलाद के प्रेम में पड़कर अधिकतर लोग सत्य की उपेक्षा कर जाते हैं। माल तो मनुष्य की सेवा के लिए है लेकिन जब उसका लोभ मनुष्य के अन्दर पैदा हो जाता है तो उलटे वह दौलत का पुजारी बन जाता है और इस लोभ की कोई सीमा नहीं रहती। धन-दौलत के पीछे आदमी ऐसा दीवाना हो जाता है कि वह दीन और धर्म को भुला देता है। इसी लिए आपने माल को फ़ितना या आज़माइश कहा है। इस आज़माइश में कम ही लोग पूरे उतरते हैं। ऐसे लोग कम होते हैं जो दौलत पाकर अल्लाह से ग़ाफ़िल न हों और दीन (धर्म) की अपेक्षाओं को न भूलें, माल की ज़कात दें और दीन-दुखियों के काम आएँ और सामाजिक कल्याण के कार्यों में अपने माल से सहयोग करें ।

   वर्तमान युग में तो कितने ही आन्दोलन आर्थिक समस्या के आधार पर चलाए गए हैं। इन आन्दोलनों ने आर्थिक समस्याओं को जीवन की वास्तविक समस्या ठहराया है जिसके परिणामस्वरूप समस्याएँ हल होने के बजाए और अधिक चिन्ताजनक रूप धारण करती जाती है।

मान-मर्यादा का लोभ उसके दीन (धर्म) को तबाह करता है।[1] —तिरमिज़ी

19. हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें कौन है जिसे अपने माल से बढ़कर अपने वारिस का माल प्रिय हो ?[2] लोगों ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल हममें से तो प्रत्येक को अपने वारिस के माल से बढ़कर अपना ही माल प्रिय है।[3] आपने कहा : उसका माल तो वही है जो उसने आगे भेजा और वह उसके वारिस का माल है जो उसने पीछे छोड़ा।[4] —बुख़ारी

20. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आपने कहा : जब मरनेवाला मरता है तो फ़रिश्ते कहते हैं : इस व्यक्ति ने आगे क्या भेजा? जबकि सामान्य लोग (ऐसे अवसर पर) कहते हैं : उसने क्या छोड़ा ?[5] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

---

1. नबी (सल्ल०) ने एक स्पष्ट मिसाल से यह बात समझाई है कि मनुष्य को जब माल-दौलत और झूठे सम्मान का लोभ हो जाता है तो उसका दीन (धर्म) तबाह हो जाता है। इसलिए कि दीन (धर्म) तो वास्तव में इसी चीज़ का नाम है कि मनुष्य को दुनिया की अस्थिरता और उसके नाशवान होने का पूरा एहसास और अल्लाह की महानता का पूरा ज्ञान हो। जब मनुष्य के मन में दुनिया की बड़ाई और अपने वैभव, मान और आदर की इच्छा उभर आई तो फिर उसका दीन (धर्म) कहाँ सुरक्षित रहा। ऐसे व्यक्ति से इसकी आशा नहीं की जा सकती कि वह धर्म की माँगों को पूरा करेगा और अपने जीवन में अल्लाह की निर्धारित सीमाओं एवं मर्यादाओं का आदर कर सकेगा।
2. अर्थात जिसे अपने हाथ में माल आने से प्रिय यह बात हो कि माल उसके वारिसों के हाथ में आए।
3. अर्थात हम में से तो कोई ऐसा नहीं है जिसे अपने माल से ज़्यादा वारिसों का माल प्रिय हो, जो यह चाहे कि माल उसके हाथ में न आए बल्कि उसके वारिसों के हाथ में आए।
4. मतलब यह है कि वास्तव में आदमी का अपना माल तो बस उतना ही है जिसको उसने अल्लाह की राह में ख़र्च करके आगे भेजा, जो उसने अपने पीछे छोड़ा वह उसका नहीं है। वास्तव में धनवान वह नहीं है जो दुनिया में धन-दौलत का अधिकारी है, बल्कि धनवान केवल वह है जिसने ज़्यादा-से-ज़्यादा माल अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करके आनेवाले जीवन के लिए एकत्र किया हो।
5. मतलब यह है कि मरने के बाद जो चीज़ देखने की होती है वह यह नहीं है कि आदमी ने अपने पीछे क्या माल छोड़ा है जैसा कि आम तौर पर लोग समझते हैं, बल्कि देखने

21. ज़ुबैर बिन नुफ़ैर (रह०) से मुरसल तरीक़े से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरी ओर यह वह्य (ईश्वरीय प्रेरणा) नहीं की गई है कि मैं धन एकत्र करूँ और व्यापारी बनूँ[1] बल्कि मेरी ओर यह वह्य की गई है[2] : "अपने रब की हम्द (प्रशंसा और कृतज्ञता प्रकाशन) के साथ तसबीह (महानता का वर्णन) करो और सजदा करनेवालों में सम्मिलित हो, और अपने रब (पालनकर्त्ता प्रभु) की इबादत किए जाओ यहाँ तक कि यक़ीनी चीज़ (मृत्यु) तुम्हारे सामने आ जाए।"[3]

—शरहुस्सुन्नह

22. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसकी नीयत आख़िरत हासिल करने की हो अल्लाह उसके दिल को बेपरवा (अपेक्षारहित) बना देता है और उसके अव्यवस्थित कामों को एकत्र कर देता है। दुनिया उसके निकट आती है और वह उसकी निगाह में तुच्छ और तिरस्कृत होती है। और जिसकी नीयत दुनिया हासिल करने की हो अल्लाह निर्धनता और मुहताजी को उसकी निगाहों के समक्ष कर देता है[4], और उसके

की चीज़ केवल यह होती है कि उसने क्या अच्छे कर्म किए और क्या चीज़ आनेवाले जीवन के लिए भेजी है।

1. अर्थात मेरा दायित्व और मेरा वास्तविक मिशन यह नहीं है कि मैं दुनिया में माल-दौलत एकत्र करूँ और एक सफल व्यापारी बनने का प्रयास करूँ, बल्कि अल्लाह ने जिसकी वह्य मुझे की है वह कुछ दूसरी ही चीज़ है।
2. आगे जिस वह्य का उल्लेख इस हदीस में किया गया है वह सूरा अल-हिज्र (15) की अन्तिम दो आयतें (98, 99) हैं।
3. अर्थात मेरे जीवन का वास्तविक लक्ष्य तो अल्लाह की हम्द (प्रशंसा, गुणगान) और उसकी दासता एवं आज्ञापालन है। और यह हम्द और उसकी बड़ाई का प्रदर्शन और बन्दगी मुझे जीवन के अन्तिम क्षणों तक करते रहना है। यही मेरी वास्तविक सम्पत्ति है, न कि वह जिसे दुनियावाले अपना धन समझते हैं।

   नबी (सल्ल०) का यह केवल ज़बानी दावा न था, बल्कि आपने इसी के अनुसार अपना पूरा जीवन व्यतीत किया। यह आपके एक सच्चे नबी होने का स्पष्ट प्रमाण है। जिस व्यक्ति का जीवन आपके जीवन के जितना अनुरूप होगा उतना ही अधिक वह अपने जीवन में सफल समझा जाएगा।
4. अर्थात उसे हर समय मुहताजी और ग़रीबी का भय लगा रहता है। एकाग्रचितता और मन की शान्ति और परितोष से वह सदा वंचित रहता है। इन तमाम परेशानियों और आपत्तियों के उपरांत भी दुनिया उसे उससे अधिक नहीं मिलती जो उसके लिए

कामों को छिन्न-भिन्न कर देता है और दुनिया उसे बस उतनी ही मिलती है जितनी उसके लिए निश्चिय होती है। —तिरमिज़ी, दारमी, अहमद

23. अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : मेरे मित्रों में सबसे बढ़कर वह ईमानवाला व्यक्ति है जिससे स्पर्द्धा की जाए, जो हल्का-फुल्का (भारमुक्त) हो, नमाज़ में उसका हिस्सा हो, अपने रब (पालनकर्ता स्वामी) की इबादत उत्तम ढंग से करता हो, और उसका आज्ञापालन छिपाकर करता हो, और लोगों में गुमनामी की हालत में हो, उसकी ओर उँगलियों से संकेत न किए जाते हों, उसकी रोज़ी बस इतनी ही हो कि काम चल जाए और उसे उसपर सन्तोष हो। फिर आपने अपने हाथ की चुटकी बजाई और कहा : जल्द आ गई उसकी मृत्यु, उसके लिए रोनेवाली स्त्रियाँ भी कम हैं और उसका तरका (छोड़ा हुआ धन) भी थोड़ा है।[1] —अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने माजा

24. अबू हुरैरा (रज़ि०) और अबू ख़ल्लाद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब तुम किसी बन्दे को देखो कि उसे दुनिया के प्रति उदासीनता और अल्प भाषिता (कम बोलने की रुचि) प्रदान की गई है तो उसका सामीप्य प्राप्त करो, क्योंकि उसकी ओर 'हिकमत' (तत्वदर्शिता)

अल्लाह के यहाँ पहले से नियत हो चुकी होती है। मानसिक शान्ति और मन की धीरता खोकर भी वह उससे अधिक कुछ नहीं पाता जो उसे मिलना ही था।

इस हदीस को इमाम अहमद और दारमी ने अबान और ज़ैद बिन साबित अनसारी से रिवायत किया है।

1. आप (सल्ल०) के कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जीवन में देखने की मूल चीज़ यह नहीं है कि मनुष्य के पास धन-सम्पत्ति की अधिकता है और जिस ओर से वह गुज़रे लोगों की निगाहें उसकी ओर उठती हों। लोग उसकी ओर संकेत करके कहते हों कि यह तो अमुक व्यक्ति के बेटे फ़लाँ हैं, बल्कि जो चीज़ जीवन में अपना विशेष मूल्य रखती है वह मनुष्य का अपने ईश्वर से सम्पर्क और सम्बन्ध है। ईश्वर से संबंध यदि ठीक हैं तो फिर उसका जीवन प्रशंसनीय है। ऐसा व्यक्ति यदि भारमुक्त है तो वह अपने धर्म के लिए अधिक समय निकाल सकेगा। वह ज़्यादा-से-ज़्यादा अल्लाह की बन्दगी और इबादत में अपने को लगा सकेगा। मृत्यु उसे संसार से विदा करने आएगी तो वह बोझल और भारग्रस्त होकर नहीं, बल्कि हल्का-फुल्का होकर अल्लाह के यहाँ हाज़िर हो सकेगा। न उसके पीछे धन-सम्पत्ति और तरका का कोई झगड़ा खड़ा होगा और न उसके यहाँ रोनेवाली अधिक स्त्रियों की संख्या होगी।

प्रेषित की जाती है।[1] —बैहक़ी, शोबुल ईमान

25. अबू ज़र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो बन्दा दुनिया की ओर से उदासीन हो जाए, अल्लाह अवश्य उसके दिल में हिकमत (तत्वदर्शिता) उगाएगा और उसकी ज़बान पर उस (हिकमत) को जारी करेगा, और दुनिया का ऐब और उसका रोग और उसका इलाज उसे सुझाएगा, और उसे वहाँ से सलामती (कुशलता) के साथ निकालकर दारुस्सलाम (सलामती के घर अर्थात जन्नत) में पहुँचा देगा।[2] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

---

1. ऐसा व्यक्ति सत्य का पारखी होता है। उसकी ज़बान पर ऐसी बातें आती हैं जो ज्ञान और 'हिकमत' (तत्वदर्शिता) का सार होती हैं। ऐसे व्यक्ति की संगति अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध होती है। इसके विपरीत ग़ाफ़िल आदमी जो संसार के लोभ में ग्रस्त हो उसकी आवाज़ भी ग़फ़लत में डूबी हुई होगी। उसकी संगति व्यक्ति के लिए अत्यन्त आशंकापूर्ण हो सकती है; किन्तु ऐसे व्यक्ति की संगति जिसकी ओर हिकमतों और ज्ञान का अवतरण होता हो अत्यन्त लाभप्रद और कल्याणकारी है। इसलिए आप ऐसे व्यक्ति का सामीप्य ग्रहण करने की शिक्षा दे रहे हैं।

   यह हदीस बताती है कि सांसारिक मोहमाया और व्यर्थ वार्तालाप आत्मिक विकास के लिए घातक है। व्यर्थ वार्तालाप और दुनिया का बढ़ा हुआ मोह मनुष्य की अन्तरात्मा को मुरदा बना देता है। ऐसे हृदय का प्रकाश अत्यन्त मन्द हो जाता है। ऐसे हृदयों में हिकमत और रहस्य-ज्ञान का अवतरण नहीं होता। ऐसे व्यक्ति की बातचीत से मन को जीवन नहीं मिलता और न उससे मनुष्य के ईमान को ताज़गी मिलती है। हिकमत (तत्वदर्शिता एवं ज्ञान) वास्तव में अल्लाह की ओर से एक नक़द इनाम (पुरस्कार) है। क़ुरआन मजीद में भी कहा गया है : "जिसे हिकमत (wisdom) प्रदान की गई उसे बड़ी दौलत दी गई।" —क़ुरआन, 2 : 269

2. अर्थात मनुष्य जब दुनिया से बेपरवा हो जाता है और उसके जीवन में पवित्रता आ जाती है, सांसारिक मोह-माया की लिप्सा उसमें शेष नहीं रहती, तो अल्लाह उसके दिल में हिकमत और ज्ञान को बढ़ाता है और उसकी ज़बान और लेखनी से ज्ञान और हिकमत (wisdom) की ऐसी बातें निकलने लगती हैं जिनसे हृदय को आहार और मन एवं मस्तिष्क को बल मिलता है। दुनिया की बुराइयाँ और रोग उसपर स्पष्ट हो जाते हैं। अल्लाह की दी हुई अन्तर्दृष्टि से रोगों के वास्तविक इलाज और उनके दूर करने के उपाय को भी वह पा लेता है। उसके द्वारा लोगों में सुधार होता है। फिर ऐसे व्यक्ति पर अल्लाह की विशेष कृपा यह होती है कि वह उसे ईमान और इस्लाम की सलामती के साथ इस दुनिया से उठाता और उसे जन्नत में जगह प्रदान करता है जहाँ हर तरह की सलामती और कुशलता है, जहाँ किसी प्रकार का भय और दुख नहीं पाया जाता।

26. मआज़ बिन जबल (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने जब उन्हें यमन की ओर भेजा तो कहा : अपने आपको विलासिता से बचाना क्योंकि अल्लाह के विशेष बन्दे विलासी नहीं होते।[1] —अहमद

27. अबू ज़र (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आपने कहा : दुनिया के बारे में उदासीनता (ज़ुहद) हलाल (वैध चीज़ों) को अपने ऊपर हराम (अवैध) कर लेने और माल को बरबाद करने का नाम नहीं बल्कि दुनिया के प्रति ज़ुहद यह है कि जो कुछ तुम्हारे हाथ में हो उससे अधिक भरोसा और विश्वास तुम्हें उसपर हो जो अल्लाह के हाथ में है और यह कि जब तुम मुसीबत में हो तो उस मुसीबत (और विपत्ति) का सवाब (फल) तुम्हें इतना प्रिय हो कि तुम इसकी इच्छा करो कि काश यह मुसीबत बाक़ी रहे।[2] —तिरमिज़ी, इब्ने माजा

---

1. अर्थात अल्लाह के विशेष बन्दों की निगाह में तो आख़िरत का जीवन होता है, वे उसी के निर्माण में लगे होते हैं। वे संसार के भोग-विलास में नहीं लगे रहते। वे दुनिया पर मोहित नहीं होते। उनके दिमाग़ में हर समय आख़िरत की चिन्ता बनी रहती है। यदि वास्तविक रूप से मनुष्य को आख़िरत की चिन्ता हो जाए तो स्वभावतः विलासिता के लिए उसके पास समय ही नहीं रहेगा। उसका सारा ध्यान 'आख़िरत' की तैयारी में लग जाएगा। वह अल्लाह की प्रदान की हुई चीज़ों से फ़ायदा उठाएगा किन्तु उस तरह नहीं जिस तरह एक दुनियादार व्यक्ति उठाता है बल्कि वह उससे इस तरह फ़ायदा उठाएगा जिस तरह एक ज़िम्मेदार और अमानतदार व्यक्ति किसी चीज़ से फ़ायदा उठाता है। उसे हर समय इसका खटका रहेगा कि एक दिन उसे अल्लाह की दी हुई तमाम नेमतों का हिसाब देना है।
2. कुछ लोग भ्रम से यह समझते हैं कि ज़ुहद और परहेज़गारी (त्याग और संयम) इस चीज़ का नाम है कि मनुष्य अल्लाह की दी हुई नेमतों और सुख-सामग्री से किनारा कर ले। नबी (सल्ल०) ने ज़ुहद, त्याग और उदासीनता की इस कल्पना का सुधार किया और बताया कि त्याग अपने आशय की दृष्टि से किसी प्रत्यक्ष वस्तु का नाम नहीं है, बल्कि ईमान के इस भाव का नाम है कि मनुष्य का वास्तविक भरोसा उन चीज़ों से अधिक जो उसके हाथ में हैं, उस चीज़ पर हो जो अल्लाह के हाथ में है और जिसका उसने अपने बन्दों से वादा किया है। उसी की अधिक-से-अधिक इच्छा मनुष्य को होनी चाहिए जिसका वादा अल्लाह ने अपने वफ़ादार बन्दों से किया है। यदि यह बात आदमी के अन्दर पैदा हो जाए तो स्वभावतः वह दुनिया के मोहमाया और विलासिता से छुटकारा पा लेगा। उसकी ज़्यादा-से-ज़्यादा कोशिश इसके लिए होगी कि वह उस चीज़ का अधिकारी बन सके जो अल्लाह के हाथ में है। उसका भरोसा सदैव अल्लाह

28. अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ऐ अल्लाह ! मुहम्मद के सम्बन्धी लोगों की रोज़ी उतनी हो जितने से उनका काम चल जाए।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

29. महमूद बिन लबीद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : दो चीज़ें ऐसी हैं जो आदम के बेटे (मनुष्य) को अप्रिय हैं। मृत्यु उसे अप्रिय है हालाँकि मृत्यु ईमानवाले के लिए फ़ितना से अच्छी है। उसे धन की कमी और निर्धनता अप्रिय है हालाँकि धन की कमी (आख़िरत के) हिसाब को बहुत संक्षिप्त कर देती है।[2] —अहमद

30. इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि (एक बार) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) चटाई पर सोए। जब उठे तो आपके शरीर पर उस (चटाई) के निशान पड़े हुए थे, तो इब्न मसऊद (रज़ि०) ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! काश आप

की कृपा और उसके शाश्वत और अक्षय कोष पर होगा, न कि नाशवान चीज़ों पर। ज़ुहद और त्याग की दूसरी निशानी इस हदीस में यह बताई गई है कि मनुष्य पर जब कोई मुसीबत और संकट आ जाए तो अल्लाह ने उस मुसीबत के कारण जो सवाब और प्रतिदान बन्दे के लिए नियत किया है उसकी चाहत वह अपने मन में इस इच्छा की अपेक्षा कि वह मुसीबत और संकट उसपर न आया होता, ज़्यादा महसूस करे। यह बात आदमी के अन्दर उसी समय पैदा हो सकेगी जबकि सांसारिक सुख-सामग्री के मुक़ाबले में वह कहीं ज़्यादा आख़िरत के लिए चिन्तित हो। आख़िरत की चिन्ता ही वास्तव में ज़ुहद और त्याग का आधार है। इस हदीस का अर्थ यह कदापि नहीं है कि मनुष्य तकलीफ़ और मुसीबत की कामना करे बल्कि इस हदीस का वास्तविक अभिप्राय यह है कि मनुष्य के लिए सबसे अधिक प्रिय वस्तु वह सवाब और प्रतिदान हो जो आख़िरत में मिलनेवाला है।

1. अर्थात उनके लिए इतनी रोज़ी प्रदान करे कि जितने में उनका काम चल सके। इस हदीस से मालूम हुआ कि इस दुनिया में यदि मनुष्य को आवश्यकतानुसार रोज़ी हासिल है तो उसे अल्लाह का आभारी होना चाहिए।
2. किसी फ़ितना और आपत्ति में पड़ने से अच्छा यह है कि मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाए और वह हर तरह के फ़ितनों से सुरक्षित हो जाए। निर्धन व्यक्ति को धन-दौलत की कमी का एहसास सताता है हालाँकि उसे सोचना चाहिए कि माल अपने साथ बड़ी ज़िम्मेदारियाँ और आज़माइशें लेकर आता है। माल यदि कम है तो क़ियामत में उसका हिसाब भी थोड़ा ही होगा और क़ियामत में बहुत जल्द वह हिसाब की कठिन समस्या से निवृत्त हो जाएगा।

हमें हुक्म दें तो हम आपके लिए बिस्तर बिछा दें और कोई काम करें। आपने कहा : मुझे दुनिया से क्या मतलब? मेरा और इस दुनिया का सम्बन्ध तो बस ऐसा है जैसे कोई सवार किसी वृक्ष के नीचे छाया लेने को ठहरे और फिर उसे छोड़कर (अपनी मंज़िल की ओर) चल दे।[1] —अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने माजा

31. अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम किसी फ़ाजिर (दुस्साहसी, मर्यादाहीन) की किसी नेमत और सुख-सामग्री को देखकर ईर्ष्या न करना, इसलिए कि तुम नहीं जानते कि उसे अपनी मृत्यु के पश्चात किस चीज़ का सामना करना है। अल्लाह के यहाँ (आख़िरत में) उसके लिए ऐसा हत्यारा है जिसे मृत्यु नहीं।[2] —अल-बग़वी : शरहुस्सुन्नह

32. हज़रत मुआविया (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उन्होंने हज़रत आइशा (रज़ि०) को पत्र लिखा और उसमें निवेदन किया कि आप मुझे कुछ उपदेश दें जो विस्तृत न हो (अर्थात बात संक्षेप में हो) तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने लिखा :

सलाम हो तुमपर! मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना है कि

---

1. मतलब यह कि जब दुनिया हमारी असल मंज़िल नहीं है तो फिर यहाँ के सुख-वैभव के लिए हम अधिक चिन्तित क्यों हों। क्या वह सवार जो छाया के लिए किसी वृक्ष के नीचे थोड़ी देर के लिए ठहरता है, वृक्ष के नीचे विश्राम-गृह बनाने की कोशिशें करता है या आगे अपनी मंज़िल की ओर बढ़ने की चिंता होती है? बुद्धिमानी की बात तो यह है कि मनुष्य सांसारिक सुख और भोग-विलास की सामग्री जुटाने में अपने अधिक समय और शक्ति को नष्ट करने के बजाए अपने समय और शक्ति को अधिक से अधिक आख़िरत के निर्माण में लगाए।
2. अर्थात ऐसा व्यक्ति जिसे अन्त में जहन्नम की अग्नि में जलना है उसके अस्थायी सुख और वैभव को ललचाई हुई निगाह से देखना मूर्खता है। वास्तव में देखने की चीज़ मनुष्य का परिणाम और उसकी आख़िरत है न कि दुनिया के थोड़े दिनों का सुख और आराम। क्या फाँसी की सज़ा पानेवाले अपराधियों को फाँसी की तिथि से पहले जो सुविधाएँ दी जाती हैं और खाने-पीने के सिलसिले में उसकी जो इच्छा पूरी की जाती है उसपर किसी को ईर्ष्या हो सकती है? ठीक यही मिसाल अल्लाह के अवज्ञाकारी लोगों और उसके विद्रोहियों की है। उन्हें संसार में यदि कुछ सुविधाएँ प्राप्त हैं तो उनकी हैसियत बस मृत्यु-दण्ड पानेवाले अपराधी को मिलनेवाली सुविधाओं की-सी है जिसे कोई व्यक्ति ललचाई हुई निगाह से नहीं देखता। उसके सामने तो उस अपराधी का भयंकर परिणाम होता है। इस हदीस में हत्यारे से अभिप्रेत संभवतः जहन्नम की अग्नि है जो कभी ठंडी न होगी।

आप कहते थे कि जो व्यक्ति लोगों को अप्रसन्न करके अल्लाह को राज़ीकरना चाहे तो अल्लाह उसे लोगों की चिन्ता से बेपरवा कर देगा और जो व्यक्ति अल्लाह को अप्रसन्न करके लोगों को राज़ी करना चाहेगा अल्लाह उसे लोगों के ही हवाले कर देगा।[1] और सलाम तुमपर। —तिरमिज़ी

33. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति दुनिया की हलाल (वैध) नेमतों को इस ध्येय से प्राप्त करना चाहे कि उसे दूसरों से माँगना न पड़े और अपने घरवालों के लिए रोज़ी और सुविधा-सामग्री संचित हो सके और अपने पड़ोसियों के साथ एहसान और मेहरबानी का बरताव कर सके, तो वह क़ियामत के दिन सर्वोच्च अल्लाह से इस अवस्था में मिलेगा कि उसका चेहरा पूर्णिमा के चन्द्र के समान कान्तिमय होगा। और जो व्यक्ति दुनिया की हलाल नेमतों (वैध सुख-सामग्री) इस ध्येय से प्राप्त करना चाहे कि वह बहुत बड़ा धनवान हो जाए और दूसरों के मुक़ाबले में अपनी शान ऊँची दिखा सके और (लोगों की दृष्टि में बड़ा बनने के लिए) दिखावे और प्रदर्शन के कार्य कर सके, तो (क़ियामत के दिन) वह सर्वोच्च

1. हज़रत आइशा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) का जो उपदेश अपने पत्र में उद्धृत किया है वह यद्यपि शब्दों की दृष्टि से अत्यन्त संक्षिप्त है लेकिन अपने अभिप्राय, अर्थ और उद्देश्य की दृष्टि से विस्तृत भण्डार है। आपके उपदेश का सारांश यह है कि मनुष्य को वास्तव में चिन्ता इसकी होनी चाहिए कि उसे दुनिया और आख़िरत में अल्लाह की प्रसन्नता कैसे प्राप्त हो। उसे ऐसे काम में दिल खोलकर हिस्सा लेना चाहिए जिससे अल्लाह राज़ी होता है। यदि इससे दूसरे लोग अप्रसन्न होते हैं तो हुआ करें। ऐसे अवसर पर जबकि लोगों की ख़ुशी अल्लाह की ख़ुशी से टकरा रही है, मनुष्य को अल्लाह की ही ख़ुशी का पालन करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो अल्लाह उसे बेपरवा कर देगा, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति का स्वयं प्रबन्ध करेगा, उसकी ज़रूरतें इस तरह पूरी होंगी कि वह पहले से उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन यदि उसे अल्लाह की प्रसन्नता की कोई चिन्ता नहीं है, बल्कि वह मनुष्य को राज़ी करने में सारी सफलता समझता है तो ऐसे व्यक्ति का ज़िम्मेदार अल्लाह नहीं होता। अल्लाह उसे लोगों के ही हवाले कर देता है और वह उनकी दासता से कभी छुटकारा नहीं पा सकता। अल्लाह के संरक्षण से वंचित होकर वह ऐसे लोगों के हवाले कर दिया जाता है जो उसी की तरह निर्बल और विवश होते हैं।

अल्लाह से इस अवस्था में मिलेगा कि अल्लाह उसपर क्रुद्ध होगा।[1]

—बैहक़ी : शोबुल ईमान

34. अबू बकरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! लोगों में उत्तम कौन है? आप (सल्ल०) ने कहा : वह जिसकी आयु दीर्घ हुई और कर्म उसका अच्छा रहा। उसने निवेदन किया : लोगों में बुरा कौन है? कहा : जिसकी आयु दीर्घ हुई और कर्म उसका बुरा रहा।[2]

—अहमद

35. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत के दिन दर्जे की दृष्टि से सबसे बुरा आदमी वह है जिसने अपनी आख़िरत को दूसरों की दुनिया के पीछे नष्ट कर दिया। —इब्ने माजा

36. हज़रत उसमान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : इन चीज़ों के अतिरिक्त आदम के बेटे का किसी चीज़ पर कोई हक़ नहीं है : रहने के लिए घर, शरीर ढकने को कपड़ा, सूखी रोटी और जल।[3] —तिरमिज़ी

37. हज़रत अम्र (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने एक दिन ख़ुतबा (भाषण) दिया। आपने अपने ख़ुतबे में कहा : सावधान! दुनिया एक अस्थिर पूँजी है, उसमें से नेक भी खाता है और बुरा भी, और निश्चय ही आख़िरत एक

1. मालूम हुआ कि नीयत यदि ठीक और उद्देश्य अच्छा है तो वैध रूप से माल-दौलत प्राप्त करने में कोई दोष नहीं है, बल्कि ऐसा व्यक्ति अल्लाह के यहाँ सफल होगा। लेकिन यदि धनोपार्जन के पीछे केवल यह भावना है कि वह संसार का धनी व्यक्ति बन जाए और लोगों पर अपनी बड़ाई जताए और दिखावे और प्रदर्शन के कार्य करे तो, चाहे वह वैध रूप से ही दौलत हासिल करे क़ियामत के दिन वह अल्लाह के प्रकोप से बच नहीं सकता। और यदि वह हराम और अवैध रूप से धन एकत्र करता है तो ऐसी दशा में उसके लिए और भी अधिक रुसवाई और तबाही है।
2. आयु का दीर्घ होना एक नेमत और ईश्वरीय प्रसाद है शर्त यह है कि इसके साथ कर्म भी अच्छे हों। यदि कर्म अच्छे नहीं हैं तो नेमत होने के बजाए उसकी आयु उसके लिए घाटा और संताप का ही कारण बनेगी।
3. अर्थात मनुष्य की यदि बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो रही हैं तो यह उसके लिए काफ़ी है। उसे चिन्ता अधिक से अधिक जिस बात की होनी चाहिए वह यह कदापि नहीं है कि वह अधिक से अधिक अपने जीवन को सांसारिक सुख-सामग्री से सम्पन्न करे, बल्कि उसे अधिक से अधिक अपनी इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने में लग जाना चाहिए जो ज़िम्मेदारी अल्लाह की ओर से उसपर डाली गई है।

सच्चा निश्चित समय है[1] जिसमें सामर्थ्यवान सम्राट (ईश्वर) फ़ैसला करेगा। सावधान! समस्त भलाइयाँ अपने तमाम पहलुओं और दिशाओं के साथ जन्नत में हैं।[2] सावधान! समस्त बुराइयाँ अपने तमाम पहलुओं और दिशाओं के साथ (जहन्नम की) आग में हैं।[3] अतः सावधान होकर तुम जान लो और अल्लाह से डरते रहो और इस बात को याद रखो कि तुम्हें तुम्हारे कर्मों के साथ (अल्लाह के समक्ष) पेश किया जाएगा, तो जो व्यक्ति कण-भर भी भलाई करेगा वह उसे देख लेगा और जो कण-भर भी बुराई करेगा वह उसे देख लेगा।[4] —शाफ़ई

38. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : चार चीज़ें हैं यदि वे तुममें पाई जाएँ तो दुनिया (सांसारिक वैभव) के नष्ट होने की तुम्हें कोई परवाह न होनी चाहिए : अमानत की हिफ़ाज़त करना, सत्य बात कहना, स्वभाव का अच्छा होना और खाने में संयम का ध्यान रखना।[5] —अहमद, अल-बैहक़ी : शोबुल ईमान

---

1. अर्थात आख़िरत का दिन निश्चित है वह अपने समय पर आकर रहेगी। यह बात प्रमाणिक रूप से भी सिद्ध है और मनुष्य की अन्तरात्मा भी इसी बात की साक्षी है।
2. यहाँ एक बड़ी वास्तविकता की ओर संकेत किया गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से जन्नत भलाई, नेकी, सत्यम, शिवम, सुन्दरम का केन्द्र और उद्‌गम है। सारी भलाइयों की वह चरम सीमा और लक्ष्य है। बाह्य और आंतरिक हर प्रकार की भलाइयों का पूर्ण रूप जन्नत है। भलाई के अतिरिक्त मनुष्य वहाँ और कुछ नहीं देखेगा। जो भलाई और नेकी से भागता है वह वास्तव में उस जन्नत से भागता है जो उसकी आत्मा की परम स्थिति है, जिसकी खोज उसकी आत्मा को है, जिसकी प्राप्ति की कोशिश और साधना उसकी आत्मा को करना है और जिसमें प्रवेश पाने योग्य यहाँ अपने को बनाना है। जन्नत ईश्वर का सामीप्य पाने का वास्तविक स्थान है। जन्नत के वातावरण में निवास करना वास्तव में ईश्वर की अनन्त दयालुता की प्राप्ति है।
3. जहन्नम मनुष्य की अधमता और बिगाड़ की अन्तिम स्थिति है। जहन्नम समस्त बुराइयों का केन्द्र और मंज़िल है। जहन्नम से बढ़कर किसी असुन्दर और दुखदायिनी चीज़ की कल्पना नहीं की जा सकती। जो व्यक्ति बुराइयों में लिप्त रहता है वह वास्तव में 'जहन्नम' की ओर बढ़ता और अपने को तबाही के गड्ढे में गिराता है।
4. दे० क़ुरआन, सूरा-99, आयत 7-8।
5. यह बात जीवन की पवित्रता और आख़िरत के दृष्टिकोण से कही गई है।

ईमान और इस्लाम

ईमान का प्रतिफल और उसके लक्षण

1. अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ईमान की सत्तर से कुछ ऊपर शाखाएँ हैं, उनमें सबसे उत्तम तो यह कहना और मान लेना है कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं और (इसके मुक़ाबले में) उनमें सबसे छोटी (शाखा) तकलीफ़ देनेवाली चीज़ों का रास्ते से हटा देना है, और लज्जा भी ईमान की एक शाखा है।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

2. अबू उमामा (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा : ईमान क्या है? आपने कहा : जब तुम्हें अपने शुभ कर्म से प्रसन्नता और अपने बुरे कर्म से तकलीफ़ और ख़ेद हो तो तुम ईमानवाले हो।[2] —अहमद

3. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि तीन चीज़ें ऐसी हैं कि जिस व्यक्ति में वे हों उसे ईमान की मिठास प्राप्त होगी : यह कि अल्लाह और उसका रसूल उसे अन्य सभी चीज़ों से अधिक प्रिय

---

1. ईमान अपने विस्तृत रूप में ज़ीवन के सभी क्षेत्रों और अंगों से सम्बन्ध रखता है। मनुष्य की धारणाओं और विचारों से लेकर उसके छोटे-बड़े हर कर्म में उसकी अभिव्यक्ति होती है। ईमान से मनुष्य का एक विशेष प्रकार का स्वभाव बनता है और उससे विशेष प्रकार के जीवन का निर्माण होता है। ईमान की हैसियत एक ऐसे बीज की है जो मनुष्य के हृदय में अपनी जड़ जमाता है फिर उसके अनुसार व्यावहारिक जीवन का वृक्ष अपनी शाखाओं और पत्तियों के साथ बढ़ता और फलता-फूलता है। इस्लाम ने तौहीद (एकेश्वरवाद) की जो शिक्षा दी है उसका सम्बन्ध जीवन के किसी सीमित भाग से नहीं है, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति जीव के प्रत्येक पहलू और उसके व्यक्तिगत और सामाजिक समस्त क्षेत्रों में होती है। इस्लाम में ईमान, नैतिकता और कर्म का ऐसा समन्वय पाया जाता है जिसके सौन्दर्य और पूर्णता को हर सूझ-बूझ रखनेवाला व्यक्ति स्वीकार करता है।
2. यह हदीस बताती है कि ईमान का मनुष्य के कर्म से गहरा संपर्क है। यह मनुष्य के ईमान का ही फल है कि जब उसे अच्छे कर्म करने का सौभाग्य प्राप्त होता है तो उसे प्रसन्नता होती है और यदि उससे कोई ग़लत काम हो जाता है तो उसे पछतावा और दुख होता है।

हों, उसे जिस व्यक्ति से प्रेम हो अल्लाह ही के लिए प्रेम हो और कुफ़्र की ओर पलटना उसे उतना ही अप्रिय हो जितना अप्रिय उसे यह बात है कि उसे आग में डाल दिया जाए।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत अब्बास (रज़ि०) बिन अब्दुल मुत्तलिब से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना, आप कहते थे : ईमान का रसास्वादन उसने कर लिया जो अल्लाह के रब होने, इस्लाम के दीन होने और मुहम्मद के रसूल होने पर राज़ी हो गया।[2] —मुसलिम

---

1. इस हदीस से मालूम होता है कि ईमान सर्वदा आनन्ददायक और सुस्वाद वस्तु है। इस हदीस में जिन तीन मौलिक बातों का उल्लेख है वे वास्तव में पूर्ण ईमान के लक्षण हैं। ईमानवाले व्यक्ति को अल्लाह और रसूल की प्रियता की पहचान होती है। इसलिए उसे अल्लाह और उसका रसूल सबसे अधिक प्रिय होते हैं। वह बस एक अल्लाह का सेवक एवं दास होता है। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य ईश-प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। अल्लाह की प्रसन्नता में ही उसे वास्तविक आनन्द मिलता है। जिस किसी से भी उसकी मित्रता होगी अल्लाह ही के लिए होगी, जिस किसी से उसका वैर होगा अल्लाह ही के लिए होगा और जिससे वह कटेगा अल्लाह ही के लिए कटेगा, जिससे जुड़ेगा अल्लाह ही के लिए जुड़ेगा। अल्लाह ही के आदेशों पर उसके सारे प्रोग्राम आधारित होते हैं। ईमान के बाद कुफ़्र ग्रहण करना उसे उतना ही अप्रिय होता है जितना आग में डाला जाना। सांसारिक जीवन में भी कुफ़्र मानव-प्रकृति के लिए विनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आख़िरत में इसका परिणाम दोज़ख़ की आग के ही रूप में सामने आएगा।
2. यह हदीस बताती है कि ईमान कोई बेमज़ा चीज़ नहीं है बल्कि मनुष्य के लिए वह अत्यन्त सुखद एवं सुस्वाद वस्तु है। सुस्वाद वस्तु हम उसी को कहते हैं जिससे हमारी उमंगों और हमारी प्राकृतिक आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति होती हो, जिनसे हम आनन्दित होते हों। ईमान वास्तव में वास्तविक आनन्दों का स्रोत है। ईमान मानव-जीवन की एक आवश्यकता है। इसके बिना मनुष्य एक बड़ी नेमत से वंचित रहता है। यह दूसरी बात है कि उसे अपने वंचित होने का ज्ञान न हो। जिस व्यक्ति को वास्तविक ईमान प्राप्त होगा वह ईमान के स्वाद से अनभिज्ञ नहीं रह सकता। वास्तविक एवं पूर्ण ईमान मनुष्य को उसी समय प्राप्त होगा जबकि उसे अपने रब (पालनकर्त्ता प्रभु) की और उसके उतारे हुए दीन (धर्म) और रिसालत की पहचान हो। फिर तो यह संभव ही नहीं है कि अल्लाह को वह दिल से अपना रब न माने या इस्लाम को स्वेच्छापूर्वक अपना धर्म स्वीकार न करे और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अपना रसूल और मार्गदर्शक न माने। अल्लाह की प्रभुता और बड़ाई का इक़रार

5. हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से उत्तम ईमान के बारे में पूछा। आप (सल्ल०) ने कहा : "यह कि अल्लाह ही के लिए तुम किसी से प्रेम करो, और अल्लाह ही के लिए तुम किसी से द्वेष और घृणा करो और अपनी जिह्वा को अल्लाह के ज़िक्र में लगाए रहो।" (हज़रत मआज़ ने पूछा :) और क्या ऐ अल्लाह के रसूल? आप (सल्ल०) ने कहा : "और यह कि दूसरों के लिए भी वही पसन्द करो जो अपने लिए पसन्द करते हो और उनके लिए भी उसको नापसन्द करो जो अपने लिए नापसन्द करते हो।"[1] —अहमद

6. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसने अल्लाह ही के लिए प्रेम किया, अल्लाह ही के लिए द्वेष रखा, अल्लाह ही के लिए दिया और अल्लाह ही के लिए देने से रोका, उसने (अपने) ईमान को पूर्ण कर लिया।[2] —अबू दाऊद

7. अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ईमानवालों में सबसे पूर्ण ईमानवाला वह व्यक्ति है जिसका स्वभाव उनमें सबसे अच्छा हो।[3] —अबू दाऊद, दारमी

मानव-प्रकृति की पुकार है। इस्लाम जीवन का वह सहज और सरल मार्ग है जिसपर चलने के बाद ही मनुष्य की समस्त बाह्य एवं आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और उसके व्यक्तित्व को पूर्णता मिलती है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ऐसे मार्गदर्शक हैं जो हमें जीवन का स्वाभाविक मार्ग दिखाते हैं।

1. मतलब यह है कि ईमान की सबसे अच्छी स्थिति यह है कि मनुष्य का सम्बन्ध अल्लाह और उसके बन्दों के साथ ठीक हो। उसका दिल अल्लाह के प्रेम से परिपूर्ण हो, उसकी ज़बान पर अल्लाह का ज़िक्र हो। उसके समस्त कार्य और संकल्प के पीछे केवल अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने का ध्येय काम कर रहा हो। उसकी दोस्ती और दुश्मनी, प्रेम और द्वेष सब कुछ अल्लाह के हुक्म और उसके फ़ैसले के ही अधीन हो। उसके जीवन में ईश्वर इस प्रकार प्रवेश पा चुका हो कि उसके जीवन का अर्थ उसकी प्रसन्नता की प्राप्ति के अतिरिक्त और कुछ न हो।
2. मालूम हुआ कि आदमी के ईमान को पूर्ण उसी समय कहा जा सकता है जब कि उसका व्यावहारिक जीवन ईमान के साँचे में ढल गया हो। यह संभव ही नहीं है कि मनुष्य के ईमान में तो कोई कमज़ोरी और त्रुटि न हो, परन्तु उसके व्यावहारिक जीवन पर ईमान की कोई छाप न पड़े।
3. आदमी के स्वभाव और चरित्र से उसका ईमान प्रदर्शित होता है। यदि किसी के ईमान ने नैतिक दृष्टि से उसे ऊँचा नहीं उठाया तो यह इस बात का प्रमाण है कि अभी उसके

8. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मुसलिम वह है जिसकी ज़बान और जिसके हाथ से मुसलमान सुरक्षित रहें।[1] और मुहाजिर (त्यागकर्त्ता) वह है जिसने उन चीज़ों को छोड़ दिया जिनको अल्लाह ने वर्जित किया है।[2] ये शब्द बुख़ारी के हैं मुसलिम (की हदीस) में है कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) से पूछा कि उत्तम मुसलिम कौन है? आपने कहा : वह व्यक्ति जिसकी ज़बान और जिसके हाथ से मुसलमान सुरक्षित रहें। —बुख़ारी, मुसलिम

9. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मुसलिम वह है जिसकी ज़बान और जिसके हाथ से मुसलमान सुरक्षित रहें।[3]

यह तिरमिज़ी और नसई की रिवायत है और बैहक़ी ने शोबुल ईमान में फ़ुज़ाला (रज़ि०) से जो रिवायत की है उसमें ये शब्द भी हैं :

और 'मुजाहिद' वह है जिसने अपने आपसे जिहाद (संघर्ष) किया और मुहाजिर (त्यागकर्त्ता) वह है जिसने ख़ताओं और गुनाहों को छोड़ दिया।[4]

—तिरमिज़ी, नसई, बैहक़ी : शोबुल ईमान

10. अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) का बयान है कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि उस (अल्लाह) की क़सम जिसके हाथ में

ईमान में त्रुटि है। उसकी ईमानी हालत जितनी अच्छी होगी उसका स्वभाव और चरित्र भी उतना ही उच्च और महान होगा।

1. अर्थात जो न अपनी ज़बान से किसी मुसलमान को दुःख या हानि पहुँचाए और न ही अपने हाथों से किसी मुसलमान को कष्ट दे, वही वास्तव में मुस्लिम है।
2. अर्थात हिजरत केवल यही नहीं है कि आदमी अल्लाह की राह में घरबार छोड़ दे, बल्कि वास्तविक हिजरत तो यह है कि मनुष्य उन सभी चीज़ों को त्याग दे जो अल्लाह को नापसन्द हैं, जिनसे उसने हमें रोका है।
3. अर्थात न वह लोगों का नाहक़ रक्तपात करे और न उनकी सम्पत्ति आदि को हानि पहुँचाए, लोगों को उससे किसी प्रकार का भय न हो।
4. अर्थात् वास्तव में सच्चा जिहाद करनेवाला वह है जो अपनी वासनाओं और इच्छाओं को क़ाबू में रखे और उन्हें अल्लाह के आदेशों के अधीन रखे। अल्लाह की बन्दगी और आज्ञापालन से कभी विमुख न हो। मालूम हुआ कि जिहाद का अवसर रण-क्षेत्र ही में नहीं, बल्कि प्रत्येक समय इसका अवसर रहता है।

मुहम्मद की जान है कि मोमिन (ईमानवाले) की मिसाल सोने के टुकड़े की-सी है जिसके मालिक ने उसे तपाया फिर न तो उसमें कोई परिवर्तन हुआ और न उसमें कोई कमी हुई। उस (अल्लाह) की क़सम जिसके हाथ में मुहम्मद की जान है, मोमिन की मिसाल उस मधुमक्खी की-सी है जिसने उत्तम पुष्प का रस चूसा और उत्तम मधु बनाया। और जिस शाखा पर बैठी न तो उसे तोड़ा और न ख़राब किया।[1] —अहमद

11. अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : यह बात मनुष्य के इस्लाम की ख़ूबी और सौन्दर्य में से है कि वह व्यर्थ बातों को छोड़ दे।[2] —इब्ने माजा, तिरमिज़ी, बैहक़ी : शोबुल ईमान

---

1. अर्थात मोमिन (ईमानवाला) असली सोने की तरह खरा होता है। तपाने से न तो उसके रंग में कोई अन्तर आता है और न भार में। मोमिन व्यक्ति का आचार शुद्ध होता है। भलाई और कल्याणकारी बातों के अतिरिक्त और कोई चीज़ उससे व्यक्त नहीं होती। वह किसी को हानि नहीं पहुँचाता।
2. मनुष्य का दीन और ईमान जितना अधिक पूर्ण होगा उतना ही अधिक उसके स्वभाव और कर्म में शुद्धता और सौन्दर्य पाया जाएगा। आदमी यदि व्यर्थ बातों को छोड़ देता है तो वह अपने इस अमल से इस बात का प्रमाण संचित करता है कि उसकी दीनी हालत अच्छी है। दीन व ईमान की माँगों को पूरा करके मनुष्य वास्तव में अपनी प्रकृति ही की माँगों को पूरा करता है। अपने इस्लाम को ठीक रखने का अर्थ इसके सिवा कुछ और नहीं है कि इस तरह मनुष्य अपने जीवन को सँवारता और उसे अच्छे-से-अच्छा बनाने की कोशिश करता है। अपने इस्लाम की सुन्दरता को नष्ट करके मनुष्य वास्तव में अपने जीवन को सौन्दर्यहीन करता है। अल्लाह की बन्दगी और उसके आदेशों के पालन में ही मनुष्य को वास्तविक और सुखद जीवन प्राप्त होता है। मनुष्य को अल्लाह के आदेशों के पालन में वास्तविक उत्तम एवं पवित्रतम जीवन प्राप्त होता है।— "मनुष्य केवल रोटी से जीवित नहीं रहता, बल्कि उस कलिमा (Word) से जीवित रहता है जो प्रभु की ओर से आता है" (लूक़ा की इंजील 11 : 13)। अर्थात अल्लाह के आदेश ही मनुष्य को जीवन प्रदान करते हैं। यही बात क़ुरआन में इन शब्दों में कही गई है—"क्या जो मुरदा हो फिर हमने उसे जीवन प्रदान किया हो जिसे लेकर वह लोगों में चलता-फिरता हो, क्या उसकी तरह होगा जो अँधेरों में हो, उनसे निकलनेवाला न हो।" (6 : 122) क़ुरआन की इस आयत में ईमान को जीवन और अल्लाह के आदेशों के अनुपालन को प्रकाश लेकर चलने की संज्ञा दी गई है। दोनों चीज़ों में गहरा सम्बन्ध है।

12. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि बहुत कम ऐसा हुआ कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हमें ख़ुतबा (भाषण) दिया हो और यह न कहा हो कि उस व्यक्ति में ईमान नहीं जिसमें अमानतदारी नहीं और उसमें दीन (धर्म) नहीं जो प्रतिज्ञा का पाबन्द नहीं।[1] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

13. अम्र बिन अबसा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! इस्लाम क्या है? कहा : मधुर वाणी और भोजन कराना। मैंने कहा : ईमान क्या है? कहा : धैर्य और उदारहृदयता। मैंने कहा : कौन-सा इस्लाम उत्तम है? आपने कहा : (उसका) जिसकी ज़बान और हाथ से मुसलमान सुरक्षित रहें। मैंने कहा : कौन-सा ईमान उत्तम है? कहा : उत्तम स्वभाव।[2] मैंने कहा : कौन-सी नमाज़ उत्तम है? कहा : जो दीर्घ विनयभाव एवं दासता लिए हुए हो।[3] मैंने कहा : कौन-सी हिजरत उत्तम है? कहा : उन चीज़ों को छोड़ देना जिनको तेरा रब नापसन्द करता हो। उसके बाद मैंने कहा : कौन-सा जिहाद उत्तम है? कहा : उसका जिसका घोड़ा (जिहाद में) मारा जाए और स्वयं उसका भी रक्त बहाया जाए। मैंने कहा : कौन-सा समय उत्तम हैं? आपने कहा : रात्रि का अन्तिम अर्ध भाग। —अहमद

14. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : लज्जा और कम बोलना ईमान की दो शाखाएँ हैं, और दुर्वचन और वाचालता

1. अर्थात यह मनुष्य के ईमान ही की माँग है कि वह अमानतदार हो और अपने वचन का पक्का हो। विश्वासघात, छल-कपट आदि का वास्तव में ईमान के साथ कोई जोड़ नहीं है। ऐसे व्यक्ति का ईमान अत्यन्त कमज़ोर और अपूर्ण है जो अल्लाह पर और जीवन की उन वास्तविकताओं पर विश्वास भी रखता हो जिनकी सूचना अल्लाह के रसूल ने दी है और इसी के साथ न उसे अमानत का ख़याल रहता है और न वह अपने वचनों का आदर करता है।
2. दूसरी हदीसों की तरह यह 'हदीस' भी बताती है कि इस्लाम और ईमान का सम्बन्ध मनुष्य के केवल विचार और दृष्टिकोण से ही नहीं है बल्कि मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से भी इनका गहरा संपर्क है। मनुष्य का दीन (धर्म) और उसका ईमान उसके स्वभाव एवं चरित्र के माध्यम से व्यक्त होता है। मनुष्य का दीन और ईमान यदि ठीक है तो उसका जीवन उत्तम चरित्र एवं स्वभाव का प्रतीक होगा।
3. अर्थात वह नमाज़ जिसमें देर तक बन्दा अल्लाह के सामने खड़ा रहे, जिसमें देर तक क़ुरआन पढ़ा जाए और जिसमें विनयभाव और ईश-भय भी अधिक पाया जाए जो नमाज़ का वास्तविक तत्व है।

निफ़ाक़ (कपटाचार) की दो शाखाएँ हैं ।[1] —तिरमिज़ी

15. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि वह व्यक्ति मोमिन (ईमानवाला) ही नहीं जो पेट भरकर खाए और उसका पड़ोसी उसके पहलू में भूखा रह जाए ।[2]

—अहमद, बैहक़ी : शोबुल ईमान

16. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सर्वोच्च अल्लाह ने तुम्हारे बीच स्वभाव को इस प्रकार विभक्त किया है जिस प्रकार उसने तुम्हारी आजीविका को तुम्हारे बीच विभक्त किया है । सर्वोच्च अल्लाह दुनिया में उस व्यक्ति को भी देता है जिससे वह प्रेम करता है और उसे भी जिससे प्रेम नहीं करता, किन्तु दीन केवल उसको देता है जिससे वह प्रेम करता है ।[3] तो जिस किसी को अल्लाह ने दीन दिया है उससे उसे प्रेम है । और क़सम है उस (अल्लाह) की जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं बन्दा उस समय तक मुस्लिम नहीं होता जब तक उसका दिल और उसकी ज़बान मुस्लिम न हों ।[4] और वह उस समय तक मोमिन नहीं होता जब तक कि उसका

---

1. ईमानवाला व्यक्ति कभी दुर्भाषी और वाचाल नहीं हो सकता । दुराचार, अश्लीलता, असभ्यता आदि बातें मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) को ही शोभा देती हैं । लज्जा, दूसरों का आदर, बातचीत और व्यवहार में सभ्यता और मर्यादा का ध्यान रखना—ये ईमान के लक्षण हैं । ईमान वास्तव में समस्त मानवीय विशेषताओं और गुणों का सार है । इससे वंचित रहना विनाश के सिवा और कुछ नहीं है ।
2. ईमान का मनुष्य के स्वभाव और चरित्र से गहरा सम्बन्ध है । यह मनुष्य के ईमानी तक़ाज़ों के सर्वथा प्रतिकूल है कि वह स्वयं तो पेट भरकर खाए, परन्तु उसके पहलू ही में उसका पड़ोसी भूखा रह जाए ।
3. इस हदीस में दीन (धर्म) शब्द अच्छे स्वभाव के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है इससे मालूम हुआ कि दीन वास्तव में अच्छे स्वभाव ही का दूसरा नाम है । दीन और अच्छा स्वभाव जिसे मिल जाए समझ लीजिए उसपर अल्लाह की विशेष कृपा है ।
4. मनुष्य का इस्लाम उसी समय पूर्ण होता है जबकि उसका दिल और उसकी ज़बान भी मुस्लिम हो, उसके दिल में अल्लाह की बन्दगी और उसके प्रेमभाव के सिवा और कोई दूसरा भाव न हो, उसकी ज़बान से सत्य के सिवा और कोई दूसरी बात न निकलती हो, उसकी ज़बान अल्लाह की बड़ाई और उसकी संप्रभुता को स्वीकार करती हो और उसका अंतर और बाह्य समान हो और उसका दिल असत्य भावनाओं और विचारों से सर्वथा निर्लिप्त हो ।

पड़ोसी उसकी बुराइयों से सुरक्षित न हो। —अहमद

17. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अबू ज़र (रज़ि०) से कहा : ऐ अबू ज़र ! ईमान की कौन-सी शाखा अधिक मज़बूत है? उन्होंने कहा : अल्लाह और उसके रसूल ज़्यादा जानते हैं। आपने कहा : लोगों से अल्लाह के लिए मित्रता का सम्बन्ध रखना, अल्लाह के लिए प्रेम करना और अल्लाह ही के लिए शत्रुता रखना।[1]

—बैहक़ी : शोबुल ईमान

18. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : लज्जा ईमान का एक हिस्सा है और ईमान का स्थान जन्नत है और निर्लज्जता बदी में से है और बदी का ठिकाना (जहन्नम की) आग है।[2]

—अहमद, तिरमिज़ी

19. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : लज्जा और ईमान को एक साथ रखा गया है। इनमें से जब एक उठाया जाता है तो दूसरा भी उठा लिया जाता है। इब्ने अब्बास (रज़ि०) की रिवायत में है कि जब इनमें से एक छीन लिया जाता है, तो दूसरा भी उसी के साथ जाता रहता है।[3] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

1. मालूम हुआ कि ईमान का स्वभाव, चरित्र और मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से गहरा सम्बन्ध है। ईमान को यदि मनुष्य के नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन से अलग कर दिया जाए तो वह केवल निष्प्राण कल्पना होकर रह जाएगा।
2. ईमानवालों का शाश्वत निवास स्थान जन्नत और बुरे लोगों का ठिकाना जहन्नम है। 'लज्जा' ईमान की अनिवार्य माँग है। जिस व्यक्ति को अपना ईमान प्रिय हो उसके लिए आवश्यक है कि वह निर्लज्जता और अश्लील कर्मों से दूर रहे और दुष्चरित्रता को कभी न अपनाए, क्योंकि इससे यही नहीं कि ईमान को आघात पहुँचता है बल्कि इसकी भी आशंका रहती है कि कहीं उसका ईमान ही न छिन जाए।
3. अर्थात जिस प्रकार यह आवश्यक है कि जहाँ दीप हो वहाँ प्रकाश भी हो उसी प्रकार लज्जा और ईमान में भी गहरा सम्बन्ध है। इसी तरह यदि ईमान नहीं तो किसी लज्जा की आशा करनी मूर्खता है। इसी तरह यदि किसी के पास लज्जा नहीं तो समझ लेना चाहिए कि या तो वह ईमान से वंचित है या फिर उसका ईमान इतना निर्बल है कि जीवन में वह कोई प्रभावकारी शक्ति सिद्ध नहीं हो सकता।

ईमान की प्रेरणाएँ

1. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उहुद (की लड़ाई) के दिन एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) से कहा : बताइए, यदि मैं मारा जाऊँ तो कहाँ हूँगा?[1] आपने कहा : जन्नत में। यह सुनकर उसने अपने हाथ की खजूरें फेंक दीं फिर लड़ा यहाँ तक कि वीरगति को प्राप्त हुआ।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जन्नत तलवारों की छाया तले है।[3] यह सुनकर एक निर्बल व्यक्ति ख़ड़ा हुआ और कहा : ऐ अबू मूसा! क्या तुमने स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते सुना है? उन्होंने कहा : हाँ। इसके बाद वह अपने साथियों के पास आया और कहा : मेरा सलाम लो। फिर उसने अपनी तलवार का म्यान तोड़कर फेंक दिया और अपनी तलवार लेकर शत्रु पर आक्रमण कर दिया और लड़ा यहाँ तक कि शहीद हो गया।[4] —मुसलिम

3. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और आपके असहाब (सहचरवृन्द) निकले[5] यहाँ तक कि वे बद्र में मुशरिकों

---

1. अर्थात मैं कहाँ जाऊँगा, मेरा ठिकाना कहाँ होगा?
2. यह सुनने के पश्चात कि यदि वह सत्य और असत्य के युद्ध में सत्य की ओर से लड़ता हुआ मारा गया तो जन्नत में जाएगा, वह रण-भूमि में कूद पड़ा और लड़ता हुआ शहीद हो गया। उसके हाथ में कुछ खजूरें थीं उनको उसने पहले ही फेंक दिया था। उसे जिस चीज़ की आशा दिलाई गई थी उसने उसे खजूरों के रसास्वादन से बेपरवा कर दिया था।
3. अर्थात उन लोगों को जन्नत अवश्य मिलेगी जो अल्लाह की राह में लड़ें और अपनी तलवारों और हथियारों से असत्य का डटकर मुक़ाबला करें चाहे इस युद्ध में उन्हें अपने प्राण तक निछावर करने पड़ें।
4. जब उस व्यक्ति को विश्वास हो गया कि यह सूचना नबी (सल्ल०) ने दी है कि जन्नत तलवारों की छाँव में है तो इसके सत्य होने में उसे कोई सन्देह नहीं रहा। फिर तो कोई भी चीज़ कर्त्तव्यपालन के मार्ग में बाधक न बन सकी। वह शत्रुओं पर टूट पड़ा और अपने प्राण अल्लाह के मार्ग में निछावर कर दिए।
5. यह बद्र के युद्ध के अवसर की बात है जैसा कि आगे के शब्दों से स्पष्ट होता है। बद्र की लड़ाई शाबान सन् 2 हि० में हुई थी। मुसलमानों की सेना में 319 सैनिक थे, मुक़ाबले में एक हज़ार की सेना थी। मुसलमानों के पास लड़ाई का सामान भी ठीक

(अनेकेश्वरवादियों) से पहले जा पहुँचे, फिर मुशरिक लोग भी आ गए तो आपने (अपने साथियों से) कहा : उस जन्नत के लिए खड़े हो जाओ जिसकी चौड़ाई आकाशों और धरती की चौड़ाई के समान है।[1] उमैर बिन हुमाम बोले : ख़ूब-ख़ूब! आपने कहा : तुमने ये शब्द क्यों कहे? उन्होंने कहा : अल्लाह की क़सम ऐ अल्लाह के रसूल! केवल इस आशा से कि शायद जन्नतवालों में मैं भी हो जाऊँ। आपने कहा : तुम उन्हीं जन्नतवालों में से हो। उल्लेखकर्त्ता का बयान है कि इसके बाद उमैर बिन हुमाम ने अपने निषंग से कुछ खजूरें निकालीं और उन्हें खाने लगे। फिर बोले : यदि मैं इतनी देर तक जीवित रहा कि अपनी खजूरों को खा लूँ तो यह तो दीर्घ जीवन होगा।[2] (हज़रत अनस) कहते हैं कि यह

तौर से न था। नबी (सल्ल०) परिस्थिति को समझते थे। आपने अपने दोनों हाथ अल्लाह के सामने फैला दिए और उच्च स्वर से प्रार्थना करने लगे : "ऐ अल्लाह! तूने जो वादा मुझसे किया था उसे पूरा कर; ऐ अल्लाह! यदि तू इस्लाम के इस छोटे-से गिरोह को नष्ट कर देगा तो इस धरती पर तेरी पूजा और बन्दगी न होगी।" आप निरन्तर इसी तरह हाथ फैलाए हुए उच्च स्वर में प्रार्थना करते रहे यहाँ तक कि आपके कन्धों से चादर नीचे गिर पड़ी। —मुसलिम : उल्लेखकर्त्ता उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०)

इस युद्ध में अल्लाह की सहायता से मुसलमानों को विजय हुई। काफ़िरों और मुशरिकों को मुँह की खानी पड़ी। वे बुरी तरह परास्त हुए और उसके सत्तर सरदार मारे गए।

1. आपने मुसलमानों को जिहाद के लिए उभारा और उन्हें बताया कि इस युद्ध के लिए बढ़ना वास्तव में अल्लाह की उस विस्तृत जन्नत की ओर बढ़ना है। क़ुरआन मजीद में भी कहा गया है : बढ़ो अपने रब की क्षमा और उस जन्नत की ओर जिसका विस्तार आकाशों और धरती के विस्तार के सदृश है, जो उन लोगों के लिए तैयार की गई है जो अल्लाह पर और उसके रसूलों पर ईमान लाए।" —57 : 21

2. अर्थात वे इतने विलम्ब को भी सहन न कर सके कि खजूरों को खाकर दुश्मन के मुक़ाबले में निकलें। जन्नत की कामना में संसार में थोड़ी देर रुकना उन्हें असह्य प्रतीत हुआ। इतना विलम्ब कि खजूरें खा सकें, उन्हें एक दीर्घ आयु जैसा लगा। अतएव उन्होंने खजूरें फेंक दीं और मुशरिकों पर टूट पड़े और अल्लाह के मार्ग में वीरगति को प्राप्त हुए।

यहाँ केवल कुछ रिवायतों का उल्लेख किया गया है, जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि जब विश्वास दिलों में घर कर लेता है तो मनुष्य की क्या दशा होती है। सहाबा (रज़ि०) के इस प्रकार के अनगिनत वृतान्त हैं जिनसे पता चलता है कि उन्होंने

कहकर जो खजूरें उनके पास थीं फेंक दीं और मुशरिकों (अनेकेश्वरवादियों) से लड़ने लगे यहाँ तक कि शहीद हो गए। —मुसलिम

ईमान का रसास्वादन किया था। मनुष्य को ईमान प्राप्त हो और जीवन का वास्तविक उद्देश्य उसके समक्ष हो तो उसकी भावनाएँ साधारण लोगों से अत्यन्त भिन्न हो जाती हैं। जिस परिश्रम के कार्य को लोग बोझ समझते हैं उसे वह जीवन की प्राप्ति समझता है और उसके लिए अत्यन्त भावुक हो जाता है। यह एक यथार्थ तथ्य है कि व्यक्ति जिस चीज़ को भी अपना उद्देश्य और अपनी सफलता का लक्ष्य समझता है उसके लिए वह चरम सीमा तक संवेदनशील हो जाता है। यद्यपि उद्देश्य से हार्दिक एवं विमुग्धतापूर्ण सम्बन्ध का प्रदर्शन यूँ तो ज्ञान एवं विद्या और व्यापार आदि के जगत् में भी हुआ है, परन्तु इसका सबसे बढ़कर प्रदर्शन धर्म एवं चरित्र-लोक में हुआ है। जिन लोगों ने धर्म और नैतिकता को जीवन का उद्देश्य समझा और अल्लाह के वादे पर ईमान लाए उनका जीवन बदल गया। धूल और रक्त से निर्मित मानव किसी और लोक का प्राणी मालूम होने लगा। उन्होंने अपने चरित्र से संसार को वह प्रकाश प्रदान किया जिसकी संसार को हर क्षण आवश्यकता है। उनके ईमान ने उन्हें ऐसा सुख, आनन्द और परितोष प्रदान किया था जिसकी कल्पना से आत्माएँ विमुग्ध हो जाती हैं। तबूक के युद्ध के अवसर पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) अपना सारा माल लाकर नबी (सल्ल०) के चरणों पर निछावर कर देते हैं। नबी (सल्ल०) के पूछने पर कि घरवालों के लिए क्या छोड़ आए हो? कहते हैं : "घर पर अल्लाह और 'रसूल' को छोड़ा है।" मतलब यह कि हमारे घर की आबादी धन-दौलत से नहीं, अल्लाह और उसके रसूल से है। अल्लाह और उसके रसूल से कुछ बचाकर रखना हमारे लिए संभव ही नहीं। जिस चीज़ ने हज़रत सिद्दीक़ (रज़ि०) को इतना ऊँचा उठाया था वह ईमान की उच्चतम प्रेरणाओं की चेतना थी। हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) उनके बारे में कहते हैं : "अबू बक्र (रज़ि०) ने नमाज़ और रोज़े की अधिकता के कारण श्रेष्ठता प्राप्त नहीं की, बल्कि एक चीज़ के कारण जो उनके मन में घर कर गई।"

हज़रत ख़ुबैब (रज़ि०) को उनके शत्रु क़त्ल करने के लिए हरम की सीमा से बाहर ले गए तो उन्होंने दो रक्अत नमाज़ पढ़ने की इजाज़त चाही। नमाज़ अदा करने के बाद कहा : मन तो चाहता था कि देर तक नमाज़ पढूँ लेकिन तुम समझते कि मैं मृत्यु से डर गया : फिर उन्होंने कविता (शेर) पढ़ी जिसके एक छन्द का अर्थ यह है : "जब मैं इस्लाम के लिए क़त्ल किया जा रहा हूँ तो मुझे इसकी चिन्ता नहीं कि मैं किस पहलू पर क़त्ल किया जाता हूँ। यह जो कुछ है बस अल्लाह के लिए है। यदि वह चाहे तो इन टुकड़ों पर बरकत उतारेगा।"

मोमिन का चित्र

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : मोमिन (ईमानवाला व्यक्ति) प्रेम एवं स्नेह का आगार होता है। उस व्यक्ति में कोई भलाई नहीं जो न किसी से प्रेम करे और न जिससे कोई प्रेम करे।[1] —अहमद, बैहक़ी : शोबुल ईमान

हज़रत ख़ुबैब (रज़ि०) अल्लाह की राह में प्राण निछावर करके अपने बाद आनेवालों को मंज़िल का पता दे गए। उनके पदचिह्नों पर चलनेवाले सफल हैं, चाहे वे हसनुल बन्ना हों या अब्दुल क़ादिर औदह या सैयद क़ुत्ब और उनके साथी। जीवन का अभिलाषी प्रत्येक व्यक्ति है। अल्लाह जिसे जीवन प्रदान करना चाहता है उसे यूँ जीवन प्रदान करता है। तुच्छ उद्देश्य तो मनुष्य को विनष्ट कर डालते हैं। उनके पीछे पड़कर मनुष्य चाहे जो कुछ प्राप्त कर ले किन्तु व्यक्तित्व और आत्मसम्मान नाम की कोई चीज़ उसके पास नहीं रह सकती। व्यक्तित्व और चरित्र के अधिकारी तो वही लोग होते हैं जो किसी उच्च उद्देश्य के लिए जीने और उसके लिए मरने का साहस रखते हों। दुर्गों पर विजय प्राप्त करना और शत्रुओं को परास्त करना सरल है किन्तु मन की इच्छाओं को क़ाबू में रखना और स्थायी रूप से अपने आपको एक मार्ग पर लगा देना अत्यन्त कठिन कार्य है। लेकिन यह मुशकिल उन लोगों के लिए आसान हो जाती है जो ऊँचे सोच-विचारवाले और किसी मंज़िल के जिज्ञासु होते हैं। 'ईमान' की शक्ति उभरती है तो वह हर चीज़ पर क़ाबू पा लेती है। मनुष्य यदि उस स्थान को अपने सामने रखे तो मानवीय कल्याण का सबसे उच्च स्थान है, तो इससे उसे चरित्र-बल प्राप्त होता है और उसके संकल्प में दृढ़ता आ जाती है। जब हमारी निगाह मंज़िल के सिवा दूसरी ओर बहकी हो और हमारा दिल वास्तविक उद्देश्य के अतिरिक्त कहीं और अटका हुआ हो तो सत्य की ओर हमारा एक क़दम भी उठाना कठिन है। मंज़िल से दृष्टि न हटे और मनुष्य ईमान का रसास्वादन कर चुका हो तो वह उस चीज़ का आज ही अभिलाषी हो जाए जिसकी अभिलाषा वह कल मृत्यु के पश्चात करेगा। मोमिन की निगाह सतही चीज़ों पर नहीं टिकती, उसे उन चीज़ों की जिज्ञासा होती है जो अपना स्थायी मूल्य (Value) रखती है।

1. मोमिन को सबसे सहानुभूति होती है। वह स्वार्थी और संकीर्ण दृष्टिवाला नहीं होता। उसका हृदय विशाल और उसकी दृष्टि विस्तृत होती है। उसको सभी से प्रेम होता है। सारे मनुष्य उसकी दृष्टि में ईश्वर का परिवार हैं। ऐसा व्यक्ति स्वभावतः सबका प्रिय बन जाता है। वह व्यक्ति जिसको न किसी से प्रेम और सहानुभूति हो और न दूसरों को ही उससे प्रेम हो ईमान के आस्वादन से अनभिज्ञ होता है। उसका अस्तित्व ही निरर्थक है। वह एक ऐसे पुष्प के समान है जिसमें न कोई रंग है और न गन्ध।

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : मोमिन भोला-भाला और सुशील होता है।[1] और दुस्साहसी एवं अवज्ञाकारी व्यक्ति चालाक, कृपण और दुराचारी होता है। —अहमद, तिरमिज़ी, अबू दाऊद

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ईमान में सबसे पूर्ण मोमिन वे लोग हैं जो स्वभाव में सबसे अच्छे हैं।[2]

—अबू दाऊद, दारमी

4. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मोमिन का पेट भलाई से कभी नहीं भरता, वह उसे सुनता रहता है यहाँ तक कि 'जन्नत' में पहुँच जाता है।[3] —तिरमिज़ी

5. हज़रत सुहैब (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मोमिन का अजीब हाल है, उसके सभी कार्य अच्छे हैं और यह विशेषता केवल मोमिन की है। यदि उसे प्रसन्नता प्राप्त हो तो (अल्लाह के आगे) कृतज्ञता दिखलाए, यह उसके लिए अच्छा है और जब उसे कोई तकलीफ़ पहुँचे तो धैर्य से काम ले, यह भी उसके लिए अच्छा है।[4] —मुसलिम

---

1. मोमिन सज्जन और सरल स्वभाव का होता है। वह बुराइयों और लोगों के दोषों की टोह में नहीं रहता। वह अज्ञानता के कारण नहीं बल्कि अपनी सुशीलता के कारण लोगों के दोषों पर दृष्टि नहीं डालता बल्कि क्षमा से काम लेता है। छल-कपट और झूठ या विश्वासघात से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।
2. ईमान का मनुष्य के स्वभाव और कर्म से वह सम्बन्ध है जो सम्बन्ध बीज और वृक्ष में होता है। ईमान से एक विशेष प्रकार के स्वभाव और चरित्र का निर्माण होता है; फिर इससे इस्लामी जीवन का निर्माण संभव होता है। हम किसी व्यक्ति के दिल में झाँककर यह नहीं मालूम कर सकते कि उसमें ईमान की मात्रा क्या है? मनुष्य के ईमान और धारणाओं के विषय में हमें जो कुछ अनुमान होता है वह उसकी व्यावहारिक नीति और उसके स्वभाव और चरित्र को देखकर ही होता है। यदि किसी मोमिन का स्वभाव अच्छा है तो हम कह सकते हैं कि उसके ईमान की दशा अच्छी है।
3. मतलब यह है कि मोमिन नेकी और भलाई और ज्ञान और तत्वदर्शिता (Wisdom) की बातों से कभी तृप्त नहीं होता। वह ज्ञानार्जन में लगा रहता है यहाँ तक कि उसकी आयु पूरी हो जाती है और ज्ञान और कर्म के कारण वह जन्नत में प्रवेश पा लेता है।
4. कृतज्ञता प्रदर्शन और धैर्य दोनों ही मनुष्य के चरित्र की महानता के प्रतीक होते हैं। मोमिन ख़ुशी की हालत में यदि अपने रब की कृतज्ञता प्रकट करता है तो वह सफल

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मोमिन अल्लाह की दृष्टि में कतिपय फ़रिश्तों से भी श्रेष्ठ है।[1] —इब्ने माजा

7. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मोमिन ताना देनेवाला नहीं होता, न वह लानत करनेवाला होता है, न अश्लील बातें बकता है और न वाचाल होता है।[2] —तिरमिज़ी, बैहक़ी

8. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़सम है उस सत्ता की जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं, बन्दा उस समय तक मोमिन नहीं होता जब तक कि अपने भाई के लिए उसी चीज़ को पसन्द न करे जिसे वह अपने लिए पसन्द करता है।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

9. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह की क़सम ! वह व्यक्ति ईमान नहीं रखता, अल्लाह की क़सम ! वह ईमान नहीं रखता, अल्लाह की क़सम ! वह ईमान नहीं रखता।

है। इसी प्रकार संकट और मुसीबत में यदि वह अधीर नहीं होता बल्कि धीरज से काम लेता है, तो उस समय भी वह सफल है। मोमिन के जीवन से जो चीज़ अभीष्ट है वह यही कि वह विभिन्न परिस्थितियों में उत्तम नीति अपनाए और उसके जीवन से उच्च चरित्र का प्रदर्शन हो। धैर्य और कृतज्ञता प्रदर्शन से उच्च चरित्र का ही प्रदर्शन होता है।

1. मनुष्य को अल्लाह ने ऊँचा पद प्रदान किया है। फ़रिश्तों तक को उसकी सेवा में लगाया। सामान्य दृष्टि से ईमानवाले मुसलिम बन्दों का दर्जा फ़रिश्तों से बढ़कर है। साधारण मोमिनों का दर्जा भी अल्लाह की दृष्टि में कम नहीं है और 'नबियों' का दर्जा तो महान एवं श्रेष्ठ फ़रिश्तों से भी बढ़ा हुआ है।
2. मतलब यह है कि मोमिन का जीवन अत्यन्त पवित्र होता है। वह स्वभाव एवं चरित्र के उच्च पद पर होता है।
3. मोमिन व्यक्ति की एक मौलिक विशेषता यह होती है कि वह उदार होता है। उसकी दृष्टि संकीर्ण नहीं होती। वह दूसरों के लिए भी वही बात पसन्द करता है जो उसे स्वयं अपने लिए पसन्द है। वह यदि अपना अहित नहीं चाहता तो दूसरों का अहित भी नहीं चाह सकता। आज मुसलमान यदि अपने नबी की इसी शिक्षा का पालन करने लग जाएँ तो कितने ही झगड़ों और कलह से छुटकारा मिल जाए। इसलिए कि अधिकतर झगड़ों और बिगाड़ के पीछे स्वार्थ, संकीर्ण दृष्टि और व्यक्ति का ओछापन ही काम करता है।

कहा गया : ऐ अल्लाह के रसूल ! कौन व्यक्ति ईमान नहीं रखता ? कहा : वह व्यक्ति जिसका पड़ोसी उसकी बुराइयों से सुरक्षित न हो ।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

इस्लाम की विशेषताएँ

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि आदमी के इस्लाम की एक ख़ूबी यह है कि वह व्यर्थ बातों को छोड़ दे ।[2]

—तिरमिज़ी, इब्ने माजा

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : जब तुममें से कोई व्यक्ति अपने 'इस्लाम' में ख़ूबी और सौन्दर्य पैदा कर लेता है, तो जो नेकी वह करता है वह उसके लिए दस गुना से सात सौ गुना तक लिखी जाती है[3] और जो बुराई करता है वह उतनी ही लिखी जाती

---

1. अर्थात उस व्यक्ति का ईमान से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह व्यक्ति अपने ईमान के दावे में झूठा है जिसकी बुराई से उसका पड़ोसी तक सुरक्षित नहीं । उस ईमान का अल्लाह के यहाँ क्या मूल्य हो सकता है जिसका कर्म से कोई नाता ही दीख नहीं पड़ता ! उस वृक्ष को वृक्ष कहना ही व्यर्थ है जिसमें हरियाली नाममात्र को भी नहीं पाई जाती । उस दीप को-दीप कौन कहेगा जो न स्वयं प्रकाशमान हो और न अपने वातावरण को प्रकाशित कर सके ।
2. इस्लाम वास्तव में हमारे जीवन को सँवारता और उसे सौन्दर्य और पवित्रता से सुसज्जित करता है । यह इस्लाम की विशेषता है कि मनुष्य व्यर्थ कामों से दूर रहे और अपने समय को अच्छे कामों में लगाए । कोई व्यक्ति यदि अपने समय को व्यर्थ कामों में नष्ट करता है तो इसका अर्थ यह है कि या तो वह इस्लाम से बिलकुल अपरिचित है या फिर इस्लाम को अभी वह पूर्ण रूप से अंगीकृत नहीं कर सका है । इस्लाम तो मानव-जीवन का उत्तम उपयोग सुलभ करता है । उसकी उपेक्षा विवेक और ईमान के प्रतिकूल है ।

   इमाम मालिक और अहमद ने इसे अली बिन हुसैन (रज़ि०) से रिवायत किया है । तिरमिज़ी और बैहक़ी ने दोनों से रिवायत की है ।
3. मतलब यह है कि जब कोई व्यक्ति अपने ईमान और इस्लाम को सँवार लेता है तो उसकी एक-एक नेकी का दर्जा बढ़ जाता है । दुनिया में भी उसकी नेकियों की बरकतें बढ़ जाती हैं और 'आमालनामे' (कर्मपत्र) में भी एक-एक नेकी दस गुना से लेकर सौ

है।[1] एक रिवायत में है : सिवाय इसके कि अल्लाह उसे क्षमा कर दे (तो उतनी बुराई भी नहीं लिखी जाती)। —मुसलिम, बुख़ारी

3. अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब ग़ैर-मुस्लिम व्यक्ति (इस्लाम क़बूल कर लेता है और उस) के 'इस्लाम' में ख़ूबी और सौन्दर्य आ जाता है तो उसकी समस्त नेकियाँ जो शिर्क के समय में की गई थीं इस्लाम के पश्चात लिख दी जाती हैं।[2] —दारक़ुतनी

गुना तक अंकित की जाती हैं। कर्म के पीछे जितनी अधिक हृदय की शुद्धता काम कर रही होगी उतना ही अधिक उसका दर्जा और महत्व बढ़ता चला जाएगा। कभी समय पर ज़रूरत का एहसास भी एक नेकी को अगणित नेकियाँ बना देता है। फिर नेकी के बढ़ने का नियम सात सौ पर समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि उससे भी अधिक नेकियाँ मिल सकती हैं। "दस गुना से सात सौ गुना तक" कहकर वास्तव में बरकतों और वृद्धि के नियम की ओर संकेत किया गया है। क़ुरआन मजीद में सामान्य नियम यह बयान किया गया है : "जो नेकी लेकर आएगा उसको उसका दस गुना मिलेगा।" (6 : 160) लेकिन इसी के साथ यह भी कहा गया है : "और यदि नेकी हो तो उसको बढ़ाता है और उसको अपने पास से बड़ा प्रतिदान प्रदान करता है।" (क़ुरआन, 4 : 40)

1. क़ुरआन में भी कहा गया है : "और जो कोई बुराई लेकर आया, उसे उसका उतना ही बदला दिया जाएगा और उनपर ज़ुल्म नहीं किया जाएगा।" (6 : 160)

इस संबंध में यह हदीस भी दृष्टि में रहे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का फ़रमान है कि सर्वोच्च अल्लाह (अपने फ़रिश्तों से) फ़रमाता है—"जब मेरा बंदा बुराई का इरादा करे तो उसे मत लिखो और जब यदि बुराई कर गुज़रे तो एक बुराई लिखो और जब वह भलाई की नीयत करे, लेकिन कर न पाए, तो एक नेकी लिख दो और अगर कर ले तो दस नेकियाँ लिखो।" (मुसलिम)

मुसलिम ही की एक रिवायत में यह भी आया है—"फ़रिश्ते कहते हैं कि ऐ पालनहार! तेरा यह बंदा बुराई करना चाहता है, यद्यपि ख़ुदा उनसे कहीं अधिक बंदे को देख रहा होता है—अल्लाह सर्वोच्च फ़रमाता है, उसे देखते रहो, अगर वह बुराई करे तो एक बुराई उस जैसी लिख दो और यदि न करे, तो उसके लिए एक नेकी लिखो क्योंकि उसने मेरे भय से बुराई को छोड़ दिया।"

ज्ञात हुआ कि इस्लाम जिस अल्लाह की धारणा प्रस्तुत करता है वह अत्यन्त दयावान और कृपालु है। यह अलग बात है कि आदमी उसे नाराज़ करके कृपा के बजाय उसके प्रकोप का पात्र बन जाए।

2. मतलब यह है कि मनुष्य जब सही तौर पर इस्लाम को अपना लेता है तो उसकी वे नेकियाँ भी नष्ट नहीं होतीं जो उसने कुफ़्र और शिर्क के समय में की होती हैं, बल्कि वे

4. अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि कुछ लोगों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा : ऐ अल्लाह के रसूल ! क्या हमारे उन कर्मों के बारे में पकड़ होगी जो हमने अज्ञानकाल में (इस्लाम से पहले) किए हैं? आपने कहा : तुममें से जिस किसी ने इस्लाम में अच्छे कर्म किए उसकी तो पकड़ न होगी लेकिन जिसने बुरे कर्म किए उससे उसके अज्ञान और इस्लाम दोनों समय के कर्मों के बारे में पकड़ होगी।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

5. हकीम बिन हिज़ाम (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा : ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! बताइए, वे कर्म जो मैं अज्ञानकाल में किया करता था जैसे सदक़ा, ग़ुलाम आज़ाद करना, नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करना, क्या इनका भी प्रतिदान है? अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम जो नेकियाँ कर चुके हो उन सबके साथ ही ईमान लाए हो।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम, हाकिम : मुस्तदरक

6. अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि जब कोई बन्दा इस्लाम क़बूल कर लेता है और

भी उसके हिसाब में लिख ली जाती हैं। इसलिए कि अपनी धारणा और कर्म को सँवारकर मनुष्य जहाँ अपने पिछले बुरे कर्मों के दाग़ों से अपने जीवन को स्वच्छ करता है वहीं उसकी नेक अमली से उसके अच्छे कर्मों को स्थायित्व मिल जाता है। सही तौर पर इस्लाम क़बूल करने के पश्चात नेकियों के नष्ट होने का कोई सवाल पैदा नहीं होता। इस्लाम के द्वारा तो नेकियों और भलाइयों को पूर्णता प्राप्त होती है। इस्लाम अच्छे कर्मों के लिए सही और दृढ़ आधार और प्रेरक वस्तु भी संचित करता है।

1. इस्लाम क़बूल करने के पश्चात यदि कोई बुरे कर्मों को नहीं छोड़ता तो इसके सिवा और क्या हो सकता है कि अभी उसका आचरण पहले ही जैसा है। जब उसने अपनी नीति ही नहीं बदलती तो फिर वह कौन-सी चीज़ होगी जो उसके दामन को उसके पिछले बुरे कर्मों के धब्बों को धो सके। हाँ यदि कोई सच्चे दिल से इस्लाम क़बूल करके अपने को सुधार लेता है। अपने पिछले गुनाहों और त्रुटियों के लिए अल्लाह से क्षमा याचना करता है तो फिर उसका इस्लाम समस्त गुनाहों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) बन जाता है। पिछले गुनाहों की कोई गन्दगी बाक़ी ही नहीं रहती कि उसकी पकड़ हो सके।
2. अर्थात तुम्हें पहले की नेकियों का बदला क्यों न मिलेगा। इस्लाम क़बूल करके उन नेकियों को त्याग तो दिया नहीं है कि वे नेकियाँ नष्ट हो जाएँ। इस्लाम क़बूल करने का अर्थ तो नेकियों को पूर्णता प्रदान करना ही होता है।

उसके इस्लाम में ख़ूबी और सौन्दर्य पैदा हो जाता है, तो जितनी बुराइयाँ वह पहले कर गुज़रा था अल्लाह सब क्षमा कर देता है।[1] और उसके बाद हिसाब यह रहता है कि एक नेकी के बदले में दस नेकियों से सात सौ गुना तक नेकियाँ मिल सकती हैं बल्कि उससे भी अधिक, और बुराई के बदले में केवल एक बुराई, यह और बात है कि अल्लाह उसे क्षमा कर दे (तो अब बुराई के बदले एक बुराई भी नहीं लिखी जाएगी)। —बुख़ारी

7. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह किसी ईमानवाले पर उसकी किसी नेकी के बारे में ज़ुल्म नहीं करता। उसका बदला दुनिया में भी दिया जाता है और आख़िरत में भी दिया जाता है, रहा काफ़िर तो जो नेकियाँ उसने (जानते-बूझते) अल्लाह के लिए की थीं उनका बदला उसे इस दुनिया ही में दे दिया जाता है यहाँ तक कि जब वह आख़िरत में पहुँचता है तो उसके पास ऐसी कोई नेकी बाक़ी नहीं रहती जिसका बदला दिया जाए।[2] —मुसलिम

8. अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : मुसलिम वह है जिसकी ज़बान और जिसके हाथ से मुसलमान सुरक्षित रहे[3] और हिजरत करनेवाला (मुहाजिर) वह है जो उन बातों को छोड़ दे जिनसे अल्लाह ने रोका है।[4] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. आदमी जब सच्चे दिल से इस्लाम क़बूल करता है और अपने आपको इस्लाम के साँचे में ढालता है, तो फिर उसे एक नवीन और पवित्र जीवन प्राप्त होता है। पिछले गुनाहों की मलीनता और बुरे प्रभाव जो उसके मन-मस्तिष्क और आत्मा पर पड़े हुए होते हैं मिट जाते हैं और उसे पूर्ण शुद्धता प्राप्त होती है। ईश्वरीय नियम के अनुसार भी उसके पिछले गुनाह क्षमा कर दिए जाते हैं।
2. काफ़िर और मुशरिक की यदि कुछ नेकियाँ होती हैं तो उनका बदला उसे सांसारिक जीवन ही में दे दिया जाता है। यदि किसी कारण से उसे संसार में अपनी नेकियों का बदला न मिल सका तो ज़्यादा-से-ज़्यादा यह हो सकता है कि उसकी यातना में कुछ कमी कर दी जाए। जहन्नम से छुटकारा दिलानेवाली चीज़ तो केवल इस्लाम है।
3. अर्थात सही अर्थों में मुसलिम वही है जिसकी ज़बान या हाथ से किसी मुसलमान को तकलीफ़ या हानि न पहुँचे।
4. अर्थात हिजरत केवल इसका नाम नहीं है कि मनुष्य अल्लाह के दीन के लिए अपना घरबार छोड़कर किसी दूसरी जगह चला जाए। बुराइयों और उन चीज़ों को जो

9. अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : वृक्षों में एक वृक्ष ऐसा है जिसके पत्ते कभी नहीं झड़ते और यही वृक्ष मुस्लिम की मिसाल है। अच्छा बताओ वह कौन-सा वृक्ष है? लोगों का खयाल तो जंगल के वृक्षों की ओर गया। अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) कहते हैं कि मेरे दिल में आया कि यह खजूर का वृक्ष है, लेकिन मुझे अपने बड़ों के सामने बोलते हुए शर्म आई। इसके बाद लोगों ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! आप ही बताएँ कि वह कौन-सा वृक्ष है? आप (सल्ल०) ने कहा : वह खजूर का वृक्ष है।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

10. ज़ैद बिन सल्लाम से उल्लिखित है कि उनसे अबू सल्लाम ने कहा कि उनसे हारिस अशअरी ने बयान किया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह ने यहया (अलै०) को पाँच बातों के बारे में आदेश दिया था कि स्वयं भी उनका पालन करें और बनी इसराईल से कहें कि वे भी उनका पालन करें। यहया (अलै०) को इसमें (अर्थात बनी इसराईल से कहने में) कुछ विलम्ब होने लगा तो ईसा (अलै०) ने कहा : अल्लाह ने आपको पाँच बातों के बारे में आदेश दिया था कि आप स्वयं भी उनका पालन करें और बनी इसराईल से भी उनका पालन करने को कहें, तो या तो आप उनसे कह दीजिए या फिर मैं ही उनसे कह दूँ। यहया (अलै०) ने कहा कि (आदेश मुझे दिया गया है इसलिए) मुझे भय है कि यदि इस सिलसिले में आप मुझसे अग्रसर रहें तो कहीं मैं धरती में धँसा न दिया जाऊँ या किसी यातना में ग्रस्त न हो जाऊँ।[2] इसके बाद उन्होंने लोगों को

अल्लाह को अप्रिय हैं, छोड़ देना भी हिजरत है। यदि कोई अप्रिय बातों को नहीं छोड़ता तो इसका अर्थ यह है कि अभी हिजरत के मूल तत्व और आशय से वह अपरिचित ही है, भले ही वह अल्लाह के मार्ग में अपने घरबार और स्वदेश को छोड़ चुका हो।

1. अर्थात जिस प्रकार खजूर का वृक्ष सदैव हरा-भरा रहता है पतझड़ उसके निकट नहीं आती ठीक यही दशा इस्लाम के कारण मुस्लिम की होती है। सदैव वह लोगों को लाभ ही पहुँचाता है। भलाई और बरकत के अतिरिक्त उससे कोई दूसरी चीज़ प्रकट नहीं होती।
2. इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि नबियों और महान व्यक्तियों की हृदयगत भावनाएँ कैसी होती हैं और उन्हें अल्लाह की महानता का कितना एहसास होता है। वे सदैव अल्लाह से डरते रहते हैं, कभी ग़ाफ़िल नहीं होते।

बैतुल-मक़दिस में एकत्र किया, जब वह ख़ूब भर गया और लोग गेलरियों तक बैठ गए तो कहा, अल्लाह ने मुझे पाँच बातों के बारे में आदेश दिया है कि स्वयं भी उनका पालन करूँ और तुम्हें भी उनका पालन करने की ताकीद करूँ। पहली बात यह है कि तुम अल्लाह ही की इबादत करो और किसी चीज़ को उसका सहभागी न बनाओ क्यों जो व्यक्ति अल्लाह का सहभागी ठहराए उसकी मिसाल ऐसी है जैसे एक व्यक्ति केवल अपने सोने-चाँदी के माल से एक गुलाम ख़रीदे और उसे बता दे कि देख यह मेरा घर है और यह मेरा कार्य है, तो कार्य करना और उजरत मुझे देते रहना। वह कार्य तो करे परन्तु उजरत अपने स्वामी के बजाए किसी और व्यक्ति को दे दे। भला तुममें कौन यह पसन्द करेगा कि उसका गुलाम ऐसा हो। और यह कि अल्लाह ने तुम्हें नमाज़ का हुक्म दिया है अतः जब तक नमाज़ में रहो इधर-उधर न देखो क्योंकि अल्लाह अपने बन्दे की ओर पूरी तरह उन्मुख रहता है, जब तक वह इधर-उधर नहीं देखता।[1] और उसने तुम्हें रोज़े का आदेश दिया है। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे किसी जमाअत में एक व्यक्ति हो जिसके पास एक थैली हो जिसमें कस्तूरी हो और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी सुगन्ध अच्छी मालूम होती हो, और अल्लाह की दृष्टि में रोज़ेदार की गन्ध कस्तूरी की सुगन्ध से अधिक प्रिय होती है।[2] और उसने तुम्हें सदक़े का आदेश दिया है। उसकी मिसाल ऐसी है जैसे एक व्यक्ति को शत्रु ने क़ैद कर लिया हो, और उसके हाथ उसकी गर्दन से बाँध दिए हों और उसकी गर्दन मारने के लिए उसे ले जा रहे हों। वह कहे कि मैं अपने प्राण के बदले थोड़ा और बहुत (जो कुछ भी मेरे पास है) सब देता हूँ और इस प्रकार फ़िदया (मुक्ति

---

1. नमाज़ में इधर-उधर देखने का अर्थ यह है कि बन्दा अल्लाह की ओर अभी पूर्णरूप से प्रवृत नहीं हो सका है। ऐसी दशा में अल्लाह की कृपादृष्टि का भागी वह कैसे बन सकता है ?
2. रोज़े से हमें आध्यात्मिक और आशययुक्त जीवन प्राप्त होता है। रोज़े को सुगन्ध की उपाधि देना वास्तविकता के सर्वथा अनुकूल है। सुगन्ध भौतिक जगत में एक सूक्ष्म और पवित्रतम वस्तु है। आध्यात्मिक एवं आन्तरिक जीवन के लिए इससे उत्तम उपमा क्या हो सकती थी। रोज़ेदार का अस्तित्व मानो सुगन्ध से सुरभित होता है; परन्तु वह सुगन्ध ऐसी होती है जिसके मुक़ाबले में संसार की कोई सुगन्ध नहीं लाई जा सकती। कस्तूरी की सुगन्ध भी नहीं लाई जा सकती क्योंकि यह सुगंन्ध भी इसके मुक़ाबले में तुच्छ है।

प्रतिदान) देकर वह अपने प्राण छुड़ा ले।[1] और उसने तुम्हें अल्लाह के ज़िक्र का आदेश दिया है क्योंकि उसकी मिसाल ऐसी है जैसे एक व्यक्ति हो जिसका पीछा शत्रु तेज़ी से कर रहा हो, यहाँ तक कि वह व्यक्ति (दौड़ते-दौड़ते) किसी दृढ़ दुर्ग के भीतर आ जाए और (उसमें आकर) अपने प्राण को शत्रु से बचा ले। इस प्रकार बन्दा अल्लाह के 'ज़िक्र' के सिवा किसी प्रकार भी अपने आपको शैतान से नहीं बचा सकता।[2] —तिरमिज़ी

11. हज़रत ज़ैद बिन तलहा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल

---

1. सदक़ा से वास्तव में मनुष्य की आत्मा और उसके मन को वास्तविक स्वतंत्रता और सम्पन्नता प्राप्त होती है। सदक़े के द्वारा मनुष्य की आत्मा अनुचित बन्धनों और विनाश से मुक्त हो जाती है। भौतिक और वासना सम्बन्धी लिप्सा से मुक्ति प्राप्त करने का उत्तम उपाय सदक़ा है। सदक़ा के द्वारा मानवीय आत्मा भौतिक बन्धनों एवं वासनाओं से छुटकारा पा लेती है और उसे विकसित होने का अवसर मिलता है। यही बात क़ुरआन में इन शब्दों में कही गई है : "(ऐ नबी!) तुम उनके मालों में से 'सदक़ा' लेकर उन्हें स्वच्छता प्रदान करो, उसके द्वारा उनकी आत्मा को शुद्ध करके उसके विकसित होने का अवसर दो।" (9 : 103) अर्थात वे सदक़ा करेंगे तो उन्हें शुद्धता प्राप्त होगी और इस प्रकार उनकी आत्मा विकसित होगी। धन-दौलत के मोह में ग्रस्त व्यक्ति जीवन के वास्तविक मूल्यों से अपरिचित रह जाता है। इससे बढ़कर दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है। क़ुरआन में है : "तो जहाँ तक हो सके अल्लाह का डर रखो और (उसका हुक्म) सुनो और मानो और ख़र्च करो कि तुम्हारा भला हो और जो अपने मन के लोभ एवं कृपणता से बचा रहा, तो ऐसे ही लोग सफल हैं" (64 : 16)। मनुष्य के मन से जब तक कृपणता और लोभ निकल न जाए नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उसे उच्चता प्राप्त नहीं हो सकती। यह बात इनजील में इन शब्दों में बयान की गई है : "मैं तुमसे सच कहता हूँ कि (कंजूस) धनवान का स्वर्ग के राज्य (The Kingdom of Heaven) में प्रवेश करना कठिन है। और मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि ऊँट का सूई के नोक से निकल जाना इससे सहज है कि (कंजूस) धनवान परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करे।" (मत्ती 19 : 23-24) 'सदक़ा' देने से धन-दौलत का मोह मन से निकल जाता है। मनुष्य जीवन के वास्तविक मूल्यों से परिचित होता है। दुनिया और आख़िरत की पकड़ और यातना से सुरक्षित रहता है।
2. इस फ़ितना भरी दुनिया में अल्लाह की याद ही वह सबसे मज़बूत क़िला है जिसमें शरण लेकर मनुष्य 'शैतान' के छल से बच सकता है। जीवन के कोलाहल में अल्लाह को भुलाकर मनुष्य कभी भी विनाश से बच नहीं सकता।

(सल्ल०) ने कहा : प्रत्येक दीन (धर्म) का एक स्वभाव (प्रकृति एवं गुण) होता है। इस्लाम का स्वभाव लज्जा है।[1] —मालिक

12. हज़रत अबू सईद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मैं सोया हुआ था, देखा कि लोगों को मेरे समक्ष लाया जा रहा है, और वे कुरते पहने हुए थे जिनमें से कुछ लोगों के कुरते सिर्फ़ इतने लम्बे थे जो सीने तक पहुँचते थे और कुछ लोगों के इससे नीचे तक पहुँचे हुए थे। मेरे सामने उमर बिन ख़त्ताब को लाया गया। उनका कुरता इतना लम्बा था कि वे उसे घसीटते हुए चलते थे। लोगों ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! इसका अर्थ आपने क्या लगाया? कहा : दीन (धर्म)।[2]

---

1. इस हदीस से दो बातें मालूम होती हैं। एक यह कि इस्लाम का सम्बन्ध मनुष्य से अत्यन्त निकट का है। इसी लिए लज्जा को इस्लाम का स्वभाव बताया जो वास्तव में मनुष्य का स्वभाव या गुण होता है। इस्लाम वास्तव में मानव का अपना स्वभाव है। अपने स्वभाव से बढ़कर निकट की वस्तु क्या हो सकती है। दूसरी महत्वपूर्ण बात जो इस हदीस से मालूम होती है वह यह कि इस्लाम की प्रकृति अत्यन्त पवित्र, सुन्दर एवं शुद्ध है। स्वभाव में लज्जा से बढ़कर सुन्दर कोमल और पवित्र स्वभाव क्या हो सकता है।

   यह हदीस इब्ने माजा और बैहक़ी : शोबुल ईमान में अनस (रज़ि०) और इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है।

2. इस हदीस से मालूम हुआ कि दीन (धर्म) वास्तव में मानव-हित के लिए है। क्या कोई इस बात को पसन्द करेगा कि वह नग्न और वस्त्रहीन हो या उसका वस्त्र अत्यन्त छोटा और ज़रूरत से इतना कम हो कि वह न शरीर की शोभा बन सके और न उसकी रक्षा कर सके। आदर्श पुरुष वह नहीं है जो धर्म से वंचित हो या जिसके जीवन में धर्म का बहुत थोड़ा अंश सम्मिलित हो सका हो बल्कि पूर्ण व्यक्ति वही है जिसके व्यक्तित्व पर पूर्णतः धर्म की छाप हो, जिसके जीवन का कोई अंश धर्म से वंचित न हो।

अध्यात्म और इबादतें

इस्लामी इबादतें

मनुष्य को सदैव एक ऐसे इष्ट आराध्य की खोज रही है जिसे वह अपना जीवनोद्देश्य और अपनी अभिलाषाओं और कामनाओं का केन्द्र बना सके और जिसके आगे वह अपने विनय एवं दास्य-भावों का प्रदर्शन कर सके। आराध्य की तलाश और खोज में मनुष्य ने तरह-तरह की ठोकरें खाईं और वह विभिन्न प्रकार की धारणा सम्बन्धी और व्यावहारिक गुमराहियों में पड़ता रहा, लेकिन फिर भी वह कभी भी अपने दास्य-भाव और अपने अन्दर पाई जानेवाली अस्पष्ट विकलता एवं वेदना को जो एक उपास्य एवं आराध्य को पा लेने के बाद ही दूर हो सकती थी, विनष्ट न कर सका। अल्लाह के नबियों ने सदा मनुष्य को सही मार्ग दिखाया। उन्होंने बताया कि मनुष्य का उपास्य या आराध्य केवल अल्लाह है जो इस विश्व का सृष्टिकर्ता और रब है। प्रत्येक नबी का सन्देश यही था :

> "ऐ मेरी जातिवालो ! अल्लाह की इबादत करो उसके सिवा तुम्हारा कोई इलाह (आराध्य) नहीं।" —कुरआन, 7 : 59

अल्लाह के अन्तिम रसूल (सल्ल०) ने भी संसार को यही आमंत्रण दिया :

"ऐ लोगो ! अपने रब की इबादत करो।" (कुरआन 2 : 21)

कुरआन मजीद ने स्पष्ट शब्दों में बताया कि इबादत ही मानव-सृष्टि का वास्तविक अभिप्राय है। जो जीवन अल्लाह का आज्ञापालन और 'इबादत' न बन सका, वह नष्ट हुआ।

> "मैंने जिन्नों और मनुष्यों को केवल इसलिए पैदा किया है कि वे मेरी इबादत करें।" —कुरआन, 51 : 56

इबादत शब्द अपने अर्थ की दृष्टि से अत्यन्त व्यापक है। इबादत का मूल अर्थ है विनयशीलता, अन्तिम हद तक झुक जाना, बिछ जाना। फिर इसमें प्रेम, पूजा, आज्ञापालन और दासता का भाव भी सम्मिलित है। इस्लाम में इबादत का सम्बन्ध मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से है। अल्लाह की इबादत का अर्थ यह है कि मनुष्य केवल अल्लाह का उपासक हो, उसी के आगे सिर झुकाए, उसी को सजदा करे, अपनी सूक्ष्म एवं पवित्रतम भावनाओं को उसी की सेवा में प्रस्तुत करे और अपना सम्पूर्ण जीवन उसी की बन्दगी और आज्ञापालन में व्यतीत करे। जीवन के किसी क्षेत्र को भी अल्लाह की बन्दगी से स्वतंत्र न रखे; जीवन के प्रत्येक मामले में अल्लाह ही का आज्ञाकारी हो। राजनीति, समाज, अर्थ आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अल्लाह के दिए हुए आदेशों का पालन करे। यहाँ तक कि उसका

खाना-पीना, लोगों से मिलना-जुलना, सोना-जागना सब कुछ अल्लाह के आदेश और उसकी इच्छा के अनुसार हो। इस तरह पूरे दीन (धर्म) का पालन इबादत में सम्मिलित है। किसी कर्त्तव्यपालन के विषय में भी हम यह नहीं कह सकते कि वह इबादत में सम्मिलित नहीं है।

धार्मिक व्यवस्था में इस्लाम के अरकान (मौलिक स्तम्भों) नमाज़, रोज़ा, हज, और ज़कात को बड़ा महत्व प्राप्त है। इन अरकान का सम्बन्ध अपने वाह्य और आन्तरिक दोनों ही दृष्टि से प्रत्यक्षतः अल्लाह से है। मनुष्य में दास्य भाव को जाग्रत करने और बन्दगी की भावना पैदा करने में इस्लाम के अरकान का बड़ा भाग है। इनको दीन (धर्म) में एक विशेष स्थान प्राप्त है। इन्हीं पर वास्तव में दीन (धर्म) का सम्पूर्ण भवन खड़ा होता है। ये मानो ऐसी विशेष इबादतें हैं जिनके द्वारा मनुष्य में वह शक्ति आती है जिससे वह अपना सम्पूर्ण जीवन अल्लाह की बन्दगी और इबादत में व्यतीत कर सके। यही कारण है कि साधारणतया नमाज़, ज़कात, रोज़ा, हज ही को इबादत कह दिया जाता है, हालाँकि वास्तव में दीन (धर्म) की कोई चीज़ भी इबादत से अलग नहीं है।

इबादत केवल अल्लाह का हक़ है। अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की इबादत करना शिर्क है। शिर्क और अल्लाह के अलावा दूसरे की उपासना को प्राचीन ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से ज़िना और व्यभिचार की संज्ञा दी गई है। क़ुरआन में कहा गया है : "जो कोई अल्लाह के साथ शिर्क करे तो मानो वह आकाश से गिर पड़ा फिर चाहे उसको पक्षी उचक ले जाएँ या हवा उसे दूरवर्ती स्थान पर (ले जाकर) फेंक दे।" —क़ुरआन, 22 : 31

इस्लाम जीवन की पूर्णता का एक मात्र मार्ग है। इसी के द्वारा प्राकृतिक अभिप्राय तक हमारी पहुँच हो सकती है। अल्लाह की दयालुता के चिह्न धरती से आकाश तक फैले हुए हैं। अल्लाह अपने अनुग्रह और दयालुता का विस्तार हमारे संकल्प और अधिकार-क्षेत्र तक करना चाहता है। वह हमें जीवन के नियमों की शिक्षा देता है। हमारे जीवन को निर्मलता एवं उच्चता प्रदान करना चाहता है। अल्लाह के सिवा कोई नहीं जिससे इस विशेष अनुग्रह की आशा की जाए :

> "उनसे कहो कि क्या उनमें, जिन्हें तुम अल्लाह के साथ शरीक ठहराते हो, कोई ऐसा भी है जो हक़ की ओर मार्ग दिखा सके? कहो : हक़ की ओर तो अल्लाह ही मार्ग दिखा सकता है।" —क़ुरआन, 10 : 35

अल्लाह के आज्ञापालन और इबादत के बिना मानव-जीवन का पूर्ण होना सम्भव नहीं है। अल्लाह की बन्दगी और इबादत के बिना जीवन वास्तविक अभिप्राय एवं आशय से वंचित ही रह जाता है।

नमाज़

मनुष्य अल्लाह का बन्दा और दास है। अल्लाह ही उसका सृष्टिकर्त्ता, रब और इलाह (पूज्य) है। अल्लाह को अपना रब (पूज्य) मानने का अर्थ यह होता है कि बन्दा अपना जीवन अल्लाह के आज्ञापालन और बन्दगी में व्यतीत करे। उसके दिए हुए आदेश को अपने जीवन का क़ानून बनाए। उसी के आगे सिर झुकाए, उसी के आगे सजदा करे। उसके सिवा किसी की उपासना न करे। नमाज़ वास्तव में अल्लाह की इबादत और उसकी उपासना का सर्वांग रूप है। नमाज़ में बन्दा बार-बार अल्लाह के सामने हाज़िर होता है और उसके आगे अपनी दीनता, विनम्रता और दासता का प्रदर्शन करता है। उसके दिखाए हुए मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा करता है। उससे अपने गुनाहों और कोताहियों के लिए क्षमा चाहता है।

अल्लाह और उसके बन्दों के हक़ को पहचानना और उन्हें अदा करना यही धर्म का सारांश है। नमाज़ और ज़कात इस्लाम के दो ऐसे मौलिक आधार स्तम्भ हैं जो इन दोनों हक़ों के रक्षक और मनुष्य को सीधे रास्ते पर क़ायम रखनेवाले हैं। नमाज़ अपनी वास्तविकता की दृष्टि से एक चेतना सम्बन्धी कर्म है। नमाज़ वास्तव में भय और प्रेम और विनीत भाव के साथ अल्लाह की ओर आकृष्ट होने और उससे निकट होने का नाम है। नमाज़ में बन्दे को अल्लाह से वार्तालाप का श्रेय प्राप्त होता है। नमाज़ हमारी चेतना की प्रथम देन है। नमाज़ वास्तव में अपने दिल, ज़बान और शरीर के द्वारा अपने रब के सामने अपनी बन्दगी, दासता और उसकी बड़ाई और महानता का प्रदर्शन है। नमाज़ अल्लाह की याद, उसके उपकारों के प्रति आभार प्रदर्शन, आदि-सौन्दर्य की प्रशंसा (हम्द) और गुणगान (तस्बीह) है। यह हृदय-वीणा की झंकार, विकल आत्मा की सांत्वना, प्रकृति की पुकार और हमारे जीवन का सारांश है।

शाह वलीउल्लाह ने नमाज़ की वास्तविकता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है : "जानना चाहिए कि नमाज़ में तीन चीज़ें मौलिक हैं। दिल से अल्लाह के लिए विनम्र और विनयशील होना, ज़बान से अल्लाह को स्मरण करना और अपने शरीर से

अल्लाह की अधिक से अधिक प्रतिष्ठा करना।" —हुज्जतुल्लाहुल बालिग़ा, भाग-2

अत्यन्त प्रेम जिसमें अधिक से अधिक विनम्रता एवं विनयशीलता हो अल्लाह के सिवा किसी के साथ जाइज़ नहीं है। यह केवल अल्लाह का हक़ है कि मनुष्य अपने आपको उसके आगे बिलकुल झुका दे और अपनी समस्त भावनाओं एवं आन्तरिक भावों को उसकी सेवा में प्रस्तुत कर दे। कभी-कभी नबी (सल्ल०) नमाज़ में रो पड़ते थे, आँखों से आँसू बहने लगते थे। एक सहाबी कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को देखा कि आप नमाज़ में हैं, आँखों से आँसू बह रहे हैं, रोते-रोते हिचकियाँ बँध गई हैं। ऐसा लगता था मानो चक्की चल रही है। या हाँडी उबल रही है।[1]

नमाज़ एक विश्वव्यापी वास्तविकता है। नमाज़ न केवल मनुष्य की बल्कि समस्त सृष्टि की प्रकृति एवं स्वभाव है। नमाज़ के बिना किसी चीज़ के अस्तित्व और उसके बाक़ी रहने की कल्पना नहीं की जा सकती। क़ुरआन का बयान है कि सम्पूर्ण विश्व अल्लाह की तस्बीह (गुणगान) में लगा हुआ है :

> "क्या तुमने नहीं देखा कि आकाशों और धरती में जो भी है अल्लाह की तस्बीह करता है, पंख फैलाए पक्षी भी (उसकी तस्बीह करते हैं)। हर एक अपनी नमाज़ और तस्बीह से परिचित है। और अल्लाह जानता है जो कुछ वे करते हैं। —क़ुरआन, 24 : 41

क़ुरआन में नमाज़ के लिए सलात शब्द प्रयुक्त हुआ है। अरबी में 'सलात' का अर्थ है : किसी चीज़ की ओर बढ़ना और उसमें प्रवेश करना। 'सलात' में अत्यन्त सामीप्य का भाव पाया जाता है। नमाज़ पूर्ण अभिरुचि के साथ अल्लाह की ओर आकृष्ट होने का प्रिय कर्म है। अल्लाह की ओर मन का झुकाव ही नमाज़ की वास्तविक आत्मा है। इसी को अरबी में इबादत कहा जाता है। इबादत का अर्थ है सारे दिल से अल्लाह से प्रेम करना और उसकी ओर ध्यान देना। अल्लाह के लिए एक स्वाभाविक प्यास और अभिलाषा प्रत्येक हृदय में पाई जाती है। मनुष्य जिस प्रकार रोज़ी प्राप्त करने में अल्लाह की कृपा का मुहताज है उससे कहीं अधिक वास्तविक शान्ति और परितोष के लिए उसे अल्लाह की इबादत और उसकी उपासना की आवश्यकता है। नमाज़ बन्दे और अल्लाह के बीच सम्बन्ध एवं सम्पर्क स्थापित करने का वास्तविक साधन है।

1. तिरमिज़ी, अबू दाऊद।

नमाज़ के माध्यम से मनुष्य को अल्लाह की सेवा में पहुँच प्राप्त होती है और उसकी अन्तिम अभिलाषा पूरी होती है। नमाज़ में उसे इसका अवसर मिलता है कि वह अपने सूक्ष्मतम एवं पवित्रतम आन्तरिक भावों को अल्लाह की सेवा में प्रस्तुत करे और उससे उसकी कृपाओं का इच्छुक हो। नबी (सल्ल०) कहते हैं : "मेरी आँख की ठण्डक नमाज़ में है।" नमाज़ से लगाव इस बात की पहचान है कि बन्दे ने अल्लाह को अपनी सारी आशाओं और कामनाओं का केन्द्र बना लिया। ऐसा व्यक्ति अल्लाह का समीपवर्ती होता है। अतएव ऐसे व्यक्ति को जिसका मन मसजिद से निकलने के बाद भी मसजिद में लगा रहता है, इस बात की शुभ सूचना दी गई है कि अल्लाह उसे अपनी छाया में जगह देगा।

अपने जीवन में नमाज़ को सम्मिलित करना वास्तव में अल्लाह को अपना संरक्षक बनाना है। नबी (सल्ल०) कहते हैं : "जिसने जान-बूझकर नमाज़ छोड़ दी, अल्लाह उसकी रक्षा से हाथ उठा लेता है।" जो अल्लाह के संरक्षण से वंचित हो जाए उसे विनाश और तबाही से कौन बचा सकता है। नमाज़ अपने महत्व के कारण किसी समय भी छोड़ी नहीं जा सकती। यदि कोई खड़ा होकर नमाज़ नहीं अदा कर सकता तो बैठकर अदा करे और यदि यह भी सम्भव न हो तो लेटकर ही अदा करे। यदि मुँह से न बोल सके तो संकेतों से ही अदा करे।[1] और यदि विवशता के कारण रुककर अदा न कर सकता हो तो चलते हुए अदा करे[2], और यदि अत्यन्त भय की दशा में सवारी पर है तो जिस तरफ़ मौक़ा हो उसी तरफ़ मुँह करके अदा करे।[3]

फिर नमाज़ को उन्हीं प्राचीन और स्वाभाविक रीति के साथ अदा करने का आदेश है जो हज़रत इबराहीम (अलै०) के समय से चली आ रही है। इनसाइक्लोपीडिया के संकलनकर्त्ताओं ने भी इसे स्वीकार किया है। वे लिखते हैं : "इस्लामी नमाज़ अपने तरकीब में बड़ी हद तक यहूदियों और ईसाइयों की नमाज़ के अनुरूप है।" (भाग 4, पृ० 96, विषय : सलात)

नमाज़ पाँच बार अदा करनी अनिवार्य है। इस तरह हमारे पूरे समय को नमाज़ से घेर दिया गया है, ताकि हम अल्लाह से किसी समय भी ग़ाफ़िल न हों और हमारा सम्पूर्ण जीवन अल्लाह की याद बन जाए। क़ुरआन में कहा गया है :

---

1. दारक़ुतनी .
2. अबू दाऊद, अध्याय : सलातुत तालिब।
3. बुख़ारी।

"मेरी याद के लिए नमाज़ क़ायम करो।" —क़ुरआन, 20 : 14

फिर क़ुरआन को भी नमाज़ का एक आवश्यक अंग ठहरा दिया गया है। सूरा अल-फ़ातिहा नमाज़ की प्रत्येक रक्अत में पढ़ी जाती है। सूरा अल-फ़ातिहा पूरे क़ुरआन का सारांश है। नमाज़ में क़ुरआन को सम्मिलित करके क़ुरआन की हिकमत (तत्वदर्शिता), प्रकाश और उसकी बरकतों को भी नमाज़ में समेट लिया गया है। क़ुरआन के आदेशों की याददिहानी भी नमाज़ में होती रहती है।

नमाज़, क़ियामत में अल्लाह की सेवा में खड़े होने का चित्र भी है। जब बन्दा नमाज़ में खड़ा होता है तो वह उस दिन को याद करता है जब वह आख़िरत में अल्लाह के सामने हाज़िर होगा। नमाज़ में हम अल्लाह की ओर लपकते और पंक्तिबद्ध होकर उसकी प्रशंसा करते हैं। हश्र के दिन भी हमारा यही हाल होगा। उस दिन अल्लाह हमें पुकारेगा तो हम उसकी प्रशंसा करते हुए क़ब्रों से निकलकर उसकी ओर दौड़ पड़ेंगे।[1]

सत्य-मार्ग में असत्य से लड़ना और इसके लिए हर समय तैयार रहना मुसलमान का कर्त्तव्य है। नमाज़ इस तैयारी का नक़्शा भी पेश करती है। रिवायत में आता है कि अल्लाह को दो पंक्तियाँ बहुत प्रिय हैं। एक नमाज़ की पंक्ति और दूसरे जिहाद के क्षेत्र में मुजाहिदों की पंक्ति। नमाज़ और जिहाद में कुछ पहलुओं से अनुरूपता भी पाई जाती है। अबू दाऊद की हदीस है : "नबी (सल्ल०) और आपके सेनादल जब पहाड़ी पर चढ़ते तो अल्लाह की बड़ाई का वर्णन करते और जब नीचे उतरते तो अल्लाह का गुणगान और उसकी महानता का वर्णन करते थे। नमाज़ इसी तरीक़े पर क़ायम की गई।"

नमाज़ में नमाज़ियों का पंक्तिबद्ध होना, एक इमाम का अनुवर्तन, एक आवाज़ पर समस्त पंक्ति की हरकत से युद्ध ही के नियमों की नहीं बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक जीवन के नियमों की सीख मिलती है। नमाज़ से जहाँ उस सम्बन्ध का प्रदर्शन होता है जो बन्दे और अल्लाह के बीच पाया जाता है, वहीं नमाज़ से अल्लाह के बन्दों के पारस्परिक सम्बन्ध और उनकी सामाजिकता पर भी प्रकाश पड़ता है। यह सामाजिकता ही की माँग थी कि हमें जमाअत (सामूहिक रूप) से नमाज़ पढ़ने का आदेश दिया गया। नमाज़ हमें अल्लाह से ही नहीं मिलाती बल्कि वह हमारे आपस के सम्बन्धों को ठीक रखती है और हमारे दिलों को

---

1. सूरा-17, बनी इसराईल, आयत-52।

जोड़ती है, लेकिन शर्त यह है कि हमारी नमाज़ वास्तव में नमाज़ हो और वह अपने बाह्य और आन्तरिक प्रत्येक पहलू से ठीक हो। मुसलिम (हदीस) में है : "अल्लाह के बन्दो ! (नमाज़ में) अपनी सफ़ों (पंक्तियों) को सीधा और ठीक रखो अन्यथा अल्लाह तुम्हारे रुख़ को एक-दूसरे के विरुद्ध कर देगा।"

नमाज़ इस्लाम की उन समस्त धारणाओं को जाग्रत करती है जिनपर ईमान लाए बिना आत्मा की शुद्धता, आचरण की पवित्रता और व्यावहारिक जीवन का सुधार सम्भव नहीं है। धैर्य, अल्लाह पर भरोसा और शुद्धता और आत्मा की पवित्रता आदि नैतिक गुणों की प्राप्ति का उत्तम साधन नमाज़ है। नमाज़ में मनुष्य को सदाचार और धर्मपरायण बनाने की अपार शक्ति मौजूद है। नमाज़ हमें साहसी और उदार बनाती है। और एक पवित्रतम और आनन्दमय जीवन का हमें मार्ग दिखाती है। अल्लाह कहता है : "निस्संदेह नमाज़ अश्लीलता और बुराई से रोकती है।"

—क़ुरआन, 29 : 45

नमाज़ वास्तव में धर्म का एक ऐसा शीर्षक है जिसमें अत्यन्त व्यापकता पाई जाती है। नमाज़ मुसलिम-जीवन का आदि और अन्त सब कुछ है। नमाज़ मुस्लिम के नैतिक, आध्यात्मिक, और वास्तविक जीवन का प्रतीक है। नमाज़ की इसी मौलिक विशेषता के कारण क़ुरआन कभी अच्छे कर्मों में केवल नमाज़ का नाम लेने को काफ़ी समझता है। एक जगह कहा गया है : "जो लोग किताब को मज़बूती से पकड़े हुए हैं और जिन्होंने नमाज़ क़ायम कर रखी है। निश्चय ही हम ऐसे सुधार करनेवालों के कर्म-फल को नष्ट नहीं करेंगे।" —क़ुरआन, 7 : 170

एक जगह अल्लाह के विरोधी और सरकश बन्दे का ज़िक्र इन शब्दों में किया गया है : "उसने न तो (अल्लाह और रसूल की) तसदीक़ की और न नमाज़ अदा की, बल्कि उसने झुठलाया और मुँह मोड़ा।" —क़ुरआन, 75 : 31-32

नमाज़ की इसी मौलिक विशेषता के कारण नबी (सल्ल०) कहते हैं : "दीन (धर्म) में नमाज़ का वही स्थान है जो शरीर में सिर का है।"

—अल-मोअजमुस्सग़ीर तिबरानी, इब्ने उमर (रज़ि०) द्वारा

हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति को नबी (सल्ल०) ने नमाज़ पढ़ते देखा जो न पूरा रुकू करता था और न पूरा सजदा करता था। उसकी जल्दबाज़ी को देखकर आप (सल्ल०) ने कहा : यदि यह व्यक्ति इसी हालत में मर गया और अपनी नमाज़ दुरुस्त न की तो मुहम्मद के पन्थ के अतिरिक्त किसी और पन्थ पर उसका अन्त होगा।

नमाज़ के इसी महत्व के कारण हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपने गवर्नरों को लिखा था—"तुम्हारे समस्त कर्मों में सबसे बढ़कर महत्व मेरी दृष्टि में नमाज़ का है। जिस किसी ने इसकी रक्षा की और निगहबानी में लगा रहा उसने पूरे धर्म की रक्षा की, और जिसने नमाज़ को खो दिया वह दूसरी सारी चीज़ों को और अधिक खोनेवाला होगा।"

सारांश यह कि नमाज़ को मुसलिम-जीवन में मौलिक स्थान प्राप्त है। नमाज़ से केवल यही नहीं कि हमारे जीवन का सुधार होता है, बल्कि नमाज़ हमें वास्तविक जीवन से परिचित कराती और अल्लाह से हमारा सम्बन्ध दृढ़ करती है।

नमाज़ की वास्तविकता और महत्त्व

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : तुम्हारा क्या विचार है यदि तुममें से किसी के द्वार पर दरिया हो और वह प्रति दिन पाँच बार नहाए, तो क्या (उसके शरीर पर) कुछ भी मैल-कुचैल बाक़ी रहेगा? (सहाबा ने) कहा : कुछ भी मैल बाक़ी न रहेगा। आप (सल्ल०) ने कहा : पाँचों नमाज़ों की यही मिसाल है। अल्लाह उनके द्वारा गुनाहों को मिटा देता है।[1] —बुख़ारी, मुसलिम, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा

2. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक दिन नमाज़ के बारे में बातचीत करते हुए कहा : जो

---

1. अर्थात जिस प्रकार पाँच बार नहाने से शरीर पर मैल बाक़ी नहीं रह सकता, उसी प्रकार पाँचों वक़्त की नमाज़ अदा करने से गुनाह बाक़ी नहीं रह सकते; अल्लाह उन्हें क्षमा कर देता है। जो गुनाहों और ख़ताओं के बुरे प्रभाव दिल पर पड़ते हैं, ये बुरे प्रभाव नमाज़ अदा करने से मिट जाते हैं। लेकिन शर्त यह है कि 'नमाज़' वास्तव में 'नमाज़' हो, केवल दिखावे की नमाज़ न हो बल्कि पूर्णतः विधिवत रूप से हृदय के साथ अदा की गई हो। अल्लाह का सामीप्य और इस सामीप्य की जो आन्तरिक स्थिति मनुष्य को नमाज़ में प्राप्त होती है उसकी मौजूदगी में गुनाह कैसे बाक़ी रह सकता है।

कुरआन में इस वास्तविकता पर इन शब्दों में प्रकाश डाला गया है : "दिन के दोनों किनारों पर और रात के कुछ हिस्सों में नमाज़ क़ायम किया करो, निस्संदेह नेकियाँ बुराइयों को दूर कर देती हैं। यह नसीहत है याद रखनेवालों के लिए।"

—क़ुरआन, 11 : 114

व्यक्ति उसकी रक्षा करता है तो वह उसके लिए 'क़ियामत के दिन प्रकाश, प्रमाण और मुक्ति होगी और जो व्यक्ति उसकी रक्षा न करे, तो वह उसके लिए न प्रकाश होगी, न प्रमाण और न मुक्ति होगी और वह क़ियामत के दिन क़ारून, फ़िरऔन, हामान और उबई बिन ख़ल्फ़ (जैसे अल्लाह के अवज्ञाकारी शत्रुओं) के साथ होगा।[1]

—अहमद, दारमी, बैहक़ी : शोबुल ईमान

3. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : फ़ज्र की दो रक्अतें (सुन्नत) दुनिया और दुनिया की हर चीज़ से उत्तम हैं।[2]

—मुसलिम

4. हज़रत सालिम बिन अबी जअद कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : ऐ बिलाल! नमाज़ क़ायम करो ताकि हम उससे आनन्द प्राप्त करें।

—अबू दाऊद

5. हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) और बयाज़ी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : नमाज़ पढ़नेवाला (नमाज़ में) अपने रब से सरगोशी करता है, इसलिए उसे यह देखना चाहिए कि वह अपने रब से क्या

---

1. मतलब यह है कि जब कोई व्यक्ति ठीक तौर से नमाज़ अदा करता है, 'नमाज़' में तनिक भी असावधानी नहीं दिखाता, अपनी नमाज़ को उसके वाह्य और आन्तरिक दोनों ही दृष्टि से सँवारने की कोशिश करता है, तो उसकी यह नमाज़ संसार में उसके लिए प्रकाश, दलील और प्रमाण सिद्ध होती है और आख़िरत में भी उसके काम आएगी। ऐसी 'नमाज़' दुनिया में आदमी को उन ख़राबियों से बचाती है जो उसे सीधे मार्ग से भटकानेवाली और उसके लिए विनाशक है। आख़िरत में भी वह उसके द्वारा मुक्ति और अल्लाह की दयालुता का अधिकारी होगा। नमाज़ सर्वथा मुक्ति और प्रकाश है। जो लोग नमाज़ से ग़ाफ़िल हैं वे वास्तव में अन्धकार में हैं। उनके न मस्तिष्क को प्रकाश प्राप्त है जिसे बुरहान (कसौटी, प्रमाण) कहते हैं और न उनके हृदय को ही प्रकाश प्राप्त है। जब संसार में उनकी यह हालत है, तो आख़िरत में उनके लिए किसी भलाई की आशा कैसे की जा सकती है।
2. मनुष्य को केवल रोटी ही नहीं चाहिए, उसे मानसिक शान्ति और आत्मिक आनन्द भी अभीष्ट है। और ये चीज़ें वह नमाज़ द्वारा प्राप्त कर सकता है। यदि हृदय-शान्ति और मानसिक परितोष संसार की सारी नेमतों से बढ़कर है तो निश्चय ही नमाज़ की कुछ रक्अतें दुनिया की सारी नेमतों से ज़्यादा क़ीमती हैं। क़ुरआन में कहा गया है : "जान रखो! अल्लाह की याद से ही दिलों को इतमीनान हासिल होता है।" (13 : 28) नमाज़ अल्लाह की याद ही का दूसरा नाम है।

सरगोशी कर रहा है? तुममें से कोई इस तरह ऊँचे स्वर से क़ुरआन न पढ़े कि दूसरों को असुविधा हो।[1]

—अहमद

6. इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अपने घरों में भी अपनी नमाज़ों में से कुछ हिस्सा पढ़ा करो और उनको क़ब्रिस्तान न बनाओ।[2]

—अबू दाऊद

---

1. बन्दा नमाज़ में अपने 'रब' से बातचीत करता है। इसलिए उसे ज़्यादा-से-ज़्यादा अपने रब की ओर ध्यान देना चाहिए। उसे इसका ज्ञान होना चाहिए कि वह अपने रब से क्या कह रहा है? यह हालत तो अत्यन्त अप्रिय है कि मनुष्य देखने में तो नमाज़ में हो लेकिन वास्तव में वह कहीं और ही हो। नमाज़ पढ़नेवालों का पूरा ख़याल रखना भी आवश्यक है। ऐसी हालत में जबकि नमाज़ हो रही हो ऊँचे स्वर में क़ुरआन पढ़ना सही न होगा, क्योंकि इससे नमाज़ पढ़नेवाले का मन बँटेगा, वह पूरी एकाग्रता के साथ अपनी नमाज़ अदा न कर सकेगा। एक हदीस में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "नमाज़ में व्यस्तता होती है" (मुसलिम, बुख़ारी)। मतलब यह है कि नमाज़ में आदमी अल्लाह की याद में लगा होता है, ऐसी हालत में उसे किसी व्यक्ति से बातचीत नहीं करनी चाहिए और न किसी की बातों का उत्तर देना चाहिए। उसे पूर्णतः एकाग्रचित होकर नमाज़ अदा करनी चाहिए।
2. अर्थात अपने घरों में भी सुन्नत और नफ़्ल नमाज़ पढ़ा करो। घरों की आबादी और शोभा वास्तव में अल्लाह के स्मरण और उसकी याद ही से है। और नमाज़ अल्लाह की याद का पूर्ण रूप है। एक हदीस में है, जिसके रावी हज़रत जाबिर (रज़ि०) हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "जब तुममें से कोई व्यक्ति मसजिद में नमाज़ अदा करे तो उसे चाहिए कि अपनी नमाज़ का कुछ हिस्सा अपने घर के लिए रख ले। इसलिए कि अल्लाह उसकी नमाज़ के द्वारा उसके घर में ख़ैर व बरकत प्रदान करता है।"

इसमें संदेह नहीं कि 'नमाज़' जीवन की वास्तविक सम्पत्ति और घर की शोभा है। जिस घर में नमाज़ नहीं वह घर भलाई और बरकत से ख़ाली है।

एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) बनी अशहल की मसजिद में आए, वहाँ मग़रिब की नमाज़ पढ़ी। नमाज़ पढ़ने के बाद आप (सल्ल०) ने देखा कि लोग नफ़्ल नमाज़ पढ़ रहे हैं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : यह तो घरों की नमाज़ है। अर्थात् इन्हें अपने घरों में पढ़ो।

(अबू दाऊद)

ज्ञात हुआ कि नफ़्ल नमाज़ घर में पढ़ना उत्तम है। एक और हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने कहा : "किसी व्यक्ति का फ़र्ज़ नमाज़ के अलावा अपने घर में नमाज़ पढ़ना मेरी मसजिद से नमाज़ पढ़ने से उत्तम है। (अबू दाऊद)

7. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब भी इशा की 'नमाज़' पढ़कर मेरे पास आए तो आपने चार या छः रक्अतें पढ़ीं।[1]

—अबू दाऊद

8. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह बन्दे के किसी कर्म में भी बन्दे की ओर उतना अधिक ध्यान नहीं देता जितना कि दो रक्अतों पर जिनको बन्दा अदा करता है। नेकी बन्दे के सिर पर छिड़की जाती है जब तक वह नमाज़ में व्यस्त रहता है। और बन्दा अल्लाह का जितना सामीप्य उस चीज़ से प्राप्त करता है जो अल्लाह से निकली हुई है (अर्थात क़ुरआन से) किसी दूसरी चीज़ से नहीं।[2] —अहमद, तिरमिज़ी

9. रबीआ बिन कअब असलमी (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे कहते हैं कि मैं रात को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में रहता था। मैं आप (सल्ल०) के वुज़ू का पानी और ज़रूरत की चीज़ें लाता था। आप (सल्ल०) ने कहा : मुझसे माँगो। मैंने अनुरोध किया : मैं तो आपसे यह माँगता हूँ कि मेरी प्रार्थना यह है कि मुझे जन्नत में आपका साहचर्य प्राप्त हो। आप (सल्ल०) ने कहा : इसके सिवा कुछ नहीं चाहते? मैंने कहा : बस यही (आप सल्ल० का साथ मुझे चाहिए)। आप (सल्ल०) ने कहा : अच्छा तो अपने मामले में सजदों की अधिकता के द्वारा मेरी

---

1. इस हदीस से जहाँ यह मालूम होता है कि आप (सल्ल०) नमाज़ की सुन्नतें घर पर अदा करते थे वहीं यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि नमाज़ आपके जीवन में पूर्ण रूप से प्रवेश कर चुकी थी। मसजिद तक ही आप अल्लाह के उपासक न थे, बल्कि अपने घर और अपने घरवालों में भी आप अल्लाह को याद करते और उसकी सेवा में सजदे किया करते थे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में और जीवन के प्रत्येक मोड़ पर नमाज़ आपके साथ रहती थी। न नमाज़ आपके जीवन से अलग हो सकती थी और न आपका जीवन नमाज़ से रिक्त रह सकता था। नमाज़ जीवन की अनमोल पूँजी है।
2. अर्थात बन्दा क़ुरआन के द्वारा जितना अपने रब का सामीप्य प्राप्त कर सकता है किसी दूसरी चीज़ के द्वारा नहीं प्राप्त कर सकता और क़ुरआन नमाज़ का विशिष्ट और महत्वपूर्ण भाग है।

   नमाज़ में समय लगाना समय को नष्ट करना नहीं है बल्कि यह तो अपने समय को अत्यन्त उपयोगी और लाभदायक बनाना है। आदमी जब तक नमाज़ में होता है उसपर नेकी छिड़की जाती है। नमाज़ सत्य की परिचायक है। वह मनुष्य को नेक और सुकर्मी बनाती है। वह उसके जीवन को बुराइयों से पाक करके अल्लाह के रंग में रंग देती है। यह एक ऐसी बपतिस्मा (**Baptism**) है जिसके समान कोई बपतिस्मा नहीं हो सकता।

सहायता करो ।[1] —मुसलिम, अबू दाऊद

10. शुबरा बिन माबद कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब लड़का सात वर्ष का हो जाए तो उसे नमाज़ का आदेश दो और जब दस वर्ष का हो जाए तो नमाज़ के लिए उसे मारो ।[2] —अबू दाऊद

11. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : आदमी और कुफ़्र के बीच नमाज़ का छोड़ देना है ।[3]

—अहमद, मुसलिम

12. इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति की अस्र की नमाज़ जाती रही तो मानो उसके लोग और उसका माल सब नष्ट हो गया ।[4] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात यदि यह चाहते हो कि जन्नत में तुम्हें मेरा सहचर्य प्राप्त हो तो अल्लाह के आगे अधिक-से-अधिक सजदे करो। इसी तरह तुम इसके अधिकारी हो सकते हो कि तुम्हें मेरा सहचर्य प्राप्त हो। यदि ऐसा करोगे तो फिर तुम्हें मेरा सहचर्य प्राप्त करने में कोई कठिनाई न होगी। यह हदीस बताती है कि आख़िरत में नबी (सल्ल०) का विशेष सामीप्य उन लोगों को प्राप्त होगा जिनके सिर अधिकतर अल्लाह के आगे सजदों में होते हैं और जो नमाज़ का विशेष ध्यान रखते हैं। वह विशेष कर्म जो इस उच्च स्थान तक पहुँचाने में सहायक होता है वह अल्लाह की सेवा में सजदों की अधिकता है। सजदों की अधिकता स्पष्ट निशानी होती है कि बन्दे को अल्लाह से गहरा सम्पर्क है और उसे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के अनुसरण का पूरा ध्यान है।
2. अर्थात यदि नमाज़ नहीं पढ़ता तो इसके लिए तुम उसे सज़ा भी दे सकते हो।
3. अर्थात इस्लाम से कुफ़्र तक पहुँचने के लिए बीच में एक दर्जा है और वह है नमाज़ का छोड़ देना। यदि किसी ने नमाज़ छोड़ दी तो मानो वह इस्लाम और कुफ़्र के बीच लटक रहा है। एक क़दम यदि आगे बढ़े तो कुफ़्र की सीमा में पहुँच जाए। नमाज़ इस्लाम का विशेष चिह्न है। उसे छोड़ने का अर्थ यह है कि मनुष्य इस्लाम की रीति को त्यागकर कुफ़्र की रीति अपना रहा है।
4. कारोबार और दूसरे कामों के कारण अस्र की नमाज़ के क़ज़ा होने का अधिक भय रहता है। इसलिए आपने इसके लिए विशेष रूप से सचेत किया, अन्यथा हर नमाज़ का अपना महत्व है। इस हदीस से मालूम हुआ कि नमाज़ का छूट जाना कोई साधारण बात नहीं है। नमाज़ यदि जाती रही तो मानो मनुष्य लुट गया। जिस प्रकार परिवार धन, दौलत सम्पत्ति आदि के विनष्ट होने से आदमी का घर उजड़ जाता है ठीक उसी तरह नमाज़ के बिना मानव का जीवन बिलकुल उजाड़ है। भले ही देखने में वह

13. हज़रत जुन्दुब बिन सुफ़यान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति सुबह की नमाज़ पढ़ता है वह अल्लाह के ज़िम्मे और उसके संरक्षण में होता है, तो ऐ आदम के बेटे ! देख अल्लाह कहीं तुझसे अपने संरक्षण के प्रति कोई पूछ-गच्छ न करे ।[1] —मुसलिम

14. अबू दरदा (रज़ि०) कहते हैं कि मेरे मित्र (अल्लाह के रसूल सल्ल०) ने मुझे यह वसीयत की कि अल्लाह के साथ किसी चीज़ को शरीक न करना भले ही तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएँ या तुम्हें जला दिया जाए। और न जानते-बूझते फ़र्ज़ नमाज़ छोड़ना क्योंकि जो व्यक्ति जानते-बूझते नमाज़ छोड़ बैठता है, अल्लाह उसकी रक्षा से हाथ उठा लेता है। और शराब न पीना क्योंकि वह समस्त बुराइयों का द्वार खोलनेवाली है। —इब्ने माजा

15. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : क़ियामत के दिन बन्दे के जिस कर्म का सबसे पहले हिसाब होगा वह उसकी नमाज़ है। तो यदि नमाज़ ठीक अदा की गई है, तो सफलता

आनन्द और सुख से जीवन क्यों न व्यतीत कर रहा हो। इसे एक मिसाल से समझिए। एक व्यक्ति के पास माल-दौलत भी है, कोठी और बाग़ भी उसके पास हैं। आप कल्पना कीजिए यदि उसका इकलौता बेटा मर जाए तो उसका क्या हाल होगा। वह समझेगा कि अब उसके पास कुछ भी नहीं रहा। उसे अपना घर बिलकुल उजाड़ मालूम होगा। उसकी सम्पत्ति, उसका बाग़ और मकान सब कुछ मौजूद होगा लेकिन उसकी दृष्टि में इन चीज़ों का कुछ भी मूल्य न होगा। वह सोचेगा कि जिसके लिए ये सारे सामान थे जब वही नहीं रहा तो ये सब व्यर्थ हैं। ठीक इसी तरह नमाज़ जो मुस्लिम के जीवन की प्राप्ति और उसकी सुख-सामग्री है, यदि वही न रहे तो उसके जीवन में क्या रह जाएगा। जब कोई अल्लाह की सेवा में उपस्थित होने से वंचित रहा तो मानो वह हर चीज़ से वंचित रहा।

1. मतलब यह है कि जब मनुष्य फ़ज्र की नमाज़ अदा करता है तो मानो वह अपने को अल्लाह के संरक्षण में दे देता है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति नमाज़ त्याग देता है और उस प्रतिज्ञा को भुला देता है जो उसके और अल्लाह के बीच नमाज़ के द्वारा वुजूद में आती है तो वह अल्लाह के संरक्षण और रक्षा से वंचित हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को, जो अल्लाह की बड़ाई और महानता का आदर नहीं करता, न अल्लाह की सहायता मिलती है और न उसके कामों में अल्लाह का सहयोग और समर्थन प्राप्त होता है। अल्लाह उसे उसकी अवज्ञा का अवश्य दण्ड देगा।

और मुक्ति प्राप्त हो जाएगी और यदि ठीक अदा नहीं की गई है, तो असफलता और घाटा है। यदि फ़र्ज़ नमाज़ में कोई कमी होगी तो अल्लाह कहेगा : देखो मेरे बन्दे के पास नफ़्लें हैं? फ़र्ज़ में जो कमी हो उसे नफ़्लों से पूरा करो। फिर इस प्रकार उसके दूसरे सारे कर्मों का हिसाब होगा।[1] —अबू दाऊद, अहमद

16. हज़रत अबू बुरैदा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसने अस्र की नमाज़ छोड़ दी, उसका किया-धरा अकारथ हुआ।[2]

—बुख़ारी, नसई

17. इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : नमाज़ का आरंभिक समय अल्लाह की प्रसन्नता का है और अन्तिम समय अल्लाह की क्षमा का है।[3] —तिरमिज़ी

18. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि अल्लाह कहता है : मेरे और मेरे बन्दे के बीच नमाज़ आधी-आधी विभक्त है। आधी नमाज़ मेरे लिए और आधी मेरे बन्दे के लिए

---

1. इस हदीस से मालूम हुआ कि मुस्लिम के जीवन में नमाज़ को मौलिक महत्व प्राप्त है। इसलिए सबसे पहले क़ियामत में बन्दे की नमाज़ देखी जाएगी। यदि किसी के पास नमाज़ नहीं है तो इसका अर्थ यह है कि उसने वास्तव में उस पवित्र और अभीष्ट जीवन को अपनाने का फ़ैसला ही नहीं किया जिसका प्रतीक नमाज़ होती है। इस हदीस से यह भी मालूम होता है कि मोमिन के जीवन में नफ़्लें, सुन्नतें आदि इबादतें फ़र्ज़ से भिन्न चीज़ें नहीं हुआ करतीं बल्कि नफ़्ल आदि से वास्तव में फ़र्ज़ ही को पूर्ण बनाना अभीष्ट होता है।
2. नमाज़ त्याग देने का अर्थ यह हुआ कि उसके समस्त कार्य और उसकी सारी कोशिशें व्यर्थ हो गईं। नमाज़ के बिना उसका जीवन ही निरर्थक है।
3. आरंभिक समय पर 'नमाज़' पढ़ना इस बात की पहचान है कि बन्दे को नमाज़ से हार्दिक लगाव है। वह उसे अपने लिए बोझ नहीं समझता। अन्तिम समय में नमाज़ पढ़ने से फ़र्ज़ तो अदा हो जाता है लेकिन उसमें वह विशेषता कैसे पैदा हो सकती है जो उसे आरंभिक समय में पढ़ने में है। जब नमाज़ का वह समय आ जाए जिसे नबी (सल्ल०) ने उत्तम कहा है तो नमाज़ अदा कर लेनी चाहिए। उस समय अकारण नमाज़ को टालना इस बात की निशानी होगी कि नमाज़ से जैसा लगाव और प्रेम होना चाहिए था, वह नहीं है।

है। और मेरे बन्दे को वही मिलेगा जो वह माँगेगा। जब बन्दा कहता है : "प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो सारे संसार का रब है" तो प्रतापवान एवं तेजोमय अल्लाह कहता है कि मेरे बन्दे ने मेरी प्रशंसा की, और जब वह कहता है : जो "कृपाशील और दयावान है", अल्लाह कहता है कि मेरे बन्दे ने मेरी प्रशंसा की। और जब वह कहता है : "उस दिन का मालिक है जब कर्मों का बदला दिया जाएगा" तो (अल्लाह) कहता है कि मेरे बन्दे ने मेरी बड़ाई और महानता का प्रदर्शन किया।[1] और जब वह कहता है : "हम तेरी ही इबादत करते हैं और तुझ ही से मदद माँगते हैं", तो वह कहता है यह मेरे और मेरे बन्दे के बीच (सम्मिलित) है और मेरे बन्दे को वह चीज़ मिलेगी जिसकी उसने प्रार्थना की। और जब वह कहता है "हमें सीधा मार्ग दिखा, उन लोगों का मार्ग जिनपर तूने कृपा की, उनका नहीं जिनपर तेरा प्रकोप हुआ और न गुमराहों का", तो कहता है कि यह मेरे बन्दे के लिए है और मेरे बन्दे को वह चीज़ प्राप्त होगी जिसकी उसने प्रार्थना की।[2] —मुसलिम, अबू दाऊद, नसई, इब्ने माजा, तिरमिज़ी

---

1. इससे मालूम हुआ कि आख़िरत और अल्लाह की उस अदालत का जो क़ियामत में क़ायम होगी, इनकार करनेवाले वास्तव में अल्लाह की महानता का इनकार करते हैं। यह अल्लाह की महानता के प्रतिकूल है कि वह एक ऐसा दिन न लाए, जिसमें लोगों को उनके कर्मों का बदला दिया जा सके।
2. इस हदीस से साफ़ ज़ाहिर है कि नमाज़ में बन्दा अपने रब से बातें करता है और उसका रब उसकी समस्त बातों को सुनता और उसका उत्तर देता है। वह अपने बन्दे के प्रस्तुत किए हुए सूक्ष्मतम भावों और भावनाओं और प्रशंसा एवं गुणगान को स्वीकार करता और उसकी प्रार्थना को स्वीकृति प्रदान करता है। बन्दे ने यदि उससे सहायता की याचना की है और उससे धर्म के सीधे और स्वाभाविक मार्ग पर चलने में मदद चाही है तो वह वादा करता है कि वह अपने बन्दे की अवश्य सहायता करेगा और उसे हर तरह की गुमराहियों से बचाया जाएगा।

   एक दूसरी हदीस से भी मालूम होता है कि नमाज़ में बन्दा अपने रब से बातें करता है। हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) कहते हैं कि एक दिन नबी (सल्ल०) मसजिद में आए। देखा कि लोग उच्च स्वर में नमाज़ पढ़ रहे हैं। आप (सल्ल०) ने कहा : "नमाज़ पढ़नेवाला अपने रब से चुपके-चुपके बातें करता है। इसलिए उसे यह देखना चाहिए कि वह अपने रब से क्या सरगोशी कर रहा है? तुममें से कोई इस तरह ऊँची आवाज़ में क़ुरआन न पढ़े कि दूसरों को असुविधा हो। (मुसनद अहमद)

नमाज़ की संख्या और समय

1. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ज़ुह्र का समय वह है जबकि सूर्य ढल जाए और आदमी की छाया उसके क़द के बराबर हो जब तक कि अस्र का समय न आ जाए। और अस्र का समय वह है (जो इसके बाद हो और उस समय तक) जब तक कि सूर्य पीला न हो जाए। और मग़रिब की नमाज़ का समय (उस समय तक रहता है) जब तक कि सान्ध्य की लालिमा लुप्त न हो जाए। इशा की नमाज़ का समय आधी रात तक है और फ़ज्र की नमाज़ का समय सुबह के ज़ाहिर होने से लेकर सूर्य उदय होने तक है।[1]
—मुसलिम

---

1. ज़ुह्र, अस्र, मग़रिब, इश और फ़ज्र—पाँच समय की नमाज़ें हर मुसलमान के लिए अनिवार्य हैं। इस हदीस में उनके समय निश्चित किए गए हैं। क़ुरआन में कहा गया है : "निस्संदेह नमाज़ ईमानवालों पर समय की पाबन्दी के साथ अनिवार्य की गई है।"
—4 : 103

नमाज़ के समय क्या हों? क़ुरआन में विभिन्न स्थानों पर इसका उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ एक जगह कहा गया है : "नमाज़ क़ायम करो जब सूर्य ढले रात के अँधेरे तक और फ़ज्र (प्रभात) के क़ुरआन (अर्थात् फ़ज्र की नमाज़) के पाबंद रहो। को भी ज़रूरी ठहरा लो। निस्संदेह फ़ज्र का क़ुरआन (पढ़ना) साक्षात होता है।" (क़ुरआन, 17 : 78) सूर्य ढलने से रात के अँधेरे तक में चार वक़्तों की नमाज़ें आ जाती हैं। सूर्य पहली बार दोपहर के बाद ढलता है वह ज़ुह्र की नमाज़ का समय होता है। सूर्य का दूसरा ढलना पहाड़ों और ऊँचे टीलों आदि से होता है और अस्र की नमाज़ का समय आरंभ हो जाता है। फिर इसके पश्चात सूर्य पृथ्वी की सतह से ढलता हुआ अस्त हो जाता है जो मग़रिब की नमाज़ का समय है। सूर्य का एक ढलना इसके बाद भी होता है, जबकि क्षितिज पर उसकी लालिमा और उसके चिह्न शेष नहीं रहते और बिलकुल अन्धकार छा जाता है, और इशा की नमाज़ का समय शुरू हो जाता है। पाँचवीं नमाज़ फ़ज्र की है जिसका समय पौ फटने से लेकर सूर्य निकलने तक है। इस नमाज़ का ज़िक्र भी इस आयत में आ गया है।

नमाज़ के समय हमारी दुनिया में ज़ाहिर होनेवाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों और निशानियों की दृष्टि से नियुक्त किए गए हैं। ये निशानियाँ अल्लाह की सामर्थ्य और उसकी महानता को प्रदर्शित करती हैं। मुसलिम भी इन निशानियों के ज़ाहिर होने के समय अल्लाह के आगे सजदे में गिरकर अपने को विश्व की महान निशानियों के अनुरूप बनाता है।

नमाज़ और शुद्धता

1. अबू मालिक अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : स्वच्छता एवं पवित्रता ईमान का अंश है[1] और **"अलहम्दुलिल्लाह"**

---

1. अर्थात ईमान के जहाँ और बहुत-से तक़ाज़े हैं वहीं उसका एक तक़ाज़ा यह भी है कि मनुष्य अपने शरीर और वस्त्र को पाक रखे। ईमान केवल दिल में रहनेवाली चीज़ नहीं है, बल्कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से ईमान का प्रदर्शन होना चाहिए। एक 'हदीस' में है कि आप (सल्ल०) ने कहा : "स्वच्छता आधा ईमान है", (तिरमिज़ी)। मतलब यह है कि यह ईमान ही की माँग है कि मनुष्य का शरीर और मन दोनों स्वच्छ और पवित्र हों। जिसने अपने शरीर और वस्त्र को स्वच्छ रखा उसने ईमान ही के तक़ाज़े पूरे किए। पूरी स्वच्छता और पवित्रता तो उस समय प्राप्त हो सकती है जबकि हमारा वाह्य अस्तित्व और हमारा अन्तर दोनों ही स्वच्छ हों। जिसने अपने शरीर और वस्त्र को स्वच्छ रखा उसने ईमान ही की माँग को पूरा किया। पूर्ण स्वच्छता और पूर्ण ईमान तो उस समय प्राप्त हो सकता है जबकि हमारा शरीर और मन दोनों ही स्वच्छ और शुद्ध हों। हममें शिर्क और कुफ़्र और किसी बुराई की गन्दगी न हो, बल्कि उसमें प्रेम और मन की शुद्धता हो। अल्लाह की महानता और बड़ाई का एहसास हो। उसके बन्दों के लिए सहानुभूति, करुणा और वेदना हो।

दीन (धर्म) और शरीअत में स्वच्छता और पवित्रता का बड़ा महत्व है। केवल यही नहीं कि नमाज़, क़ुरआन का पढ़ना और काबा के तवाफ़ के लिए ही स्वच्छ रहना आवश्यक है बल्कि स्वच्छता स्वयं धार्मिक दृष्टि से अभीष्ट है। क़ुरआन में कहा गया है : "निस्संदेह अल्लाह तौबा करनेवालों से प्रेम करता है और उन लोगों से प्रेम करता है जो पाक-साफ़ रहनेवाले हैं।" — 2 : 222

इस आयत से मालूम होता है कि जिस प्रकार स्वच्छता का ध्यान रखने से मनुष्य का शरीर और वस्त्र दोनों शुद्ध और स्वच्छ रहते हैं उसी प्रकार तौबा और अल्लाह की ओर पलटने से मनुष्य के हृदय और उसकी आत्मा को निर्मलता प्राप्त होती है। और वह गुनाह की मलिनता और उसके बुरे प्रभावों से छुटकारा पा लेता है। रिवायतों में वुज़ू के पश्चात शहादत का कलिमा और यह दुआ पढ़ने का उल्लेख मिलता है : "ऐ अल्लाह, तू मुझे तौबा करनेवालों में से कर दे और उन लोगों में से कर दे जो स्वच्छता और पवित्रता अपनानेवाले हैं।" इससे मालूम हुआ कि पूर्ण स्वच्छता और पवित्रता उसी समय प्राप्त होती है जबकि शरीर, वस्त्र आदि को स्वच्छ रखने के साथ-साथ बन्दा अपने ईमान को ताज़ा करता रहे और अल्लाह की सेवा में तौबा और क्षमायाचना के द्वारा अपने गुनाहों की माफ़ी माँगता रहे।

मीज़ान को भर देता है और "सुबहानल्लाह" व "अलहम्दुलिल्लाह" आकाशों और धरती के बीच जो कुछ है सबको भर देते हैं।[1] और नमाज़ प्रकाश है।[2] सदक़ा

एक दूसरी जगह कहा गया है : "उसमें ऐसे लोग हैं जो पाक-साफ़ रहना पसन्द करते हैं। और अल्लाह पाक-साफ़ रहनेवालों से प्रेम करता है।" (क़ुरआन, 9 : 108)

हदीस में स्वच्छता और पवित्रता को ईमान का अंश ठहराया जा रहा है। एक हदीस में स्वच्छता को आधा ईमान कहा गया। शरीर और वस्त्र की स्वच्छता और सुथराई का मनुष्य के मन और उसकी आत्मा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि शरीर और वस्त्र स्वच्छ हैं तो अवश्य ही मन में विशेष प्रकार का आनन्द और प्रसन्नता की अनुभूति होगी और मनुष्य का मन विकसित पुष्प के समान खिल उठेगा। स्वच्छता अपनी वास्तविकता की दृष्टि से मन और आत्मा का विकास और आनन्द है और अपवित्रता अपनी वास्तविकता की दृष्टि से मन के विकार, संकुचित अवस्था और तिमिरता का नाम है। नापाकी या पेशाब, पाख़ाने के पश्चात आदमी जब नहाता या वुज़ू कर लेता है और साफ़-सुथरे कपड़े पहनता और सुगन्ध का प्रयोग करता है तो उसके मन की मलिनता दूर हो जाती है और उसे एक प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त होती है। वह इस योग्य हो जाता है कि अल्लाह के आज्ञापालन और इबादत के पवित्रतम कर्त्तव्य का पालन कर सके। उसे फ़रिश्तों से एक प्रकार की समानता प्राप्त हो जाती है जो सदैव पाक-साफ़ रहते और पवित्रतम एवं सूक्ष्मतम भावों को मन में धारण किए रहते हैं।

जिस व्यक्ति को पाकी और नापाकी की चिन्ता नहीं होती, जो सदा नापाकी ही की दशा में रहना पसन्द करता है उसकी आत्मा अन्धकार में घिरी रहती है। वह पवित्रतम अन्तरभावों और ईमान के रसास्वादन से वंचित ही रह जाता है। उसकी आत्मा नाना प्रकार के वसवसों में जकड़ी रहती है। तत्वदर्शिता (Wisdom) और बुद्धि-विवेक के द्वार उसके लिए नहीं खोले जाते।

1. अर्थात "अलहम्दुलिल्लाह" (प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है), सुबहानल्लाह व अलहम्दु-लिल्लाह" (महिमावान है अल्लाह, प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है) इन पवित्रतम कलिमों की बरकत से धरती और आकाश का वातावरण परिपूर्ण हो जाता है। ये पवित्र कलिमे आदमी के नेकी के पल्ले को झुकानेवाले हैं। आख़िरत में इनका असीम बदला मिलेगा। इन कलिमों को यदि मनुष्य समझकर पढ़े तो अवश्य ही उसके जीवन में क्रान्ति आ जाएगी। वह दुनिया में कभी अल्लाह से ग़ाफ़िल नहीं हो सकता।
2. मुस्लिम के जीवन का आदि और अन्त नमाज़ ही है। नमाज़ मनुष्य के जीवन को अर्थमय बनाती और मानवीय आत्मा को अन्धकार और तुच्छ इच्छाओं से छुटकारा दिलाती है। नमाज़ अपनी वास्तविकता की दृष्टि से अल्लाह का स्मरण और उसकी

दलील और प्रमाण है।[1] सब्र ज्योति है।[2] और क़ुरआन या तो तर्क है तुम्हारे पक्ष में या तुम्हारे विरुद्ध।[3] हर व्यक्ति सुबह करता है तो अपनी आत्मा का सौदा करता है, फिर या तो उसे छुड़ा लेता है या उसे विनष्ट कर देता है।[4] —मुसलिम

तस्बीह और गुणगान है। अल्लाह के स्मरण से बढ़कर जीवन का प्रकाश कहाँ पाया जा सकता है।

1. सदक़ा मनुष्य के सच्चे मोमिन होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मोमिन अल्लाह के मार्ग में अपना माल ख़र्च करके इस बात का प्रमाण संचित करता है कि वह अल्लाह और उसकी उतारी हुई शरीअत पर ईमान रखता है। सदक़ा आख़िरत में भी मनुष्य के अल्लाह का उपासक होने का प्रमाण बनेगा और इस प्रकार सदक़ा देनेवाला अल्लाह के पुरस्कार का अधिकारी होगा।
2. मोमिन के जीवन में सब्र का स्थान अत्यन्त उच्च है। सब्र वास्तव में ईमान और अल्लाह पर भरोसा करने की अपरिहार्य अपेक्षा है। सब्र के बिना मानवीय जीवन का विकास संभव नहीं। सब्र मोमिन का आवश्यक गुण है। अधैर्य सदैव ईमान के अभाव या उसके कमज़ोर होने का प्रमाण होता है। जिस व्यक्ति की दृष्टि परिणाम पर होगी वह कभी धैर्य को हाथ से जाने नहीं देगा। चाहे कितने ही संकट क्यों न आएँ, वह कभी सत्य-मार्ग से विचलित नहीं हो सकता। धर्म-विरोधी उसे कितना ही प्रलोभन क्यों न दें वह कभी भी अपनी अन्तरात्मा और ईमान की माँगों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसके आचरण को भ्रष्ट करनेवाले अवसर और साधन चाहे कितने ही अधिक क्यों न हों, वह उन सबके मुक़ाबले के लिए जो हथियार इस्तेमाल करता है वह सब्र का हथियार है। वह अल्लाह की निश्चित की हुई सीमाओं का सदैव और प्रत्येक अवस्था में ध्यान रखता है। सब्र के इस मौलिक महत्व के कारण उसे क़ुरआन में नमाज़ के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। क़ुरआन में है : "ऐ ईमान लानेवालो ! सब्र करो और नमाज़ से सहायता लो। निस्संदेह अल्लाह सब्र करनेवालों के साथ है।" (2 : 153) इस आयत में नमाज़ शब्द सब्र के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सब्र की इन्हीं विशेषताओं के कारण उसे प्रकाश या ज्योति की संज्ञा दी गई है।
3. अर्थात यदि तुम्हारा जीवन क़ुरआन के आदेशों और उसके पेश किए हुए आदर्श के अनुसार व्यतीत होगा तो क़ुरआन तुम्हारे लिए साक्षी और प्रमाण बनेगा, परन्तु यदि तुम्हारी नीति उसके विरुद्ध है तो क़ुरआन की गवाही तुम्हारे विरुद्ध होगी।
4. मतलब यह है कि दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी अवस्था में हो और किसी भी काम में हो वास्तविकता की दृष्टि से वह प्रतिदिन अपने प्राण का सौदा करता है। या तो उसे छुटकारा दिलाता है या उसे विनष्ट करता है। मनुष्य का जीवन एक व्यापार है। वह यदि अपना जीवन अल्लाह के आज्ञापालन में व्यतीत करता है तो वह अपनी

2. शुबैब बिन अबी रौह नबी (सल्ल०) के एक सहाबी से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक दिन फ़ज्र की नमाज़ पढ़ी और उसमें आपने (क़ुरआन की) सूरा 'अर-रूम' पढ़ी। उसमें आपको संदेह हो गया। जब आप नमाज़ पढ़ चुके तो कहा : कुछ लोगों की यह क्या दशा है कि हमारे साथ नमाज़ अदा करते हैं और स्वच्छता का भली-भाँति ध्यान नहीं रखते। बस यही लोग हमारे क़ुरआन पढ़ने में संदेह पैदा कर देते हैं।[1] —नसई

3. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दातुन मुँह को अधिक साफ़ रखनेवाली और अल्लाह को अधिक प्रसन्न करनेवाली चीज़ है।[2] —मुसनद इमाम शाफ़ई, अहमद, नसई, बुख़ारी

4. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि नबी (सल्ल०) का नित्य कार्य था कि दिन या रात में जब भी आप सोते थे, तो उठने के पश्चात और वुज़ू से पूर्व दातुन अवश्य करते। —अहमद, अबू दाऊद

5. शुरैह बिन हाय्नी (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने हज़रत आइशा (रज़ि०) से पूछा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब बाहर से घर में आते तो सबसे पहले

मुक्ति का प्रयास करता है। इसके विपरीत यदि वह जीवन में अल्लाह को भुला देता है तो वह स्वयं अपने विनाश में लगा हुआ है। संसार में उसे नैतिक एवं आध्यात्मिक मृत्यु और आख़िरत में जहन्नम की यातना से बचानेवाला कोई नहीं।

1. इस हदीस से मालूम हुआ कि इबादत के लिए स्वच्छता और वुज़ू आदि का ध्यान रखना कितना आवश्यक है। वुज़ू और स्वच्छता एवं शुद्धता का भली-भाँति ध्यान न रखने का बुरा प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है। यहाँ तक कि इसके प्रभाव से क़ुरआन पढ़ने में भी गड़बड़ी हो सकती है।
2. दातुन (मिस्वाक) से मनुष्य को दोहरा लाभ पहुँचता है। इससे मुँह की सफ़ाई भी हो जाती है और यह एक प्रिय कार्य है, इसलिए इससे अल्लाह भी प्रसन्न होता है। इसी तरह की एक हदीस है : "जो व्यक्ति अपनी रोज़ी कमाने के लिए काम करे और अपने काम में अल्लाह की प्रसन्नता को सामने रखे उसकी मिसाल हज़रत मूसा की माँ जैसी है कि उन्होंने अपने ही बेटे को दूध पिलाया और उसकी मज़दूरी भी ली" अर्थात रोज़ी कमाने में भी मनुष्य दोहरा लाभ उठाता है—रोज़ी भी कमाता है और अल्लाह से बदला भी पाता है, शर्त यह है कि वह अल्लाह की प्रसन्नता को सामने रखे और ईमानदारी के साथ काम करे। दोहरे लाभ की बात दातुन और रोज़ी कमाने तक ही सीमित नहीं है बल्कि धर्म के समस्त आदेश ऐसे हैं जिनमें मनुष्य के वर्तमान जीवन और आख़िरत की भलाई और कल्याण अपेक्षित हैं।

क्या काम करते थे ? कहा : सबसे पहले आप दातुन करते थे।[1] —मुसलिम

6. हज़रत अबू अय्यूब से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : चार चीज़ें रसूल की सुन्नतों (रीतियों) में से हैं : लज्जा[2], सुगन्ध लगाना, दातुन करना।[3] और विवाह करना।[4] —तिरमिज़ी

7. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : वह नमाज़ जिसके लिए दातुन की जाए उस नमाज़ की अपेक्षा सत्तर गुना श्रेष्ठ है जो बिना दातुन के अदा की जाए।[5] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

---

1. इन हदीसों से मालूम हुआ कि नबी (सल्ल०) दातुन का कितना ध्यान रखते थे। इससे यह भी मालूम हुआ कि दातुन केवल वुज़ू ही के साथ विशिष्ट नहीं है बल्कि जब भी आवश्यकता हो दातुन कर लेनी चाहिए। पाँच अवसरों पर विशेष रूप से दातुन का महत्व है : वुज़ू में नमाज़ के लिए खड़े होते समय (यदि वुज़ू और नमाज़ के बीच अधिक समय व्यतीत हो गया हो), क़ुरआन मजीद पढ़ने के समय, सोकर उठने के समय, मुँह में दुर्गन्ध पैदा हो जाने पर या दाँतों का रंग बदल जाने के समय।
2. लज्जा मनुष्य के चरित्र का सौन्दर्य है। नबी (सल्ल०) की एक हदीस है : "जिसमें लज्जा होगी उसमें एक विशेष प्रकार की शोभा होगी।" एक हदीस में है : "लज्जा 'ईमान' ही की एक शाखा है।" अल्लाह के नबी चरित्र की दृष्टि से एक उच्च स्थान पर होते हैं इसलिए उनके यहाँ यह अभीष्ट चीज़ न पाई जाएगी तो कहाँ पाई जाएगी।
3. सुगन्ध और दातुन दोनों ही चीज़ें बहुत ही प्रिय हैं : दातुन से मुँह की सफ़ाई होती है, सुगन्ध से हमारी आत्मा और हृदय को एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। उपासनानन्द और रसानुभव में सुगन्ध और पवित्रता दोनों ही चीज़ें सहायक होती हैं।
4. विवाह समाज की आधारशिला है। अल्लाह के नबी मानव-समाज के लिए पूर्ण आदर्श बनकर आते हैं, इसलिए वे विवाह को कैसे घृणित ठहरा सकते हैं। सांसारिक जीवन में अच्छी पत्नी एक बड़ी नेमत है। विवाह वह चीज़ है जिससे दृष्टि और हृदय की पवित्रता की रक्षा होती है। नबी न तो इसकी शिक्षा देने आते हैं कि मनुष्य संसार को त्याग दे और न उन्होंने विवाह और मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों को ईश-भक्ति के उच्च आदर्शों के प्रतिकूल ठहराया। इस तरह की चीज़ें तो वास्तव में रोगग्रस्त मस्तिष्क की उपज हुआ करती हैं।
5. अर्थात जो नमाज़ दातुन करके अदा की जाएगी वह उस नमाज़ की अपेक्षा जो बिना दातुन किए पढ़ी जाएगी श्रेष्ठतम् होगी। इससे मालूम हुआ कि वाह्य शुद्धता एवं पवित्रता का धर्म में कितना महत्व है। वाह्य शुद्धता का मनुष्य के कर्मों पर वाह्य और आन्तरिक दोनों ही दृष्टि से प्रभाव पड़ता है।

8. हज़रत उसमान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति ने वुज़ू किया और अच्छी तरह से वुज़ू किया उसके सारे गुनाह निकल जाएँगे यहाँ तक कि उसके नखों के नीचे से भी ।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

9. अबू मालिक अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : शुद्धता एवं पवित्रता ईमान का अर्ध भाग है ।[2] —मुसलिम

10. कअब बिन उजरा (रज़ि०) का बयान है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब तुममें से कोई अच्छी तरह वुज़ू करे फिर मसजिद के इरादे से निकले तो तशबीक न करे क्योंकि वह नमाज़ में होता है ।[3] —अबू दाऊद

---

1. अर्थात वुज़ू से केवल वाह्य शुद्धता ही प्राप्त नहीं होती बल्कि इससे आदमी के गुनाह भी धुल जाते हैं। इसलिए कि हर वुज़ू वास्तव में अल्लाह की बन्दगी की नए सिरे से प्रतिज्ञा भी है, इसी लिए हदीसों में वुज़ू के पश्चात कलिमा-ए-शहादत : अशहदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाह व अशहदु अन्-न मुहम्मदन् अब्दु-हू व रसूलु-हू (मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं और यह कि मुहम्मद अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं ।) पढ़ने का ज़िक्र भी आता है। इस शहादत (गवाही) की प्रतिज्ञा, और ईमान की पुनरावृत्ति के बिना आन्तरिक पवित्रता प्राप्त नहीं होती। इस कलिमा से मानो पवित्रता पूर्ण हो जाती है। बन्दगी की प्रतिज्ञा और ईमान की पुनरावृत्ति के परिणाम स्वरूप मनुष्य के गुनाहों को क्षमा कर दिया जाता है। एक हदीस में आता है कि उसके लिए जन्नत के सभी दरवाज़े खुल जाते हैं।

   वुज़ू से छोटे गुनाह तो अवश्य ही क्षमा हो जाते हैं, बड़े गुनाहों के क्षमा होने की भी राह निकलती है। किसी व्यक्ति से यदि बड़े गुनाह हुए हों तो तौबा और कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) के दूसरे तरीक़े भी अपनाए, ताकि अल्लाह उसके सभी गुनाहों को क्षमा कर दे और उसे पवित्र जीवन प्राप्त हो।

2. इस्लाम ने जहाँ आध्यात्मिक और शुद्धता एवं पवित्रता की शिक्षा दी है वहीं वह हमें वाह्य शुद्धता एवं पवित्रता और शिष्टाचार आदि की शिक्षा भी देता है, इसी लिए वाह्य शुद्धता एवं पवित्रता को आधा ईमान कहा गया। ईमान की समस्त माँगें तो उस समय पूरी हो सकती हैं जबकि मनुष्य अपने वाह्य और अन्तर दोनों को पवित्र रखे। दोनों में गहरा संपर्क है और दोनों की पूर्णता से मानव के व्यक्तित्व को पूर्णता प्राप्त होती है।

3. एक हाथ की उँगलियों को दूसरे हाथ की उँगलियों में यूँ ही अकारण डालना या चटखाने के लिए डालना तशबीक है। यह एक फ़ुज़ूल हरकत है या सुस्ती और ग़फ़लत का लक्षण है। इससे रोका गया। जब किसी व्यक्ति ने अच्छी तरह वुज़ू कर लिया तो वह सामान्य और बेख़बर लोगों जैसा नहीं रहा; बल्कि उसे वाह्य पवित्रता के

नमाज़ सम्बन्धी आदाब

1. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बन्दा जब नमाज़ में होता है तो सर्वोच्च अल्लाह अवश्य ही उसकी ओर ध्यान देता है जब तक कि वह इधर-उधर न देखे, और जब वह इधर-उधर देखने लगता है तो अल्लाह उसकी ओर से मुख फेर लेता है।[1] —अबू दाऊद, नसई

2. हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन अबू बक्र से उल्लिखित है, वे कहते हैं कि हम हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास थे, इतने में उनका भोजन आया तो क़ासिम बिन मुहम्मद नमाज़ पढ़ने के लिए खड़े हो गए तो (हज़रत आइशा रज़ि० ने) कहा : मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते सुना है कि जब खाना सामने आ जाए तो उस समय नमाज़ नहीं (पढ़नी चाहिए) और न उस समय (नमाज़ पढ़नी चाहिए) जबकि पेशाब-पाख़ाने की ज़रूरत हो।[2] —मुसलिम, अबू दाऊद

साथ-साथ आत्मा की शुद्धता भी प्राप्त हो गई। अब वह उस अल्लाह की ओर प्रवृत्त हो गया जिसकी ओर रुख़ करके अपने मन की समस्त मलिनता को दूर करता और पवित्र बनाता है। वास्तविकता की दृष्टि से अब वह नमाज़ की दशा में है। और यदि मसजिद जाने के इरादे से वह घर से निकल पड़ा तो फिर उसके नमाज़ की दशा में होने में कोई सन्देह नहीं रहा। मसजिद का मार्ग तय करने में उसे नमाज़ ही का सवाब मिलेगा। इसलिए उसे अकारण कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जो नमाज़ के प्रतिकूल हो। हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से भी एक हदीस उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : "जब तुममें से कोई मसजिद के भीतर हो तो उसे अपने हाथों की उँगलियों को एक-दूसरे के भीतर न डालना चाहिए। तुममें से कोई व्यक्ति जब तक मसजिद में रहता है, तो वह नमाज़ ही में होता है यहाँ तक कि वह मसजिद से चला जाए। —मुसनद अहमद

1. अर्थात अल्लाह का उस समय तक उस व्यक्ति की ओर ध्यान केंद्रित रहता है और उसपर कृपा-दृष्टि डाले हुए रहता है जब तक वह नमाज़ में अल्लाह की ओर ध्यान लगाए हुए रहता है और इधर-उधर नहीं देखता। लेकिन जब वह किसी दूसरी ओर ध्यान कर लेता है तो अल्लाह भी उसकी ओर से अपना रुख़ फेर लेता है। उसके आत्म-गौरव को यह कब स्वीकार हो सकता है कि वह उस व्यक्ति की ओर ध्यान दे जो उसकी महानता और बड़ाई का आदर नहीं करता।
2. मतलब यह है कि भूख हो और खाना आ जाए तो उसे खाकर नमाज़ के लिए खड़ा होना चाहिए अन्यथा 'नमाज़' में पूरी एकाग्रता प्राप्त न हो सकेगी। इसी तरह यदि पेशाब-पाख़ाना की ज़रूरत है तो उस समय भी नमाज़ में दिल नहीं लग सकता।

3. अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब तुममें कोई व्यक्ति लोगों को नमाज़ पढ़ाए तो उसे हल्की (नमाज़) पढ़ानी चाहिए, इसलिए कि उनमें कमज़ोर, बीमार और आवश्यकता रखनेवाले सब सम्मिलित होते हैं, और जब अकेले नमाज़ पढ़े तो जितनी चाहे लम्बी करे ।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : (कभी ऐसा होता है कि) मैं नमाज़ शुरू करता हूँ और मैं चाहता हूँ कि उसे लम्बी करूँ, इतने में बच्चे के रोने की आवाज़ सुन लेता हूँ तो मैं अपनी नमाज़ को संक्षिप्त कर देता हूँ इसलिए कि मैं उस तकलीफ़ को जानता हूँ जो उसकी माँ को उसके रोने से होगी ।[2] —बुख़ारी, मुसलिम, इब्ने माजा, नसई, तिरमिज़ी

इसलिए ऐसी दशा में मनुष्य को चाहिए कि पेशाब-पाख़ाने से निवृत्त होकर नमाज़ अदा करे। शरीअत ने मनुष्य की विवशता का ध्यान रखा है। क़ुरआन में है : "अल्लाह ने धर्म में तुम्हारे लिए तंगी और मुश्किल नहीं रखी।" (22 : 78) एक हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने कहा : "जब तुममें से किसी के सामने रात का खाना रखा जाए और नमाज़ की तकबीर कही जाने लगे तो पहले खाना खाए। खाने में जल्दी न करे, यहाँ तक कि वह उससे निवृत्त हो जाए।" (मुसलिम, बुख़ारी)

हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) के सामने खाना रखा जाता और नमाज़ शुरू हो जाती तो वे नमाज़ को न आते जब तक कि खाना खा न लेते, हालाँकि नमाज़ में इमाम के क़ुरआन पढ़ने की आवाज़ सुनते होते थे।

1. अर्थात इमाम को चाहिए कि वह नमाज़ पढ़नेवालों का ख़याल रखे। नमाज़ बहुत लम्बी न करे, ताकि हर व्यक्ति आसानी से अदा कर सके। अकेले नमाज़ पढ़ रहा हो तो उसे अधिकार है, जितनी देर चाहे नमाज़ में खड़ा रहे। हज़रत अनस (रज़ि०) का बयान है कि मैंने कभी किसी इमाम के पीछे नमाज़ नहीं पढ़ी, जो नबी (सल्ल०) की नमाज़ की तरह हल्की और पूर्ण हो। (बुख़ारी)
2. बच्चे के रोने की आवाज़ आती तो नबी (सल्ल०) इस ख़याल से नमाज़ को संक्षिप्त कर देते थे कि सम्भव है कि बच्चे की माँ नमाज़ में सम्मिलित हो और उसे बच्चे के कारण परेशानी हो। इस हदीस से मालूम हुआ कि अच्छी नमाज़ के लिए यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य इतना लीन हो जाए कि उसे नमाज़ के अतिरिक्त किसी चीज़ की ख़बर ही न हो सके। अच्छी और आदर्श नमाज़ के लिए मौलिक रूप से जो चीज़ अभीष्ट है वह अल्लाह की महानता का एहसास और उसकी ओर दिल का झुकाव, भय और विनयशीलता है। नमाज़ में यह चीज़ जितनी अधिक होगी उतनी ही हमारी नमाज़ें अच्छी हो सकेंगी।

5. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब तक सुखानुभूति और तत्परता के साथ नमाज़ पढ़ सको, पढ़ो और सुस्त हो जाओ तो बैठ जाओ।[1]

6. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब तुममें कोई व्यक्ति नमाज़ में ऊँघने लगे तो फिर उसे सो रहना चाहिए यहाँ तक कि उसकी नींद जाती रहे। इसलिए कि ऊँघते हुए तुममें से कोई नमाज़ पढ़ेगा तो वह नहीं जान सकता (कि क्या कह रहा है) संभव है कि क्षमा का इच्छुक हो और अपने हक़ में बुरे शब्द निकालने लगे।

—बुख़ारी, मुसलिम

7. हज़रत इमरान इब्ने हुसैन (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : खड़े होकर नमाज़ पढ़ो। खड़े होकर न पढ़ सको तो बैठकर पढ़ो और बैठकर भी न पढ़ सको तो लेटकर पढ़ो।[2] —बुख़ारी

8. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हमें हुक्म दिया : जब तुम मसजिद में हो और नमाज़ के लिए अज़ान दी जाए तो तुममें से कोई उस समय तक मसजिद से बाहर न निकले जब तक कि

---

1. अर्थात नमाज़ का आदेश देकर अल्लाह ने तुम्हें किसी मशक़्क़त में नहीं डाला है। नमाज़ तो तुम्हारा आध्यात्मिक आहार है। इसलिए उसे अधिक-से-अधिक तत्परता और आनन्द-स्थिति में अदा करो, ताकि तुम उससे अधिक-से-अधिक शक्ति और उर्जा प्राप्त कर सको और तुम नमाज़ से पूरा लाभ उठा सको।

   यह बात ध्यान में रहे कि यहाँ ख़ास तौर से नफ़्ल नमाज़ के संबंध में ये बातें हैं।

2. जीवन में नमाज़ का इतना महत्व है कि उसे किसी दशा में नहीं छोड़ा जा सकता। जिस तरह भी हो सके उसे अदा करते रहो। खड़े होकर न पढ़ सको तो बैठकर पढ़ो और यदि बैठकर पढ़ना भी सम्भव न हो तो लेटकर ही नमाज़ अदा कर लो।

   शरीअत के आदेश मनुष्य के लिए मुसीबत कदापि नहीं हैं। हदीसों से इसकी बहुत-सी मिसालें प्रस्तुत की जा सकती हैं। सहाबा इस रहस्य से भली-भाँति परिचित थे कि शरीअत के आदेश मनुष्य को मुश्किल में डालने के लिए कदापि नहीं हैं। हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) का कथन है : मनुष्य के धर्म के विषय में समझ रखने की एक पहचान यह है कि यदि उसे नमाज़ के समय कोई बड़ी ज़रूरत पेश आ जाए तो पहले वह अपनी ज़रूरत पूरी कर ले ताकि जब वह नमाज़ की ओर आए तो एकाग्रचित्त होकर आए। (बुख़ारी)

नमाज़ न पढ़ ले।[1] —अहमद

9. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तीन व्यक्ति ऐसे हैं कि उनकी नमाज़ उनके सिर से एक बालिश्त भी ऊपर नहीं उठती[2] : वह इमाम जिसे लोग नापसन्द करते हों, वह स्त्री जो इस दशा में रात गुज़ारे कि उसका पति उससे अप्रसन्न हो और वे दो भाई जो आपस में क्रुद्ध हों और सम्बन्ध तोड़ लें।[3] —इब्ने माजा

10. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति नमाज़ (पढ़नी) भूल जाए या नमाज़ से ग़ाफ़िल होकर सो जाए तो इसका बदला यह है कि जिस समय याद आए, नमाज़ पढ़ ले और एक हदीस में ये शब्द हैं कि उसका बदला इसके सिवा और कुछ नहीं कि जिस समय याद आ जाए अदा कर ले। —बुख़ारी, मुसलिम

11. हज़रत अबू क़तादा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सो जाने से (नमाज़ में विलम्ब होने पर) कोई दोष नहीं, दोष तो जागने की दशा में (नमाज़ में विलम्ब करने पर) है। अतः जब तुममें कोई (नमाज़ पढ़नी) भूल जाए या नमाज़ से ग़ाफ़िल होकर सो जाए तो जिस समय याद आए, तुरन्त पढ़ ले। क्योंकि सर्वोच्च अल्लाह ने कहा है : नमाज़ क़ायम

---

1. अर्थात जब अज़ान हो गई तो नमाज़ पढ़कर ही मसजिद से निकलना चाहिए। बिना किसी वास्तविक विवशता के नमाज़ अदा किए बिना मसजिद से निकल जाना इस बात की पहचान है कि आदमी के मन में नमाज़ का आदर और अल्लाह की महानता का सही एहसास नहीं है, अन्यथा मुअज़्ज़िन की पुकार को रद्द करने का साहस उसे कभी नहीं हो सकता था।
2. अर्थात वह तनिक भी स्वीकार नहीं होती।
3. यह हदीस बताती है कि अल्लाह का हक़ भी उसी समय अदा होता है जबकि बन्दों का हक़ भी अदा हो। भाई यदि भाई के हक़ को भूल जाए, इसी प्रकार स्त्री यदि पति को अप्रसन्न रखे या इमाम यदि लोगों की उचित भावनाओं और उनकी सही माँगों को न पहचाने तो उसकी नमाज़ वास्तव में नमाज़ नहीं हो सकती। नमाज़ तो एक उच्च चरित्र है जिसका प्रदर्शन बन्दा अल्लाह के हक़ को अदा करके करता है, लेकिन यदि दूसरे हक़दारों के हक़ अदा करने में उससे कोताही होती है तो इसका अर्थ यह है कि अभी उसके चरित्र ही में त्रुटि या दोष है।

करो मेरी याद के लिए।[1] —मुसलिम

12. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है। उन्होंने एक अत्यन्त ठण्डी एवं आँधीवाली रात में नमाज़ की अज़ान दी। फिर कहा : सुन लो, अपने- अपने घरों में नमाज़ अदा कर लो। उसके बाद कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) उस समय जबकि कड़ाके की सर्दी और वर्षा की रात होती मुअज्ज़िन (अज़ान देनेवाले) को हुक्म देते कि वह (अज़ान में) कह दे कि सुन लो! अपने-अपने घरों में नमाज़ पढ़ लो। —बुख़ारी, मुसलिम

13. हज़रत अम्मार (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : किसी व्यक्ति की नमाज़ लम्बी होनी और ख़ुतबा संक्षिप्त होना उसके समझदार होने का प्रमाण है। अतः नमाज़ को लम्बी और ख़ुतबा को संक्षिप्त करो, निस्संदेह कुछ ख़ुतबे जादू होते हैं।[2]

14. उक़बा बिन आमिर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो मुसलमान अच्छी तरह वुज़ू करे फिर खड़े होकर अपनी पूरी हार्दिक एकाग्रता के साथ एक चित्त होकर दो रक्अतें नमाज़ अदा करे तो जन्नत उसके लिए अनिवार्य हो जाएगी।[3] —मुसलिम

---

1. अर्थात यदि कोई व्यक्ति भूल गया और उसने नमाज़ अदा नहीं की या उसपर ऐसी नींद छा गई कि वह नमाज़ अदा किए बिना सो गया तो इसपर उसकी पकड़ न होगी। जब उसे याद आ जाए या जब वह जागे, तो तुरन्त नमाज़ पढ़ ले। नमाज़ का सम्बन्ध मनुष्य की चेतना और उसकी याद से है। यदि मनुष्य किसी कारण से ग़ाफ़िल हो गया या उसे याद नहीं रहा कि उसने अभी नमाज़ अदा नहीं की है तो वह विवश समझा जाएगा। परन्तु यदि कोई व्यक्ति जान-बूझकर बिना किसी विवशता के नमाज़ छोड़ देता है तो उसका दिल गुनहगार है, अवश्य ही उसकी पकड़ होगी।

   नबी (सल्ल०) ने इसके समर्थन में क़ुरआन की सूरा-20, आयत-14 के अंश को उद्धृत किया, वह क़ुरआन मजीद से आपके सूक्ष्म प्रमाण का एक स्पष्ट उदाहरण है।
2. अर्थात वे जादू का असर दिखाते हैं। वे अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध होते हैं। ख़ुतबा या भाषण प्रभावकारी हो इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह लम्बा भी हो। संक्षिप्त भाषण लम्बे भाषण की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावकारी हो सकते हैं।
3. अर्थात ऐसी नमाज़ मनुष्य को इस योग्य बना देती है कि वह जन्नत में जगह पा सके। भाव की दृष्टि से वह सांसारिक जीवन में ही जन्नत में प्रवेश पा चुका होता है। आख़िरत में तो उसका ठिकाना जन्नत ही है। शर्त यह है कि अपनी असावधानी और कोताहियों से वह अपने को इस हक़ से वंचित न कर ले। इस बात को इमाम इब्ने

नमाज़ जमाअत के साथ

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति ने वुज़ू किया और अच्छी तरह वुज़ू किया फिर वह (नमाज़ के लिए) गया और देखा कि लोग नमाज़ अदा कर चुके हैं, तो उसे उन लोगों के बराबर बदला मिलेगा जो वहाँ नमाज़ में उपस्थित हुआ और नमाज़ अदा की, और इससे उनके सवाब में कुछ भी कमी न होगी।[1] —अबू दाऊद, नसई

2. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : (नमाज़ में) अपनी सफ़ों (पंक्तियों) को सीधी और बराबर रखो, क्योंकि सफ़ों को सीधा और बराबर रखना नमाज़ क़ायम करने का हिस्सा है।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़सम है उसकी जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं ! मैंने इरादा किया कि हुक्म दूँ कि लकड़ियाँ इकट्ठा की जाएँ फिर नमाज़ का हुक्म दूँ, और उसके लिए अज़ान दी जाए, फिर एक व्यक्ति को लोगों का इमाम नियुक्त करूँ, फिर उन लोगों की ओर जाऊँ (जो नमाज़ में हाज़िर नहीं होते) और उनके घरों को

तैमिया ने इन शब्दों में कहा है : "दुनिया में एक ऐसी जन्नत है कि जो उसमें दाख़िल न हुआ आख़िरत में भी दाख़िल न होगा।"

1. एक व्यक्ति नियमपूर्वक नमाज़ पढ़ता है और पाबन्दी के साथ जमाअत में शरीक होता है, यदि संयोग से किसी दिन उसे जमाअत से नमाज़ न मिल सकी तो भी अल्लाह उसे पूरा-पूरा सवाब प्रदान करेगा। उसके सवाब में किसी प्रकार की कमी न होगी। अल्लाह केवल वाह्य को नहीं देखता, उसके यहाँ निर्णय लोगों की नीयतों और उनकी शुद्ध हृदयता के आधार पर होता है। एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "जिसने एक रकअत (जमाअत के साथ) पा ली उसने पूरी नमाज़ पा ली", (अबू दाऊद)। उसे पूरी नमाज़ का सवाब मिलेगा। लेकिन शर्त यह है कि उसकी नीयत और शुद्ध हृदयता में कोई दोष न हो।
2. अर्थात नमाज़ को पूरे तौर पर अदा करने में यह बात भी सम्मिलित है कि जमाअत की सफ़ें (पंक्तियाँ) ठीक और सीधी हों। कर्म के वाह्य और आन्तरिक दोनों पहलुओं की ओर ध्यान देना चाहिए। दोनों के ठीक होने पर मानव-व्यक्तित्व का विकास और पूर्णता अवलम्बित है।

आग लगा दूँ।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

4. उबई बिन कअब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : आदमी की नमाज़ जो वह किसी दूसरे आदमी के साथ अदा करता है उस नमाज़ के मुक़ाबले में अधिक उत्तम है जो वह अकेले अदा करे, और जो नमाज़ दो आदमियों के साथ अदा की, वह उस नमाज़ से उत्तम है जो उसने एक आदमी के साथ अदा की और फिर जितने अधिक आदमी हों तेजोमय एवं प्रतापवान अल्लाह को प्रिय है।[2] —अहमद, अबू दाऊद, नसई

5. हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : किसी बस्ती या बादिया[3] में तीन आदमी हों और वहाँ जमाअत के साथ नमाज़ क़ायम न की जाती हो तो उनपर शैतान क़ाबू पा लेता है, तो तुम जमाअत की पाबन्दी को अपने ऊपर अनिवार्य कर लो, क्योंकि भेड़िया उसी भेड़ को खाता है जो गल्ले से दूर रहती है।[4] —अहमद, अबू दाऊद, नसई

---

1. जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने का जो महत्व है उसका अनुमान इस हदीस से पूर्णतः किया जा सकता है। नमाज़ जमाअत सहित एक ओर हमारा सम्बन्ध हमारे अल्लाह से बढ़ाती है, दूसरी ओर उसके द्वारा एक सुदृढ़ सामाजिकता वुजूद में आती है। शर्त यह है कि हमें नमाज़ के तक़ाज़ों और उसके सभी नियमों और अधिनियमों का ज्ञान हो और हम उनका पालन करते हों।
2. अर्थात जमाअत जितनी बड़ी होगी उतनी ही अधिक अल्लाह को प्रिय होगी और उतना ही अधिक वह हमारे नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास का कारण बन सकेगी। बुख़ारी और मुसलिम में हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) से भी एक रिवायत आती है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "जो नमाज़ जमाअत के साथ अदा की जाए उसे अकेला पढ़ने की अपेक्षा सत्ताईस दर्जा अधिक श्रेष्ठता प्राप्त है।"
3. बादिया : जहाँ कोई स्थायी रूप से बस्ती न हो बल्कि कुछ दिनों के लिए कोई वहाँ ठहर गया हो।
4. इस हदीस से एक दृष्टान्त के द्वारा यह बात समझाने की कोशिश की गई है कि जमाअत से नमाज़ अदा करने और जमाअत से सम्बद्ध रहने के फ़ायदे अगणित हैं। जमाअत की ताक़त मनुष्य के सुधार और उसे सत्य पर क़ायम रखने में सहायक होती है। शैतान की उकसाहटों और हस्तक्षेपों से मनुष्य सुरक्षित रहता है। कुछ लोग इरादे के कमज़ोर होते हैं। व्यक्तिगत रूप से नमाज़ का पाबन्द होना उनके लिए कठिन होता है। जमाअत की व्यवस्था के कारण वह भी सरलतापूर्वक नमाज़ के पाबन्द हो

इमामत

1. अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें जो अच्छे हों उन्हें अपना इमाम बनाओ, क्योंकि वे तुम्हारे और तुम्हारे रब के बीच तुम्हारे प्रतिनिधि हैं।[1] —बैहक़ी, दारक़ुतनी

मसजिद का आदर

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह की दृष्टि में सारी आबादी में प्रियतम स्थान मसजिद हैं और अल्लाह की दृष्टि में सबसे बुरे स्थान बाज़ार हैं।[2] —मुसलिम

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि जो व्यक्ति मेरी इस मसजिद में केवल नेकी के ध्येय से आएगा कि वह उसे सीखेगा और सिखाएगा—उसका दर्जा अल्लाह के मार्ग में जिहाद करनेवाले के बराबर होगा। और जो व्यक्ति इसके अतिरिक्त किसी

सकते हैं। जमाअत के साथ नमाज़ अदा करने से एक ऐसा आध्यात्मिक वातावरण पैदा हो जाता है जिसका मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

1. जब इमाम अल्लाह के समक्ष पूरी जमाअत का प्रतिनिधित्व करता है तो उसे जमाअत का निर्वाचित एवं श्रेष्ठ व्यक्ति होना ही चाहिए। नबी (सल्ल०) स्वयं इमामत करते थे। अन्त समय में जब बीमार हुए तो उस व्यक्ति (हज़रत अबू बक्र रज़ि०) को इमामत पर नियुक्त किया जो मुस्लिम समुदाय में श्रेष्ठ थे।
2. सारे स्थानों और आबादियों में सबसे प्रिय स्थान अल्लाह की दृष्टि में मसजिदें हैं। धरती में इनसे बढ़कर पवित्र स्थान दूसरे नहीं हो सकते। मसजिदें अल्लाह की महानता और पवित्रता की यादगार हैं। इसी लिए उन्हें अल्लाह का घर कहा जाता है। वे हमारी इबादतगाह (उपासना-गृह) हैं। उनमें एक अल्लाह की इबादत और उपासना की जाती है। इस हदीस में बाज़ार को सबसे बुरा स्थान कहा गया है। बाज़ार वास्तव में फ़ितना और फ़साद का स्थान होता है। बिगड़े हुए वातावरण के बाज़ार तो धोखा, छल आदि हर प्रकार की बुराइयों के अड्डे होते हैं। आज के बाज़ारों में नग्नता, अश्लीलता और निर्लज्जता का वातावरण जैसा गर्म दीख पड़ता है, इसे बयान करने की आवश्यकता नहीं। किसी भले व्यक्ति के लिए बाज़ार में निगाह बचाकर निकलना मुश्किल है।

और ध्येय से आए, तो वह उस व्यक्ति के समान होगा जो दूसरे के माल को तकता है।[1] —इब्ने माजा, अल-बैहक़ी : शोबुल ईमान

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरी इस मसजिद (मसजिदे नबवी) में एक नमाज़ दूसरी मसजिदों की हज़ार नमाज़ों से उत्तम है, सिवाए मसजिदे हराम (क़ाबा) के।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत हसन से मुरसल तरीक़े से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : लोगों पर ऐसा समय आनेवाला है कि वे अपनी दुनिया की बातें अपनी मसजिदों में करेंगे। उस समय तुम उन लोगों में न बैठना, अल्लाह को ऐसे लोगों की आवश्यकता नहीं है।[3] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

नफ़्ल नमाज़ और तहज्जुद

1. मुग़ीरा बिन शुअबा (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) रात को इतनी देर तक (नमाज़ में) खड़े रहे कि आपके पाँव सूज आए। आपसे कहा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल! आप ऐसा क्यों करते हैं जबकि आपके अगले-पिछले सब

---

1. अर्थात ऐसा व्यक्ति जो किसी अच्छे ध्येय से मेरी मसजिद में न आए बड़ा ही अभागा है। उसके हिस्से में पश्चाताप और दुख के अतिरिक्त और कुछ नहीं आ सकता।
2. अर्थात काबा के सिवा दूसरी मसजिदों में नमाज़ पढ़ने का जो सवाब है उसके हज़ार गुना सवाब से भी अधिक नबी (सल्ल०) की मसजिद में नमाज़ पढ़ने का सवाब है। नबी (सल्ल०) की मसजिद में जब ईमानवाले पहुँचते हैं और वहाँ नुबूवत की यादगार चीज़ों को देखते हैं तो मन के कितने ही पर्दे उठ जाते हैं। वहाँ आदमी को अपनी दो रक्अतें दुनिया की प्रत्येक चीज़ से अधिक प्रिय प्रतीत होती हैं। जीवन का समस्त अभिप्राय दो सजदों में सिमट आता है। ऐसी नमाज़ें अल्लाह के यहाँ जो स्थान भी पा लें वह कम ही है।
3. अर्थात मसजिद में आने के बाद भी उनकी दुनिया की बातचीत समाप्त न हो सकेगी। मसजिद में दाख़िल होकर भी वे अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल रहेंगे। अल्लाह को ऐसे लोग कदापि पसन्द नहीं हैं। ऐसे लोगों के पास बैठकर अपने समय को नष्ट करना या ऐसे लोगों की बातचीत में सम्मिलित होकर अपनी नेकियों को नष्ट करना बड़ी ही नादानी की बात होगी। इसलिए ऐसे लोगों बचना बहुत ज़रूरी है।

गुनाह क्षमा किए जा चुके हैं। आपने कहा : क्या मैं कृतज्ञ बन्दा न बनूँ?[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

2. अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह उस व्यक्ति पर दया करे जो रात को उठा और नमाज़ पढ़ी और अपनी स्त्री को जगाया और उसने भी नमाज़ पढ़ी, और यदि वह स्त्री न उठे तो उसके मुँह पर पानी की छींटे मारे। अल्लाह उस स्त्री पर दया करे जो रात को उठे और नमाज़ पढ़े और अपने पति को (नमाज़ के लिए) जगाए और वह भी नमाज़ पढ़े, और न उठे तो उसके मुँह पर पानी की छींटे मारे।[2] —अबू दाऊद, नसई

3. असमा बिन्त यज़ीद (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़ियामत में सारे लोग एक साथ उठाए जाएँगे। फिर एक पुकारनेवाला पुकारेगा : कहाँ हैं वे लोग जो रात को इबादत करने के कारण अपने बिस्तरों को ख़ाली छोड़ दिया करते थे। यह सुनकर तहज्जुद पढ़नेवाले बन्दे एक जगह इकट्ठा हो जाएँगे और उन्हें बिना हिसाब जन्नत में दाख़िल कर दिया जाएगा इसके बाद और लोगों का हिसाब लिया जाएगा।[3] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

---

1. अर्थात यह अल्लाह के उपकारों ही की माँग होती है कि बन्दा अधिक से अधिक अपने रब की इबादत और बन्दगी में लग जाए। अल्लाह का कृतज्ञ बन्दा बनने का उत्तम तरीक़ा यही है। वे लोग बड़े तंग दिल हैं जो अल्लाह के उपकारों का आभार स्वीकार नहीं करते। ऐसे लोग उन भावनाओं और उन कोमल अनुभूतियों से परिचित नहीं होते जो मोमिन के आन्तरिक जीवन के सौन्दर्य का आशय होते हैं, जिनके बिना मनुष्य की दशा ऐसे पुष्प की होती है जो रंग से वंचित और गन्धहीन हो।
2. इस हदीस से रात में नमाज़ पढ़ने के माहात्म्य पर प्रकाश पड़ता है। रात में जब दुनिया सो रही होती है बिस्तर छोड़कर नमाज़ में अल्लाह के आगे खड़ा होना इस बात का पता देता है कि आदमी का अपने रब से असाधारण सम्बन्ध है। यह चीज़ उसे अल्लाह से अधिक-से-अधिक निकट करनेवाली है।
3. इस हदीस से एक बड़ी वास्तविकता खुलकर सामने आती है। रात को जब दुनिया आराम कर रही होती है तो वे अपने विस्तर छोड़कर अल्लाह के आगे खड़े होते हैं, उसके आगे रुकूअ और सजदे करते हैं, उससे अपने गुनाहों के लिए क्षमा की प्रार्थनाएँ करते और उससे उसकी कृपा-दृष्टि की याचना करते हैं। अल्लाह के ऐसे बन्दों का जीवन इतना पवित्र होता है कि उनका हिसाब दुनिया ही में साफ़ हो जाता है। वे किसी प्रकार की मलिनता लेकर अल्लाह की सेवा में उपस्थित नहीं होते। आख़िरत में वे बिना हिसाब के जन्नत में दाख़िल कर दिए जाएँगे।

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : फ़र्ज़ नमाज़ के बाद सबसे श्रेष्ठ मध्य रात्रि की नमाज़ है।[1] —मुसलिम

5. अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम अवश्य रात में (नमाज़ के लिए) खड़े हुआ करो, क्योंकि यह तुमसे पूर्व नेक लोगों का तरीक़ा रहा है और यह तुम्हारे रब का सामीप्य (प्राप्त करने का साधन) है और बुराइयों (के प्रभावों को) मिटानेवाली और गुनाहों से रोकनेवाली चीज़ है।[2]
—तिरमिज़ी

6. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे समुदाय के श्रेष्ठ (उच्च पदवाले), क़ुरआन के वाहक और रात में (अल्लाह की सेवा में) जागनेवाले लोग हैं।[3] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

7. अबू मालिक अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जन्नत में ऐसे बालाख़ाने हैं जिनके भीतर से बाहर की चीज़ें दीख पड़ती हैं और बाहर से भीतर की चीज़ें दिखाई देती हैं। अल्लाह ने उनको

---

1. इस हदीस से तहज्जुद की नमाज़ का महत्व और माहात्म्य का अनुमान किया जा सकता है। तहज्जुद की नमाज़ अल्लाह से विशेष सम्बन्ध पैदा करने का प्रभावकारी साधन है।

2. इस हदीस' में तहज्जुद की नमाज़ की बरकतों और उसकी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि तहज्जुद की नमाज़ में वे सारी विशेषताएँ मौजूद होती हैं जिनका उल्लेख इस हदीस में हुआ है। लेकिन शर्त यह है कि उसे सही तरीक़े से, पूरी शुद्ध हृदयता के साथ अदा किया जाए और उसके नियमों आदि का पूरा आदर किया जाए। तहज्जुद का समय ऐसा होता है कि उसमें बड़ी ही शान्ति और पूर्ण एकाग्रता प्राप्त होती है। फिर मनुष्य का आराम छोड़कर नमाज़ पढ़ना प्रशिक्षण का बड़ा ही प्रभावपूर्ण साधन है। क़ुरआन में कहा गया है : "रात का समाँ जो है वह अत्यन्त अनुकूलता रखता है और उसकी बात अत्यन्त सधी हुई होती है" (63 : 6)। नबी (सल्ल०) को सम्बोधित करते हुए कहा गया : "और कुछ रात इस (क़ुरआन) के साथ जागते रहो, वह तुम्हारे लिए विशेष (नफ़्ल) है। क़रीब है कि तुम्हारा रब, तुम्हें प्रशंसापूर्ण स्थान पर खड़ा करे।" (क़ुरआन, 17 : 79)

3. अर्थात मेरे समुदाय में विशेष हैसियतवाले उच्च श्रेणी के लोग वे हैं जो क़ुरआन पढ़ते और उसके आदेशों का पालन करते हैं और रातों में जबकि लोग सो रहे होते हैं तो वे अपने रब की सेवा में सजदे करते और नमाज़ पढ़ते हैं। अल्लाह के यहाँ ऐसे क़ुरआन के वाहक और जाग्रत व्यक्ति को उच्च-से-उच्च स्थान मिलना ही चाहिए।

उन लोगों के लिए तैयार कर रखा है जो नर्मी से बातें करते हैं, खाना खिलाते हैं लगातार रोज़े रखते हैं, और रात को नमाज़ पढ़ते हैं जबकि लोग सो रहे होते हैं।[1] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण की नमाज़ें

1. हज़रत अबू मसऊद अनसारी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सूरज और चाँद अल्लाह की निशानियों में से हैं। अल्लाह उनके द्वारा अपने बन्दों को डराता है, और उनमें ग्रहण किसी की मृत्यु होने के कारण नहीं लगता। अतः जब तुम उसे देखो तो नमाज़ पढ़ो और अल्लाह से दुआ करो यहाँ तक कि वह घटना जो घटी है, समाप्त हो जाए।[2] —मुसलिम

---

1. यह मनुष्य के स्वभाव की कोमलता और उसकी चेतना के निर्माण की बात है कि उसकी बातचीत रसमय और माधुर्य लिए हुए हो, उसे दूसरों के दुखों और भूख का ख़याल हो, उसे खाना-पीना ही नहीं बल्कि अल्लाह के लिए अपने आपको को खाने-पीने से अलग रखना भी प्रिय हो, वह एकान्त और रात के सन्नाटे में जबकि दुनिया आराम कर रही हो मन की विकलता और आकुलता लिए हुए अल्लाह की सेवा में हाज़िर हो और उसकी प्रसन्नता और क्षमा का इच्छुक हो। अल्लाह के यहाँ ऐसे लोगों के लिए बदला भी अत्यन्त पवित्र प्रदान किया जाएगा यहाँ तक कि उन्हें जो बालाख़ाने मिलेंगे वे भी अत्यन्त पवित्र, उज्ज्वल और पारदर्शी होंगे।
2. रिवायतों में उल्लेख है कि ग्रहण के दिन नबी (सल्ल०) के एक सुपुत्र हज़रत इबराहीम का देहान्त हुआ तो लोगों ने कहा कि ग्रहण उनके देहान्त के कारण लगा है। एक रिवायत में है कि आप (सल्ल०) ने कहा, "सूरज और चाँद अल्लाह की दो निशानियाँ हैं, इनमें ग्रहण न तो किसी की मौत से लगता है और न किसी के जन्म से। अतः जब तुम ग्रहण देखो तो अल्लाह से दुआ करो, तकबीर कहो, नमाज़ पढ़ो और सदक़ा करो (बुख़ारी, मुसलिम)। नबी (सल्ल०) ने ग़लत ख़याल का खण्डन किया और यह तथ्य स्पष्ट किया कि चाँद व सूरज, उनका उदय और अस्त और उनमें ग्रहण लगना अल्लाह की निशानियों में से हैं। इनमें ग्रहण किसी के मरने से नहीं लगता, बल्कि इससे अल्लाह की महानता और शक्ति का प्रदर्शन होता है। ग्रहण देखकर आदमी को डरना चाहिए कि जो अल्लाह चाँद को प्रकाशहीन कर सकता है, जो सूरज के प्रकाश को हमसे रोक सकता है वह अपनी असीम अनुकम्पा और अनुग्रह को भी हमसे छीन सकता है। इसलिए उससे डरते रहना चाहिए। उससे निर्भय होकर जीवन व्यतीत करके किसी तरह भी उचित नहीं है।

   सदियों पहले ग्रहण के बारे में नबी (सल्ल०) ने जो बात बताई थी, बाद के

नमाज़ जुमआ

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति ने गुस्ल (स्नान) किया और जुमआ की नमाज़ पढ़ने (मसजिद में) आया और जो उसके भाग्य में थी वह नमाज़ अदा की और ख़ुतबे से निवृत्त होकर मौन रहा, फिर इमाम के साथ नमाज़ अदा की तो उसके उस जुमे से लेकर दूसरे जुमे तक के गुनाह क्षमा कर दिए जाते हैं बल्कि तीन दिन और अधिक के गुनाह क्षमा हो जाते हैं।[1] —मुसलिम

ईदुल फ़ित्र और ईदुल अज़हा की नमाज़

1. अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ईदुल फ़ित्र और ईदुल अज़हा के दिन ईदगाह की ओर निकलते और सबसे पहले नमाज़ शुरू

वैज्ञानिक अनुसंधानों से उसी की पुष्टि होती है कि ग्रहण के सम्बन्ध में अन्धविश्वासों में पड़ जाना ईमानवालों के लिए पूर्णतः अनुचित है।

1. जिस तरह किसी घड़ी का ठीक समय बताना इस बात का प्रमाण होता है कि उसके सभी पुर्ज़े ठीक हैं और उनमें ख़राबी नहीं है, ठीक इसी तरह किसी मोमिन बन्दे का नेक अमल उसके दीन और ईमान के ठीक होने की पहचान हुआ करता है, शर्त यह है कि वह अमल सही अर्थों में अपने बाह्य और अंतर की दृष्टि से नेक अमल हो। किसी अमल के अन्तर्गत व्यक्ति का पूरा व्यक्तित्व आता है। अमल व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का द्योतक होता है। यही कारण है कि एक बड़े-से-बड़ा पापी भी यदि पवित्र हृदय से अल्लाह के समक्ष समर्पित हो तो वह एक क्षण में कुछ-से-कुछ हो जाता है। जुमे की नमाज़ में उपस्थिति एक बड़ा कर्म, दीनी विवेक और अनुभूति का चिह्न और उम्मत का आचरण है। पवित्र और पूर्ण हृदय के साथ जुमे में उपस्थिति इस्लामी जीवन के स्वास्थ्य का प्रतीक है। यह इस बात का प्रमाण है कि व्यक्ति अल्लाह का सच्चा और आज्ञाकारी बन्दा है। यदि गत छः दिनों में उससे भूल-चूक भी हुई है तो अब वे उसके साथ लिपटी हुई नहीं हैं। विगत जुमे में उपस्थिति के समय उसकी जो हालत थी, आज भी वह उसी बेहतरीन हालत में है। यदि वह किसी कारण के बिना ही जुमे में उपस्थित न होता तो यह इस बात का प्रमाण होता कि वह व्यक्ति उससे सर्वथा भिन्न है जो पूर्व जुमे को था। जुमे का दिन वास्तव में पूरे सप्ताह के हिसाब का दिन होता है। जो व्यक्ति जुमे में उपस्थित ही नहीं होता वह अपना हिसाब अपनी गर्दन पर लिए हुए होता है। वह एक भारी बोझ के नीचे दबा हुआ होता है लेकिन उसे इसकी ख़बर नहीं होती।

करते फिर नमाज़ से निवृत्त होकर लोगों की ओर रुख़ करके खड़े होते और लोग अपनी सफ़ों (पंक्तियों) में बैठे रहते, फिर आप उन्हें उपदेश देते, वसीयत करते और आदेश देते और कहीं आपको कोई सेना भेजनी होती तो उसे भेजते या कोई विशेष आदेश देना होता तो वह भी देते, फिर वापस होते।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. यह है इस्लामी त्योहार मनाने का स्वाभाविक तरीक़ा जो इस हदीस में हमारे सामने पेश किया गया है। त्योहार के दिन आप और आपके सहाबा (रज़ि०) अपनी ज़िम्मेदारियों से ग़ाफ़िल नहीं हो जाते थे और न वे किसी प्रकार के खेल-तमाशों में पड़ते थे। ईद का दिन मुसलमानों की ख़ुशी और प्रसन्नता का दिन होता है। मुसलमान रमज़ान में निरन्तर एक महीना रोज़ा रखकर अल्लाह के आदेश का पालन करते हैं। ईद के दिन उन्हें आशा होती है कि अल्लाह उनके कर्म को अवश्य स्वीकार करेगा और हर प्रकार की बुराइयों से पाक करके उन्हें पवित्रतम जीवन प्रदान करेगा। ईद का दिन आख़िरत की असाधारण प्रसन्नता और सफलता की आशा दिलाता है। ईद की प्रसन्नता कोई साधारण प्रसन्नता नहीं होती। यह प्रसन्नता मुसलमानों के जीवन और उनके सामुदायिक और धार्मिक जीवन का लक्षण है। ईद की प्रसन्नता मुस्लिम समुदाय को संसार की दूसरी जातियों के मुक़ाबले में एक विशेषता प्रदान करती है। संसार ने ख़ुशी मनाने के जो तरीक़े निकाले हैं उनमें मौलिक रूप से इसका ख़याल रखा गया है कि वह मनुष्य के लिए आनन्द और रसास्वादन के साधन बन सकें। इसके लिए साधारणतया गुमराही और ओछेपन के कारण संसार ने राग-रंग और गाने-बजाने का ही सहारा लिया। इस्लाम ने ईद मनाने का जो तरीक़ा सिखाया है वह यही नहीं कि हर तरह की बुराइयों और दोषों से पाक है बल्कि सौन्दर्य, सत्यता, निर्माल्य और आनन्द का उच्चतम प्रेरक भी वही है। ख़ुशी और आनन्द के प्रदर्शन का इससे उत्तम और पूर्ण तरीक़ा संभव नहीं। इस्लाम का सिखाया हुआ तरीक़ा उच्चतम सभ्यता का प्रतीक है। इस्लाम ने मानव-जीवन के लिए वही तरीक़ा पसन्द किया जो मानवीय स्वभाव के अनुकूल और स्वस्थ जीवन का प्रतीक है।

   'मनुष्य अल्लाह का बन्दा है' यह एक ऐसी वास्तविकता है जिसको नकारा नहीं जा सकता बल्कि जीवन का मादक पहलू भी यही है। इस्लामी सभ्यता की विशेषता यह है कि उसमें ईश-भक्ति के भावों की पूरी रिआयत पाई जाती है। भक्ति-भाव मनुष्य की सबसे बहुमूल्य निधि है। इस भाव में मालूम नहीं जीवन के कितने मनोरम संगीत निहित हैं। बन्दे और अल्लाह का नाता एक ऐसा नाता है जिसपर संसार का संपूर्ण सौन्दर्य और कोमलता निछावर की जा सकती है। मनुष्य के लिए गौरव और वास्तविक आनन्द की चीज़ वह सम्बन्ध और संपर्क है जो उसके और अल्लाह के बीच पाया जाता है।

इस्लाम ने ईद मनाने का जो तरीक़ा सिखाया है उससे उस सम्बन्ध का, जो अल्लाह और बन्दे के बीच पाया जाता है, पूर्णतः प्रदर्शन होता है। ईद में ख़ुशी का प्रदर्शन विशेष रूप से नमाज़ और तकबीर के द्वारा किया जाता है। आनन्द-प्रदर्शन के अतिरिक्त यह अल्लाह की सेवा में बन्दे की ओर से कृतज्ञता प्रकाशन भी है। मोमिन की दृष्टि में सबसे अधिक प्रिय और आनन्ददायक स्थिति वही है जिसमें उस सम्बन्ध का प्रदर्शन पूर्णतः होता हो जो अल्लाह और उसके बीच पाया जाता है। रुकूअ और सजदों से बढ़कर दूसरी कोई अवस्था नहीं हो सकती है जिसको यह विशेषता प्राप्त हो। नमाज़ अपनी बन्दगी और अल्लाह के स्वामित्व और उसकी महानता के प्रदर्शन का उत्तम और पूर्ण माध्यम है। अल्लाह और बन्दे के बीच पाए जानेवाले सम्बन्ध का प्रदर्शन जीवन का सबसे मधुर संगीत है।

ईदुल अज़हा के अवसर पर क़ुरबानी करने का भी हुक्म है। नमाज़ की तरह क़ुरबानी भी मोमिन की उन हार्दिक भावनाओं का प्रदर्शन और उनका साकार रूप है जो वह अपने अल्लाह के प्रति रखता है। मोमिन बन्दे के अन्दर अल्लाह के लिए समर्पण और बलिदान की अत्यन्त शक्तिशाली भावना पाई जाती है, यही इस्लाम की रूह है। इस प्रकार इस्लाम स्वयं एक बलिदान है। क़ुरबानी करके बन्दा इस बात का प्रदर्शन करता है कि अल्लाह के लिए उसकी जान तक न्योछावर है। जब भी अल्लाह के मार्ग में जान देने की ज़रूरत होगी वह उससे तनिक भी संकोच न करेगा।

क़ुरबानी हज़रत इबराहीम (अलै०) की महान यादगार भी है। हज़रत इबराहीम (अलै०) अपने बेटे हज़रत इसमाईल (अलै०) को अल्लाह की प्रसन्नता के लिए क़ुरबान करने को तैयार हो गए थे। अल्लाह ने यह क़ुरबानी इस शक्ल में क़बूल फ़रमाई कि हज़रत इसमाईल (अलै०) को काबा की सेवा के लिए पसन्द कर लिया। इस प्रकार काबा के निर्माण में वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति उनके जीवन का वास्तविक लक्ष्य निश्चित हुआ।

गोश्त के लिए इनसान पशुओं को ज़बह करता ही है। क़ुरबानी का आदेश देकर इस्लाम ने एक महान आध्यात्मिक और नैतिक लाभ की प्राप्ति का साधन ठहराया है। क़ुरबानी का आदेश भी इस्लाम के उन आदेशों में से है जो इस तथ्य का खुला प्रमाण है कि इस्लाम का मार्ग जीवन के बीच से गुज़रता है, न कि उससे हटकर। इस्लाम मानव-जीवन और उसके तक़ाज़ों को अनदेखा नहीं करता।

ज़कात

अल्लाह के बाद हमपर उसके बन्दों का हक़ है। दीन या धर्म वास्तव में अल्लाह और उसके बन्दों के हक़ को अदा करने का ही दूसरा नाम है। नमाज़ और ज़कात हमें इन्हीं दोनों प्रकार के हक़ की याद दिलाते हैं। मौलाना हमीदुद्दीन फ़राही, जिन्हें क़ुरआन का विशेषज्ञ माना जाता था, लिखते हैं : "नमाज़ की वास्तविकता बन्दे का अपने रब की ओर प्रेम और भय से झुकना है और ज़कात की वास्तविकता बन्दे का बन्दे की ओर प्रेम और ममत्व भाव से प्रवृत्त होना है।

—तफ़सीर निज़ामुल क़ुरआन, पृष्ठ 9

दीन (धर्म) के इस मौलिक तथ्य की ओर क़ुरआन में विभिन्न स्थानों पर संकेत किया गया है। तौरात और इनजील में भी इस मौलिक तथ्य पर प्रकाश डाला गया है।[1] क़ुरआन नमाज़ और ज़कात को विशेष महत्व देते हुए इनको धर्म का मूल निर्धारित करता है : "और उन्हें हुक्म इसी का तो दिया गया था कि अल्लाह की इबादत करें दिल को उसी के लिए ख़ालिस करके, एकाग्र होकर, और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें, और यह है ठोस और सही दीन (धर्म)।"

—क़ुरआन, 98 : 5

दीन वास्तव में अल्लाह और उसके बन्दों दोनों के हक़ को अदा करने का नाम है। इसकी पुष्टि हदीस से भी होती है। उदाहरणार्थ यहाँ एक हदीस प्रस्तुत की जाती है :

---

1. "एक धर्मज्ञाता ने परीक्षा के लिए उससे पूछा : ऐ गुरु! तौरात में कौन-सा आदेश सबसे बड़ा है? उसने उससे कहा कि परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि से प्रेम रख। बड़ा और मुख्य आदेश यही है। और इसी के समान यह दूसरा भी है कि अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। इन्हीं दो आदेशों पर सम्पूर्ण तौरात और नबियों के सहीफ़े आधारित हैं।"

—मत्ती 22 : 35-40

एक दूसरी जगह है : "परमेश्वर हमारा प्रभु एक ही परमेश्वर है और तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि से प्रेम रख। दूसरा यह कि तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। इनसे बड़ा और कोई आदेश नहीं"।

—मरक़ुस 12 : 28

"हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तीन व्यक्ति ऐसे हैं कि उनकी नमाज़ उनके सिर से एक बालिश्त भी ऊपर नहीं उठती—एक वह इमाम जिसको लोग नापसन्द करते हों, दूसरे वह स्त्री जिसने रात इस तरह गुज़ारी कि उसका पति उससे रुष्ठ हो और तीसरे वे दो भाई जो परस्पर सम्बन्ध-विच्छेद कर लें।"

इस हदीस से ज्ञात हुआ कि बन्दे के लिए आवश्यक है कि वह अल्लाह और उसके बन्दों दोनों का हक़ पहचाने और अदा करे। अल्लाह का हक़ भी वास्तव में उस समय तक अदा नहीं हो सकता जब तक कि कोई अल्लाह के बन्दों का हक़ अदा न करे।

ज़कात अदा करके मनुष्य केवल एक कर्त्तव्य के पालन से ही निवृत्त नहीं होता बल्कि इससे उसके व्यक्तित्व को भी पूर्णता प्राप्त होती है। पूर्णता, विकास एवं निर्माल्य ही शरीअत के (और व्यवहार सम्बन्धी) आदेशों का मौलिक उद्देश्य है। जिस चीज़ का नाम दीन (धर्म) में हिकमत (Wisdom) है वह इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कि ज्ञान और अन्तर्दृष्टि के साथ मनुष्य की आत्मा का विकास और शुद्धिकरण हो। ज़कात का वास्तविक उद्देश्य ही यह है कि उससे मनुष्य की आत्मा शुद्ध और विकसित हो। ज़कात का अर्थ है पवित्रता और विकास। ज़कात देने से आदमी स्वार्थपरता, तंगदिली और धन के लोभ से छुटकारा पाता है। उसकी आत्मा को शुद्धता एवं विकास प्राप्त होता है। अतएव कुरआन में कहा गया है : "और उस (जहन्नम) से बचा लिया जाएगा वह व्यक्ति जो अल्लाह का बड़ा डर रखनेवाला है जो अपना माल दूसरों को देता है कि अपने को निखारे।"
—कुरआन, 92 : 17-18

एक दूसरी जगह नबी (सल्ल०) को सम्बोधित करते हुए कहा गया है : "उनके मालों में से सदक़ा लो जिसके द्वारा उन्हें शुद्ध करोगे और उन (की आत्मा) को विकसित करोगे।"
—कुरआन, 9 : 103

ज़कात का यह मौलिक उद्देश्य उसी समय प्राप्त हो सकता है जबकि ज़कात देने के साथ-साथ इस उद्देश्य की प्राप्ति की सच्ची तलब भी पाई जाती हो। आदमी ज़कात केवल अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए दे। इसके पीछे कोई और ध्येय काम न कर रहा हो। उसकी ज़कात न दिखाने के लिए हो और न दीन-दुखियों को एहसान जताकर दुख पहुँचाने के लिए हो।

कुरआन में यह बात बार-बार कही गई है कि आदमी का दीन (धर्म) और

उसका ईमान उसी समय पूर्ण होगा और उसे वास्तविक और आध्यात्मिक जीवन उसी समय प्राप्त होगा जबकि अल्लाह का प्रेम सबसे बढ़कर हो और संसार की अपेक्षा मनुष्य आख़िरत को प्राथमिकता देने लग जाए। नमाज़ यदि मनुष्य का नाता अल्लाह से जोड़ती है तो ज़कात उसे सांसारिक और धन सम्बन्धी लोभ और मोह को उसके मन से निकालती है। 'ज़कात' देकर मनुष्य इस बात का प्रमाण संचित करता है कि वह जीवन के वास्तविक उद्देश्य से बेख़बर नहीं है। उसके पास जो कुछ है उसे वह अल्लाह ही की सम्पत्ति समझता है। वह उसमें से ग़रीबों और मुहताजों का भी हक़ निकालता है और अल्लाह ही के हुक्म से वह उसे प्रयोग में भी लाता है। अल्लाह का डर रखनेवालों की यह विशेष पहचान है कि वे अपने माल की ज़कात अदा करते हैं। उनके बारे में कहा गया है : "तो मैं अपनी दयालुता उन लोगों के लिए लिख दूँगा जो डर रखते हैं और ज़कात देते हैं और हमारी आयतों पर ईमान रखते हैं।" —क़ुरआन, 7 : 156

ज़कात अदा करने से मनुष्य की आत्मा भी शुद्ध होती है और उसका माल भी शुद्ध हो जाता है। लेकिन यदि वह इतना बड़ी स्वार्थी है कि वह अल्लाह के प्रदान किए हुए धन में से अल्लाह का हक़ अदा नहीं करता, तो उसका माल भी अशुद्ध रहता है और उसकी आत्मा भी अशुद्ध रहती है। आत्मा के लिए संकीर्णता, कृतघ्नता और स्वार्थपरता से बढ़कर घुटन और अशुद्धता की बात और क्या हो सकती है? ज़कात उन लोगों की समस्या का हल है जो मुहताज हैं। मुसलमानों का क़र्त्तव्य है कि वे अपने भाई की सहायता करें। कोई भाई नंगा, भूखा और अपमानित न होने पाए। ऐसा न हो कि जो धनवान हैं वे तो अपने भोग-विलास में पड़े रहें और समुदाय के यतीमों, मुहताजों और विधवा स्त्रियों की ख़बर लेनेवाला कोई न हो। उन्हें यह बात महसूस करनी चाहिए कि उनके धन में दूसरों का भी हक़ है। उसमें उन लोगों का भी हक़ है जो योग्य होते हुए भी निर्धनता के कारण कोई कार्य नहीं कर सकते। उनके धन में उन ग़रीब बच्चों का भी हक़ है जो ग़रीबी के कारण शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। और उनके धन में उन कमज़ोर और विवश लोगों का भी हक़ है जो किसी कार्य के योग्य नहीं हैं।

फिर जो धन भी समुदाय और समाज के हित के लिए व्यय किया जाता है वह नष्ट नहीं होता। जो रुपया भी सामूहिक एवं सामाजिक कल्याण के लिए व्यय किया जाता है वह अगणित लाभ का कारण बनता है जिनसे स्वयं व्यय

करनेवाले व्यक्ति को भी अगणित लाभ पहुँचते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने धन को अपने पास सुरक्षित रखना चाहता है या लोगों से ब्याज लेकर उसे बढ़ाना चाहता है वह वास्तव में अपने धन के मूल्य (Value) को घटाता और स्वयं अपने विनाश की सामग्री जुटाता है। क़ुरआन में कहा गया है : "अल्लाह ब्याज का मठ मार देता है और सदक़ों को बढ़ाता है।" —क़ुरआन, 2 : 276

दूसरे स्थान पर कहा : "तुम जो ब्याज इस ध्येय से देते हो कि लोगों के माल को बढ़ाए तो अल्लाह की दृष्टि में उससे धन नहीं बढ़ता। हाँ, जो ज़कात तुम अल्लाह की प्रसन्नता के लिए दो वह बढ़ता चला जाएगा।"

—क़ुरआन, 30 : 4

ज़कात का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य दीन (धर्म) की सहायता और उसकी रक्षा भी है। अल्लाह के दीन (धर्म) के लिए जो कोशिश की जा रही हो और जो लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हों उनके सिलसिले में भी ज़कात का धन ख़र्च किया जा सकता है। (दे० क़ुरआन, सूरा अत-तौबा 9, आयत 60)

माल की जो थोड़ी-सी मात्रा ज़कात के रूप में अनिवार्य की गई है उसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि धनवान बस उतना ही ख़र्च करें, उसके पश्चात यदि कोई अपनी ज़रूरत लेकर आ जाए या धर्म की सेवा का कोई अवसर आ जाए तो ख़र्च करने से साफ़ इनकार कर दें। बल्कि इसका अर्थ वास्तव में यह है कि कम से कम निश्चित धन तो हर धनवान व्यक्ति को ख़र्च करना ही चाहिए। उससे अधिक जितना भी हो सके ख़र्च करे। इसी प्रकार यदि ज़कात एक निश्चित मात्रा से कम माल पर अनिवार्य नहीं है तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि जिन लोगों के पास इस निश्चित मात्रा से कम माल है वे अल्लाह के मार्ग में कुछ ख़र्च ही न करें। अल्लाह के मार्ग में जिस किसी से जो भी हो सके वह व्यय करे, इसमें स्वयं उसका अपना हित है।

ज़कात के लिए एक महत्व की बात यह भी है कि लोगों की ज़कात एक केन्द्र पर एकत्र की जाए। फिर वहाँ से एक व्यवस्था के अन्तर्गत उसे ख़र्च किया जाए। जिस तरह फ़र्ज़ (अनिवार्य) नमाज़ जमाअत के साथ एक इमाम की अध्यक्षता में अदा की जाती है उसी तरह ज़कात की भी एक सामूहिक व्यवस्था हो जिसके अन्तर्गत ज़कात भी दी जाए और फिर उसे व्यवस्थित रूप में ख़र्च भी किया जाए। इस प्रकार ज़कात से समाज को अधिक-से-अधिक लाभ पहुँच सकता है।

ज़कात का महत्व

1. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मआज़ (रज़ि०) को यमन (का हाकिम बनाकर) भेजा तो कहा : तुम ऐसे लोगों के पास जा रहे हो जो किताबवाले हैं, तो तुम उन्हें इस बात की गवाही की ओर आमंत्रित करना कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह (इष्ट पूज्य) नहीं और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। यदि वे इसको मान लें तो उनको बताना कि अल्लाह ने उनपर दिन-रात में पाँच नमाज़ें फ़र्ज़ (अनिवार्य) की हैं। यदि वे इसको भी मान लें तो उन्हें बताना कि अल्लाह ने उनपर सदक़ा (ज़कात) फ़र्ज़ किया है जो उनके धनवान लोगों से लिया जाएगा और उनके ग़रीबों को लौटा दिया जाएगा।[1] यदि वे इस बात को भी मान लें तो सावधान! उनके उच्च कोटि के

---

1. इस हदीस से कुछ महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश पड़ता है। जो व्यक्ति इस्लामी राज्य की ओर से राज्यपाल (Governor) या हाकिम बनाया जाए उसका प्रथम कर्त्तव्य लोगों को एक अल्लाह की ओर आमंत्रित करना है दूसरे, समस्त उद्देश्यों की हैसियत गौण है। ग़ैर इस्लामी राज्य में राज्यपाल का मौलिक दायित्व राज्य की व्यवस्था बनाए रखना है। इसके विपरीत इस्लामी राज्य के छोटे-बड़े प्रत्येक कार्यकर्त्ता या कर्मचारी का पहला काम लोगों को अल्लाह के मार्ग की ओर बुलाना है। जिस राज्य का पहला काम लोगों को सत्य की ओर बुलावा देना हो वह राज्य सरकार को दयालुता और सुख-शान्ति से भर देगा, उस राज्य में अत्याचार और अन्याय को फलने-फूलने का अवसर नहीं मिल सकता।

   इस हदीस से मालूम हुआ कि लोगों के सामने दीन (धर्म) को प्रस्तुत करने में सदैव उचित ढंग अपनाना चाहिए। जिस जाति को भी हम दीन (धर्म) की ओर आमंत्रित करें उसकी मनोवृत्ति का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। फिर दीन को पूरा-पूरा एक साथ पेश करने के बदले पहले मौलिक बातें क्रम से पेश करनी चाहिएँ। इससे दीन को समझने और उसे मानने में सुविधा होगी। तौहीद और रिसालत पर ईमान लाने के पश्चात सबसे पहली चीज़ नमाज़ है। नमाज़ का समय आ जाने पर साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि कौन व्यक्ति इसको मानता और इसकी घोषणा करता है कि वह अल्लाह का है और अल्लाह ही की बन्दगी और आज्ञापालन में अपना जीवन व्यतीत करना चाहता है और कौन अल्लाह से मुख मोड़ता है। नमाज़ के बाद दूसरी चीज़ ज़कात है। ज़कात के दो रूप हैं। एक तो सामान्य सदक़ा या ज़कात है जिसे ईमानवाले अपने मालों में से हर समय अदा करते रहते हैं और यथासंभव मुहताजों की सहायता करते रहते हैं। ज़कात का दूसरा रूप यह है कि मुसलमान अपने मालों में से क़ानून के

माल (छाँट-छाँटकर) न लेना।[1] और पीड़ित की पुकार से बचना क्योंकि उसके और अल्लाह के बीच में कोई परदा नहीं है।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : सदक़ा जब किसी माल में मिला हुआ होगा (निकाला न जाएगा) तो वह उसको तबाह करके छोड़ेगा।[3]

—मुसनद शाफ़ई, तारीख़ क़बीर, बुख़ारी, मुसनद हुमैदी

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति को अल्लाह ने माल दिया, फिर उसने उसकी ज़कात नहीं अदा की, तो उसका माल क़ियामत के दिन अत्यंत ज़हरीले गंजे का साँप का रूप

अनुसार एक निश्चित भाग निकालते हैं। इस हदीस में इसी ज़कात के बारे में कहा कि वह समाज के मालदारों से ली जाती है और समाज ही के ग़रीबों और मुहताजों पर ख़र्च की जाती है। ग़रीबों और मुहताजों की सहायता ज़कात के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से है। अल्लाह ने मालदारों के मालों में ग़रीबों का हक़ रखा है। ग़रीबों का हक़ उन तक पहुँचाना मालदारों पर वाजिब है। क़ुरआन में भी कहा गया है : "उनके मालों में एक जाना-बूझा हक़ है माँगनेवाले का और जो पाने से रह गया हो उसका।"

—क़ुरआन, 70 : 24-25

1. नबी (सल्ल०) ने यह आदेश दे दिया कि ज़कात लेते समय ऐसा न हो कि अच्छे-अच्छे माल छाँटकर ले लिए जाएँ, बल्कि औसत दर्जे का माल लिया जाए। इस आदेश का नतीजा यह था कि सहाबा और ताबईन अपना सबसे अच्छा माल ज़कात में पेश करते लेकिन लेनेवाला लेने से इनकार करता यहाँ तक कि यह मामला ख़लीफ़ा के सामने लाया जाता। आदेश का अभिप्राय यह है कि कर्मचारी अपने तौर से छाँटकर न लें। हाँ, यदि ज़कात देनेवाला अपनी ख़ुशी से अच्छा माल छाँटकर पेश करे तो उसके क़बूल करने में कोई दोष नहीं।
2. पीड़ित की आह और श्राप से बचो अर्थात लोगों पर ज़्यादती न करो, अल्लाह उनकी पुकार को जल्द सुनता है।
3. अर्थात यदि माल में ज़कात का हिस्सा मिला हुआ होगा, निकालकर हक़दारों को न दिया जाएगा तो यह चीज़ आदमी के दीन और ईमान को तो तबाह करनेवाली है ही, साथ ही उसकी पूरी सम्पत्ति भी उसके अत्याचार के कारण विनष्ट हो सकती है। ज़कात न अदा करने के कारण आदमी का सारा माल नापाक रहता है। इससे बड़ी तबाही की बात क्या हो सकती है। इसी प्रकार वह व्यक्ति भी अपने माल को नापाक और तबाह करता है जो ज़कात लेने का हक़दार न होने के बावजूद ज़कात लेकर अपने माल में सम्मिलित करता है।

धारण कर लेगा जिस (के सिर) पर दो काले बिन्दु होंगे[1] और वह क़ियामत के दिन उस (के गले) का तौक़ बन जाएगा। फिर वह साँप उसके दोनों जबड़ों को पकड़ेगा और कहेगा : मैं तेरा माल हूँ, मैं तेरा ख़ज़ाना हूँ। फिर आप (सल्ल०) ने (क़ुरआन, 3 : 180 का यह अंश) पढ़ा : "वे लोग जो उस चीज़ में कंजूसी करते हैं जो अल्लाह ने अपने अनुग्रह से उन्हें दी हैं वे यह न समझें कि यह उनके लिए अच्छा है बल्कि यह उनके हक़ में बुरा है। जो कुछ उन्होंने कंजूसी की, वही आगे क़ियामत के दिन उन (के गले) का तौक़ बन जाएगा।"[2] (बुख़ारी, मुसलिम)

4. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : जो भूमि वर्षा के जल से या बहते स्रोत से सिंचित होती हो या नदी के निकट होने के कारण पानी देने की आवश्यकता न होती हो उसकी पैदावार का दसवाँ भाग (ज़कात के रूप में) निकाला जाएगा और जिसको मज़दूर लगाकर सींचा जाए उसमें बीसवाँ भाग है। —बुख़ारी

5. इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सदक़-ए-फ़ित्र को वाजिब किया ताकि व्यर्थ और अश्लील बातों का जो रोज़े में हो गई हों, कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) बने और मुहताजों के खाने की व्यवस्था हो जाए।[3] —अबू दाऊद

---

1. यह साँप के अत्यन्त ज़हरीले होने की पहचान है।
2. ज़कात देने से जो माल क़ियामत के दिन उसके आराम का कारण बन सकता था, उस दिन मुसीबत बनकर उसकी जान को लागू होगा। कंजूस और धन का लोभी अपने दौलत से लिपटा रहता है। अपने माल और ख़ज़ाने पर साँप बना बैठा रहता है, दूसरों को उससे फ़ायदा उठाने का मौक़ा ही नहीं देता। इसका परिणाम इस रूप में उसके सामने आएगा कि उसकी दौलत और उसका ख़ज़ाना उसके लिए साँप बन जाएगा और उसे डसता रहेगा।
3. रमज़ान के एक मास के रोज़े रखने के बाद सदक़-ए-फ़ित्र अदा करने का आदेश दिया गया है। ताकीद की गई कि घर के सभी लोगों की ओर से 'ईद' की नमाज़ से पहले-पहले सदक़-ए-फ़ित्र अदा किया जाए। इस सदक़ा के वाजिब होने के दो कारण इस हदीस में बयान किए गए हैं। एक यह कि रोज़ेदार से रोज़े की हालत में कोशिश के बावजूद जो कोताही या कमज़ोरी ज़ाहिर हुई हो सदक़ा के द्वारा उसकी क्षतिपूर्ति हो सके। दूसरे यह कि जिस दिन सारे मुसलमान ईद की ख़ुशी मनाने जा रहे हों उस दिन समाज के ग़रीब लोगों के खाने-पीने का भी प्रबन्ध हो जाए, ताकि वे भी ईद की ख़ुशी में शरीक हो सकें।

6. हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) कहती हैं कि मैं सोने के अवज़ाह, (एक विशेष प्रकार का ज़ेवर) पहनती थी। मैंने पूछा : ऐ अल्लाह के रसूल ! क्या यह भी कंज़ (संचय) है ? आप (सल्ल०) ने कहा : जो इस मात्रा को पहुँच जाए जिसमें ज़कात अदा करने का आदेश है, और उसकी ज़कात अदा की जाए तो "कंज़" नहीं है।[1]

—मालिक, अबू दाऊद

7. हज़रत समुरा बिन जुन्दुब (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) आदेश दिया करते थे कि जिस चीज़ को विक्रय (व्यापार) के लिए तैयार किया हो उसमें से सदक़ा (ज़कात) निकालें।[2]

—अबू दाऊद

8. हज़रत अता बिन यसार (रज़ि०) मुरसल तरीक़े से बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सदक़ा मालदार के लिए वैध नहीं है सिवाय पाँच व्यक्तियों के : अल्लाह के मार्ग में लड़नेवाले के लिए, ज़कात संग्रह करनेवाले कर्मचारी के लिए, क़र्ज़दार या जुर्माना भरनेवाले के लिए, उसके लिए जो किसी ग़रीब से ज़कात का माल ख़रीद ले और उस वयक्ति के लिए जिसका पड़ोसी मुहताज हो, उसे ज़कात दी गई हो और उस ग़रीब ने ज़कात के माल में से उस मालदार को उपहार दिया हो।[3]

—अबू दाऊद

---

1. कुरआन में कहा गया है : "जो लोग सोना और चाँदी एकत्र करके रखते हैं और उन्हें अल्लाह के मार्ग में ख़र्च नहीं करते तो उन्हें दुखदायिनी यातना की मंगल सूचना दे दो" (9 : 34)। इस आयत में सोने-चाँदी की जिस तख़ज़ीन (संचय) पर यातना की धमकी दी गई है इस रिवायत में हज़रत उम्मे सलमा का संकेत उसी की ओर था। प्रश्न का अभिप्राय यह था कि क्या इस ज़ेवर की गणना भी उस संचय में होगी जिसपर कुरआन में धमकी दी गई है। आप (सल्ल०) ने कहा कि यदि ज़ेवरों की ज़कात अदा की जाती रहे तो फिर वह कंज़ (संचय) नहीं है जिसपर यातना की धमकी दी गई है।
2. मालूम हुआ कि कारोबार के माल पर भी ज़कात वाजिब (अनिवार्य) है।
3. इस हदीस से मालूम हुआ कि ज़कात का माल जिहाद करनेवालों पर ख़र्च किया जा सकता है और उसमें से ज़कात वुसूल करनेवाले को वेतन भी दिया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति को तावान भरना है या कोई ऋण के बोझ से लदा हुआ है तो ज़कात से उसकी सहायता की जा सकती है। यह भी वैध है कि किसी मुहताज से ज़कात के माल को कोई मालदार ख़रीदकर अपने काम में ले आए। इसी प्रकार उस हदिया या उपहार को स्वीकार करने में भी कोई दोष नहीं जो कोई मुहताज व्यक्ति ज़कात या सदक़ा के माल में से पेश करे।

9. अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सदक़ा लेना धनवान के लिए वैध नहीं सिवाय उसके जो जिहाद में हो या मुसाफ़िर हो या एक मुहताज पड़ोसी हो उसे कोई चीज़ सदक़ा में मिली वह हदिया (उपहार) के रूप में तुम्हें पेश करे या तुम्हें आमंत्रित करे।

—अबू दाऊद

दान की श्रेष्ठता

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह कहता है : ऐ आदम के बेटे ! तू (मेरे बन्दों पर) ख़र्च कर, मैं तुझपर ख़र्च करूँगा।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सदक़ा (दान) रब के प्रकोप को ठण्डा करता है और बुरी मृत्यु को हटाता है।[2] —तिरमिज़ी

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सदक़ा (दान) से माल में कमी नहीं आती[3] और क़ुसूर क्षमा

---

1. अर्थात यदि तू लोगों पर ख़र्च करेगा तो मैं तुझे निर्धन न होने दूँगा, बल्कि मैं तुझे और अधिक प्रदान करूँगा।
2. किसी व्यक्ति ने यदि किसी भूल-चूक और गुनाह से अपने को अल्लाह के प्रकोप का भागी बना लिया है तो सदक़ा (दान) अल्लाह के प्रकोप को शान्त कर सकता है, सदक़ा देकर बन्दा अल्लाह की दयालुता और उसकी क्षमा का अधिकारी बन जाता है। इसके अतिरिक्त सदक़ा की बरकत से मनुष्य बुरी मृत्यु से सुरक्षित रहता है। सदक़ा की बरकत से अच्छे और नेक कामों की रुचि बढ़ती है, ईमान दृढ़ और पूर्ण हो जाता है और मनुष्य को सत्य पर चलने का सौभाग्य प्राप्त होता है। अतः सदक़ा करनेवाले का परिणाम अच्छा ही होगा। क़ुरआन मजीद में भी कहा गया है : "और अच्छा परिणाम तक़वा (अल्लाह का डर रखने) के लिए है।" —क़ुरआन, 20 : 132
3. साधारणतया लोग सदक़ा इस भय से नहीं देते कि इससे माल में कमी आ जाएगी। आप (सल्ल०) ने कहा कि यह विचार सत्य नहीं है। सदक़ा से माल घटता नहीं, उसमें बरकत आती है। सदक़ा के कारण संसार में भी अल्लाह और अधिक प्रदान करता है। आख़िरत में जो कुछ देगा वह अलग है, जैसा कि एक हदीस में है : "ख़र्च करो, तुमपर ख़र्च किया जाएगा।" (बुख़ारी, मुसलिम)। क़ुरआन मजीद में भी कहा गया है : "तुम जो कुछ ख़र्च करते हो (अल्लाह) उसकी जगह तुम्हें और देता है।" – क़ुरआन, 34 : 39

कर देने से अल्लाह व्यक्ति की इज़्ज़त बढ़ाता है, और जो व्यक्ति अल्लाह के लिए नम्रता अपनाता है अल्लाह उसे उच्चता प्रदान करता है।[1] —मुसलिम

4. हज़रत मुसअब बिन सअद (रज़ि०) कहते हैं कि सअद ने अपने बारे में यह ख़याल किया कि उन्हें अपने से छोटों पर श्रेष्ठता प्राप्त है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम्हें (अल्लाह की ओर से) सहायता और रोज़ी तुम्हारे इन्हीं कमज़ोरों (और मुहताजों) के कारण मिलती है।"[2] —बुख़ारी

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बहुत-से लोग ऐसे हैं जो बहुत ही परेशान और धूल-धूसरित हैं और जिन्हें दरवाज़ों से धक्के देकर हटा दिया जाता है, यदि वे अल्लाह पर क़समें खाएँ तो अल्लाह उनकी क़समों को अवश्य पूरी कर दे।[3] —मुसलिम

---

1. किसी को क्षमा कर देने से आदमी छोटा नहीं हो जाता बल्कि नैतिक दृष्टि से वह बहुत ऊँचा हो जाता है। लोगों में अल्लाह उसे आदर और सम्मान प्रदान करता है। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति अल्लाह की प्रसन्नता के लिए विनम्रता अपनाता है तो इससे वह अपने को नीचे नहीं गिराता बल्कि अपने प्राकृतिक स्वभाव की माँग पूरी करके उच्चता प्राप्त करता है। अल्लाह उसे ऐसा सम्मान प्रदान करता है जिसे प्राप्त करने का कोई और साधन नहीं है। एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : तीन चीज़ें ऐसी हैं जिनपर मैं क़सम खाता हूँ। वे ये हैं : "बन्दे का माल सदक़ा से कम नहीं होता और जिस बंदे पर ज़ुल्म और अत्याचार किया जाए और वह उसपर सब्र कर जाए तो अल्लाह अवश्य ही उसका सम्मान बढ़ाता है, और जिस बन्दे ने सवाल का दरवाज़ा खोला अल्लाह उसके लिए मुहताजी का दरवाज़ा खोल देता है।"
2. अर्थात किसी व्यक्ति को कमज़ोरों और ग़रीबों के मुक़ाबले में अपने को उच्च समझना नादानी है। अल्लाह कितने ही लोगों को केवल कमज़ोरों और मुहताजों के कारण और उनकी दुआओं की बरकत से रोज़ी देता है और इस्लाम के शत्रुओं के मुक़ाबले में विजय प्रदान करता है। इसलिए कमज़ोरों और ग़रीबों की प्रतिष्ठा को घटाना ठीक नहीं है। मालदारों का कर्त्तव्य है कि वे कमज़ोरों और मुहताजों के हक़ों को पहचानें और उनके साथ अच्छा व्यवहार करें।
3. अर्थात कितने ही लोग ऐसे होते हैं जो देखने में परेशान होते हैं, कोई उनका ख़याल नहीं करता हालाँकि अल्लाह से उनका गहरा संबंध होता है। वे यदि अल्लाह के भरोसे पर किसी बात पर क़सम खा लें तो अल्लाह उनकी क़सम को पूरा करके रहेगा। उनकी बात और प्रार्थना रद्द नहीं हो सकती।

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कंजूस और सदक़ा देनेवालों की मिसाल उन दो आदमियों की-सी है जिन्होंने लोहे के कवच पहन रखे हों। उन दोनों के हाथ सीने और गले तक जकड़े हुए हैं।[1] सदक़ा देनेवाला जब भी सदक़ा देता है तो वह कवच कुशादा हो जाता है। और कंजूस जब सदक़ा देने का ख़याल करता है तो वह कवच और अधिक तंग हो जाता है और कवच का प्रत्येक कुंडल अपने स्थान पर बैठ जाता है।[2] —मुसलिम, बुख़ारी

7. अदी बिन हातिम (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : आग से बचो, आधे छुहारे के द्वारा ही सही। दूसरी रिवायत में है कि जो व्यक्ति तुममें से इसकी सामर्थ्य रखता हो कि बच सके, आधे छुहारे के द्वारा ही सही, उसे अवश्य बचना चाहिए।[3] —बुख़ारी, मुसलिम, नसई

8. इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा जबकि आप मिम्बर पर थे और सदक़ा करने का और माँगने से बचने का ज़िक्र करते थे : ऊपर का हाथ नीचे के हाथ से उत्तम है। ऊपर का (हाथ)

एक रिवायत में है कि आपने जन्नत में दाख़िल होते अधिक संख्या मुहताजों की देखी और मालदारों को देखा कि उन्हें रोक लिया गया है। —बुख़ारी, मुसलिम

1. कवच की तंगी के कारण उनके हाथ ऊपर से नीचे तक बिल्कुल शरीर से चिमट गए हैं।
2. अर्थात दानशील व्यक्ति जब सदक़ा देने का निश्चय करता है तो उसका सीना कुशादा हो जाता है। वह खुले दिल से सदक़ा (दान) देता है। वह तंग दिल नहीं होता है। इसके विपरीत कंजूस व्यक्ति जब कुछ देने को सोचता है तो उसका सीना और तंग हो जाता है। मानो उसका शरीर किसी तंग कवच में ऐसा कसा हुआ है कि वह हाथ बाहर निकालकर किसी को कुछ देने की सामर्थ्य नहीं रखता। पैसा देते हुए ऐसा लगता है कि पैसे के साथ उसके प्राण भी निकल जाएँगे।

   कवच शरीर की रक्षा के लिए होता है। जब वह कुशादा हो जाता है तो पूरा शरीर सुरक्षित हो जाता है, अर्थात सदक़ा के कारण मनुष्य पूर्ण रूप से अल्लाह के संरक्षण में आ जाता है। रहा कंजूस व्यक्ति तो वह सदैव तंगदिली में ग्रस्त रहता है। न वह सुरक्षित होता है और न ही उसे वास्तविक आराम और शान्ति प्राप्त होती है।
3. अर्थात सदक़ा अवश्य दो। यह अल्लाह के प्रकोप को शान्त करनेवाली और जहन्नम की आग से बचानेवाली चीज़ है। यदि अधिक देने की सामर्थ्य न हो तो जो भी हो सके, यद्यपि वह अत्यन्त थोड़ी ही मात्रा में हो, अवश्य सदक़ा दो।

देनेवाला है और नीचे का माँगनेवाला। —बुख़ारी, मुसलिम

9. इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें किसको अपने माल से बढ़कर अपने वारिस का माल अधिक प्रिय है ? (लोगों) ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! हममें तो प्रत्येक को अपना ही माल सबसे अधिक प्रिय है। आपने कहा : उसका माल तो वही है जो उसने आगे भेजा और वह उसके वारिस का माल है जो उसने पीछे छोड़ा।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

10. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक बकरी ज़बह की गई (और उसका मांस ज़रूरतमंदों में बाँट दिया गया)। आप (सल्ल०) ने कहा उसमें से क्या बाक़ी रहा ? (हज़रत आइशा ने) कहा : उसकी केवल एक रान बची है। आप (सल्ल०) ने कहा : सब बाक़ी है सिवाय उस रान के (जो बाँटी नहीं गई)।[2] —तिरमिज़ी

11. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) कहते हैं कि मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में हाज़िर हुआ, आप (सल्ल०) काबा की छाया में बैठे हुए थे। मुझे देखा तो कहा : काबा के रब की क़सम ! वे लोग बड़े घाटे में हैं। मैंने कहा : मेरे माता-पिता आपपर निछावर हों ! वे कौन लोग हैं ? कहा : वे लोग जो बड़े धनवान हैं, सिवाय उन लोगों के जिन्होंने अपने आगे-पीछे और दाएँ-बाएँ (हर भलाई के काम में) ख़र्च किया और ऐसे लोग कम हैं।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात यदि तुम्हें अपना माल प्यारा है तो तुम्हारा माल तो वह है जो तुम अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करके अपने शाश्वत जीवन के लिए भेजते हो। जो कुछ एकत्र करके तुम अपने पीछे दुनिया में छोड़ते हो वह तुम्हारा अपना नहीं, तुम्हारे वारिसों का माल है। यदि तुमने अपने लिए आगे कुछ नहीं भेजा है या बहुत कम भेजा है तो तुम निर्धन हो भले ही संसार में तुमने क़ारून का ख़ज़ाना ही क्यों न एकत्र कर रखा हो। परन्तु यदि तुमने आगे के लिए प्रबन्ध कर रखा है और प्रबन्ध करते रहते हो तो तुम्हें निर्धन और कंगाल कदापि नहीं कहा जा सकता। दुनिया तुम्हें निर्धन समझती है तो यह उसकी दृष्टि का दोष है।
2. अर्थात जो मांस बाँट दिया गया, वास्तव में वही बाक़ी और काम आनेवाला है और सदैव का लाभ उसी से उठाया जा सकता है। जो भाग अपने लिए रोक लिया गया, वह समाप्त होनेवाला है।
3. मतलब यह है कि माल-दौलत बड़ी परीक्षा की चीज़ है। इस परीक्षा में सफल वही हो सकते हैं जिनके मन में माल का मोह न हो, जो अपने माल को खुले दिल से अच्छे कामों में ख़र्च करते हैं। जो ऐसा नहीं करते वे धन पाकर भी बड़े घाटे में हैं।

12. हज़रत सौबान (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : उत्तम दीनार वह है जिसको आदमी अपने बाल-बच्चों पर ख़र्च करता है और वह दीनार उत्तम है जिसे वह अल्लाह के मार्ग में सवारी के लिए ख़र्च करता है[1] और वह दीनार उत्तम है जिसे वह अल्लाह के मार्ग में अपने साथियों पर ख़र्च करता है।[2]
—मुसलिम

13. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : एक दीनार वह है जो तू अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करता है, एक दीनार वह है जो तू किसी ग़ुलाम को आज़ाद कराने में ख़र्च करता है और एक वह दीनार है जो तू किसी मुहताज पर ख़र्च करता है और एक दीनार वह है जो तू अपने घरवालों पर ख़र्च करता है। इनमें बदला (पाने) की दृष्टि से सबसे बढ़कर वह दीनार है जिसे तू अपने घरवालों पर ख़र्च करता है।[3]
—मुसलिम

14. हज़रत फ़ातिमा बिन्त क़ैस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : माल में ज़कात के अतिरिक्त भी (अल्लाह का) हक़ है। फिर आप (सल्ल०) ने (क़ुरआन, 2 : 177) पढ़ा : "नेकी और वफ़ादारी यह नहीं है कि तुम अपने चेहरे को पूर्व या पश्चिम की ओर कर लो, बल्कि वफ़ादारी उनकी है जो अल्लाह पर, अन्तिम दिन पर, फ़रिश्तों पर अल्लाह की किताब पर और नबियों पर ईमान लाए और अपना माल, उसका (स्वाभाविक) मोह होने पर भी, नातेदारों और यतीमों और मुहताजों और मुसाफ़िरों और माँगनेवालों को दे और गरदनें छुड़ाने (ग़ुलाम आज़ाद कराने में) ख़र्च करें। और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें . . . ।"[4]
—तिरमिज़ी, इब्ने माजा, दारमी

---

1. अर्थात 'जिहाद' के लिए घोड़ा आदि ख़रीदने में व्यय करता है।
2. अर्थात अपने उन साथियों पर ख़र्च करता है जो अल्लाह की राह में जिहाद कर रहे होते हैं।
3. मालूम हुआ कि नबी (सल्ल०) ने जिस दीन (धर्म) की शिक्षा दी है उसमें अत्यन्त सन्तुलन है। उसमें असन्तुलित नीति अपनाने से रोका गया है। सबसे अधिक महत्व इस बात को दिया गया कि क़रीबी लोगों की ख़बर ली जाए। घर के लोगों और परिवार का हक़ अदा करना फ़र्ज़ (अनिवार्य) है। इस कर्त्तव्य को पूरा करके ही नफ़्ल की ओर ध्यान देना चाहिए। हर एक के हक़ को समझना चाहिए और हर एक के हक़ और दर्जे का ध्यान रखते हुए हक़ों को अदा करना चाहिए।
4. ज़कात देने के पश्चात भी लोगों की ज़िम्मेदारियाँ बाक़ी रहती हैं। ज़कात देने के पश्चात आदमी को अपना हाथ बिल्कुल खींच नहीं लेना चाहिए और न सामाजिक

15. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस मुसलमान ने किसी मुसलमान को जिसके पास कपड़ा नहीं था कपड़ा पहनाया अल्लाह उसको जन्नत का हरा वस्त्र पहना देगा और जिस मुसलिम ने किसी मुसलिम को भूख की दशा में खाना खिलाया अल्लाह उसको जन्नत के फल खिलाएगा और जिस मुसलिम ने किसी मुसलिम को प्यास की दशा में पानी पिलाया अल्लाह उसको (जन्नत की) ख़ालिस शराब पिलाएगा जो मुहर-बन्द होगी। —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

16. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : यदि मेरे पास उहुद के बराबर सोना हो, तो मेरे लिए बड़ी ख़ुशी की बात यही होगी कि तीन रातें गुज़रने से पहले-पहले मेरे पास उसमें से कुछ भी न रहे सिवाय इसके कि ऋण चुकाने के लिए उसमें से कुछ बचा लूँ।[1] —बुख़ारी

17. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दीनार और दिरहम का बन्दा तिरस्कृत है।[2] —तिरमिज़ी

माँगों और मुहताजों और ग़रीबों को भूलना चाहिए। ज़कात देने के बाद भी यदि कोई मुहताज और मुसीबत का मारा आ जाए या समाज की कोई बड़ी आवश्यकता सामने आ जाए तो आदमी को इस सिलसिले में भी माल ख़र्च करने में संकोच नहीं करना चाहिए। नबी (सल्ल०) ने प्रमाण स्वरूप कुरआन की सूरा-2 (अल-बक़रा), आयत 177 को प्रस्तुत किया। इस आयत में नेकी के कामों के अन्तर्गत ईमान के पश्चात नातेदारों, अनाथों, यात्रियों, माँगनेवालों आदि की आर्थिक सहायता का उल्लेख हुआ है। इसके पश्चात नमाज़ क़ायम करने और ज़कात अदा करने का उल्लेख भी किया गया है। इसलिए मालूम हुआ कि मुहताजों, मुसाफ़िरों आदि की माली सहायता का जो ज़िक्र यहाँ किया गया है वह ज़कात के अतिरिक्त है।

1. अर्थात मेरे लिए ख़ुशी की बात यह नहीं है कि माल मेरे पास इकट्ठा हो बल्कि ख़ुशी की बात मेरे लिए यह है कि मेरे पास जो कुछ हो मैं उसे जल्द से जल्द अल्लाह के मार्ग में ख़र्च कर दूँ यहाँ तक कि अपने पास कुछ न रहने दूँ। यही नबियों का गौरव है। उनका जीवन इसका प्रत्यक्ष साक्षी होता है कि वे सच्चे हैं। वे जो कुछ कहते हैं, वह सत्य है। सत्यता का जो आन्दोलन वे दुनिया में चलाते हैं उसके पीछे कदापि उनका कोई व्यक्तिगत, सांसारिक और भौतिक लाभ नहीं होता। वे जो कुछ करते हैं सत्य के लिए करते हैं।
2. अर्थात जो लोग धन के पुजारी हैं, जिन्हें अल्लाह के मार्ग में अपना माल ख़र्च करना अत्यन्त कठिन होता है, वे अल्लाह की दयालुता से दूर हैं। उनके हिस्से में फिटकार और तिरस्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं आ सकता।

18. अबू सईद ख़ुदरी रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दो आदतें किसी ईमानवाले व्यक्ति में इकट्ठी नहीं हो सकतीं—कंजूसी और दुर्व्यवहार।[1] —तिरमिज़ी

19. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दानशील व्यक्ति निकट है अल्लाह से, निकट है जन्नत से, निकट है लोगों से, दूर है (जहन्नम की) आग से और कंजूस व्यक्ति दूर है अल्लाह से, दूर है जन्नत से, दूर है लोगों से, निकट है (जहन्नम की) आग से।[2] और जाहिल दानशील व्यक्ति अल्लाह को कंजूस उपासक से अधिक प्रिय हैं।

—तिरमिज़ी

20. हज़रत बुरैदा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा :

धन-दौलत का उपासक बनना बहुत ही बुरा है। इसी लिए सदक़ा केवल उसे लेना चाहिए जो मुहताज हो। मुहताज व्यक्ति भी यदि स्वस्थ है तो उसे भी यथासंभव सदक़ा और ज़कात लेने से बचना चाहिए। उसे परिश्रम करके अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए। एक हदीस में आता है : "मालदार के लिए सदक़ा (ज़कात) हलाल नहीं है और न उस व्यक्ति के लिए जो बलिष्ठ और स्वस्थ हों।"

(तिरमिज़ी, अबू दाऊद, दारमी, नसई, अहमद, इब्ने माजा)

1. अर्थात कंजूसी और दुर्व्यवहार का ईमान से कोई नाता नहीं है ईमान तो आदमी को उदार, साहसी और विशाल हृदय बनाता है जबकि कंजूसी और दुर्व्यवहार वास्तव में संकीर्ण दृष्टि और संकीर्ण हृदय और नीचता की उपज है।
2. दानशीलता से मनुष्य को अल्लाह की प्रसन्नता और उसका सामीप्य प्राप्त होता है। दानशील व्यक्ति से लोग भी प्रसन्न रहते हैं और ऐसा व्यक्ति परिणाम की दृष्टि से भी सफल होता है।जन्नत उसका शाश्वत ठिकाना है। इसके विपरीत कंजूस से न अल्लाह ख़ुश होता है और न दुनिया के लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं और परिणाम उसका यह होता है कि जन्नत के स्थान पर वह जहन्नम का अधिकारी होता है।

   दानशीलता दुर्गुणों के निदान में अत्यन्त सहायक होती है। मनुष्य इसके द्वारा नैतिकता एवं आध्यात्मिकता के उच्च स्तर को पहुँच जाता है। वह इस योग्य हो जाता है कि उसमें अल्लाह की बड़ाई और महानता की अनुभूति जाग्रत हो सके। कंजूस व्यक्ति स्वार्थपरता और तंगदिली में कुछ इस प्रकार ग्रस्त होता है कि उसे आध्यात्मिक एवं नैतिक उच्चता प्राप्त ही नहीं होती। उसका दिल भौतिक लाभ-हानि की चिन्ताओं में ही उलझा रहता है; जीवन के उच्चतम अर्थ और मूल्य से वह परिचित ही नहीं हो पाता।

जब भी किसी ने ज़कात रोक ली तो अल्लाह ने उसे अकाल ग्रस्त कर दिया।[1]

—तबरानी : औसत

21. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब भी किसी जाति ने अपनी मालों की ज़कात रोक ली उससे आकाश की वर्षा रोक ली गई और यदि जानवर न हों तो (बिलकुल) वर्षा न हो।[2] —तबरानी

सदक़ा (दान) का व्यापक अर्थ

1. हज़रत अबू मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब कोई मुसलिम व्यक्ति अपने घरवालों पर पुण्य के ध्येय से ख़र्च करता है तो इसकी गणना भी उसके लिए सदक़ा (दान) में होती है।[3]

—बुख़ारी, मुसलिम

2. सुलैमान बिन आमिर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : किसी मुहताज को सदक़ा देना केवल सदक़ा है और किसी क़रीबी नातेदार को देने में दो पहलू हैं—वह सदक़ा भी है और नाता-रिश्ता जोड़ना भी है।[4]

—अहमद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा, दारमी

---

1. इसलिए अकाल को दूर करने के लिए केवल यही काफ़ी नहीं है कि अधिक से अधिक नहरें निकाली जाएँ और ट्यूबवेल और पम्पिंग सेट आदि सिंचाई के साधनों को जुटाया जाए, बल्कि इनके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि माल की ज़कात भी निकाली जाए।
2. अर्थात अल्लाह कभी बेगुनाह जानवरों के कारण वर्षा कर देता है हालाँकि मनुष्यों के अपराध और अवज्ञा का परिणाम तो यह होना चाहिए था कि वर्षा बिलकुल न हो।
3. अर्थात इसपर भी वह ईश्वर के यहाँ शुभ फल, पुरस्कार और पारिश्रमिक का अधिकारी होता है। मुस्लिम व्यक्ति जब दूसरों पर अपना धन ख़र्च करता है उस समय भी वास्तव में ईश-प्रसन्नता की प्राप्ति ही उसका मुख्य ध्येय होता है और जब वह अपने बाल-बच्चों और अपने घरवालों पर ख़र्च करता है उस समय भी वह ईश-प्रसन्नता का ही इच्छुक होता है। एक ही चरित्र और स्वभाव (Character) है जिसका प्रदर्शन मोमिन व्यक्ति के जीवन में विभिन्न अवस्थाओं में होता है। अपनी मूल प्रकृति की दृष्टि से उसका प्रत्येक कर्म सदक़ा कहलाने योग्य ही है।
4. अर्थात किसी निकटतम नातेदार पर ख़र्च करने से सदक़ा के अतिरिक्त नाते-रिश्ते के आदर करने का शुभ फल भी उसे प्राप्त होगा, क्योंकि अपने नातेदार की सेवा करके उसने सदक़ा का पुण्य ही नहीं कमाया बल्कि उसे अपने नातेदार के साथ अच्छा व्यवहार करने का श्रेय भी प्राप्त हुआ।

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है, उन्होंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! कौन-सा सदक़ा उत्तम है ? आपने कहा : जो ग़रीब अपने परिश्रम की कमाई से करे ।[1] और शुरू उन लोगों से करो जिनके तुम ज़िम्मेदार हो ।[2] —अबू दाऊद

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ और कहा कि मेरे पास एक दीनार है । आपने कहा : अपने ऊपर ख़र्च करो । उसने कहा कि मेरे पास और है । आपने कहा : उसे अपने बच्चों पर ख़र्च करो । उसने कहा : मेरे पास और है । आपने कहा : इसे अपनी पत्नी पर ख़र्च करो । उसने कहा कि मेरे पास और है । आपने कहा : फिर इसको अपने सेवक पर ख़र्च करो । उसने कहा कि मेरे पास और है । आपने कहा : तुम अधिक जानते हो (कि तुम्हारे सगे-सम्बन्धियों में कौन अधिक ज़रूरतमंद और अधिकारी है) ।[3] —अबू दाऊद, नसई

5. हज़रत सुराक़ा बिन मालिक (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा : क्या मैं तुम्हें उत्तम सदक़ा से परिचित कराऊँ ? वह अपनी उस बेटी के साथ अच्छा व्यवहार करना है जो तेरी ओर लौटा दी गई हो[4] और तेरे सिवा उसका कोई कमानेवाला न हो । —इब्ने माजा

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : उत्तम सदक़ा ज़्यादा दूध देनेवाली ऊँटनी है जो किसी को दूध पीने के लिए मंगनी दे दी जाए और वह अधिक दूध देनेवाली बकरी जो दूध पीने के लिए किसी को दे दी जाए कि वह प्रातः काल बरतन भरकर दूध देती हो

---

1. अर्थात ग़रीब और निर्धन व्यक्ति जब अपने परिश्रम से कमाकर ख़र्च करता है तो अल्लाह के निकट उसके दान और सदक़े का बड़ा महत्व होता है । इसलिए कि सदक़ा देना उसके लिए कठिन कार्य है, फिर भी वह सदक़ा देता है ।
2. ख़र्च करने में सबसे पहले उन लोगों का ध्यान रखना चाहिए जिनकी मनुष्य पर विशेष रूप से ज़िम्मेदारी होती है । यदि कोई व्यक्ति अपने बाल-बच्चों और घर के लोगों से बेपरवा होकर इधर-उधर सदक़ा बाँटता फिरता है तो उसकी यह नीति धार्मिक दृष्टि से कदापि सराहनीय नहीं हो सकती ।
3. इस हदीस से विदित है कि इस्लामी आदेश बुद्धि और प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है, इस्लामी आदेशों का उल्लंघन वास्तव में बुद्धि और प्रकृति का उल्लंघन है ।
4. अर्थात उसके पति ने उसे तलाक़ दे दिया हो या उसकी मृत्यु हो गई हो और उसका ख़र्च चलानेवाला तेरे सिवा कोई और न हो ।

और संन्ध्या को एक और बरतन भरकर ।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

7. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो मुसलिम कोई वृक्ष लगाए या खेती करे और उसमें से मनुष्य, पक्षी और जानवर खाएँ, तो यह भी उसके लिए सदक़ा है ।[2] मुसलिम की एक हदीस में हज़रत जाबिर से उल्लिखित है कि उसमें से जो चोरी चला जाए वह भी उसके लिए सदक़ा है ।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

8. हज़रत सअद बिन उबादा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा : ऐ अल्लाह के रसूल ! सअद की माता (अर्थात मेरी माता) मर गई, तो कौन-सा 'सदक़ा' उत्तम होगा ? आपने कहा : पानी । सअद ने कुआँ खोदा और कहा : यह सअद की माता के लिए सदक़ा है ।[4] —अबू दाऊद, नसई

---

1. ऐसे सदक़ा से एक तरफ़ सदक़ा करनेवाले व्यक्ति की दानशीलता और उदारता का पता चलता है, दूसरी तरफ़ इससे लोगों की आवश्यकता भी पूरी होती है। इसी लिए आपने इस शुभ कार्य की प्रशंसा की। अरबों में इसका रिवाज था कि लोग दूध पीने के लिए बकरी और ऊँटनी दूसरों को दे देते थे। आपने इसे सराहनीय ठहराया।
2. उसके द्वारा सृष्टि के जीवों आदि को जो लाभ भी पहुँचे उसमें उसके लिए शुभ प्रतिफल है।
3. चोर ने यदि उसको हानि पहुँचाई तो इसमें भी उसके लिए शुभ प्रतिफल है। मोमिन किसी दशा में भी घाटे में नहीं रहता। चोर वास्तव में अपने को ही हानि पहुँचाता है और किसी मुसलिम व्यक्ति को वह वास्तविक हानि नहीं पहुँचा सकता।
4. अर्थात इसका पुण्य सअद की माता को मिले। कुआँ की गणना संचारित सद्क़े (सद्क़-ए-जारिया) में होती है। जब तक कुआँ बाक़ी रहता है और लोग उससे फ़ायदा उठाते रहते हैं उसका पुण्य और सवाब पहुँचता रहता है। यहाँ कुछ बातें समझ लेने की हैं।

    पुण्य और सवाब केवल उस कर्म के बदले मिलता है जो शरीअत (धर्मशास्त्र) के अनुसार और अल्लाह ही के लिए किया गया हो। दूसरी बात यह है कि पुण्य-पुरस्कार का उपहार केवल उन्हीं लोगों को पहुँच सकता है जिन्होंने ईमान की हालत में संसार से प्रस्थान किया हो, इनकी हैसियत अल्लाह के यहाँ मेहमान की होती है। अल्लाह के विद्रोहियों को पुण्य और सवाब का उपहार कदापि नहीं पहुँच सकता।

    शुभ कार्य के दो लाभ होते हैं। एक उसके वे परिणाम जो कर्म करनेवाले व्यक्ति की आत्मा और उसके स्वभाव पर अंकित होते हैं, जिनके कारण वह ईश्वर के यहाँ प्रतिफल का अधिकारी होता है। दूसरे उसका वह बदला जो अल्लाह की ओर से उसे पुरस्कार के रूप में मिलता है। पुण्य-पुरस्कार के उपहार के भेजने का सम्बन्ध केवल

9. अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मनुष्य की हड्डी के जितने जोड़ हैं हर एक पर सदक़ा ज़रूरी है, प्रत्येक दिन जिसमें सूर्य उदय हो।[1] दो व्यक्तियों के बीच न्याय करना सदक़ा है। किसी व्यक्ति को सवारी पर सवार होने में या उसका सामान उसपर लादने में सहायता करना सदक़ा है। और एक अच्छी बात भी सदक़ा है, और नमाज़ के लिए जो पग भी उठता है वह भी सदक़ा है और तकलीफ़ देनेवाली चीज़ रास्ते से दूर करना भी सदक़ा है। —बुख़ारी, मुसलिम

10. हज़रत जाबिर (रज़ि०) और हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हर नेकी सदक़ा है। —बुख़ारी, मुसलिम

11. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हर भलाई सदक़ा है और यह बात भी भलाई और नेकी में से है कि तुम हर्षित चेहरे के साथ अपने भाई से मिलो और अपने डोल से अपने भाई के बरतन में पानी डाल दो।[2] —अहमद, तिरमिज़ी

दूसरी चीज़ से है, पहली चीज़ से उसका सम्बन्ध नहीं है। अच्छे कर्म के आध्यात्मिक और नैतिक लाभ और उसका प्रतिफल किसी दूसरे व्यक्ति को प्रदान नहीं किया जा सकता। हाँ, उनके पुण्य-पुरस्कार के लिए वह ईश्वर से प्रार्थना कर सकता है कि वह उसके अमुक नातेदार या उपकारी व्यक्ति को प्रदान कर दिया जाए।

1. शरीर का प्रत्येक जोड़ और अवयव वास्तव में ईश्वर की एक कृपा और उपकार है। ईश्वर के हर उपकार के प्रति कृतज्ञता दिखलाने के लिए ज़रूरी है कि मनुष्य दान और सदक़ा करे। सदक़ा केवल इसका नाम नहीं है कि कोई व्यक्ति अल्लाह की राह में रुपये-पैसे ही ख़र्च करे बल्कि अपनी वास्तविकता की दृष्टि से सदक़े के विभिन्न रूप हो सकते हैं जैसा कि आगे इस 'हदीस' से भी इसकी पुष्टि होती है। जिन चीज़ों को इस हदीस में सदक़ा कहा गया है वे केवल नाममात्र को सदक़ा नहीं हैं, बल्कि वास्तव में उनमें सदक़े का भाव और आत्मा विद्यमान है।

2. अर्थात वास्तविकता की दृष्टि से सदक़े का अर्थ इस्लाम में अत्यन्त व्यापक है, इसमें हर भलाई और नेकी सम्मिलित है। विचार करने से मालूम होता है कि सदक़ा ही नहीं इस्लाम के दूसरे मौलिक आधार और कर्म भी अपना महान मूल्य (Values) रखते हैं और उनमें बड़ी व्यापकता और गहराई पाई जाती है।

एक व्यक्ति सदक़े में रुपये-पैसे तो ख़र्च कर देता है परन्तु वही व्यक्ति दूसरी भलाई और नेकी के कामों से दूर रहता है। न वह अवसर पड़ने पर इनसाफ़ की बात कहता है, न भाइयों से हँसी-ख़ुशी से मिलता है और न ही मुहताजों और असहायों के

12. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अमानतदार मुसलिम खज़ानची (कोषाध्यक्ष) जब प्रसन्नतापूर्वक वह चीज़ देता है जिसके देने का उसे आदेश दिया जाता है, तो वह भी सदक़ा करनेवालों में से एक होता है।[1]

—बुखारी, मुसलिम

13. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति (मसजिद) में आया। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) नमाज़ पढ़ चुके थे। आपने कहा : तुममें कोई व्यक्ति है जो इसपर सदक़ा करे, (अर्थात) इसके साथ नमाज़ पढ़े। एक व्यक्ति उठा, उसने उसके साथ नमाज़ पढ़ी।[2]

—तिरमिज़ी, अबू दाऊद

साथ उसका व्यवहार सहानुभूति लिए हुए होता है। लोगों को उससे कष्ट ही पहुँचता रहता है। ऐसी अवस्था में इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाएगा कि वह अभी वास्तव में सदक़ा देनेवालों में सम्मिलित नहीं हो सका। यह कैसे संभव है कि एक व्यक्ति एक ओर तो ग़रीबों और निर्धनों के प्रति सहानुभूति दिखाने और ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए अपना माल ख़र्च करे दूसरी ओर वह लोगों को कष्ट पहुँचाए और भलाई और नेकी के कामों से उसका दूर का सम्बन्ध भी न हो। ऐसे व्यक्ति का सदक़ा वास्तव में सदक़ा नहीं, केवल दिखावा है। एक आत्महीन कर्म है जिसके पीछे कोई वास्तविक चेतना और सच्ची और हार्दिक प्रेरणा नहीं पाई जाती। या फिर वह धर्म सम्बन्धी सूझ-बूझ से रहित है कि अपनी समस्त घिनावनी हरकतों के बावजूद अपने सदक़े को सदक़ा ही समझता रहता है, हालाँकि उसका सदक़ा उस रोज़ेदार के रोज़े से भिन्न नहीं है जो रोज़ा रखते हुए भी ईश्वर की अवज्ञा से नहीं बचता और न ही तुच्छ इच्छाओं के वशीभूत होने और ज़ुल्म और अत्याचार से अपने आपको बचाता है। रोज़े से उसके पल्ले भूख-प्यास के अतिरिक्त और कुछ नहीं पड़ता।

1. कोषाधिकारी या ख़ज़ानची बैतुलमाल (राज्यकोष) से जो धन निकालकर पेश करता है वह उसकी कोई निजी सम्पत्ति नहीं होती, फिर भी उसकी गणना सदक़ा करनेवालों में होती हैं। इसलिए कि माल पेश करते हुए वह अपने अन्दर किसी प्रकार की तंगी नहीं पाता, बल्कि जो कुछ कहा जाता है ख़ुश-दिली से पेश कर देता है अमानतदारी, उदारता, मन की प्रसन्नता और आनन्द सदक़ा और दान के अनिवार्य लक्षणों में से हैं। इसलिए ऐसा कोषाधिकारी या ख़ज़ानची जो तंग दिल न हो सदक़े के प्रतिफल से कैसे वंचित रह सकता है।

2. इस हदीस से मालूम हुआ कि यदि कोई देर से आए और जमाअत हो चुकी हो (अर्थात लोग सामूहिक रूप से नमाज़ पढ़ चुके हों और) कोई व्यक्ति अभी ऐसा न हो जिसे नमाज़ अभी अदा करनी हो, तो उसके अकेले नमाज़ पढ़ने से अच्छा यह होगा कि जो

14. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हर मुसलमान के ज़िम्मे सदक़ा है। लोगों ने कहा : यदि किसी के पास (देने को) कुछ न हो? आपने कहा : अपने हाथों से काम करे और कमाए। इस तरह ख़ुद भी फ़ायदा उठाए और सदक़ा भी करे। लोगों ने कहा : यदि वह इसकी सामर्थ्य न रखता हो या यह भी न कर सके? आपने कहा : किसी ग़म के मारे हुए ज़रूरतवाले व्यक्ति की सहायता करे।[1] लोगों ने कहा :

लोग नमाज़ पढ़ चुके हैं उनमें से कोई उसका साथ दे ताकि वह जमाअत की बरकत और सवाब से वंचित न रहे। नबी (सल्ल०) इसको सदक़ा कह रहे हैं जिससे सदक़े के व्यापक अर्थ की पुष्टि होती है। दूसरों के लिए जो त्याग और कुरबानी भी की जाए वह सदक़ा ही है। यह याद रहे कि यह सदक़ा केवल ज़ुह्र, मग़रिब और इशा की नमाज़ में हो सकता है, फ़ज्र और अस्र की नमाज़ों के बाद यह सदक़ा नहीं हो सकता। इसलिए कि फ़ज्र और अस्र की नमाज़ के बाद नफ़्ल नमाज़ नहीं पढ़ी जाती। नमाज़ में सदक़ा करनेवाले के लिए वह नमाज़ नफ़्ल हो जाती है, फ़र्ज़ तो वह अदा कर ही चुका होता है। इस नमाज़ में इमामत नफ़्ल पढ़नेवाला भी कर सकता है और फ़र्ज़ अदा करनेवाला भी जैसा कि नबी (सल्ल०) के समय में होता रहा है। हदीसों से मालूम होता है कि ऐसा सदक़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने भी किया है।

1. सदक़ा प्रत्येक मुसलिम का आवश्यक गुण है। यदि सदक़ा करने के लिए माल नहीं है तो मनुष्य को मेहनत-मज़दूरी करके यह श्रेय प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। यदि वह किसी कारण से यह भी नहीं कर सकता हो तो किसी ज़रूरतवाले और विकल व्यक्ति की सेवा ही करे। यह भी एक प्रकार का सदक़ा है। यदि यह भी नहीं कर सकता हो तो ज़बान से लोगों के काम आए, उन्हें भलाई का हुक्म दे। ईमान के कारण मनुष्य को एक प्रकार का मानसिक, हार्दिक और आत्मिक आनन्द और विशालता प्राप्त होती है। उसका यह आनन्द स्वभावतः जीवन में विभिन्न शैलियों में प्रदर्शित होता है और उसे प्रदर्शित होना भी चाहिए क्योंकि यह उसके ईमान की एक बड़ी माँग है। इस आनन्द की एक विशेष प्रमुख सूचक चीज़ सदक़ा है। ईमान और आत्मिक आनन्द का सूचक होने के कारण सदक़ा हमारे अन्तर को शुद्ध और विकसित करने में भी सहायक होता है। इन्हीं कारणों से सदक़ा मुस्लिम के लिए अनिवार्य ठहराया गया है। आत्मिक दृष्टि से सदक़ा (दान) ईमान का माधुर्य, हृदय की विशालता और मानसिक एवं आत्मिक आनन्द है जो रुपए-पैसे से दूसरों की सहायता करने के अतिरिक्त लोगों की दूसरी सेवाओं का प्रेरक भी बनाता है। यही कारण है कि उन सबको सदक़ा शब्द से अभिव्यंजित किया गया है। यहाँ तक कि इस चीज़ को भी सदक़ा कहा गया है कि मनुष्य इस बात का ध्यान रखे कि उससे किसी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे।

यदि यह भी न कर सके? आपने कहा : (लोगों को) नेकी का हुक्म दे। लोगों ने कहा : यदि यह भी न कर सके? कहा : अपने आपको बुराई से बचाए क्योंकि यह भी सदक़ा है।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

दान के कुछ नियम

1. हज़रत असमा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ख़र्च करती रहो, गिनो मत। यदि तुम इस तरह हिसाब करके दोगी तो अल्लाह भी तुम्हें हिसाब ही से देगा। और माल को रोको मत, नहीं तो अल्लाह भी तुमसे माल को रोक लेगा। खुले हाथों से जितना हो सके देती रहो।

—बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ऐ आदम के बेटे! जो तेरी आवश्यकता से अधिक हो उसका ख़र्च करना तेरे लिए अच्छा है और उसका रोकना तेरे लिए बुरा है। और हाँ, गुज़ारे और आवश्यकता की मात्रा में रखने पर तुम्हारे लिए कोई निन्दा की बात नहीं और सबसे पहले उनपर ख़र्च करो जिनकी तुमपर ज़िम्मेदारी है।[2] —मुसलिम

---

1. इससे सदक़ा की और भी व्यापक व्याख्या होती है। इससे ज्ञात हुआ कि सदक़ा स्वीकारात्मक रूप में केवल आर्थिक और शारीरिक चीज़ ही नहीं है और न वह केवल वचन और कर्म तक सीमित है, बल्कि सदक़े का निषेधात्मक रूप भी होता है। जिस व्यक्ति ने अपने आपको बुराई से बचाया उसने नेकी ही के पक्ष को दृढ़ करने में अपना योगदान दिया। इसे भी एक प्रकार का सदक़ा कहा जाएगा।
2. इस्लाम में उचित रूप से माल ख़र्च करने को पसन्द किया गया है। अकारण माल एकत्र करने को पसन्द नहीं किया गया है। कृपणता और माल के लोभ से एक ओर धन का फैलाव और गर्दिश रुक जाती है। जिस धन से बहुत-से लोगों की ज़रूरतें पूरी हो सकती थीं, वह अकेले एक व्यक्ति की तिजोरियों में बन्द रहकर अपनी उपयोगिता खो देता है, दूसरी ओर दान और ख़र्च के द्वारा मनुष्य को आत्मिक और नैतिक उन्नति प्राप्त होती है। उसकी आत्मा का विकास होता है। धन-दौलत का लोभ मन से निकल जाता है। वह जीवन के उन उच्चतम मूल्यों से परिचित होता है जिनका ज्ञान कृपणता और लोभ की दशा में उसे कदापि नहीं हो सकता था। सदक़े का आत्मा को निखारने और शुद्ध करने में बड़ा योग होता है। इस बात को हर वह व्यक्ति स्वीकार करेगा जिसे दीन (धर्म) के विषय में थोड़ा-सा भी सोच-विचार और चिन्तन करने का अवसर मिला होगा।

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) एक बार हज़रत बिलाल (रज़ि०) के पास आए। उनके पास छुहारों का ढेर लगा हुआ था। आप (सल्ल०) ने कहा : ऐ बिलाल यह क्या है? कहा : मैंने इसे कल के लिए एकत्र कर रखा है। आपने कहा : क्या तुम इससे नहीं डरते कि क़ियामत के दिन तुम जहन्नम की आग में उसकी आँच देखो। ऐ बिलाल! ख़र्च करो और अर्श के मालिक से कम देने का भय न करो।[1] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि (आपने कहा अर्श की छाया में होगा) वह व्यक्ति जिसने सदक़ा दिया और उसे इतना छिपाया कि उसका बायाँ हाथ नहीं जानता कि उसके दाएँ हाथ ने क्या ख़र्च किया।[2]

—बुख़ारी

ख़र्च करने में मनुष्य को सबसे पहले उन लोगों की आवश्यकताओं को देखना चाहिए जिनके संरक्षण और भरण-पोषण का दायित्व स्वयं उसपर आता है। इसके पश्चात वह दूसरों पर ख़र्च करे। ऐसा न हो कि वह दूसरों के लिए तो बड़ा दानशील हो और अपने परिवार आदि के ज़रूरी हक़ों का भी उसे ध्यान न हो।

1. इस हदीस का यह अर्थ कदापि नहीं है कि कल के लिए कुछ रखने की शरीअत में कोई गुंजाइश ही नहीं है, बल्कि वास्तव में आपने यह बात ज़ेहन में बिठानी चाही है कि मनुष्य का असल भरोसा धन-दौलत पर नहीं बल्कि अल्लाह पर होना चाहिए। जिस अल्लाह ने आज रोज़ी का प्रबन्ध किया है वही कल भी करेगा। यदि हमारा भरोसा अल्लाह को छोड़कर किसी भौतिक पदार्थ पर हुआ और हम अल्लाह की दयालुता और उसकी शक्ति को भूल गए तो यह चीज़ हमारे हक़ में यातना का कारण बन सकती है।

2. अर्थात वह बहुत ही छिपाकर सदक़ा करता है। इसलिए कि वास्तविक उद्देश्य तो अल्लाह को प्रसन्न करना है, न कि लोगों को यह दिखाना कि हम बड़े दाता हैं। यदि वह दुनिया को दिखाने के लिए ख़र्च करता है तो वह न केवल यह कि सदक़ा के सवाब से वंचित रह जाएगा बल्कि उलटे एक बड़े गुनाह का भागी होगा। इसलिए कि जो काम उसे अल्लाह के लिए करना चाहिए था उसको उसने दुनिया को दिखाने के लिए किया। यह एक प्रकार का शिर्क हुआ।

   यदि लागों को दिखाने की नीयत न हो तो खुले रूप से ख़र्च करने में कोई दोष नहीं है; परन्तु छिपाकर देना अधिक उत्तम है। क़ुरआन में कहा गया है : "यदि खुले रूप से सदक़ा दो तो यह भी अच्छा है और यदि छिपाकर ग़रीबों को दो तो यह तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है और इससे तुम्हारी बुराइयाँ धुलती हैं।" —2 : 271

5. हज़रत अम्र बिन शुऐब (रह०) अपने पिता और दादा से रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने लोगों के बीच ख़ुतबा (भाषण) दिया और कहा : सावधान! जो व्यक्ति किसी यतीम (अनाथ) का संरक्षक हो और उस यतीम के पास माल हो तो उस संरक्षक को चाहिए कि वह उस माल को व्यापार में लगाए और उसे छोड़ न दे कि ज़कात उसे खा जाए।[1] —तिरमिज़ी

6. जरीर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब तुम्हारे पास कोई ज़कात की वुसूली के लिए आए तो चाहिए कि वह तुम्हारे पास से इस हाल में लौटे कि वह तुमसे प्रसन्न हो।[2] —मुसलिम

7. अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : एक दिरहम (सिक्के का नाम) लाख दिरहम से अग्रसर रहा। कहा गया : यह कैसे, ऐ अल्लाह के रसूल? आपने कहा : एक व्यक्ति के पास दो दिरहम हैं जो उन दोनों में खरा है, उसको उसने 'सदक़ा' कर दिया। दूसरा व्यक्ति अपने (फैले हुए अधिक) माल के एक गोशे में गया वहाँ से एक लाख दिरहम निकालकर सदक़ा कर दिया (तो पहले व्यक्ति का एक दिरहम उसके लाख दिरहम से उत्तम है)।[3] —नसई

8. हज़रत ज़ैद बिन असलम से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : माँगनेवाले को दो चाहे वह घोड़े पर सवार होकर आए। मालिक ने

---

1. यतीमों और अनाथों का माल यदि तुम्हारे पास है और तुमने उसकी रक्षा और निगरानी की ज़िम्मेदारी स्वीकार की है तो उस माल को व्यापार में लगाओ। उनके माल को यूँ ही न छोड़ दो, क्योंकि यदि तुमने उनके माल को यूँ ही छोड़ दिया और उसे व्यापार में नहीं लगाया, केवल उसकी ज़कात ही निकालते रहे तो इसका परिणाम इसके सिवा और क्या हो सकता है कि उनका माल धीरे-धीरे समाप्त होकर रह जाएगा। इसलिए यतीमों का हित और हमदर्दी इसमें है कि तुम उनके माल की रक्षा करो और उसे बढ़ाओ, न यह कि उनके हानि-लाभ की तुम्हें कोई चिन्ता ही न हो।
2. अर्थात तुम अपनी ज़कात सहर्ष पूरी-पूरी अदा करो।
3. ऐसे व्यक्ति के लिए जिसके पास धन-दौलत का भण्डार है एक लाख ख़र्च कर देना कुछ भी मुश्किल नहीं है जबकि एक दूसरे व्यक्ति का एक दिरहम ख़र्च करना भी एक बड़ी क़ुरबानी हो सकती है। जो सदक़ा तंगी की हालत में किया जाता है उसका महत्व अल्लाह की दृष्टि में उस सदक़ा के मुक़ाबले में कहीं अधिक है जो ख़ुशहाली की दशा में मनुष्य करता है।

इसको रिवायत किया है। अबू दाऊद (रह०) हज़रत अली (रज़ि०) से रिवायत करते हैं कि माँगनेवाले का हक़ है, चाहे वह घोड़े पर चढ़कर आए।[1]

—मालिक, अबू दाऊद

9. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति अण्डे के बराबर सोना लाया और कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! इसको मैंने एक मकान में पाया है। आप इसे ले लें। यह सदक़ा है। इसके अतिरिक्त मेरी मिलकियत में कुछ नहीं है। आपने उसकी ओर से मुँह फेर लिया। फिर वह दाहिनी ओर से आया और यही बात कही। आपने उससे फिर मुँह फेर लिया। फिर वह बाईं ओर से आया और वही बात कही। फिर आपने उससे मुँह फेर लिया। फिर वह पीछे से आया और वैसी ही बात कही। फिर आपने उसको ले लिया और उससे उस व्यक्ति को खींचकर मारा, यदि उसको लग जाता तो उसे तकलीफ़ पहुँचती। आपने कहा : तुममें से कोई अपनी सारी मिलकियत लाता है और कहता है कि यह सदक़ा (दान) है। फिर इसके पश्चात वह बैठकर लोगों से भिक्षा माँगता है। सबसे उत्तम सदक़ा वह है जो निस्पृहता के साथ हो।[2] —अबू दाऊद

---

1. हदीस से मालूम होता है कि जिसके पास खाने को हो या जो इसकी सामर्थ्य रखता हो कि कमा सके उसका काम यह नहीं है कि वह माँगे या ज़कात ले, यह साहस की शिक्षा है। रहा क़ानून तो जो व्यक्ति निसाब से कम माल रखता है उसे ज़कात दी जा सकती है। नबी (सल्ल०) ने एक ओर तो लोगों में यह भावना जाग्रत की कि वे यथासंभव माँगने से बचें। आपने यहाँ तक कहा कि जिस व्यक्ति को सुबह-शाम की रोटी की सामग्री प्राप्त हो वह यदि माँगने के लिए हाथ फैलाता है तो वह अपने हक़ में आग संचित करता है; किन्तु दूसरी ओर आपने मुसलमानों में पूर्णतः दानशीलता का गुण उभारा और यह शिक्षा दी कि माँगनेवाले को दो यद्यपि घोड़े पर सवार होकर (अर्थात अच्छी दशा में) आए।
2. इस हदीस से मालूम हुआ कि हाकिम या ज़िम्मेदार व्यक्ति को सदक़ा वुसूल करते समय देनेवाले व्यक्ति की परिस्थिति और दूसरी आवश्यक बातों को ध्यान में रखना चाहिए। सदक़ा देनेवाले को भी चाहिए कि वह सदक़ा देते समय इस पहलू से अवश्य देख ले कि वह यदि अपनी सारी मिलकियत या अपनी सम्पत्ति का अधिक भाग अल्लाह के मार्ग में सदक़ा कर रहा है तो उसके नतीजे में कल वह लोगों से भिक्षा नहीं माँगेगा, बल्कि वह कमाकर खाएगा। यदि वह इसका साहस अपने में नहीं पाता तो उसके लिए यही अच्छा है कि बस उतना ही सदक़ा करे जितना वह आसानी से कर सकता है।

10. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! कौन-सा सदक़ा उत्तम है ? आपने कहा : थोड़े मालवाले की कोशिश और मशक़्क़त[1] और सदक़ा देने में आरंभ उन लोगों से करो जिनकी तुमपर ज़िम्मेदारी है ।[2] —अबू दाऊद

11. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : उत्तम सदक़ा यह है कि तू भूखे जिगर का पेट भर दे ।

—बैहक़ी : शोबुल ईमान

12. हज़रत सईद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि सअद (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के पास आए और पूछा : कौन-सा सदक़ा आपको अधिक प्रिय है ? आप (सल्ल०) ने कहा : पानी पिलाना ।[3] —अबू दाऊद

13. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मुहताज वह नहीं है जो लोगों से माँगता फिरता है और उसको एक-दो ग्रास या दो खजूरें दे दी जाती हैं, बल्कि मुहताज वह है जिसके पास अपनी आवश्यकता पूरी करने की सामग्री भी नहीं है और किसी को उसकी मुहताजी का एहसास भी नहीं हो पाता कि उसको सदक़ा दिया जाए, और न वह लोगों से माँगने के लिए जाता है ।[4] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात परिश्रम करके जो कुछ थोड़ा-बहुत प्राप्त किया उसमें से तकलीफ़ और मशक़्क़त उठाकर अल्लाह के मार्ग में ख़र्च भी करे।
2. इसलिए कि उनका हक़ सबसे अधिक है।
3. भूखे को खाना खिलाना और प्यासे के लिए पानी का प्रबन्ध करना सबसे बढ़कर नेकी और सदक़ा है। इस प्रकार के 'सदक़े' से लोगों को तत्काल ही आराम मिलता है।
4. मतलब यह है कि ऐसे लोगों की ख़बर लेनी सबसे पहले ज़रूरी है जो अपनी तकलीफ़ लोगों से बयान नहीं करते और न लोगों के सामने हाथ फैलाते हैं जिसके कारण साधारणतया लोगों को इसका अनुमान नहीं हो पाता कि वे किस हालत में हैं। ये सबसे बढ़कर इसके हक़दार हैं कि इनकी सहायता की जाए। और इस तरह से सहायता की जाए कि इनके मान-प्रतिष्ठा को क्षति न पहुँचे। इसी प्रकार की शिक्षा कुरआन में भी दी गई है—"यह सदक़ा उन मुहताजों के लिए है जो अल्लाह के मार्ग में ऐसे घिर गए हैं कि (रोज़ी कमाने के लिए) धरती में दौड़-भाग नहीं कर सकते। उनके (माँगने से) बचने के कारण अनजान व्यक्ति उन्हें मालदार समझते हैं। तुम उनके चेहरों से उनकी भीतरी दशा पहचान सकते हो, वे लोगों से चिमट-चिमटकर नहीं

14. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! किस सदक़ा का सवाब अधिक है ? आप (सल्ल०) ने कहा : तेरा इस हाल में सदक़ा करना कि तू स्वस्थ हो और तुझे माल की चाहत और इच्छा हो, निर्धनता से डरता और धनवान होने की आशा रखता हो[1] और ऐसा न हो कि तू सोचता और टालता रहे यहाँ तक कि जब प्राण गले में पहुँच जाए तो कहने लगो कि इतना अमुक व्यक्ति के लिए है और इतना अमुक व्यक्ति के लिए है, हालाँकि अब तो वह अमुक व्यक्ति ही को मिलेगा।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

15. हज़रत हसन (रज़ि०) से मुरसल तरीक़े से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ज़कात के द्वारा अपने मालों की रक्षा करो[3] और अपने बीमारों का इलाज सदक़ा के द्वारा करो।[4] दुआ और गिड़गिड़ाहट के द्वारा

माँगते। तुम (उनकी सहायता के लिए) जो माल भी ख़र्च करोगे, निस्संदेह, अल्लाह उसका जाननेवाला है।" —2 : 273

1. मतलब यह है कि सदक़ा तो वही अल्लाह के यहाँ महत्व रखता है जो स्वस्थ अवस्था में दिया जाए, जबकि मनुष्य के सामने अपनी बहुत-सी समस्याएँ होती हैं। उसका अपना भविष्य होता है। उसे माल की आवश्यकता और इच्छा होती है। इस सबके बावजूद यदि वह अल्लाह के मार्ग में ख़र्च करता है तो निश्चय ही वह अल्लाह के यहाँ प्रतिदान का अधिकारी है। ऐसे ही लोगों के बारे में क़ुरआन में कहा गया है : "और जो लोग अपने मन के लोभ से बचे रहे, वही सफलता प्राप्त करनेवाले हैं।" —59 : 9
2. अर्थात मनुष्य जब जीवन से निराश हो जाए और समझ ले कि माल-दौलत सब कुछ अब छिन जाने को है, उस समय यदि वह सदक़ा करता है और वसीयत करता है, तो उसका अल्लाह के यहाँ उसका कोई मूल्य नहीं है, अब तो उसका माल दूसरों के हाथ में स्वयं ही पहुँच जाएगा।
3. अर्थात तुम माल की ज़कात दोगे तो अल्लाह तुम्हारे माल की रक्षा करेगा, यदि तुम ज़कात नहीं निकालते तो किसी भी समय तुम्हारा यह अपराध विनाश का कारण बन सकता है और तुम्हारा माल तबाह हो सकता है।
4. अर्थात रोगियों के इलाज में डाक्टरों और चिकित्सकों पर ही भरोसा न करो बल्कि उस सबसे बड़े चिकित्सक की ओर भी रुजू करो जिसके कब्ज़े में दुख-सुख, जीवन और मृत्यु सब कुछ है। उसे ख़ुश करने और उसकी सहायता प्राप्त करने का उत्तम उपाय सदक़ा है। तुम सदक़ा करके ग़रीबों की सहायता करोगे तो अल्लाह मुसीबत में तुम्हारी मदद करेगा।

मुसीबतों का स्वागत करो ।[1] —अबू दाऊद

16. हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने एक व्यक्ति को अल्लाह की राह में घोड़े पर सवार किया ।[2] उसने उसे ख़राब कर दिया ।[3] मेरा इरादा हुआ कि उसे ख़रीद लूँ । मेरा ख़याल था कि उसे सस्ता बेचेगा । मैंने नबी (सल्ल०) से पूछा (कि क्या मैं इसे ख़रीद लूँ) । आपने कहा, कदापि उसे न ख़रीदो और अपने सदक़े को लौटाओ नहीं, चाहे वह तुम्हें एक ही दिरहम में दे क्योंकि अपने दिए सदक़े को लौटानेवाला ऐसा ही है जैसे कुत्ता जो क़ै करके उसे चाट ले। एक रिवायत के शब्द ये हैं : "अपने सदक़े को न लौटाओ क्योंकि सदक़े को लौटानेवाला उस व्यक्ति की तरह है जो क़ै करके उसे चाट ले ।"[4]

—बुख़ारी, मुसलिम

17. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) और हकीम बिन हिज़ाम (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : उत्तम सदक़ा वह है जो अपने पीछे बेनियाज़ी छोड़ जाए और सदक़ा देने में आरंभ उन लोगों से करो जिनकी ज़िम्मेदारी तुमपर हो ।[5] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात मुसीबत आने पर दुआ करो और अल्लाह के सामने गिड़गिड़ाओ, अल्लाह तुम्हारी मुसीबत को टाल देगा।
2. अर्थात अल्लाह के मार्ग में उन्होंने एक घोड़ा दिया।
3. अर्थात उसने उस घोड़े की देख-भाल ठीक से नहीं की जिसके कारण वह घोड़ा दुबला और कमज़ोर हो गया।
4. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) का अमल यह था कि यदि वह कोई ऐसी चीज़ ख़रीदते भी जिसे उन्होंने सदक़ा किया होता तो उसे वे अपने पास न रखते, बल्कि उसे फिर तुरन्त सदक़ा कर देते। (बुख़ारी)

   सदक़ा की हुई चीज़ को वापस लेना बड़ी ही घिनावनी और नीच हरकत है। इसी कारण उसको क़ै चाटने से उपमा दी गई है। सदक़े में दिए हुए माल को ख़रीदनेवाला यद्यपि वास्तविक रूप से अपने सदक़े को रद्द नहीं करता फिर भी ज़ाहिर में उसी चीज़ को लौटा रहा होता है जिसे वह अल्लाह की राह में दे चुका होता है। इस्लामी स्वभाव के लिए यह ज़ाहिरी एकरूपता भी असह्य है। इसी लिए इस चीज़ को पसन्द नहीं किया कि कोई उस चीज़ को ख़रीदने की कोशिश करे जिसको वह अल्लाह की राह में निकाल चुका है।
5. बेनियाज़ी छोड़ जाने का अर्थ यह है कि सदक़ा देने के पश्चात मनुष्य दिल में किसी प्रकार की घुटन और तंगी महसूस न करे। सदक़ा देने में यह देखना चाहिए कि या तो

माँगने से परहेज़

1. हज़रत सौबान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा जो व्यक्ति मुझसे इस बात की प्रतिज्ञा करे कि वह लोगों से न माँगेगा तो मैं उसके लिए जन्नत की ज़मानत लेता हूँ। सौबान (रज़ि०) ने कहा : मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ। इसी लिए वे किसी से माँगते नहीं थे।[1] —अबू दाऊद, नसई

2. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : तुममें से जो व्यक्ति (अकारण) माँगेगा वह सर्वोच्च अल्लाह से (क़ियामत के दिन) इस दशा में मिलेगा कि उसके चेहरे पर मांस न होगा।[2]

—बुख़ारी, मुसलिम, नसई

इतना बच रहा हो कि स्वयं उसे सदक़ा लेने की आवश्यकता न होगी या फिर मनुष्य को अल्लाह पर इतना भरोसा हो कि अपने दिल में कुछ भी तंगी महसूस न करे। अर्थात मनुष्य का दिल बेपरवा हो। सदक़ा करने के बाद अल्लाह पर भरोसा करने की सबसे अच्छी मिसाल हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) की है। वे घर की सारी सामग्री नबी (सल्ल०) के क़दमों में डाल देते हैं और कहते हैं कि घर में अल्लाह और उसका रसूल बाक़ी हैं; परन्तु सामान्य नियम यही है कि सदक़ा देने के पश्चात इतना शेष रहे कि मनुष्य की अपनी आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ और वह तंगी महसूस न करे।

इस हदीस में दूसरी बात यह बताई गई है कि अपने नातेदारों और सगे-संबंधियों से निवृत्त होने के पश्चात बाहर के लोगों को देना चाहिए। घर में किसी के बच्चे और दूसरे लोग मुहताज हों और वह बाहर सदक़ा बाँटता फिरता है तो यह सदक़ा के आशय के सर्वथा प्रतिकूल होगा।

1. इस्लाम में इस बात को बहुत ही नापसन्द किया गया है कि कोई व्यक्ति भिक्षा माँगे। इस्लाम चाहता है कि मनुष्य यथासंभव अपने आपको अपमान से बचाए। इस्लाम की इस शिक्षा के परिणामस्वरूप सहाबा यदि ऊँट पर बैठे होते और ऊँट की नकेल गिर जाती तो स्वयं उतरकर उसे उठाते किसी दूसरे से उठाने के लिए न कहते। लेकिन अफ़सोस कि आज इस्लाम पर ईमान रखनेवालों में ऐसे वर्ग भी पैदा हो गए हैं जिन्होंने अपने रसूल (सल्ल०) की शिक्षा को भुलाकर भिक्षा को ही अपना धन्धा और जीवन-निर्वाह का साधन बना लिया है।
2. दुनिया में वह लोगों के आगे हाथ फैलाकर आत्मसम्मान और स्वाभिमान को धूल में मिलाता था, उस दिन उसका अपमान और आबरू की बरबादी इस रूप में ज़ाहिर होगी कि उसके चेहरे पर मांस न होगा। नहूसत और कुरूपता अत्यन्त बढ़ी होगी।

3. हुब्शी बिन जुनादा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : माँगना धनवान के लिए वैध नहीं है और न बलवान स्वस्थ के लिए वैध है। हाँ, ऐसे व्यक्ति के लिए वैध है जिसे निर्धनता ने भूमि पर गिरा दिया हो, या जो तावान अथवा ऋण के बोझ से लद गया हो[1], और जो व्यक्ति अपने माल को बढ़ाने के लिए लोगों से माँगे तो यह माँगना क़ियामत के दिन उसके चेहरे पर एक घाव होगा, और जहन्नम का गर्म पत्थर होगा जिसको वह खाएगा[2], तो अब जिसका जी चाहे कम माँगे और जिसका जी चाहे अधिक माँगे। —तिरमिज़ी

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति अधिक माल प्राप्त करने के लिए लोगों से माँगता है तो वह वास्तव में आग का अंगारा माँगता है, अब चाहे उसमें कमी करे या अधिक माँगे। —मुसलिम

5. हज़रत समुरा बिन जुन्दुब (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : माँगना घाव है जिससे मनुष्य अपने चेहरे को आघात पहुँचाता है, तो अब जो व्यक्ति चाहे अपने चेहरे पर बाक़ी रखे और जो चाहे नष्ट कर दे। यह और बात है कि कोई व्यक्ति हाकिम से माँगे या किसी ऐसी चीज़ को माँगे जिसके सिवा कोई उपाय न हो।[3] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी, नसई

---

1. अर्थात अत्यन्त विवशता की दशा में माँगने की इजाज़त है।
2. उस दिन यह वास्तविकता खुलकर सामने आ जाएगी कि बिना आवश्यकता के दुनिया में लोगों से भिक्षा माँगकर वह अपनी आबरू और चेहरे के तेज को खो चुका है। उस दिन उसके चेहरे पर कोई सौन्दर्य और आकर्षण न होगा बल्कि उसका चेहरा छिला हुआ और आहत होगा। दुनिया में वह सबसे अधिक अप्रिय और कष्टदायक चीज़ (अर्थात लोगों के सामने हाथ फैलाने) को अंगीकार किए हुए था इसके परिणामस्वरूप उस दिन उसे गर्म पत्थर खाना पड़ेगा। मानो यह इस बात का प्रदर्शन होगा कि जब तुमने अपने लिए दुखदायक और अप्रिय चीज़ को अंगीकार किया है तो तुम्हारे लिए वही चीज़ संचित की गई है जो तुम्हें प्रिय है। जब दुनिया में तुमने अत्यन्त भयावह चीज़ को अपना रखा था तो यहाँ उससे क्यों भागते हो। जब सांसारिक जीवन में तुमने अपने स्वभाव के विरुद्ध नीति अपनाई है तो उसके परिणामस्वरूप तुम्हें उस चीज़ को क़बूल कर लेना चाहिए जो तुम्हारी प्रकृति के विरुद्ध और तुम्हारे लिए अत्यन्त कष्टदायक है।
3. अर्थात हाकिम या अधिकारी व्यक्ति से यदि वह अपने किसी जाइज़ हक़ की माँग करता है तो यह वैध है। इसी प्रकार अत्यन्त विवशता की दशा में यदि कोई लोगों से

6. हज़रत ज़ुबैर बिन अवाम (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से कोई व्यक्ति अपनी रस्सी ले और लकड़ियों का एक गट्ठा अपनी पीठ पर लाद के लाए और बेचे और अल्लाह उसके द्वारा उसके सम्मान को बाक़ी रखे यह उससे अच्छा है कि वह लोगों से भिक्षा माँगे, वे उसे दें या न दें।[1] —बुख़ारी

7. अबू राफ़ेअ (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने बनी मख़ज़ूम के एक व्यक्ति को ज़कात वुसूल करने के लिए नियुक्त किया। उसने अबू राफ़ेअ से कहा कि तुम भी मेरे साथ चलो ताकि तुम्हें भी उसमें से कुछ मिल जाए। अबू राफ़ेअ (रज़ि०) ने कहा कि जब तक मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछ न लूँ, तुम्हारे साथ नहीं चल सकता। अबू राफ़ेअ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और आपसे उसके बारे में पूछा। आपने कहा : ज़कात और सदक़ा हम लोगों (अर्थात हमारे घर और हमारे घराने) के लिए वैध नहीं है। और किसी घराने के ग़ुलाम भी उन्हीं में से है।[2] —तिरमिज़ी, अबू दाऊद, नसई

माँगता है तो उसे निन्दनीय नहीं समझा जाएगा। साधारण अवस्थां में मनुष्य की कोशिश यह होनी चाहिए कि वह लेने के बदले देनेवाला बने।

1. अर्थात लकड़ी बेचकर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करे और लोगों के सामने अपनी प्रतिष्ठा भंग न करे। माँगना ख़ुद अपमान की बात है। माँगने के बाद कोई तो उसे कुछ देगा और कोई इनकार करेगा। इस प्रकार उसके हिस्से में अपमान के अतिरिक्त कुछ और न आ सकेगा।
2. इस हदीस से मालूम हुआ कि नबी (सल्ल०) ने अपनी औलाद और घरानेवालों के लिए सदक़ा और ज़कात लेने को वैध नहीं रखा। इसमें दूसरे उद्देश्यों के अतिरिक्त एक बड़ा उद्देश्य यह है कि यदि आपके वंश और आपकी औलाद के लिए ज़कात का लेना वैध होता तो लोग अपने नबी से प्रेम और सम्बन्ध के कारण अपनी ज़कात आप ही की औलाद और घराने के लोगों को देने की कोशिश करते और समुदाय के दूसरे मुहताज वंचित रह जाते। क़ियामत तक के लिए अपने घराने और औलाद को ज़कात और सदक़ा से वंचित करके नबी (सल्ल०) ने अपने सच्चे नबी होने का प्रमाण दिया है। आपकी नुबूवत के दावे के पीछे यदि कोई सांसारिक हित और लाभ प्राप्त करने की इच्छा काम कर रही होती तो कभी भी आप अपनी औलाद और घरानेवालों को ज़कात से वंचित न करते। इस त्याग और क़ुरबानी के पीछे सत्यता ही की शक्ति कार्यशील थी। अन्यथा अधिकतर देखा यह जाता है कि महात्मा और गुरु कहलानेवाले और उच्च कुटुम्ब के लोग सदक़ा और दान लेने का वास्तविक अधिकारी और केन्द्र अपने आपको ही समझते हैं।

8. हज़रत इब्न मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति को कोई सख़्त ज़रूरत पेश आए और उसने उसे लोगों के सामने रखा तो उसे उस मुसीबत से स्थायी रूप से छुटकारा नहीं मिलेगा और जिस व्यक्ति ने उसे अल्लाह के सामने रखा तो अल्लाह जल्द ही उसकी ज़रूरत पूरी कर देगा या तो जल्द मृत्यु देकर (यदि उसकी मृत्यु का समय आ गया हो) या कुछ विलम्ब से सम्पन्नता प्रदान करके।[1] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

इस हदीस से इसका भी अनुमान किया जा सकता है कि उस युग में जबकि गुलामों की कोई हैसियत नहीं थी आपने अपने गुलाम को अपने कुटुम्ब का एक सदस्य बताया। अबू राफ़ेअ आपके आज़ाद किए हुए गुलाम थे।

1. मनुष्य को अपनी आवश्यकता अल्लाह ही के सामने रखनी चाहिए। अल्लाह ही उसका वास्तविक संरक्षक है। वही उसकी ज़रूरतों को पूरी करनेवाला है। हज़रत मूसा (अलै०) ने विवशता की दशा में अल्लाह ही को पुकारा था : "रब! जो अच्छी चीज़ भी तू मेरी ओर उतार दे मैं उसका मुहताज हूँ", (कुरआन, 28 : 4)। अल्लाह ने उन्हें ठिकाना दिया।

जो व्यक्ति अल्लाह को छोड़कर दूसरों पर भरोसा रखता है वह कभी भी संकट से छुटकारा नहीं पा सकता। उसका जीवन लोगों से माँगते ही बीतेगा। जिस व्यक्ति को स्वयं अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रहता, अल्लाह को भी उसकी कोई परवा नहीं होती। एक हदीस में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : मैं तीन चीज़ों पर क़सम खाता हूँ। एक यह कि सदक़ा से किसी माल में कमी नहीं आती, दूसरे यह कि किसी पर अत्याचार किया जाए और वह उसपर सब्र करे तो सर्वोच्च अल्लाह उसपर इज़्ज़त का दरवाज़ा खोल देता है। तीसरे यह कि जो व्यक्ति अपने ऊपर भिक्षा माँगने का दरवाज़ा खोलता है, सर्वोच्च अल्लाह उसपर तंगदस्ती का दरवाज़ा खोल देता है। (तिरमिज़ी)

रोज़ा

मनुष्य की प्राकृतिक एवं स्वाभाविक क्षमता और शक्ति के उभरने और उसके विकास पाने के लिए शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त साधारणतया मन और मस्तिष्क पर लौकिकता का पहलू इतना छाया रहता है कि मनुष्य के लिए यह अत्यन्त कठिन होता है कि वह चीज़ों को उनकी प्राकृतिक पवित्रता में देख सके और जीवन के महत्वपूर्ण मूल्यों (Values of life) और वास्तविकताओं को समझ सके। रोज़ा एक इबादत (उपासना) और हमारी आध्यात्मिक एवं नैतिक दीक्षा का एक उत्तम उपाय है। 'रोज़ा' का वास्तविक उद्देश्य यह है कि हमें मन की शुद्धता प्राप्त हो, हममें संयम पैदा हो सके और हम अल्लाह का डर रखें। क़ुरआन में कहा गया है : "ऐ ईमान लानेवालो! तुमपर रोज़े अनिवार्य किए गए हैं जैसे तुमसे पहले लोगों पर अनिवार्य किए गए ताकि तुम डर रखनेवाले बन सको।" (2 : 183)

जब तक मनुष्य में आत्म-नियंत्रण न हो उसे न तो मन की शुद्धता प्राप्त हो सकती है और न वह अल्लाह की अवज्ञा से बच सकता है। जो व्यक्ति अपनी तुच्छ इच्छाओं का वशवर्ती हो उसे न अल्लाह की महानता का एहसास हो सकता है और न ही उसे जीवन के उच्च तथ्यों की अनुभूति हो सकती है। बढ़ी हुई पाशविक भावना उसे इसका अवसर ही कब देगी कि वह अपनी प्रकृति की वास्तविक माँगों की ओर ध्यान दे सके। रोज़ा इस बात का क्रियात्मक प्रदर्शन है कि खाना-पीना और स्त्री-प्रसंग के अतिरिक्त भी कोई चीज़ है जिसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। रोज़ा बन्दे को ईश्वर की ओर और जीवन के उन महत्वपूर्ण मूल्यों की ओर आकृष्ट करता है जो मानव-जीवन की वास्तविक निधि हैं। वह बन्दे को सुधार के ऐसे उच्च स्थान पर पहुँचाता है जहाँ बन्दा अपने ईश्वर से अत्यन्त समीप हो जाता है। जहाँ अन्धकार छँट जाता है और सारे आवरण उठ जाते हैं। इसी लिए विद्वानों ने कहा है : "कितने ही लोग रोज़े से नहीं होते फिर भी वास्तविकता की दृष्टि से वे रोज़ेदार होते हैं और कितने ही लोग रोज़ा रखते हुए भी रोज़ेदार नहीं होते।"

रोज़ा ज़ाहिर में तो इस चीज़ का नाम है कि मनुष्य उषाकाल से लेकर सूर्यास्त तक खाने-पीने और विषय-भोग से रुका रहे, किन्तु अपने आशय और

आंतरिक उद्देश्य की दृष्टि से रोज़ा जिस चीज़ का नाम है वह यह है कि मनुष्य अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रख सके, वह अल्लाह से डरता और उसकी उपेक्षा से बचता हो। कभी ऐसा होता है कि मनुष्य देखने में तो रोज़े से होता है लेकिन वास्तव में उसका रोज़ा नहीं होता। न उसकी आँखें पाक होती हैं और न उसका जीवन पवित्रता और ईश-भय के अन्तर्गत व्यतीत होता है।

रोज़े के लिए क़ुरआन ने जो शब्द प्रयोग किया है वह 'सौम' है। 'सौम' का शाब्दिक अर्थ है : बचना, पार्थक्य और मौन। इमाम राग़िब कहते हैं :

"सौम का वास्तविक अर्थ है किसी काम से रुक जाना, चाहे उसका सम्बन्ध खाने-पीने से हो या बातचीत करने या चलने-फिरने से हो। इसी कारण घोड़ा चलने-फिरने या चारा खाने से रुक जाए तो उसे सायम (रोज़ेदार) कहा जाता है। थमी हुई वायु और दोपहर के समय को भी सौम कहते हैं। इस विचार से कि उस समय सूर्य मध्य आकाश में रुक जाता है।"

इस व्याख्या से मालूम हुआ कि वास्तव में किसी चीज़ से रुक जाने की स्थिति का नाम सौम (रोज़ा) है। रोज़ा वास्तव में उसी व्यक्ति का है जो रोज़े की हालत में तो खाने-पीने और विषय-भोग से रुक जाए, और गुनाहों और अप्रिय कार्य को सदैव के लिए छोड़ दे।

रोज़ा अपने आपको अल्लाह के लिए हर चीज़ से निवृत्त कर लेने और पूर्ण रूप से अल्लाह की ओर आकृष्ट होने का नाम है। इस पहलू से रोज़े और एतिकाफ़ (सबसे अलग होकर अल्लाह की याद और उसकी इबादत के लिए एकान्तवास करना) में बड़ी अनुकूलता पाई जाती है। यही कारण है कि एतिकाफ़ के साथ रोज़ा रखना ज़रूरी समझा गया है। बल्कि प्राचीन धर्म-विधान में तो रोज़े की हालत में बातचीत से भी बचा जाता था। क़ुरआन में आता है कि हज़रत मसीह (अलै०) के जन्म के अवसर पर हज़रत मरयम बहुत परेशान हुईं और उन्होंने यहाँ तक कहा कि क्या अच्छा होता कि मैं इससे पहले मर जाती और लोग मुझे भूल जाते। उस समय उन्हें तसल्ली देते हुए कहा गया था : "फिर यदि तू किसी आदमी को देखे तो (इशारे से) कह देना : मैंने तो रहमान (कृपाशील ईश्वर) के लिए रोज़े की मन्नत मानी है, इसलिए मैं आज किसी आदमी से न बोलूँगी।"

—क़ुरआन, 19 : 26

रोज़े के कारण मनुष्य और फ़रिश्तों में बड़ी समरूपता आ जाती है। फ़रिश्तों को खाने-पीने की आवश्यकता नहीं होती, उनका आहार अल्लाह की हम्द (ईश-

प्रशंसा) और तसबीह (ईश-गुणगान) है। रोज़े की हालत में मुस्लिम भी खाने-पीने और कामवासना आदि से दूर रहकर अल्लाह की इबादत और बन्दगी में व्यस्त दीख पड़ता है।

रोज़ा रखकर बन्दा अपनी इच्छाओं पर क़ाबू पाता है। उस व्यक्ति से जो अपनी इच्छाओं का दास हो उससे इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि वह सत्य के समर्थन और असत्य एवं अनैतिकता के उन्मूलन के लिए जानतोड़ कोशिश कर सकेगा। जिहाद के लिए सब्र और साहस दोनों अभीष्ट हैं। सब्र और साहस रोज़े की विशेषताओं में से हैं। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने रोज़े के महीने को सब्र का महीना कहा है। रोज़े के महीने में निरन्तर एक मास तक सब्र, आत्मनियंत्रण और अल्लाह की आज्ञापालन का अभ्यास कराया जाता है।

साधारण अवस्था में मनुष्य को दूसरों की तकलीफ़ और भूख-प्यास का एहसास नहीं हो पाता। रोज़े में भूख-प्यास का व्यावहारिक अनुभव मनुष्य में स्वाभावतः यह एहसास उभारता है कि वह दीन-दुखियों और ज़रूरतमंदों के साथ सहानुभूति का मामला करे और उन्हें परेशानी की दशा में न छोड़े। नबी (सल्ल०) रमज़ान के महीने को 'मवासात का महीना' (भाईचारा एवं सहानुभूति का महीना) कहते थे। और इस महीने में आप अत्यन्त दानशील होते थे।

रोज़ा विनय एवं नम्रता का साकार प्रदर्शन भी है। इसी लिए गुनाहों के क्षमा कराने में रोज़ा सहायक सिद्ध होता है। इसी लिए शरीअत (धर्मशास्त्र) में कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) के रूप में भी रोज़ा रखने का आदेश दिया गया है। रोज़ा न केवल यह कि गुनाह के प्रभाव को दिल से मिटाता है बल्कि वह दुआओं (प्रार्थनाओं) की स्वीकृति और अल्लाह की दयालुता को अपनी ओर आकृष्ट करने में भी सहायक होता है। प्राचीन ग्रन्थों में भी रोज़े की इस विशेषता का उल्लेख मिलता है। बाइबल में है—

> "प्रभु का दिन बड़ा और अति भयानक है, उसको कौन सह सकेगा? तो भी प्रभु की यह वाणी है, अभी भी सुनो, उपवास (रोज़े) के साथ रोते-पीटते अपने पूरे मन से फिरकर मेरे पास आओ। अपने वस्त्र नहीं, अपने मन ही को फाड़कर अपने प्रभु की ओर फिरो, क्योंकि वह अनुग्रहकारी, दयालु, विलम्ब से क्रोध करनेवाला, करुणानिधान और दुख देकर पछतानेहारा है।" —योएल, 2 : 11-13

रोज़ा पवित्रतम इबादत (उपासना) है। रोज़ा अल्लाह की बड़ाई का प्रदर्शक

और बन्दे की कृतज्ञता-विज्ञप्ति भी है। रोज़े के संदर्भ में क़ुरआन मजीद में जहाँ कहा गया है : "ताकि तुम तक़वा (ईश-भय और धर्म-परायणता) हासिल करो" वहीं यह भी कहा गया है : "ताकि उस मार्गदर्शन पर जो तुम्हें प्रदान किया गया है अल्लाह की बड़ाई करो और ताकि तुम (उसके आगे) कृतज्ञता दिखाओ।"

(क़ुरआन, 2 : 185)

मानव-जाति पर यूँ तो अल्लाह के अगणित उपकार हैं लेकिन उसका सबसे बड़ा उपकार यह है कि उसने हमें क़ुरआन जैसा उत्तम ग्रन्थ प्रदान किया क़ुरआन ने मानव को मुक्ति और शाश्वत कल्याण का मार्ग दिखाया। मनुष्य को नैतिकता के उस उच्च पद से परिचित किया जिसकी साधारण अवस्था में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। रोज़ा रखकर मनुष्य अल्लाह की इस विशेष दयालुता पर प्रसन्नता और कृतज्ञता प्रकट करता है। मनुष्य अल्लाह का बन्दा और उसका सेवक है। अल्लाह ही उसका स्वामी और इष्ट-पूज्य है। मनुष्य के लिए आनन्द का उत्तम साधन वही है जिसके माध्यम से वह सम्बन्ध और नाता प्रदर्शित होता हो जो उसका वास्तविक नाता अपने ईश्वर से है :

हम उसके हैं हमारा पूछना क्या !

ईश-सम्बन्ध का यह प्रदर्शन स्वभावतः अल्लाह के समक्ष कृतज्ञता व्यक्त करना भी है। रमज़ान का महीना विशेष रूप से रोज़े के लिए इसलिए नियत किया गया कि यही वह शुभ मास है जिसमें क़ुरआन अवतरित होना आरंभ हुआ था। क़ुरआन के अवतरण-उद्देश्यों और रोज़े में बड़ी समानता पाई जाती है। क़ुरआन जिन उद्देश्यों के अन्तर्गत अवतरित हुआ है उसकी प्राप्ति में रोज़ा सहायक होता है।

रमज़ान में एक साथ मिलकर रोज़ा रखने से नेकी और आध्यात्मिकता का एक वातावरण पैदा हो जाता है जिसका दिलों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कम हिम्मत और कमज़ोर इरादे के व्यक्ति के लिए भी नेकी की राह पर चलना सरल हो जाता है। सफलता उसी के लिए है जिसने इस रहस्य को समझ लिया कि उसकी ज़िम्मेदारी केवल रोज़े के वाह्य नियमों के पालन तक सीमित नहीं है बल्कि उसका यह कर्त्तव्य भी है कि वह रोज़े के वास्तविक उद्देश्य के प्रति असावधानी न दिखाए। रोज़े का आशय केवल रोज़े के समय तक ही अपेक्षित नहीं है, बल्कि उसका सम्बन्ध मनुष्य के पूरे जीवन-काल से है। प्राचीन ग्रन्थों में भी ऐसे रोज़ों को व्यर्थ कहा गया है जिनका सम्बन्ध मन की शुद्धता, ईश-भय

और उच्च नैतिकता से न हो। बाईबिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ कितनी प्रभावकारी है :

"वे कहते हैं, क्या कारण है कि हमने तो उपवास (रोज़ा) रखा, परन्तु तूने इसकी सुधि नहीं ली? हमने दुःख उठाया, परन्तु तूने कुछ ध्यान नहीं दिया? सुनो, उपवास के दिन तुम अपनी ही इच्छा पूरी करते हो और अपने सेवकों से कठिन कामों को कराते हो। सुनो, तुम्हारे उपास का फल यह होता है कि तुम आपस में लड़ते-झगड़ते और दुष्टता से घूँसे मारते हो। जैसा उपवास तुम आजकल रखते हो, उससे तुम्हारी प्रार्थना ऊपर नहीं सुनाई देगी। जिस उपवास से मैं प्रसन्न होता हूँ अर्थात् जिसमें मनुष्य स्वयं को दीन करे, क्या तुम इस प्रकार करते हो?"

—यशायाह, 58 : 3-5

और इसी पुस्तक में आगे कहा गया—

"जिस उपवास (रोज़ा) से मैं प्रसन्न होता हूँ, वह क्या यह नहीं, कि अन्याय से बनाए हुए दासों, और अन्धेर सहनेवालों का जूआ तोड़कर उनको छुड़ा लेना और सब जुओं को टुकड़े-टुकड़े कर देना? क्या वह यह नहीं है कि अपनी रोटी भूखों को बाँट देना, अन्याय और मारे-मारे फिरते हुओं को अपने घर ले आना, किसी को नंगा देखकर वस्त्र पहनाना, और अपने जाति-भाइयों से अपने को न छिपाना।

तब तेरे प्रकाश पौ फटने की तरह चमकेगा, और तू शीघ्र चंगा हो जाएगा, तेरा धर्म तेरे आगे-आगे चलेगा, प्रभु का तेज तेरे पीछे रक्षा करते चलेगा।"

—यशायाह, 58 : 6-8

रोज़ा की वास्तविकता

1. हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि०) कहते हैं कि शाबान की अन्तिम तिथि को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हमें सम्बोधित किया। आपने कहा : "ऐ लोगो! तुमपर एक महान और बरकतवाला महीना छाया डाल रहा है।[1] इसमें एक रात हज़ार महीनों से उत्तम है।[2] इस महीने के रोज़े को अल्लाह ने अनिवार्य किया है

1. अर्थात रमज़ान का शुभ महीना आ गया है।
2. यह संकेत शबे क़द्र (दिव्य रात्रि) की ओर है। क़ुरआन इस दिव्य रात्रि से उतरना आरंभ हुआ है। इस रात्रि का बड़ा महत्व है। यह वह रात है जिसमें उन बातों का

और उसकी रातों में (अल्लाह की सेवा में) खड़ा होने को नफ़्ल (तद्अधिक) ठहराया है।[1] जो व्यक्ति इस महीने में कोई नफ़्ल नेकी अल्लाह की प्रसन्नता और सामीप्य प्राप्त करने के ध्येय से करेगा तो वह ऐसा होगा जैसे इस महीने के सिवा दूसरे महीने में किसी ने फ़र्ज़ (अनिवार्य कर्म) अदा किए।[2] और जो इस महीने में फ़र्ज़ अदा करेगा वह ऐसा होगा जैसे इस महीने के सिवा दूसरे महीने में किसी ने सत्तर फ़र्ज़ अदा किए। और वह सब्र का महीना है[3] और सब्र का बदला जन्नत है,

---

फ़ैसला होता है जो ज्ञान एवं तत्वदर्शिता पर अवलम्बित होती हैं और जिनमें संसार का कल्याण और भलाई होती है। दुनिया के मामलों का निर्णय इसी रात में होता है। वह रात जिसमें कुरआन उतरना शुरू हुआ है, कोई साधारण रात नहीं हो सकती। यह रात हज़ार महीनों से उत्तम है। कभी हज़ार महीनों में भी मानव-कल्याण के लिए वह काम नहीं हुआ जो इस एक रात में हुआ। इस रात को फ़रिश्ते और रूहुल अमीन (हज़रत जिबरील अलै०) अपने रब के आदेश से उतरते हैं (दे० सूरा-97 अल-क़द्र और सूरा-44 अद-दुख़ान आयत :3-5)।

1. रमज़ान के महीने में दिन को रोज़ा रखना फ़र्ज़ (आवश्यक) है और रात में तरावीह पढ़ना और ज़्यादा-से-ज़्यादा नमाज़ में अल्लाह के आगे खड़ा होना फ़र्ज़ (अनिवार्य) तो नहीं लेकिन यह अमल अल्लाह को अत्यन्त प्रिय है।
2. रमज़ान का महीना रोज़े के लिए विशिष्ट है। इस महीने में समस्त मुस्लिम लोग मिलकर एक साथ रोज़ा रखते हैं। इस तरह व्यक्तिगत इबादत एक सामूहिक इबादत बन जाती है। लोगों के अलग-अलग रोज़ा रखने से जो आध्यात्मिक एवं नैतिक लाभ हो सकते थे, सबके मिलकर रोज़ा रखने से वे लाभ असीमित रूप से बढ़ जाते हैं। रमज़ान का यह महीना संपूर्ण वातावरण को नेकी और परहेज़गारी से भर देता है। मनुष्य को रोज़ा रखकर गुनाह करते हुए लज्जा आती है। लोगों में नेकी और शुभ कर्मों की अभिरुचि बढ़ जाती है। और उनके मन में यह इच्छा होती है कि वे दीन-दुखियों के काम आएँ और अच्छे कामों में हिस्सा लें। इस महीने में नेकियों का प्रभाव और उसकी बरकतें बढ़ जाती हैं, इसलिए अल्लाह के यहाँ इनके प्रतिफल और अज्र में भी सीमातिरेक अभिवृद्धि हो जाती है।
3. इस महीने में मनुष्य भूख-प्यास की तकलीफ़ उठाकर अपनी इच्छाओं पर क़ाबू पाने और अपने को अल्लाह के आदेशों का पाबन्द बनाने की कोशिश करता है। वह अपने अंतर में ऐसी क्षमता और शक्ति उत्पन्न करने का प्रयास करता है जिससे वह अल्लाह के मार्ग में धैर्य और दृढ़ता के साथ आगे बढ़ सके और उन तकलीफ़ों और कष्टों का दृढ़ता और साहस के साथ मुक़ाबला कर सके जिनसे उसे सत्य-मार्ग में सामना करना पड़ता है।

और यह सहानुभूति एवं संवेदना का महीना है।[1] और यह महीना है जिसमें ईमानवालों की रोज़ी में वृद्धि की जाती है।[2] जिस किसी ने इसमें किसी रोज़ेदार को इफ़तार कराया तो उसके लिए गुनाहों के प्रति क्षमादान और (जहन्नम की) आग से आज़ादी का कारण होगा और उसे उस रोज़ेदार के बराबर प्रतिदान दिया जाएगा, बिना इसके कि उस रोज़ेदार के सवाब (प्रतिदान) में कोई कमी की जाए।"

आपसे कहा गया : ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ! हममें प्रत्येक को सामान प्राप्त नहीं होता ज़िससे वह रोज़ेदार को रोज़े के उपरान्त जलपान आदि करा सके। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह यह सवाब (प्रतिदान) उस व्यक्ति को भी प्रदान करेगा जो दूध की थोड़ी लस्सी या एक खजूर पर या पानी ही के एक घूँट पर किसी रोज़ेदार का (सन्ध्या को) रोज़ा खुलवा दे, और जो कोई किसी रोज़ेदार को पेट भरकर खाना खिला दे तो उसे (क़ियामत में) अल्लाह मेरे हौज़ से ऐसा पिलाएगा कि उसे प्यास ही नहीं लगेगी यहाँ तक कि वह जन्नत में दाख़िल हो जाएगा। यह (रमज़ान) वह महीना है जिसका आरंभिक भाग दयालुता, मध्य भाग क्षमादान और अन्तिम भाग (जहन्नम की) आग से आज़ादी है।[3] और जो व्यक्ति इस महीने में अपने अधिकृत (दास, सेवक) के काम को

---

1. रोज़े में अपने दूसरे भाइयों के प्रति सहानुभूति अधिक-से-अधिक पैदा होनी चाहिए। भूख-प्यास में पड़कर मनुष्य को इसका पूर्णतः अनुभव हो जाता है कि मुहताजी और ग़रीबी में आदमी पर क्या कुछ गुज़रती है। स्वयं नबी (सल्ल०) इस महीने में अत्यन्त दयालु और दयाशील हो जाते थे। कोई सवाली द्वार से ख़ाली नहीं जाता था और न कोई क़ैदी क़ैद में रहता था।
2. अर्थात बाह्य एवं आंतरिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक हर प्रकार की सम्पन्नताएँ और बरकतें इस महीने में प्राप्त होती हैं।
3. यह महीना नेकियों की बहार लेकर आता है। ईमानवाले लोग इस महीने में अधिक से अधिक अल्लाह की इबादत और आज्ञापालन में लग जाते हैं जिसके कारण लोगों पर अल्लाह की विशेष दयालुता और कृपा होती है यहाँ तक कि रमज़ान का आरंभिक भाग व्यतीत हो जाने के पश्चात मुस्लिमों और आज्ञाकारी बन्दों की हालत ऐसी हो जाती है कि अल्लाह उनकी पिछली ख़ताओं और गुनाहों को क्षमा कर दे। इस महीने के आख़िरी हिस्से तक पहुँचते-पहुँचते इस शुभ महीने से फ़ायदा उठानेवालों के जीवन में ऐसी पवित्रता आ जाती है और उनमें ऐसा ईश-भय की भावना पैदा हो जाती है कि वे अल्लाह की ओर से मुक्त और मोक्षप्राप्त समझे जाएँ। अल्लाह जहन्नम से उनकी रिहाई और आज़ादी का फ़ैसला कर देता है।

हलका कर देगा अल्लाह उसे क्षमा कर देगा और उसे (जहन्नम की) आग से आज़ाद करेगा।"
—बैहक़ी : शोबुल ईमान

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : आदम के बेटे के प्रत्येक कर्म की नेकी दस गुना से सात सौ गुना तक बढ़ाई जाती है। सर्वोच्च अल्लाह कहता है कि रोज़ा उससे अलग है क्योंकि वह मेरे लिए है और मैं ही उसका बदला दूँगा।[1] मनुष्य अपनी काम-वासना और अपना खाना मेरे ही लिए छोड़ देता है।[2] रोज़ेदार के लिए दो आनंद हैं। एक आनंद रोज़ा खोलने के समय और दूसरा आनंद अपने रब (पालनकर्त्ता स्वामी) से मिलने के समय।[3] और रोज़ेदार के मुँह की गन्ध अल्लाह की दृष्टि में

---

1. अर्थात अल्लाह लोगों के शुभ कर्मों का प्रतिदान और बदला उनकी नीयतों और उनके हृदय की शुद्धता के अनुसार दस गुना से सात सौ गुना तक देता है किन्तु रोज़े का मामला इस सामान्य नियम से भिन्न है। रोज़ा ख़ास अल्लाह के लिए होता है। दूसरी इबादतों और नेकियों में कोई न कोई वाह्य गतिविधि सम्मिलित होती है इसलिए उनको दूसरे लोगों से छिपाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु रोज़ा ऐसा ख़ामोश और अव्यक्त कर्म है जिसको रोज़ेदार और अल्लाह के सिवा कोई दूसरा नहीं जान सकता। इसलिए अल्लाह उसका बदला भी बेहिसाब प्रदान करेगा। इसके अतिरिक्त रमज़ान में नेकी और धर्म-परायणता और ईश-भय का सामान्य रूप से शुद्ध वातावरण प्राप्त हो जाता है जिसमें भलाई और शुभ कार्य के फलने-फूलने का अधिक अवसर मिलता है। आदमी जितनी ज़्यादा नेक-नीयती और मन की शुद्धता के साथ इस महीने में अमल करेगा और जितना अधिक रमज़ान की बरकतों से फ़ायदा उठाने की कोशिश करेगा और वर्ष के शेष ग्यारह महीनों में जितना रमज़ान के प्रभाव को बाक़ी रखने का प्रयास करेगा उतना ही अधिक उसके शुभ कर्म फूलते-फलते रहेंगे, जिसकी कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। यह विशेषता साधारण अवस्था में दूसरे कर्मों को प्राप्त नहीं है।
2. अर्थात रोज़े में न अपनी काम वासनाओं को पूरा करता है और न कुछ खाता-पीता है।
3. अर्थात एक ख़ुशी उसे दुनिया ही में सन्ध्या को 'रोज़े' के उपरान्त जलपान करते समय प्राप्त होती है। दिन-भर भूखा-प्यासा रहने के पश्चात जब वह शाम को रोज़ा खोलता है तो उसे जो स्वाद और आनन्द मिलता है वह साधारण अवस्था में कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। उसकी भूख-प्यास भी दूर हो जाती है और उसे यह ख़ुशी भी हासिल होती है कि उसे अल्लाह के आदेश के निभाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। दूसरी ख़ुशी उसे आख़िरत में प्रभु-दर्शन से प्राप्त होगी।

कस्तूरी की सुगन्ध से उत्तम है।[1] और रोज़ा ढाल है जब तुममें से किसी का रोज़ा हो तो वह न अश्लील बातें करे और न शोर मचाए और न दंगा और फ़साद करे, और यदि कोई उसे गाली दे या उससे लड़े तो कह दे कि मैं रोज़े से हूँ (मैं तुम्हारे इस कार्य में साथ नहीं दे सकता)।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल० ने कहा : जो व्यक्ति रमज़ान के रोज़े ईमान और चेतना के साथ रखे उसके सब पिछले गुनाह क्षमा कर दिए जाएँगे और (इसी प्रकार) जो रमज़ान (के महीने) में ईमान और चेतना के साथ (रातों में अल्लाह के आगे) खड़ा होगा उसके भी सब पिछले गुनाह क्षमा कर दिए जाएँगे और (इसी तरह) जो शबे क़द्र (दिव्य रात्रि) में ईमान और चेतना के साथ (नमाज़ में अल्लाह की सेवा में) खड़ा होगा उसके भी सब पिछले गुनाह क्षमा कर दिए जाएँगे।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक व्यक्ति को डकार लेते सुना तो कहा : अपनी डकार को कम कर इसलिए

---

1. रोज़े की हालत में मुँह की गन्ध ख़राब हो जाती है (इसलिए बार-बार दातुन करने की आवश्यकता होती है) लेकिन अल्लाह की निगाह में वह कस्तूरी की सुगन्ध से भी बढ़कर मूल्यवान है, इसलिए कि वह गन्ध उस भूख-प्यास के कारण है जिसके पीछे अल्लाह के आदेश के पालन और उसकी प्रसन्नता की प्राप्ति के सिवा और कोई भावना काम नहीं कर रही होती है।
2. अर्थात जिस प्रकार ढाल के द्वारा मनुष्य शत्रु के आघातों से अपने को बचाता है उसी प्रकार रोज़ा शैतान और अपनी तुच्छ इच्छाओं के आक्रमणों से बचने के लिए ढाल है। रोज़े के नियमों और मर्यादाओं का मनुष्य यदि ध्यान रखे तो वह रोज़े के कारण बहुत-से गुनाहों से बच सकता है और आख़िरत में जहन्नम की आग से छुटकारा पा सकता है।
3. ईमान का अर्थ यह है कि अल्लाह और आख़िरत के बारे में जो धारणा इस्लाम ने दी है वह ताज़ा रहे। चेतना के लिए वास्तव में यहाँ हतिसाब शब्द प्रयुक्त हुआ है। इहतिसाब का अर्थ यह है कि वह अल्लाह की ख़ुशी और प्रसन्नता का इच्छुक हो। हर समय अपने विचारों और कर्मों पर निगाह रखे कि कहीं वह अल्लाह की इच्छा के प्रतिकूल तो नहीं जा रहा है। उसके कर्म और विचार के पीछे कोई ग़लत भावना तो काम नहीं कर रही है। ईमान और इहतिसाब के साथ रोज़ा रखने से अल्लाह उसके पिछले गुनाहों को क्षमा कर देता है। इसलिए कि वह कभी गुनहगार था भी तो अब वह अवज्ञा से बाज़ आ गया और उसने अल्लाह की ओर रुजू कर लिया।

कि क़ियामत के दिन सबसे बढ़कर भूखा वह व्यक्ति होगा जो दुनिया में ख़ूब पेट भरकर खाता है ।[1] —शरहुस्सुन्ना, तिरमिज़ी

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हर चीज़ की ज़कात होती है और शरीर की ज़कात रोज़ा है ।[2] —इब्ने माजा

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति ने (रोज़े की हालत में) झूठ बोलना और उसपर अमल करना न छोड़ा तो अल्लाह को इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि वह (रोज़ा रखकर) अपना खाना-पीना छोड़ दे ।[3] —बुख़ारी

---

1. अर्थात आख़िरत में तृप्ति और सुख-चैन तो उसी व्यक्ति के लिए है जिसे आख़िरत की चिन्ता के कारण दुनिया में सुख भोगने का अवसर ही न मिल सका हो। इतना अधिक खाना कि आदमी लम्बी-लम्बी डकारें लेता फिरे आदमी को आलसी और अकर्मण्य बना देता है। ग़ाफ़िल व्यक्ति अपने मन को अन्धकारमय होने से बचा नहीं सकता। मन का अन्धकार सबसे बड़ी महरूमी है और असफलता है। रोज़ा मनुष्य को इस बात की शिक्षा देता है कि वह उदर-पोषण को जीवन का एकमात्र ध्येय न समझे, जीवन का मूल्य इससे कहीं बढ़कर है। एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "मनुष्य ने कोई बरतन पेट से बुरा नहीं भरा (जबकि पेट को इस तरह भरा जाए कि मनुष्य केवल चरने-चुगनेवाला पशु बनकर रह जाए और जीवन एवं धर्म की माँगों और तक़ाज़ों को समझने में असमर्थ ही रहे)। मनुष्य के लिए कुछ लुक़मे काफ़ी हैं जो उसकी कमर को सीधी रख सकें और यदि पेट भरना ज़रूरी हो तो पेट के तीन हिस्से करे, एक हिस्सा खाने के लिए, एक पीने के लिए और एक हिस्सा अपने लिए (अर्थात सांस आदि लेने के लिए)।" (तिरमिज़ी, इब्ने माजा)
2. अर्थात जिस प्रकार माल और दूसरी चीज़ों की ज़कात देने से मनुष्य का माल और उसकी चीज़ें शुद्ध हो जाती हैं और उन्हें प्रयोग में लाने का अधिकार मनुष्य को मिल जाता है, ठीक उसी प्रकार शरीर की ज़कात अदा करने से मनुष्य का अस्तित्व और उसका व्यक्तित्व शुद्ध और पवित्र हो जाता है और उसे विकास का पूरा अवसर प्राप्त होता है। रोज़ा रखकर मनुष्य इसी बात का प्रमाण संचित करता है कि वह अल्लाह का विद्रोही और अवज्ञाकारी नहीं, बल्कि अल्लाह का आज्ञाकारी है और उचित रूप से उसे जीवित रहने और अल्लाह की नेमतों से लाभान्वित होने का हक़ पहुँचता है।
3. इस हदीस से मालूम हुआ कि रोज़े में भूखा-प्यासा रहना स्वयं कोई उद्देश्य नहीं है बल्कि रोज़े का वास्तविक उद्देश्य यह है कि उसके द्वारा मनुष्य में धर्मपरायणता, संयम और ईश-भय पैदा हो और वह एक उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके।

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कितने ही रोज़ेदार ऐसे हैं जिन्हें अपने रोज़े से भूख-प्यास के अतिरिक्त कुछ पल्ले नहीं पड़ता और कितने ही (रातों में नमाज़ में) खड़े होनेवाले ऐसे हैं कि उन्हें (अल्लाह की सेवा में) अपने खड़े होने से रतजगे के अतिरिक्त कुछ पल्ले नहीं पड़ता।[1] —दारमी

8. क़बीला बनी सुलैम के एक (सहाबी) व्यक्ति का बयान है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हाथ पर गिनकर कहा : तसबीह[2] अर्धतुला को भर देती है और अल-हम्दुलिल्लाह[3] उसे पूर्ण रूप से भर देता है और तकबीर[4] जो कुछ आकाश और धरती के बीच है सबको भर देती है। और रोज़ा आधा सब्र[5] और सुथराई

---

1. मतलब यह है कि जब किसी ने रोज़े और रात में इबादत करने के वास्तविक उद्देश्य को समझा ही नहीं और न उसे प्राप्त करने का प्रयास किया तो फिर इसकी आशा कैसे की जा सकती है कि रोज़े और रात्रि-जागरण से उसे कोई लाभ हो सकेगा।
2. अर्थात सुबहानल्लाह कहना। अल्लाह की महानता और उच्चता का प्रदर्शन ऐसा शुभ कर्म है जो अर्धतुला अर्थात आधी मीज़ान को भर देने के लिए पर्याप्त है, शर्त यह है कि यह प्रदर्शन सच्चे मन से हुआ हो। सच्चे मन से अल्लाह की महानता का इक़रार मनुष्य के जीवन को बदल सकता है तो फिर उसका पल्ला या तुला नेकियों से क्यों न भरेगी।
3. अलहम्दुलिल्लाह अर्थात् प्रशंसा अल्लाह ही के लिए है कहना। अल्लाह की प्रशंसा करना आर उसका आभार स्वीकार करना। जो जीवन अल्लाह की तसबीह और हम्द (महानता का वर्णन, गुणगान एवं कृतज्ञप्रकाशा) का प्रतीक बन जाए वहे वास्तव में पूर्ण जीवन है। इसलिए तसबीह और हम्द करने के कारण मीज़ान अथवा कर्म-तुला का भर जाना स्वाभाविक-सी बात है।
4. अर्थात अल्लाहु अकबर कहना। जिनको वास्तविक श्रवणशक्ति प्राप्त है उन्हें विश्व में हर ओर ज़मीन में भी और अंतरिक्ष और सितारों आदि में भी तकबीर (अल्लाह की बड़ाई) ही की ध्वनि सुनाई देती है। धरती और आकाश का प्रत्येक कण अल्लाह की बड़ाई और कुशलता की ही कहानी सुनाता है। जब कोई व्यक्ति अल्लाह की बड़ाई का गान गाता है तो उसकी संगति धरती और आकाश की समस्त चीज़ें करती हैं, मानो उसकी वीणा के तारों की ध्वनि विश-गाणा के ध्वनि में मिल जाती है।
5. ईमानवालों के सम्पूर्ण जीवन को हम सब्र से अभिव्यंजित कर सकते हैं। मोमिन एक जीवन प्रणाली का पाबन्द होता है। उसका वास्तविक उद्देश्य आख़िरत की सफलता है। वह संसार में इसलिए जीवित होता है कि अल्लाह के मार्ग पर चल सके। इसके

एवं शुद्धता आधा ईमान है। —तिरमिज़ी

9. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि दो रोज़ेदारों ने ज़ुह्र या अस्र की नमाज़ पढ़ी। जब नबी (सल्ल०) नमाज़ अदा कर चुके तो आपने कहा : तुम दोनों दोबारा वुज़ू करके नमाज़ पढ़ो और अपना रोज़ा पूरा करके दूसरे दिन क़ज़ा रोज़ा रखो। उन्होंने कहा : क्यों, ऐ अल्लाह के रसूल? आपने कहा : तुमने अमुक व्यक्ति की ग़ीबत (परोक्ष निन्दा) की है।[1] —बैहक़ी

10. हज़रत जाबिर (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) सफ़र में थे, आपने एक व्यक्ति को देखा जिसके पास लोग एकत्र थे और उन्होंने उसपर छाया कर रखी थी। आपने कहा, उसे क्या हुआ है? लोगों ने कहा : यह रोज़ेदार है। इसपर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : यह नेकी नहीं है कि सफ़र में रोज़ा रखो। एक रिवायत में है कि (आपने कहा :) सफ़र में रोज़ा रखना नेकी नहीं है।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

लिए बड़े सब्र और साहस की आवश्यकता होती है। धैर्य के बिना मनुष्य अल्लाह के मार्ग में एक क़दम भी नहीं चल सकता और न इसके बिना उसके चरित्र का निर्माण ही संभव है। इस हदीस में रोज़ा को आधा सब्र कहा गया है। मतलब यह है कि जिस व्यक्ति ने रोज़ा रख लिया, उसने सब्र, धैर्य और दृढ़ संकल्प की दीक्षा प्राप्त कर ली। अब वह इस दीक्षा से अपने पूरे जीवन में लाभ उठाए और अपने सम्पूर्ण जीवन को सब्र के साँचे में ढाले। जिस दिन उसका जीवन सब्र के साँचे में ढल गया, उस दिन हम कह सकते हैं कि उसने अपने सब्र को पूर्ण कर लिया। उस समय उसे आधा सब्र नहीं बल्कि पूरा सब्र प्राप्त होगा।

1. इससे मालूम हुआ कि नमाज़ और रोज़े उस समय पूर्ण होते हैं जब मनुष्य हर तरह की बुराइयों से अपने को बचाए, यहाँ तक कि न तो किसी की बुराई करे और न किसी दूसरे गुनाह में लिप्त हो।
2. मतलब यह है कि सफ़र में रोज़ा रखना तुम्हारे लिए कठिन है अतः सफ़र में रोज़ा क्यों रखते हो? रोज़े का अर्थ अपनी जान को विनष्ट करना कदापि नहीं है। रोज़े को अल्लाह ने केवल इसलिए अनिवार्य किया है कि बन्दे उसके द्वारा शुद्धता, कर्तव्य परायणता और ईश-भय प्राप्त करें। हज़रत जाबिर (रज़ि०) का बयान है कि मक्का विजय के वर्ष जब नबी (सल्ल०) मक्का की ओर निकले तो आप (सल्ल०) ने और आपके साथ दूसरे लोगों ने भी रोज़ा रखा। जब आप कुराउल ग़मीम के स्थान पर पहुँचे तो आपको सूचना मिली कि लोगों को रोज़ा रखना कठिन हो रहा है और वे आपके अमल को देख रहे हैं। आप (सल्ल०) ने अस्र के बाद पानी का एक प्याला

नफ़्ल रोज़े

1. हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझसे कहा : ऐ अब्दुल्लाह ! क्या मुझे यह सूचना नहीं मिली है कि तुम दिन में रोज़ा रखते और रात को (इबादत में) खड़े रहते हो ? मैंने कहा : हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल ! मैं ऐसा ही करता हूँ। आपने कहा : ऐसा न करो, रोज़ा भी रखो और खाओ-पियो भी, रात में खड़े भी रहो और सोओ भी क्योंकि तुम्हारे शरीर का भी तुमपर हक़ है, तुम्हारी आँख का भी तुमपर हक़ है, तुम्हारी पत्नी का भी तुमपर हक़ है और तुम्हारे मिलने-जुलनेवालों (अतिथि आदि) का भी तुमपर हक़ है।[1] जिस व्यक्ति ने सदैव रोज़ा रखा उसने रोज़ा ही नहीं रखा।[2] हर महीने में

मँगाकर पिया। लोग आपकी ओर देख रहे थे। कुछ लोगों ने रोज़ा तोड़ दिया और कुछ उसी तरह रोज़ा रखे रहे। फिर आपको सूचना मिली कि कुछ लोग (सख़्त तकलीफ़ के बावजूद) रोज़े से हैं। आपने कहा : "यही लोग अवज्ञाकारी हैं।"

(मुसलिम, तिरमिज़ी, नसई)

एक हदीस में जिसके रावी (उल्लेखकर्ता) हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०) हैं नबी (सल्ल०) ने यहाँ तक कहा है कि "सफ़र में रोज़ा रखना ऐसा ही है जैसा कि घर पर रमज़ान का 'रोज़ा' न रखना।" (इब्न माजा) मतलब यह है कि आदमी में यदि इसकी शक्ति नहीं है कि वह सफ़र में रोज़े रख सके, फिर भी वह रोज़ा रखता है तो वास्तव में वह रोज़ा नहीं रखता बल्कि शरीअत (धर्मशास्त्र) को अपने लिए मुसीबत ठहराता और अल्लाह की अवज्ञा करता है। वह धर्म के स्वाभाविक मार्ग से हटा हुआ है। इसी कठिनाई और मुशकिल के कारण नबी (सल्ल०) कहते हैं : "रोज़े में विसाल से बचो।" विसाल से अभिप्रेत यह है कि इस प्रकार दिन-रात निरन्तर रोज़ा रखा जाए कि बीच में न सहरी (अरुणोदय से पहले का जलपान) खाई जाए और न (सन्ध्या को रोज़े के उपरान्त) रोज़ा खोला जाए। नबी (सल्ल०) को अल्लाह ने विशेष शक्ति प्रदान की थी इसलिए आप रोज़े में विसाल भी कर लेते थे किन्तु दूसरों को आपने इसकी अनुज्ञा नहीं दी कि रोज़े में विसाल करें। (बुख़ारी, मुसलिम, अहमद)

1. अर्थात रोज़े और इबादत का अर्थ यह नहीं होता कि मनुष्य जीवन की दूसरी आवश्यकताओं और माँगों को भूल जाए। उसे हर मामले में सन्तुलित नीति अपनानी चाहिए। वह नफ़्ल रोज़े भी रखें किन्तु सदैव रोज़ा रखना सही नहीं है। वह रोज़ा भी रखे और आराम के लिए भी वक़्त निकाले।
2. हमेशा रोज़ा रखना अकारण अपने को कष्ट देना है। इस्लाम में जिस तरीक़े को पसन्द किया गया हैवह सन्तुलित तरीक़ा है। निरन्तर रोज़े रखने से रोज़े का महत्व घट जाता

तीन दिन के रोज़े हमेशा के रोज़ों की हैसियत रखते हैं।[1] हर महीने में तीन दिन के रोज़े रखो और हर महीने में एक क़ुरआन पढ़ो। मैंने कहा : मैं इससे अधिक की शक्ति रखता हूँ। आपने कहा (हज़रत) दाऊद की तरह रोज़े रख लिया करो, यह रोज़े की उत्तम रीति है। एक दिन रोज़ा रखो और एक दिन खाओ-पियो, सप्ताह में एक क़ुरआन पढ़ लिया करो इसमें अभिवृद्धि न करो। —बुख़ारी, मुसलिम

रोज़े के स्वाभाविक नियम

1. हज़रत सहल बिन सअद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : लोग जब तक (सन्ध्या को) रोज़ा खोलने में जल्दी करते रहेंगे उत्तम अवस्था में रहेंगे।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

है। रोज़े से जो फ़ायदे अपेक्षित हैं वे पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं होते। जो व्यक्ति सदा रोज़े से रहे उसके समस्त दिन समान रहते हैं। रोज़े के दिन की विशेषता ग़ैर रोज़े के दिनों के द्वारा ही मालूम होती है। जिस व्यक्ति के यहाँ ग़ैर रोज़े के दिन ही न आएँ उसके रोज़ों को कोई विशेषता कैसे प्राप्त हो सकती है।

कुछ लोगों को नबी (सल्ल०) ने लगातार रोज़े रखने की इजाज़त दे दी थी। लगातार रोज़े रखने से अभिप्रेत अधिकता के साथ रोज़ा रखना है, न कि सदैव रोज़ा रखना।

1. मनुष्य यदि ईमान और चेतना के साथ हर महीने में तीन दिन रोज़े रख ले तो मानो वह सदैव रोज़े से रहता है। महीने के तीन रोज़े उसके पूरे महीने को पवित्र और प्रकाशमान रखने के लिए काफ़ी है। महीने के इन तीन रोज़ों के अतिरिक्त जो अरबी महीनों की 13, 14, 15 तारीख़ को रखे जाते हैं और भी दूसरे नफ़्ल रोज़ों का ज़िक्र हदीसों में मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार उनमें से अपने लिए चुन सकता है।
2. मुसनद अहमद की एक रिवायत में है कि लोग उस समय तक उत्तम अवस्था में रहेंगे जब तक (सन्ध्या समय) रोज़ा खोलने (इफ़तार करने) में जल्दी करेंगे और सहरी (अरुणोदय से पूर्व का जलपान जो दिन में रोज़ा रखने के लिए किया जाता है) खाने में विलम्ब करेंगे।

   तिरमिज़ी की एक रिवायत में है : प्रतापवान तेजोमय अल्लाह कहता है : "मेरा सबसे प्रिय बन्दा वह है जो (रोज़े के उपरान्त सन्ध्या समय) रोज़ा खोलने (इफ़तार करने) में जल्दी करता है।" अबू दाऊद की रिवायत में है : "दीन को उस समय तक प्रभावकारी शक्ति प्राप्त रहेगी जब तक लोग (सन्ध्या समय) रोज़ा खोलने में जल्दी करेंगे।" रोज़ा खोलने (इफ़तार करने) में जल्दी करना और सहरी (अरुणोदय से पूर्व

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब स्त्री का पति मौजूद हो तो वह बिना उसकी अनुमति के रोज़ा न रखे।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

3. बनी अब्दुल्लाह बिन कअ्ब बिन मालिक क़बीला के एक व्यक्ति जिनका नाम अनस बिन मालिक है, बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : सर्वोच्च अल्लाह ने मुसाफ़िरों के लिए आधी नमाज़ कर दी है और उसे रोज़ा न रखने की अनुज्ञा दी है। जिस तरह उस औरत को अनुज्ञा दी है जो बच्चे को दूध पिलाती हो या गर्भवती हो जबकि उसे अपने गर्भ या बच्चे को किसी प्रकार की तकलीफ़ पहुँचने का भय हो।[2] —असहाबुस-सुनन

समय का जलपान) में विलम्ब करना इस बात की निशानी है कि लोगों की दृष्टि धर्म के आशय और उसके मूल उद्देश्य से हटी हुई नहीं है, बल्कि वे वास्तविकता से भली-भाँति परिचित हैं, उनके यहाँ जिस चीज़ का वास्तव में महत्व है वह धार्मिक आदेशों का अभिप्राय और उनके उद्देश्य हैं। मनुष्य की दृष्टि जब धर्म के वास्तविक अभिप्राय और आशय से हट जाती है तो अवश्य ही इसका परिणाम यह होता है कि वह धार्मिक आदेशों के वाह्य रूप को ही अधिक महत्व देने लगता है और उसके प्रति अनुचित सावधानी और अतिश्योक्ति दिखाने लगता है। उसकी यह सावधानी एक बड़ी बीमारी का पता देती है वह यह कि उसकी दृष्टि में जिस चीज़ का महत्व होना चाहिए था वह उससे ग़ाफ़िल हो गया है। जिस काम को जिस प्रकार करने का आदेश दिया गया है उसे उसी प्रकार करना अपना धर्म होता है। मनुष्य को अपनी रुचि और विचारों का पाबन्द होने के बजाए ख़ुद को अल्लाह के आदेश का पाबन्द बनाना चाहिए। यही वास्तविक धर्म-परायणता और ईश-भक्ति है।

1. पति के मौजूद होने पर यदि नफ़्ल रोज़ा (रमज़ान के अतिरिक्त दूसरे रोज़े) रखना हो तो उसकी अनुमति ले लेनी चाहिए अन्यथा हो सकता है कि पति को समागम की इच्छा हो और पत्नी के रोज़े से होने के कारण उसकी इच्छा पूरी न हो और इस प्रकार परस्पर अप्रियता की कोई भावना उभर आए। इसके अतिरिक्त इसमें और दूसरे उद्देश्य भी हैं। इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि धार्मिक आदेशों में मानवीय रुचि और आवश्यकताओं का कितना अधिक ख़याल रखा गया है।

2. सफ़र में मुसाफ़िर के लिए यह आसानी पैदा की गई है कि वह पूरी नमाज़ पढ़ने के बजाय क़स्र करे अर्थात संक्षिप्त नमाज़ पढ़े। चार रक्अत की नमाज़ है तो दो ही रक्अत अदा करे। इसी तरह यदि रमज़ान का महीना है तो सफ़र की हालत में उसे यह इजाज़त हासिल है कि वह रोज़ा न रखे। जितने रोज़े छूट गए हों सफ़र के बाद उन्हें

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब किसी रोज़ेदार ने भूलकर खा-पी लिया तो वह अपना रोज़ा (तोड़ने के बजाए) पूरा करे, क्योंकि उसे अल्लाह ने खिलाया-पिलाया। (उसने जान-बूझकर रोज़ा नहीं तोड़ा)।[1] —बुख़ारी, मुसलिम, अबू दाऊद, तिरमिज़ी

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : रोज़ा उसी दिन है जिस दिन तुम रोज़ा रखो और रोज़ा खोल देने का दिन वही है जिस दिन तुम रोज़ा खोलो, क़ुरबानी उसी दिन है जिस दिन तुम क़ुरबानी करो।[2] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

शबेक़द्र

1. हज़रत सालिम (रज़ि०) अपने बाप से रिवायत करते हैं कि उन्होंने

पूरा कर ले। स्त्री को यदि गर्भ है और रोज़ा रखने से किसी हानि का भय है तो वह भी रोज़ा न रखे, बाद में छूटे हुए रोज़ों को पूरा कर ले। इसी तरह यदि बच्चा दूध पी रहा है और माँ के रोज़ा रखने से इस बात की आशंका है कि बच्चे को तकलीफ़ होगी तो वह उस समय रोज़ा न रखे। यह हदीस भी इसका स्पष्ट प्रमाण है कि इस्लाम में मानवीय आवश्यकताओं और हितों का कितना ख़याल रखा गया है।

1. मतलब यह है कि अल्लाह तो आदमी की नीयत और धर्म-परायणता को देखता है चूँकि उस व्यक्ति ने जान-बूझकर नहीं बल्कि भूलकर खाया-पिया है इसलिए उसके इस खाने-पीने से उसकी धर्म-परायणता और ईश्वरीय आदेश के आदर में कोई अन्तर नहीं आया। वास्तविकता की दृष्टि से खाने-पीने के बावजूद वह रोज़ेदार है।
2. रोज़े का आरंभ और अन्त और क़ुरबानी के दिन का निश्चय सामूहिक निर्णय के अन्तर्गत होगा। जब अरबी महीने की दृष्टि से रोज़े और क़ुरबानी का समय आ जाए तो मनुष्य रोज़ा रखे और क़ुरबानी करे, किन्तु उसका ध्यान विशेष रूप से इस ओर रहना चाहिए कि उसके कर्मों और इबादतों में अधिक से अधिक ईश-भय की आत्मा विद्यमान हो। इसलिए कि अल्लाह के यहाँ वास्तविक महत्व इसका नहीं है कि किसी ने रोज़ा कब रखा, और उसे समाप्त कब किया और क़ुरबानी किस दिन की, बल्कि उसके यहाँ महत्व रोज़े, क़ुरबानी आदि इबादत और सत्कर्मों का है और इन कर्मों में भी उसकी दृष्टि विशेष रूप से उस अंतरात्मा और भावना पर होती है जो कर्मों के पीछे काम कर रहा होता है। वह क़ुरबानी ही क्या है जिसके पीछे आत्मसमर्पण की भावना न छिपी हो और वह रोज़ा ही क्या हुआ जो संसार में मनुष्य को उन चीज़ों के विषय में उदासीन न बना सके जो वास्तविक दृष्टि से अभीष्ट नहीं।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि तुममें से कुछ लोगों ने प्रथम सात तारीख़ों में शबेक़द्र देखी है और तुममें से कुछ लोगों ने अन्त की सात रातों में उसे देखा है। अतः तुम अन्त की दस रातों में उसे तलाश करो।[1]

---

1. अर्थात यदि तुम आरंभ की सात रातों में शबेक़द्र न तलाश कर सको तो अब रमज़ान की अन्तिम दस रातों में उसे तलाश करो अर्थात उन रातों में अधिक से अधिक अल्लाह की इबादत करो और शबेक़द्र की बरकतों से लाभान्वित होने का प्रयत्न करो। रमज़ान की इन विशिष्ट तारीख़ों में शबेक़द्र होने की अधिक संभावना है। कुछ ईमानवालों ने इन रातों में शबेक़द्र देखी भी है। इससे भी ज्ञात होता है कि इन रातों में शबेक़द्र होने की अधिक संभावना है।

   शबेक़द्र वह विशेष रात है जिसे ख़ुदा ने विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की है। यही वह रात है जिसमें क़ुरआन मजीद अवतरित हुआ जो सौभाग्य का उद्‌गम है। जो काम हज़ारों महीनों में न हुआ वह इस एक रात में पूरा हुआ। इस रात की फ़ज़ीलत का वास्तविक कारण यह नहीं है कि इसमें क़ुरआन अवतरित हुआ था, बल्कि क़ुरआन इस रात में इसलिए अवतरित हुआ कि यह श्रेष्ठतम रात थी। क़ुरआन के अवतरण से इसकी श्रेष्ठता ज़ाहिर हुई। जिस रात का अल्लाह की अनुकम्पा और दया से विशेष सम्बन्ध हो, तो यह सम्बन्ध स्थाई मूल्य का धारक होगा, यह कोई अस्थाई बात न होगी। इसी प्रकार यदि किसी स्थान पर अल्लाह का प्रकोप प्रकट हुआ हो तो उस स्थान विशेष को भी सदा भय का स्थान समझा जाएगा। हदीस में आता है कि नबी (सल्ल०) हिज्र (समूद जाति का क्षेत्र) से गुज़रे तो कहा कि ज़ालिमों के घरों में प्रवेश न करो, यदि प्रवेश करो तो रोते हुए करो। बचो! कहीं ऐसा न हो कि तुमपर भी वह प्रकोप आ जाए जो उनपर (समूद पर) आया था। फिर आप (सल्ल०) ने अपनी सवारी को डाँटा और उसे तेज़ी से बढ़ाया यहाँ तक कि हिज्र पीछे रह गया, (मुसलिम)। एक रिवायत में यह भी है कि लोगों ने वहाँ के कुँओं से पीने का पानी लिया था और उससे आटा भी गूँधा था। आप (सल्ल०) ने आदेश दिया कि वह पानी फेंक दें और आटा ऊँटों को खिला दिया जाए और आदेश दिया कि पानी उस कुँएं से लें जिसपर हज़रत सालेह (अलै०) की ऊँटनी (पानी पीने) आती थी। (मुसलिम)

   शबेक़द्र के अतिरिक्त दूसरे दिनों में इसका अवसर रखा गया है कि अल्लाह अपने बन्दों के साथ विशेष व्यवहार करे और बन्दा अपने रब के विशेष ध्यान और दया का इच्छुक हो सके।

   हदीस में है : रात में एक घड़ी ऐसी होती है कि उस समय एक मुस्लिम व्यक्ति अल्लाह से इहलोक और परलोक की जो भलाई भी चाहे अल्लाह उसको प्रदान करेगा और यह (घड़ी) प्रत्येक रात में होती है।

एतिकाफ़

1. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि नबी (सल्ल०) रमज़ान के अन्तिम दस दिनों में एतिकाफ़ करते थे यहाँ तक कि अल्लाह ने आपको उठा लिया। फिर इसके बाद आपकी पत्नियाँ एतिकाफ़ करती रहीं।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

2. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) का हाल यह था कि जब रमज़ान के अन्तिम दस दिन का समय आ जाता तो ज़्यादा से ज़्यादा रात्रि-जागरण करते और अपनी पत्नियों को जगाते (ताकि वे भी ज़्यादा से ज़्यादा अल्लाह की इबादत करें) और आप तहमद कस लेते।[2] —मुसलिम, बुख़ारी

---

1. रमज़ान में नबी (सल्ल०) की इबादत की रुचि सीमातिरेक को बढ़ जाती थी। रमज़ान के अन्तिम दिनों में तो विशेष रूप से आप अल्लाह की 'इबादत' में लग जाते थे। रमज़ान के अन्तिम दस दिन तो बिलकुल अल्लाह के लिए ख़ाली कर लेते थे और मसजिद में एतिक़ाफ़ करते थे। एतिकाफ़ का आशय यह है कि मनुष्य हर ओर से एकाग्रचित होकर अल्लाह से लौ लगाए और उसकी चौखट पर (अर्थात मसजिद में) पड़ जाए और उसी की याद और इबादत में लग जाए। एतिकाफ़ करके बन्दा यह प्रदर्शित करता है कि उसका वास्तविक सम्बन्ध अपने रब के सिवा किसी और से नहीं है। उसका अन्तर और वाह्य अस्तित्व दोनों अल्लाह के लिए हैं। वह प्रत्येक दशा में अल्लाह ही की प्रसन्नता का इच्छुक होता है। एतिक़ाफ़ का आशय वास्तव में यही है कि बन्दा अपने को अल्लाह के लिए हर चीज़ से निवृत्त कर देने की सामर्थ्य प्राप्त कर सके।

   रोज़े और एतिकाफ़ में उद्देश्य और कर्म दोनों ही दृष्टि से बड़ी अनुरूपता और एकता पाई जाती है। इसी कारण रोज़े को एतिकाफ़ का आवश्यक अंग ठहराया गया है। और रमज़ान को एतिकाफ़ का उत्तम समय समझा गया है। रोज़े की विशेषता को और अधिक बढ़ाने के लिए प्राचीन धर्म-विधान में मौन रहने को भी रोज़े का अंग बनाया गया था और इस प्रकार से रोज़ा रखने का आदेश दिया गया था जिसमें मनुष्य अल्लाह के अतिरिक्त किसी से बात-चीत नहीं कर सकता था।

2. यह लोकोक्ति है, अर्थ यह है कि आप (सल्ल०) पूरी लगन और तल्लीनता के साथ इबादत के लिए तत्पर हो जाते थे। अर्थात इबादत में लग जाते।

हज

'हज' का मूल अर्थ है ज़ियारत (दर्शन) का निश्चय करना। हज में हर तरफ़ से लोग काबा की ज़ियारत का इरादा करते हैं, इसी लिए इसका नाम हज रखा गया। हज को धर्म में मौलिक महत्व प्राप्त है। क़ुरआन में है : "लोगों पर अल्लाह का यह हक़ है कि जो व्यक्ति इस घर (काबा) तक पहुँच सकता हो वह उसका हज करे और जिस किसी ने कुफ़्र की नीति अपनाई तो (वह जान ले कि) अल्लाह समस्त जगत् से निस्पृह है।" —3 : 97

हज के लिए जाना वास्तव में अल्लाह की पुकार पर दौड़ना है। अल्लाह के आमंत्रण पर उसकी सेवा में हाज़िरी देना है। इसलिए सामर्थ्य रखने पर भी जो व्यक्ति हज नहीं करता वह वास्तव में अल्लाह से मुँह फेरे हुए है। अल्लाह से मुख मोड़कर मनुष्य स्वयं अपने साथ अन्याय करता है, इससे अल्लाह का कुछ नहीं बिगड़ता।

अल्लाह ने 'काबा' को सर्वथा भलाई, बरकत और सारे संसार के मार्गदर्शन का उद्गम बनाया है। यह तौहीद (एकेश्वरवाद) का केन्द्र है। हज़रत इबराहीम (अलै०) और उनके बेटे हज़रत इसमाईल (अलै०) ने इस घर का निर्माण अल्लाह के आदेश से किया था। इस निर्माण का स्थान भी अल्लाह ही ने निश्चित किया था। इस घर को अपना घर कहकर अल्लाह ने इसकी महानता और महत्व बढ़ा दिया है। और संसार में इसे केन्द्रीयता प्रदान की है।

हज़रत इबराहीम (अलै०) वे प्रथम नबी हैं जिन्हें अल्लाह ने सारे संसार का इमाम बनाया। हज़रत इबराहीम (अलै०) को आदेश दिया कि वे लोगों में सामान्य रूप से हज की घोषणा कर दें ताकि जो लोग एक अल्लाह की बन्दगी और दासता स्वीकार करें वे सब-के-सब इस केन्द्र से सम्बन्ध स्थापित कर लें। साल में एक बार हज के लिए यहाँ एकत्र हों और इस घर का 'तवाफ़' (परिक्रमा) करें। सब मिलकर अल्लाह की इबादत करें। क़ुरबानी करें, ख़ुद भी खाएँ और मुहताजों को भी खिलाएँ। काबा एक ओर वास्तविक उपासनागृह और वास्तविक मसजिद है, दूसरी मसजिदें इसकी प्रतिनिधि हैं, दूसरी ओर इस घर के निर्माण के मौलिक उद्देश्यों में कमज़ोरों, मुहताजों और निर्धनों की सहायता करना भी सम्मिलित है। इस प्रकार काबा सम्पूर्ण धर्म का केन्द्र सिद्ध होता है। इसके साथ

किसी का सम्बन्ध वास्तव में अल्लाह के दीन (धर्म) के साथ सम्बद्ध होने का अर्थ रखता है। इस घर का हज करके मनुष्य विशुद्ध तौहीद का सन्देशवाहक बनकर लौटता है। उसमें यह भावना जाग्रत होती है कि वह तौहीद के सन्देश को सारे संसार में फैलाए।

हज एक पहलू से सबसे बड़ी इबादत है। अल्लाह के प्रेम में मनुष्य अपना कारोबार और अपने परिवार-मित्रों आदि को छोड़कर लम्बी यात्रा पर निकलता है। फिर उसकी यह यात्रा साधारण यात्रा की तरह नहीं होती। इस यात्रा में वह अल्लाह की ओर ध्यान देता है। जैसे-जैसे अल्लाह का घर निकट आता जाता है उत्सुकता एवं प्रेम की अग्नि और अधिक भड़कती जाती है। वह अपने गुनाहों पर लज्जित होता है, सच्चे दिल से तौबा करता और अल्लाह से प्रार्थनाएँ करता है कि उसे अच्छे कर्म करने का सौभाग्य प्राप्त हो। हिजाज़ के भूभाग में प्रवेश करता है तो इस्लाम की सच्चाई और महानता का एहसास अत्यन्त बढ़ जाता है। इस्लामी इतिहास निगाहों के सामने फिर जाता है। हृदय पर अल्लाह का प्रेम और उसके धर्म की महानता इस प्रकार अंकित हो जाती है कि मरते दम तक मिट नहीं सकती।

हज के सम्बन्धित जितने कार्य हैं उन सबसे मनुष्य के हृदय पर तौहीद (एकेश्वरवाद) की ही छाप पड़ती है। हज के सिलसिले में सबसे पहला काम इहराम बाँधना है। इहराम एक अत्यन्त फ़क़ीराना वस्त्र है, जिसमें मनुष्य बस एक तहमद बाँध लेता है, कन्धों पर एक चादर डाल लेता है, सिर को खुला रखता है। कोई राष्ट्रपति हो या साधारण नागरिक, सब के सब एक स्तर पर होते हैं। सारे अन्तर मिट जाते हैं। इहराम की दशा में मनुष्य भोग-विलास और सज्जा और श्रृंगारिक वस्तुओं से परहेज़ करता है। इस इहराम की हज में वही हैसियत है जो नमाज़ में तकबीरे तहरीमा की है। तकबीरे तहरीमा के द्वारा नमाज़ी एक नवीन वातावरण में पहुँच जाता है और कुछ समय के लिए वह अपने ऊपर कुछ प्रतिबन्ध लगा लेता है। जिस प्रकार सलाम के द्वारा मनुष्य नमाज़ से निवृत हो जाता है उसी प्रकार वह सिर का मुण्डन कराके 'इहराम' सम्बन्धी प्रतिबन्धनों से निवृत हो जाता है। इहराम बाँधने के पश्चात उसके मुख से ये शब्द निकलते हैं :

"हाज़िर हूँ, ऐ अल्लाह! मैं तेरी सेवा में हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ, तेरा कोई सहभागी नहीं। मैं तेरी सेवा में हाज़िर हूँ। निश्चय ही प्रशंसा तेरे ही लिए है। सारी कृपाएँ एवं उपकार तेरे ही हैं, राज्य तेरा ही है, तेरा कोई सहभागी नहीं है।"

ये शब्द बताते हैं कि ग़ुलाम अपने स्वामी की पुकार पर दौड़ता और स्वामी के गुणगान करता हुआ चला आ रहा है। प्रत्येक नमाज़ के पश्चात, हर ऊँचाई पर चढ़ते और हर नीचाई की ओर उतरते हुए और प्रत्येक प्रातःकाल जागने के पश्चात उच्च स्वरों में इन्हीं शब्दों को दुहराता है। मक्का में प्रवेश करके काबा पहुँचता है। हज्र असवद को चूमता और काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करता है। काबा के सात चक्कर लगाता है। फिर मक़ामे इबराहीम पर या मसजिदे हराम में किसी स्थान पर दो रक्अत नमाज़ अदा करता है। फिर सफ़ा की पहाड़ी पर, जो काबा के निकट ही है, चढ़ता है। काबा पर दृष्टिपात करता है। पुकार उठता है : **"अल्लाहु अकबर!"** (अल्लाह सबसे बड़ा है)। **"ला इलाह इल्लल्लाह"** (अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं)। इसके बाद नबी (सल्ल०) पर दरूद और सलाम भेजता है, और हाथ फैलाकर जो कुछ माँगना होता है अल्लाह से माँगता है। फिर नीचे आता है और सामने की दूसरी पहाड़ी मरवा की ओर तेज़ क़दमों से चलता है जिसे सई कहते हैं। इसपर भी पहुँचकर वह तकबीर तहलील, दुरूद और दुआ में लग जाता है। इसी प्रकार वह सात बार सई करता है। 8 ज़िलहिज्जा की सुबह को लोग मक्का से मिना की ओर रवाना होते हैं। यह स्थान मक्का से तीन मील (लगभग 4.8 किमी.) के फ़ासले पर है। वहाँ से 9 ज़िलहिज्जा की सुबह को हरम की सीमा से बाहर जाकर अरफ़ात के मैदान में पड़ाव डालते हैं [1] फिर उसी सन्ध्या को समस्त लोग मुजदलफ़ा जाकर ठहरते हैं। फिर 10 ज़िलहिज्जा को मिना लौट आते हैं। वहाँ दो या तीन दिन ठहरते हैं। इन दिनों में प्रत्येक दिन तीन जमरों पर सात-सात बार तकबीर के साथ कंकड़ियाँ मारते हैं। तीसरे दिन उन खम्भों पर कंकड़ियाँ मारकर मक्का लौट आते हैं। और सात बार काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करते हैं। यह तवाफ़े विदा कहलाता है। इस तवाफ़ के बाद हज से मनुष्य निवृत्त हो जाता है। हज के समय में कभी इमाम के ख़ुतबे (भाषण) सुनते हैं, कभी **"लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक"** (हाज़िर हूँ, ऐ अल्लाह! मैं तेरी

---

1. अरफ़ात का सम्मेलन हश्र के मैदान में अल्लाह की सेवा में हाज़िरी की याद दिलाता है। क़ुरआन में भी है—"(हज सम्बन्धी कार्यक्रम का उल्लेख करते हुए कहा) और गिनती के कुछ दिनों में (मिना में) अल्लाह को याद करो। फिर जो कोई दो ही दिन में जल्दी कर ले (और लौट आए) तो उसपर कोई गुनाह नहीं और यदि कोई ठहर जाए तो उसपर भी कोई गुनाह नहीं। ये बातें उसके लिए हैं जो डरता है, और अल्लाह का डर रखो और जान रखो कि तुम सब उसके पास एकत्र किए जाओगे।" —2 : 203

सेवा में हाज़िर हूँ) कहते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रस्थान करते हैं। कभी नमाज़ें जमा करके पढ़ते हैं अर्थात शीघ्रता की नमाज़ अदा करते हैं। हज का यह कार्यक्रम एक सैन्य जीवन का नक़्शा पेश करता है : पाँच-छः दिन तक लोगों को कैम्प का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। हज में यूँ समस्त इबादतों की विशेषताएँ पाई जाती हैं, परन्तु हज और जिहाद में बड़ी समानता पाई जाती है। हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपने एक ख़ुतबे में कहा है : "जब जिहाद से निवृत्त हो तो हज के लिए कजावे कसो क्योंकि हज भी एक 'जिहाद' है।" —बुख़ारी

हज की एक-एक चीज़ हृदय पर तौहीद और अल्लाह के प्रेम को अंकित करती और मनुष्य को प्राणोत्सर्ग और बलिदान की भावना से परिपूर्ण करती है। काबा मुस्लिम व्यक्ति को याद दिलाता है कि उसका सम्बन्ध उस गिरोह से है जिसके प्रकट होने की दुआ हज़रत इबराहीम (अलै०) ने की थी और जिसके अस्तित्व में आने का उद्देश्य यह है कि वह अल्लाह और उसके धर्म के लिए समर्पित हो : हजरे असवद पर हाथ रखकर उसे चुम्बन देना एक ओर इस बात का प्रदर्शन है कि आदमी अल्लाह के हाथ में हाथ देकर अल्लाह से बन्दगी की प्रतिज्ञा की पुनरावृत्ति कर रहा है, दूसरी ओर यह चुम्बन वास्तव में प्रियतम के द्वार-शिला का चुम्बन है। काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) अपने को समर्पित और निछावर करने की उस स्वाभाविक भावना का प्रदर्शन है जो मुस्लिम व्यक्ति के हृदय में अपने प्रिय स्वामी के लिए पाई जाती है। अल्लाह तो इससे उच्च है कि कोई उसके गिर्द घूम सके, अल्लाह ने हमें यह आदेश दिया है कि हम अपनी स्वाभाविक इच्छा इस घर का तवाफ़ करके पूर्ण करें। इसी प्रकार अल्लाह तो इससे उच्च है कि कोई उसके दामन से लिपटकर प्रार्थनाएँ कर सके। हमारी दुर्बलताओं पर तरस खाकर उसने हमारे परितोष के लिए यह प्रबन्ध किया है कि हम उसके दामन से लिपटकर अपनी कामनाओं को प्रस्तुत करने की कामना उसके घर की चौखट से लिपटकर पूरी कर लें। अतएव तवाफ़ और मक़ामे इबराहीम पर दो रकअत नमाज़ से निवृत होने के पश्चात मुल्तज़म से चिपटकर दुआएँ माँगते हैं।

सफ़ा और मरवा के बीच 'सई' करना इस बात का प्रदर्शन है कि हम इसी प्रकार अपने स्वामी की सेवा और उसकी प्रसन्नता के लिए कार्यशील रहेंगे। हज़रत इबराहीम (अलै०) और हज़रत इसमाईल (अलै०) का मार्ग ही हमारा मार्ग है। खंभों पर कंकड़ियाँ मारना वास्तव में अबरहा की सेना की तबाही की

यादगार है, जो ठीक हज के अवसर पर काबा को ढाने के लिए आया था और जिसे कंकड़ों और पत्थरों की वर्षा से अल्लाह ने विनष्ट करके रख दिया।

क़ुरबानी वास्तव में क़ुरआन के शब्दों में "ज़ब्हे अज़ीम" है, जो हज़रत इसमाईल (अलै०) का फ़िदया निश्चित हुआ था। अल्लाह के मार्ग में जानवर क़ुरबान करना अपने आपको क़ुरबान करने का स्थानापन्न है। यह वास्तव में इस बात का इक़रार करना है कि हमारे प्राण अल्लाह की नज़्र (भेंट) हैं, जब वह माँगेगा हम दे देंगे। जब भी अल्लाह के मार्ग में ख़ून बहाने की आवश्यकता होगी, अपना ख़ून बहाएँगे। अन्यथा केवल जानवर को क़ुरबान कर देने की कोई वास्तविकता नहीं है जब तक कि उसके पीछे कोई बड़ा उद्देश्य और पवित्र भावना काम न कर रही हो। क़ुरआन में कहा गया है—

> "न उन (क़ुरबानी के जानवरों) के मांस अल्लाह को पहुँचते हैं और न उनके रक्त, परन्तु तुम्हारा तक़वा (ईश-भय और धर्मनिष्ठा) उस तक पहुँचता है।" —22 : 37

क़ुरबानी का हुक्म केवल मक्का में हज के अवसर पर अदा करने के लिए नहीं है बल्कि क़ुरबानी करने की सामर्थ्य रखनेवाले मुसलमान जहाँ भी हों, इस अवसर पर उन्हें क़ुरबानी करनी चाहिए। नबी (सल्ल०) जब तक मदीना में रहे हर वर्ष क़ुरबानी करते रहे।

हज की वास्तविकता

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हम लोगों को संबोधित करते हुए कहा : ऐ लोगो! तुमपर हज अनिवार्य किया गया है, तो तुम हज करो।[1] —मुसलिम, नसई

---

1. हज इस्लाम के पाँच अरकान (आधार स्तम्भ) में से एक है। जो लोग हज करने की सामर्थ्य रखते हैं उनके लिए हज करना अनिवार्य है। एक कथन के अनुसार हज के अनिवार्य होने का आदेश सन् 09 हि० में आया है। सन् 10 हि० में नबी (सल्ल०) ने सहाबा (रज़ि०) की एक बड़ी जमाअत के साथ अपनी मृत्यु के केवल तीन मास पूर्व हज किया था। यह हज हिज्जतुल-विदाअ के नाम से प्रसिद्ध है। इस हज के अवसर पर अरफ़ात के मैदान में आपपर क़ुरआन की यह आयत अवतीर्ण हुई : "आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारे धर्म को पूर्ण कर दिया और तुमपर अपनी नेमत पूरी कर दी और मैंने पसन्द किया कि तुम्हारा दीन इस्लाम हो।" —5 : 3

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा गया कि कौन-सा कर्म उत्तम है? आप (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाना, पूछा गया : फिर कौन-सा? कहा : अल्लाह के मार्ग में जिहाद करना। पूछा गया : फिर कौन-सा? आपने कहा : "हज मबरूर"।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि तेजोमय एवं प्रतापवान अल्लाह कहता है : मैंने बन्दे को शारीरिक स्वास्थ्य दिया और उसे जीविका में कुशादगी प्रदान की, पाँच वर्ष व्यतीत हो गए और वह मेरी ओर नहीं आया, तो वह बेनसीब है।

—इब्ने हब्बान, बैहक़ी

4. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) की सेवा में आया और पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! क्या चीज़ हज को आवश्यक करती है? आपने कहा : सफ़र का ख़र्च और सवारी।[2] —तिरमिज़ी, इब्ने माजा

हज इस्लाम का अन्तिम और पूर्ण स्तंभ है। किसी व्यक्ति को यदि सही हज नसीब हो जाए, तो मानो उसे सौभाग्य का उच्चतम स्थान प्राप्त हो गया और उसे ऐसी नेमत मिल गई जिससे बड़ी नेमत की कल्पना इस संसार में नहीं की जा सकती।

हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : लोगो! अल्लाह ने तुमपर हज अनिवार्य कर दिया है। अक़रा बिन हाबिस (रज़ि०) खड़े हुए और कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! क्या प्रत्येक वर्ष? आपने कहा : "यदि मैं हाँ कह देता तो प्रत्येक वर्ष वाजिब हो जाता, और यदि वाजिब (आवश्यक) हो जाता तो तुम इसे अदा न कर सकते और न अदा करने की सामर्थ्य रखते। हज (जीवन में) एक बार अनिवार्य है, जो इससे अधिक करे वह नफ़्ल है।" —अहमद, नसई, दारमी

1. प्रत्येक कर्म को कोई न कोई विशेषता प्राप्त होती है। हज कुछ पहलुओं से न केवल यह कि सबसे बड़ी और व्यापक इबादत है बल्कि जीवन के समस्त प्रयासों का सारांश भी है। हज में बन्दा अपने रब की सेवा में हाज़िर होता है और क़दम-क़दम पर उसपर अपने को निछावर करता है। एक बन्दे के लिए इससे बढ़कर सौभाग्य की बात क्या हो सकती है। यह नसीब, अल्लाहु अकबर लूटने की जाय है!
2. अर्थात यदि उसके पास इतना धन है कि वह अपने घरवालों के खाने-पीने का प्रबन्ध कर सके और सफ़र के ख़र्च का बोझ उठा सके तो उसपर हज वाजिब है। यदि वह हज नहीं करता तो गुनहगार होगा।

5. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अरफ़ा के दिन अल्लाह संसार के आकाश पर उतरता है[1] और फ़रिश्तों के बीच हज करनेवालों पर गर्व करता है। कहता है : मेरे बन्दों को देखो जो परेशान हाल धूल में अटे हुए रास्तों में चीख़ते-पुकारते हुए मेरे पास आए हैं। मैं तुम्हें गवाह बनाता हूँ कि मैंने उन्हें क्षमा कर दिया। इसपर फ़िरिश्ते कहते हैं कि ऐ रब ! इनमें अमुक व्यक्ति भी है जिसके बारे में कहा जाता है कि वह बुरा है, गुनहगार है, अमुक पुरुष और अमुक स्त्री भी है (जो गुनहगार है)। तेजोमय एवं प्रतापवान अल्लाह कहता है : उन्हें भी मैंने क्षमा कर दिया। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कहते हैं कि लोग किसी दिन 'अरफ़ा' के दिन से अधिक आग से छुटकारा नहीं प्राप्त करते।[2]

—शरहुस्सुन्नह

6. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसको न किसी स्पष्ट आवश्यकता ने रोका हो और न किसी रोकनेवाले रोग ने और न किसी अत्याचारी शासक ने और उसने हज न किया हो और इसी दशा में उसकी मृत्यु आ जाए तो उसे अधिकार है चाहे यहूदी बनकर मरे या ईसाई बनकर।[3]

—बैहक़ी

---

1. अर्थात दुनियावालों पर अरफ़ा के दिन वह विशेष कृपा-दृष्टि डालता है। अरफ़ा का दिन ज़िलहिज्जा की नवीं तिथि है। इस दिन समस्त हज करनेवाले अरफ़ात के मैदान में एक साथ इकट्ठा होते हैं।
2. अल्लाह की सेवा में बन्दे की यह हाज़िरी अपने अन्दर इतना असर रखती है कि इससे दिल के बड़े से बड़े कलंक भी दूर हो सकते हैं, यह अलग बात है कि कोई इससे फ़ायदा न उठाए और हज से लौटकर फिर उन्हीं गुनाहों और गन्दगियों में अपने को डाल दे जिनसे हज की बरकत से छुटकारा प्राप्त कर सका था।
3. सामर्थ्य के बावजूद हज से ग़ाफ़िल रहना इस बात की पहचान है कि बन्दे का ध्यान अल्लाह की ओर होने के बदले किसी दूसरी ओर है। जो लगाव और सम्बन्ध उसे "तौहीद" (एकेश्वरवाद) और तौहीद के केन्द्र से होना चाहिए, नहीं है। इसलिए अल्लाह को भी ऐसे अवज्ञाकारी और कृतघ्न व्यक्ति की कोई चिन्ता नहीं है, वह जो चाहे करे और जिस हालत में चाहे मरे। क़ुरआन में भी कहा गया है : और लोगों पर अल्लाह का हक़ है कि जो उस (काबा) तक पहुँचने की सामर्थ्य रखता हो वह उस घर का 'हज' करे और जिसने कुफ़्र किया तो अल्लाह सारे संसारवालों से निस्पृह है।"

—क़ुरआन, 3 : 97

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : हज और उमरा करनेवाले अल्लाह के (पास पहुँचनेवाले) मंडल हैं (जो उसकी सेवा में जा रहे हैं)। यदि वे उससे प्रार्थना करें तो वह उनकी प्रार्थना स्वीकार करे और यदि वे उससे क्षमा की प्रार्थना करें तो वह उन्हें क्षमा प्रदान करे।[1] —इब्ने माजा

हज से सम्बन्धित कर्म

1. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करना, सफ़ा और मरवा के बीच सई करना और 'जमरात' पर कंकड़ियाँ मारना, ये सब सर्वोच्च अल्लाह के स्मरण की स्थापना के लिए हैं।[2] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

यहूदी और ईसाई हज नहीं करते थे इसलिए इस हदीस में हज न करनेवालों को यहूदी और ईसाई से उपमा दी गई है। हज से बेपरवाई वास्तव में कुफ़्र की नीति है। इसी लिए हज़रत उमर (रज़ि०) कहते हैं : "जो लोग सामर्थ्य रखने के बावजूद 'हज' नहीं करते, मेरा जी चाहता है कि उनपर जिज़्या (एक विशेष प्रकार का कर) लगा दूँ।"

1. इस हदीस से हज और उमरा की वास्तविकता पर प्रकाश पड़ता है। हज और उमरा अल्लाह की सेवा में बन्दे की हाज़िरी है। ऐसी दशा में अल्लाह की दयालुता के प्रतिकूल है कि वह लोगों की प्रार्थनाओं को रद्द कर दे जो उसके द्वार पर पवित्र कामनाएँ और आशाएँ लिए हुए पहुँचे हों। अतः अल्लाह निश्चय ही उनकी प्रार्थनाओं को स्वीकार करेगा और यदि वह क्षमा के इच्छुक होंगे तो उन्हें क्षमा कर देगा।

   हज की तरह उमरा भी एक इबादत है जो काबा की ज़ियारत के साथ अदा की जाती है। उमरा किसी भी समय कर सकते हैं। हज का समय निश्चित है, उमरा अकेले करते हैं। हज को सामूहिक रूप में अदा किया जाता है, उमरा में हज ही के कुछ कार्य किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त हज को अल्लाह ने उन लोगों का कर्त्तव्य ठहराया जो हज करने की सामर्थ्य रखते हैं लेकिन उमरा अनिवार्य (फ़र्ज़) नहीं है।

   नसई, बैहक़ी की हदीस में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "तीन व्यक्ति अल्लाह के मेहमान हैं : जिहाद करनेवाला, हज करनेवाला और उमरा करनेवाला।"

2. मतलब यह है कि तवाफ़, सई और कंकड़ियाँ मारना आदि हज से सम्बन्धित कार्य स्वयं अभीष्ट नहीं हैं, बल्कि ये सब एक महत्वपूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति का साधन हैं। वह उद्देश्य है अल्लाह के स्मरण की स्थापना, अल्लाह की 'तौहीद' और उसकी महानता का प्रदर्शन। यह बात ठीक उसी प्रकार की है जैसे क़ुरबानी के बारे में क़ुरआन में कहा गया है : "इन (क़ुरबानियों) के न मांस अल्लाह को पहुँचते हैं और न इनके रक्त, परन्तु

2. हज़रत अम्र बिन अहवस (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने हिज्जतुलविदा[1] में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते सुना : यह कौन-सा दिन है? लोगों ने कहा कि बड़े हज का दिन है। आपने कहा : तुम्हारे ख़ून, तुम्हारे माल, तुम्हारी आबरू तुम्हारे बीच उसी प्रकार हराम है जिस प्रकार तुम्हारे इस दिन और तुम्हारे इस नगर में हराम है।[2] सावधान! कोई ज़ालिम ज़ुल्म करता है तो वह अपने आप पर ही करता है।[3] सावधान! कोई बाप अपनी औलाद पर और कोई बेटा अपने बाप पर ज़ुल्म नहीं करता। सावधान! शैतान सदैव के लिए इस बात से निराश हो गया कि तुम्हारे इस नगर में उसकी इबादत की जाए, परन्तु तुम अपने उन कर्मों में उसका आज्ञापालन करोगे जिन्हें तुम साधारण समझोगे तो वह उन्हीं पर राज़ी होगा।[4]

—इब्ने माजा, तिरमिज़ी

तुम्हारा तक़वा (धर्मनिष्ठा एवं ईश-भय) पहुँचता है।" (22 : 37) अतः वास्तविक उद्देश्य और प्रत्येक कर्म में हमारे समक्ष रहना चाहिए।

1. अपने अन्तिम हज के अवसर पर जब आप (सल्ल०) सबसे रुख़सत हुए और अपना महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ख़ुतबा (भाषण) दिया।
2. अर्थात जिस प्रकार तुम आज के दिन और इस नगर मक्का में लोगों की जान, माल और उनकी इज़्ज़त और आबरू का आदर करते हो और किसी को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते, ठीक उसी तरह तुम्हारे लिए आवश्यक है कि तुम अपने बीच भी इन चीज़ों का आदर करो और किसी को किसी तरह की हानि न पहुँचने दो। आज का दिन तो इसी लिए आया है, और यह पवित्र भू-भाग तो इसी लिए है कि तुम पुण्यात्मा, सत्यवादी और अल्लाह के आज्ञाकारी बन सको और प्रत्येक के हक़ को पहचानो। और तुम्हारे द्वारा एक ऐसे आदर्श समाज का निर्माण हो जिसमें किसी को किसी से हानि पहुँचने की आशंका न हो, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के अधिकारों का पूरा-पूरा आदर करता हो।
3. अर्थात जब कोई व्यक्ति किसी पर ज़ुल्म करता है तो वास्तव में वह अपना बुरा करता है और अपनी आख़िरत ख़राब करता है चाहे उसे इसका ज्ञान हो या न हो।
4. अर्थात अब ऐसा तो न होगा कि यहाँ मूर्ति-पूजा हो और शिर्क व कुफ़्र फैले। हाँ, यह ख़राबी तुममें पैदा हो सकती है कि तुम बहुत-से गुनाह के कामों को साधारण और हल्का समझने लगो और उनसे बचने की कोशिश न करो और शैतान इसी से प्रसन्न हो।

नबी (सल्ल०) के इस कथन से ज्ञात हुआ कि किसी भी गुनाह को छोटा और हल्का समझना सही नहीं है। हज़रत आइशा (रज़ि०) से एक हदीस उल्लिखित है कि आपने कहा : "ऐ आइशा! अपने आपको उन गुनाहों से बचाओ जिन्हें तुच्छ और

3. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति हज का इरादा कर ले तो फिर जल्द उसे पूरा करे।[1]

—अबू दाऊद, दारमी

4. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को तलबिया कहते हुए सुना जबकि आपके सिर के बाल जमे हुए क्रम से थे।[2] आप कहते थे : "हाज़िर हूँ, ऐ अल्लाह! तेरी सेवा में हाज़िर हूँ। तेरा कोई साझी नहीं, मैं तेरी सेवा में हाज़िर हूँ। निस्संदेह प्रशंसा तेरे ही लिए है। सारे एहसान तेरे ही हैं। राज्य तेरा ही है, तेरा कोई सहभागी नहीं।"[3] आप इन शब्दों से अधिक न कहते।

—बुख़ारी, मुसलिम

5. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कोई दिन ऐसा नहीं है जिसमें अल्लाह अरफ़ा के दिन से अधिक (अपने) बन्दों को (जहन्नम की) आग से छुटकारा देता हो, (उस दिन) वह बहुत ही निकट हो जाता है[4] और उनपर गर्व करते हुए फ़रिश्तों से कहता है : ये लोग

साधारण समझा जाता है क्योंकि इन गुनाहों के सिलसिले में अल्लाह की ओर से एक माँग करनेवाला (फ़रिश्ता) भी है।" (इब्ने माजा, दारमी, बैहक़ी : शोबुल ईमान) हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं : "तुम ऐसे कर्म करते हो जो तुम्हारी दृष्टि में बाल से बारीक हैं (अर्थात अति साधारण हैं) हम उनकी गणना अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के समय में विनाशकारी चीज़ों में करते थे।"

—बुख़ारी

1. नेक काम में अकारण विलम्ब नहीं होना चाहिए। जीवन-अवकाश मालूम नहीं कब समाप्त हो जाए। और जीवन शेष भी रहा तो क्या ख़बर कि आगे हज की यात्रा करने की परिस्थिति अनुकूल रहती है या नहीं?
2. बिलकुल इस तरह जैसे स्नान के पश्चात सिर के बाल क्रम से और जमे हुए होते हैं, बिखरे हुए नहीं होते।
3. अल्लाह ने हज़रत इबराहीम (अलै०) के द्वारा अपने बन्दों को अपनी सेवा में उपस्थित होने का आमंत्रण दिया था (क़ुरआन, 22 : 27), यह तलबिया के शब्द वास्तव में अल्लाह के उस बुलावे का उत्तर है। मानो बन्दा अल्लाह के बुलावे के उत्तर में यह कहता हुआ उसकी ओर बढ़ता है कि ऐ अल्लाह! मैं जान और दिल से तेरी सेवा में हाज़िर हूँ, मुझे आप जहाँ बुलाएँ मैं तेरी सेवा में हाज़िर हूँ।
4. ज़िलहिज्जा की नवीं तिथि को अरफ़ात के मैदान में जब लाखों की संख्या में अल्लाह के बन्दे अपने अल्लाह के आमंत्रण पर एकत्र होते हैं और उसके सामने विनम्रता और

क्या चाहते हैं ?[1] —मुसलिम

6. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : काबा के गिर्द तवाफ़ (परिक्रमा) करना नमाज़ के सदृश है, अन्तर केवल इतना है कि तुम तवाफ़ में बातचीत करते हो।[2] अतः जो कोई तवाफ़ की हालत में बात-चीत करे तो वह अच्छी और भलाई ही की बात करे।[3] —तिरमिज़ी, नसई

समर्पित होने का प्रदर्शन करते हैं और उसकी कृपा के इच्छुक होते हैं तो अल्लाह की दयालुता उनसे अत्यन्त निकट होती है। अरफ़ात के मैदान का यह महान सम्मेलन इतनी बरकतें और विशेषताएँ लिए हुए होता है कि उनकी गणना संभव नहीं। कितने ही अल्लाह के बन्दे इस शुभ सम्मेलन की बरकतों से लाभ उठाते हैं और अल्लाह के यहाँ क्षमा के पात्र बनते हैं, कितने ही लोगों के जीवन को यह सम्मेलन तौहीद के रंग में रंग देता है और अल्लाह उनके बारे में जहन्नम से छुटकारे का निर्णय उसी तरह करता है जिस तरह हश्र के मैदान में वह बहुत-से लोगों के बारे में क्षमा का निर्णय करेगा। इसमें सन्देह नहीं कि हज के इस महान सम्मेलन का आख़िरत से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सम्मेलन हश्र के मैदान में हमारे खड़े होने का चित्र प्रस्तुत करता है।

1. यह महान सम्मेलन जो अल्लाह की ओर पलटने और अल्लाह की सेवा में लोगों के उपस्थित होने का दृश्य प्रस्तुत कर रहा होता है अल्लाह को अत्यन्त प्रिय है। अल्लाह अपनी प्रसन्नता का प्रदर्शन फ़रिश्तों के बीच इन शब्दों में करता है कि ये मेरे बन्दे किस उद्देश्य से यहाँ एकत्र हुए हैं। मेरी दयालुता और क्षमा की इच्छा और मेरे आदेश के पालन करने की भावना ही है जो उन्हें यहाँ खींचकर लाई है।
2. अर्थात तवाफ़ में तुम्हें इसकी इजाज़त है कि तुम आपस में बातचीत करो, लेकिन नमाज़ में इसकी इजाज़त नहीं है।
3. काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) अपनी आत्मा और उद्देश्य की दृष्टि से नमाज़ के सदृश है। नमाज़ अपनी वास्तविकता की दृष्टि से अल्लाह की याद और बन्दे की रब के प्रति आसक्ति, विमुग्धता और विनम्रता के प्रदर्शन के अतिरिक्त और क्या है ? तवाफ़ की वास्तविकता भी यही है। तवाफ़ भी अल्लाह की याद के लिए है। तवाफ़ में भी बन्दा आसक्ति, अनुराग और प्राणोत्सर्ग के उसी भाव का प्रदर्शन करता है जो उसके मन में अपने रब के लिए पाया जाता है। इसलिए तवाफ़ में व्यर्थ बातों से बचना चाहिए। नसई की एक रिवायत में हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) का यह कथन भी मौजूद है : "तवाफ़ की हालत में बहुत ही कम बातचीत करो, इसलिए कि (तवाफ़ करते हुए वास्तव में) तुम नमाज़ में होते हो।"

हज और उमरा

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बच्चे, बूढ़े, निर्बल और स्त्री के लिए हज और उमरा ही जिहाद है।[1] —नसई

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति हज या उमरा या जिहाद के इरादे से निकला फिर मार्ग ही में उसे मृत्यु आ गई तो अल्लाह उसके लिए जिहाद, हज और उमरा करनेवाले का सवाब लिख देता है।[2] —बैहक़ी : शोबुल ईमान

3. हज़रत इब्ने अब्बास से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : एक-दूसरे के पश्चात हज और उमरा करो, क्योंकि ये दोनों गुनाहों को इस तरह नष्ट कर देते हैं जिस तरह भट्टी लोहे के मैल-कुचैल को नष्ट कर देती है।[3]

---

1. मतलब यह है कि जो लोग विवशता के कारण जिहाद नहीं कर सकते उन्हें जिहाद का सवाब हज और 'उमरा' ही से प्राप्त हो जाएगा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उन्हें आत्मा का वह विकास, स्वच्छता और उच्चता जो जिहाद के द्वारा प्राप्त होती है हज और उमरा के द्वारा ही प्राप्त हो जाए। हज और उमरा अपनी कुछ विशेषताओं की दृष्टि से जिहाद की भूमिका है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति अपनी विवशता के कारण जिहाद में सम्मिलित न हो सका तो हज और उमरा ही से जिहाद के सवाब का हक़दार होगा जिस प्रकार वह व्यक्ति अल्लाह के यहाँ जिहाद के सवाब का हक़दार होता है जो अपने घर से जिहाद के इरादे से निकल पड़ा था लेकिन मृत्यु ने उसे रण में शत्रुओं से लड़ने का मौक़ा न दिया।
2. सच्चे दिल से मनुष्य जब अल्लाह के मार्ग में निकल पड़ा तो वह कर्म-फल का अधिकारी हो गया, भले ही घर से निकलते ही मृत्यु आ जाए और उसे अमल का मौक़ा न मिले। कर्म के बदले उसकी आत्मा की शुद्धता और सत्यप्रियता ही उसके लिए काफ़ी है। अल्लाह तो लोगों के इरादों और उनके दिलों को देखता है। उसके यहाँ तो क़ुरबानी का ख़ून भूमि पर गिरने से पहले ही क़ुबूल हो जाता है (तिरमिज़ी)। क़ुरआन में भी कहा गया है : "और जो कोई अपने घर से अल्लाह और उसके 'रसूल' की ओर हिजरत करके निकले फिर उसकी मौत आ जाए तो उसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे हो गया और अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दयावान है।" —4 : 100
3. अर्थात जिस तरह भट्ठी की गर्मी से लोहे का मोरचा और उसका मैल-कुचैल नष्ट हो जाता है उसी प्रकार हज और 'उमरा' मनुष्य के गुनाहों को मिटाते और उनके बुरे प्रभावों को मनुष्य के मन और मस्तिष्क से दूर करते हैं। और उसका सम्बन्ध उस अल्लाह से जोड़ते हैं जो समस्त भलाइयों और पवित्रता का स्रोत है। इस हदीस से यह

4. हज़रत अम्र बिन आस (रज़ि०) कहते हैं कि जब अल्लाह ने मेरे दिल में इस्लाम स्वीकार करने का ख़याल डाला तो मैं नबी (सल्ल०) की सेवा में हाज़िर हुआ और कहा कि अपना हाथ बढ़ाइए ताकि मैं आपसे बैअत करूँ[1], तो आपने अपना हाथ बढ़ा दिया, मैंने अपना हाथ खींच लिया, आपने कहा : अम्र तुम्हें क्या हुआ? मैंने कहा : मैं एक शर्त करना चाहता हूँ। कहा : तुम क्या शर्त करना चाहते हो? मैंने कहा : यह कि मेरे गुनाहों को क्षमा कर दिया जाए।[2] आपने कहा : ऐ अम्र ! क्या तुम नहीं जानते कि इस्लाम पिछले सभी गुनाहों को ढा देता है और हिजरत भी पिछले गुनाहों को ढा देती है और हज भी पिछले गुनाहों को ढा देता है।[3]

—मुसलिम

भी मालूम हुआ कि गुनाह का मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर जो प्रभाव पड़ता है मनुष्य की आत्मा के लिए उसकी हैसियत मैल-कुचैल और मोरचे की है जिसे दूर किए बिना मनुष्य का व्यक्तित्व और उसके जीवन में निखार नहीं आ सकता।

1. अर्थात आपके हाथ पर इस्लाम की बैअत करूँ, आपके हाथ पर इस्लाम ले आऊँ।
2. अर्थात मुझसे जो ख़ताएँ और गुनाह के काम इस्लाम से पहले हो चुके हैं उन्हें क्षमा कर दिया जाए।
3. मतलब यह है कि जब मनुष्य कुफ़्र या शिर्क को छोड़कर सच्चे दिल से इस्लाम स्वीकार कर लेता है तो उसके पिछले गुनाह अपने आप नष्ट हो जाते हैं। वह अँधेरे से उजाले में आ जाता है। उसे एक नवीन और पवित्रतम जीवन प्राप्त होता है। शिर्क और कुफ़्र या उससे पैदा होनेवाले दूसरे विकार सब उससे दूर हो जाते हैं। क़ुरआन में भी कहा गया है : उनसे कह दो जिन्होंने कुफ़्र किया है कि यदि वे बाज़ आ जाएँ तो उनके पिछले गुनाह क्षमा कर दिए जाएँगे।" —8 : 38

यह हदीस बताती है कि गुनाहों से पाक-साफ़ कर देने की जो विशेषता इस्लाम स्वीकार करने में है वह विशेषता हिजरत और हज में भी पाई जाती है। हिजरत और हज जैसे कर्म एक पहलू से ईमान की पुनरावृत्ति की हैसियत रखते हैं। इसलिए अवश्य ही इनमें वही विशेषता होनी चाहिए जो इस्लाम क़बूल करने में है। आदमी हिजरत उसी समय कर सकता है जबकि वह घर-बार और धन-दौलत की अपेक्षा ईमान और इस्लाम को प्रमुखता दे। इसी प्रकार अपने नातेदारों, मित्रों और अपने कारोबार को छोड़कर हज के लिए प्रस्थान करना इस बात की पहचान है कि आदमी ने अपनी इच्छाओं के मुक़ाबले में अल्लाह के आदेश का आदर किया। इसी प्रकार हिजरत या हज करनेवाले व्यक्ति के ईमान में यदि कोई कमज़ोरी भी आ गई तो हिजरत और हज जैसा अमल ईमान' की पुनरावृत्ति की हैसियत रखता है। मानो बन्दा नए सिरे से अपने रब की बन्दगी की प्रतिज्ञा कर रहा है और उस जीवन-प्रणाली को अपनाने का निश्चय

5. हज़रत अब्दुल्लाह बिन जराद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हज करो क्योंकि हज गुनाहों को इस तरह धो देता है जैसे पानी मैल को धो देता है।[1] —तबरानी : औसत

6. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति ने इस घर (काबा) के दर्शन किए और किसी कामेच्छा सम्बन्धी बात में नहीं पड़ा और न किसी अवज्ञा में, तो वह इस तरह पलटा जिस तरह उसकी माता ने उसे जना था।[2] —मुसलिम

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : एक उमरा दूसरे उमरा तक उन सभी गुनाहों के लिए कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) है जो उनके बीच हुए हों, और हज मबरूर का बदला तो बस जन्नत है।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

कर रहा है जिसे अल्लाह ने उसके लिए पसन्द किया है। इससे पहले यदि उसने गुनाह के काम किए भी हैं तो वास्तव में अब उसने अल्लाह की ओर रुजू कर लिया। आदमी में सत्यनिष्ठा आ ही नहीं सकती जब तक कि वह अल्लाह की ओर रुजू न करे। इसलिए उसका रुजू गुनाहों के क्षमा होने के लिए काफ़ी है : "गुनाहों से तौबा करनेवाला ऐसा है जैसे उसने गुनाह किया ही न था।" यदि किसी की हिजरत या हज केवल लोगों को दिखाने के लिए है या उसके पीछे केवल भौतिक स्वार्थ काम कर रहा है, तो ऐसी हिजरत या ऐसे हज का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है।

1. यही विशेषता एक हदीस में नमाज़ की बताई गई है जिसमें नमाज़ के लिए स्नान की उपमा प्रस्तुत की गई है।

2. अर्थात वह गुनाहों से बिलकुल पाक-साफ़ होकर लौटता है। इस हदीस में जिन बातों से बचने का ज़िक्र किया गया है उनका ज़िक्र क़ुरआन में भी मिलता है : "हज के कुछ जाने-पहचाने महीने हैं। तो जिस किसी ने उनमें हज का इरादा कर लिया तो (उसे यह ध्यान रहे कि) 'हज' में न तो कामेच्छा की कोई बात जाइज़ है, और न अवज्ञा और न लड़ाई-झगड़ा।" —2 : 197

   यूँ तो प्रत्येक कर्म की यह विशेषता है कि उसके कारण आदमी के गुनाह क्षमा होते हैं और गुनाहों के बुरे प्रभाव दिलों से दूर होते हैं। मनुष्य की नैतिक दशा ठीक हो जाती है और उसे शुद्धता और आत्म-विकास प्राप्त होता है, लेकिन हज में यह विशेषता विशेष रूप से पाई जाती है। 'हज' एक बड़ी इबादत है, उसे यदि उसके पूरे नियम और शर्तों के साथ अदा किया जाए तो निश्चय ही यह इबादत आदमी के जीवन को बदलने और उसे नेकी, परहेज़गारी और ईश-भक्ति के साँचे में ढाल देने के लिए काफ़ी है।

3. हज मबरूर से अभिप्रेत वह हज है जिसमें हज के समस्त नियमों और अधिनियमों आदि का पूरा ध्यान रखा गया हो, जो पाक और शुद्ध हृदयता के साथ हो। इस हदीस

हज के स्वाभाविक आदेश

1. उसामा बिन शरीक (रज़ि०) कहते हैं कि मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ हज के लिए निकला, तो लोग आपके पास आते थे (और आपसे हज के बारे में पूछते थे) तो कोई कहता कि ऐ अल्लाह के रसूल! 'तवाफ़' (परिक्रमा) करने से पहले मैंने (सफ़ा और मरवा के बीच) सई कर ली या किसी काम को बाद में कर लिया (जिसे पहले करना चाहिए था) या पहले कर लिया (जिसे बाद में करना चाहिए था) आप (प्रत्येक व्यक्ति को) यही उत्तर देते कि कोई दोष नहीं है, दोष की बात तो इसमें है कि कोई व्यक्ति ज़ुल्म से किसी मुसलिम व्यक्ति की आबरू को आघात पहुँचाए तो ऐसा व्यक्ति दोषी है और वह विनष्ट हुआ।[1]

—अबू दाऊद

में उसी वास्तविकता को प्रदर्शित किया गया है जिसका प्रदर्शन पिछली हदीस में हुआ है। उमरा पिछले गुनाहों के लिए कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) बन जाता है। इस नेक अमल के कारण अल्लाह पिछले गुनाहों को क्षमा कर देता है। उमरा गुनाहों के बुरे प्रभावों को मन से दूर करता और मनुष्य को पवित्रता प्रदान करता है। उमरा न केवल यह है कि अल्लाह के घर की आबादी और शोभा का कारण बनता है बल्कि इसके द्वारा मानव-हृदय की भी शोभा बढ़ जाती है। हज इतनी बड़ी इबादत और मनुष्य की शुद्ध हृदयता, सत्यनिष्ठा और ईमान का महान प्रदर्शन है कि हज करनेवाला अल्लाह के यहाँ जन्नत का अधिकारी ठहरता है, शर्त यह है कि हज के पश्चात वह अपने जीवन में कोई ऐसी नीति न अपनाए जो अल्लाह की बन्दगी के प्रतिकूल हो।

1. मतलब यह है कि हज से सम्बन्धित कर्मों में कुछ विलम्ब या जल्दी हो गई, कोई कार्य पहले करने का था उसे ग़लती से बाद में कर लिया या कोई कार्य बाद में करना चाहिए था उसे पहले कर लिया तो यह कोई ऐसी बात नहीं है कि जिससे आदमी के धर्म और ईमान में कोई दोष पैदा हो जाए या इससे कोई ऐसी हानि पहुँच जाए कि जिसकी क्षतिपूर्ति संभव न हो। हानि और दोष की बात तो यह है कि मनुष्य उस चरित्र को क्षति पहुँचाए जो ईमानवाले व्यक्ति की वास्तविक निधि है। हज सम्बन्धी कार्यों में कुछ विलम्ब या जल्दी हो जाए तो यह कोई ऐसी परेशानी की बात नहीं, हाँ यदि कोई व्यक्ति ईमानवालों के चरित्र को भूल जाता है, तो अवश्य ही यह परेशानी की बात होगी। विशेष रूप से यदि हज के बीच में वह किसी के साथ ज़्यादती करता और उसको आबरू पर हमला करता है तो यह घोर अन्याय, बल्कि इस्लामी जीवन की तबाही का खुला प्रमाण होगा।

दुआ

'दुआ' बन्दे की पुकार और अल्लाह की सेवा में उसकी याचना है। एक मुस्लिम व्यक्ति अल्लाह को छोड़कर किसी दूसरे को नहीं पुकारता। उसकी ज़बान पर अल्लाह ही का ज़िक्र होता है। एक अल्लाह ही की महानता और बड़ाई के वर्णन के लिए उसकी जिह्वा अर्पित होती है। उसके इस कर्म में सारी सृष्टि उसके साथ होती है। मुस्लिम केवल अपने रब से माँगता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसी को पुकारता है। उसकी फ़रियाद उसी से होती है। वह उसी के मार्गदर्शन का इच्छुक होता है। उसी को शरणदाता और अपना कार्यसाधक समझता है। यही उसका दीन (धर्म) और ईमान है, जिस दीन का वह अनुयायी है, वास्तव में यही सम्पूर्ण जगत का दीन है। क़ुरआन में कहा गया है : "हर वह चीज़ जो आकाशों और धरती में है अल्लाह की तसबीह करती है और वह प्रभुत्वशाली और तत्वदर्शी है।" —57 : 1

एक दूसरी जगह कहा गया : "आकाशों और धरती में जो भी हैं सब उसके भिक्षुक हैं।" —55 : 29

एक मुसलिम को इसी बात का आदेश दिया गया है कि वह केवल एक अल्लाह को पुकारे, और केवल उसी से आशाएँ रखे। एक अल्लाह को पुकारना अल्लाह की बन्दगी और इबादत में सम्मिलित है। जब बन्दा अपने रब के सामने अपनी ज़रूरतें पेश करता और विवशता की दशा में उसे आवाज़ देता है, तो इस प्रकार वास्तव में वह अल्लाह के प्रभुत्व और उच्चता और अपनी बन्दगी और दुर्बलता को स्वीकार करता है, वह अल्लाह के समक्ष अपनी विवशता और विनम्रता को पेश करके उससे उसकी कृपा का अभिलाषी होता है। बन्दगी और विनम्रता का प्रदर्शन स्वयं इबादत बल्कि इबादत का मूल तत्त्व है।[1] इसी लिए

---

1. इब्न तैमिया ने लिखा है : बन्दगी अत्यन्त विनम्रता और प्रेम का नाम है" (रिसालतुल उबूदियत, पृ० 28)। इब्न क़य्यिम लिखते हैं : "इबादत के दो विशेष मूलतत्व हैं : अत्यन्त प्रेम, अत्यन्त विनय एवं विनम्रता और झुकाव के साथ। यदि तुम किसी से प्रेम करो, परन्तु उससे तुम्हारा विनयपूर्ण सम्बन्ध न हो तो तुम उसकी इबादत नहीं करते, इसी प्रकार, विनय भाव एवं विनम्रता हो और प्रेम न हो तो उस समय भी तुम आबिद (इबादत और बन्दगी करनेवाले) नहीं कहे जाओगे जब तक कि विनययुक्त प्रेम करनेवाले न बन जाओ।

नबी (सल्ल०) ने दुआ को इबादत का सत कहा है और इसी लिए अल्लाह को छोड़कर किसी दूसरे को पुकारने को क़ुरआन शिर्क और पथभ्रष्टता कहता है। क़ुरआन की विभिन्न आयतों में दुआ और पुकार से आशय अल्लाह की इबादत ही है। उदाहरणार्थ एक जगह कहा गया : "हर इबादत में अपना रुख़ ठीक रखो और दीन को ख़ालिस उसी के लिए रखकर उसे पुकारो।" —क़ुरआन, 7 : 28

एक दूसरी जगह कहा गया है : "वह सजीव है, उसके सिवा कोई इलाह (पूज्य-प्रभु) नहीं, तो दीन को उसी के लिए ख़ालिस करके उसे पुकारो।"

—क़ुरआन, 40 : 65

एक स्थान पर कहा गया : "सजदे अल्लाह ही के लिए हैं, तो तुम अल्लाह के साथ किसी और को न पुकारो।" —क़ुरआन, 72 : 18

मनुष्य के लिए यह चीज़ सबसे बड़ी आनन्ददायक है कि वह अपने रब की ओर एकाग्रचित होकर आकृष्ट हो। दुआ में याचना, ईश प्रशंसा, प्रेम, मन का झुकाव, विनयभाव और अल्लाह की ओर ध्यानाकृष्टि आदि वे सभी चीज़ें सम्मिलित होती हैं जो ईमानवालों के लिए जीवन की बहुमूल्य निधि हैं। क़ुरआन करीम में कहा गया है : "अपने रब को विनम्र भाव के साथ गिड़गिड़ाते हुए गुप्त रूप से पुकारो, निस्संदेह हद से आगे बढ़नेवाले उसे प्रिय नहीं हैं और धरती में सुधार के पश्चात बिगाड़ न पैदा करो और उसे भय और लोभ (दोनों प्रकार के मिले-जुले भावों) के साथ पुकारो, निस्संदेह अल्लाह की दयालुता संमार्गी लोगों के समीप है।" —क़ुरआन, 7 : 55-56

इसी विशेषता को दूसरी जगह यूँ स्पष्ट किया गया : "निश्चय ही वे (अल्लाह के नबी) नेकियों में अग्रसरता दिखाते थे और हमें चाह और भय (के मिले-जुले भावों) के साथ पुकारते थे और वे हमारे सामने विनम्रता अपनानेवाले थे।" —क़ुरआन, 21 : 90

एक दूसरी जगह है : "उनके पहलू बिस्तरों से अलग हो जाते हैं। वे भय और लालसा के साथ अपने रब को पुकारते हैं और जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से (हमारी राह में) ख़र्च करते हैं।" —क़ुरआन, 32 : 16

दुआ का हमारे जीवन से गहरा सम्बन्ध है। वह व्यक्ति जो अल्लाह के मार्गदर्शन के अनुसार जीवन-व्यवस्था को सुदृढ़ करना चाहता है उसे हर समय इसकी आवश्यकता होती है कि उसे अल्लाह का योग और सहायता प्राप्त हो। इसके बिना वह संमार्ग पर एक क़दम भी नहीं चल सकता और न इसके बिना

वह उन शैतानों और मक्कारों का मुक़ाबला कर सकता है जो उसे सत्य से फेरने के लिए हर समय अपना ज़ोर लगाते रहते हैं।

मोमिन की सबसे बहुमूल्य पूँजी और शक्ति वह भक्तिभाव और दासता की प्रेरणा है जिसके सहारे वह सत्य-मार्ग पर अविचलित रूप से चलता और असत्य की प्रत्येक चाल का दृढ़तापूर्वक मुक़ाबला करता है। उसकी कोशिश यह होती है कि एक ओर वह जीवन में बन्दगी की माँगों को पूरा करे, अल्लाह की निश्चित की हुई सीमाओं का आदर करे, हर प्रकार के गुनाहों और अल्लाह की अवज्ञा से अपने जीवन को दूर रखे, दूसरी ओर हर श्वास के साथ अल्लाह की दयालुता से अपना सम्बन्ध बनाए रखे। मुसलिम अपनी याचना का दामन हर समय अल्लाह की सेवा में फैलाए रहता है। अकेला हो या लोगों के साथ, मस्जिद में हो या बाज़ार, सफ़र में हो या घर में, बीमार हो या स्वस्थ, प्रत्येक अवस्था में उसका यह अमल जारी रहता है। वह सदा अल्लाह से सहायता का इच्छुक होता है। अल्लाह की सेवा में दुआएँ और विनती करने को वह बड़े सौभाग्य की बात समझता है।

दास्यभाव मानव का स्वाभाविक भाव है। यही वह भाव है जो हमारे मन में तरंगित होनेवाले विभिन्न भावों और प्रेरणाओं को अर्थमय और आशययुक्त बनाता है। उन्हें अनुकूलता एवं एकात्मकता प्रदान करता है। भावनाओं और अंतःप्रेरणाओं की अनेकता में एकता की विशेषता पैदा करता है। दास्यभाव के वास्तविक अर्थ और उसकी माँगों का पूर्ण परिचय केवल अल्लाह के रसूलों द्वारा प्राप्त होता है। दासता की अनुभूति वह शांति एवं आनन्द निधि है जिससे हृदयों को परितोष और दिव्य सुख प्राप्त होता है। यही वह मार्ग है जो बन्दे को उसके रब से मिलाता है। दास्यभाव वास्तव में जीवन की उच्चतम एवं मनोरम उमंगों का मूलाधार है। यह एक ऐसे व्यक्तित्व से सम्बन्ध जोड़ने की अभिलाषा है जो अत्यन्त दयालु और स्वयं हमारे जीवन का वास्तविक आशय है। विनयभाव, ब्रह्म-ज्ञान का मूल और सामीप्य-स्थिति का नाम है, कहा भी गया है : "सजदा करो और क़रीब हो जाओ।"

—क़ुरआन, 96 : 19

विनयभाव और सजदा ही वास्तविक रूप से ऐसी महान और प्रिय सत्ता के सामीप्य का आशय हो सकता है। प्रेम और विनयभाव के साथ अल्लाह की ओर अपना ध्यान बनाए रखना हमारे आन्तरिक जीवन का सौन्दर्य है। प्रेम, विनयभाव और विनम्रता का दुआओं में पूर्णतः प्रदर्शन होता है। नबी (सल्ल०) का जीवन

विनयभाव का जीवन था। आप बन्दगी के उच्चतम स्थान पर आरुढ़ थे। इसका अनुमान विशेष रूप से उन दुआओं से किया जा सकता है जो आपने अपने रब से माँगी हैं। आपकी दुआओं से मालूम होता है कि आपकी आत्मा कितनी अधिक अपने रब से सम्बद्ध थी और आपको कितनी अधिक अपने रब की महानता और तेज की अनुभूति प्राप्त थी। और अपनी और सम्पूर्ण विश्व की विवशता और अल्लाह की शक्ति, सामर्थ्य और उसकी व्यापक दयालुता पर आपको कितना विश्वास था। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि आपकी दुआएँ तत्वदर्शिता और ज्ञान की महान कृति हैं, ईश-ज्ञान और अल्लाह से आपके सच्चे और गहरे सम्बन्ध का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

दुआ का महत्व

1. हज़रत नोमान बिन बशीर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दुआ पूर्णतः इबादत है। फिर आपने (क़ुरआन, 40 : 60) पढ़ा : "तुम्हारे रब ने कहा : मुझसे दुआ माँगो मैं क़बूल करूँगा। जो लोग मेरी इबादत से गर्व करते हुए मुख मोड़ते हैं, जल्द ही वे अपमानित होकर जहन्नम में प्रवेश करेंगे।[1] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी, अहमद, नसई, इब्ने माजा

2. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दुआ (प्रार्थना) इबादत की सत (सार) है।[2] —तिरमिज़ी

---

1. इस हदीस में क़ुरआन की आयत पेश की गई है उसमें दुआ को इबादत शब्द से अभिव्यंजित किया गया है। ईश्वर से विनय और प्रार्थना करना बन्दगी और दास्यभाव ही का प्रदर्शन है। दुआ से मुँह मोड़ने और प्रार्थना न करने का अर्थ इसके सिवा और क्या हो सकता है कि आदमी को किसी प्रकार का गर्व है और वह अपने रब के समक्ष अपनी दासता को स्वीकार करने से कतरा रहा है। बन्दा जब अपने सृष्टिकर्ता से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रार्थनाएँ करता है तो वास्तव में वह इस तरह अपने रब की प्रभुता, बड़ाई और सर्वोच्चता के साथ ही अपनी दासता और दुर्बलता का भी इक़रार करता है। उसका यह दास्यभाव-प्रदर्शन स्वयं एक उत्तम उपासना है। अतः वह इसके पुण्य और प्रतिफल से वंचित नहीं हो सकता, भले ही उसे किसी कारण दुनिया में वह वस्तु मिले या न मिले जिसके लिए उसने प्रार्थना की थी।
2. इबादत का अर्थ इसके सिवा और क्या हो सकता है कि मनुष्य ईश्वर की महानता और बड़ाई के आगे झुक जाए और उसके समक्ष अपनी दुर्बलता और बन्दगी का इक़रार करे। दुआ और विनय में एक ओर मनुष्य की मुहताजी, विवशता और दासता की

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : ईश्वर की दृष्टि में दुआ से बढ़कर कोई चीज़ उत्तम और श्रेष्ठ नहीं ।[1]

—तिरमिज़ी, इब्ने माजा

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो अल्लाह से नहीं माँगता, अल्लाह उसपर क्रुद्ध होता है ।[2]

—तिरमिज़ी

5. हज़रत इब्ने उमर से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति के लिए दुआ का द्वार खुल गया उसके लिए रहमत (दयालुता) के द्वार खुल गए[3] और अल्लाह से जो चीज़ें माँगी जाती हैं उनमें से उसकी दृष्टि में सबसे प्रिय वस्तु यह है कि कुशलक्षेम की याचना की जाए ।[4] —तिरमिज़ी

अभिव्यक्ति होती है, दूसरी ओर वह ईश्वर की प्रभुता और उसकी सर्वोच्चता का इक़रार करता है। इसलिए इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता कि दुआ या प्रार्थना इबादत ही है। इसके शुभ फल से वह वंचित नहीं हो सकता।

1. अर्थात दुआ कोई साधारण चीज़ नहीं है। यह एक शक्ति है, बल है। दुआ बन्दे को अल्लाह से क़रीब करती और अल्लाह से उसका सम्बन्ध जोड़ती है।
2. अर्थात जिस तरह अल्लाह को यह प्रिय है कि कोई उससे दुआएँ माँगे और अपनी ज़रूरतों के लिए उसको पुकारे उसी तरह अल्लाह को यह बात बहुत ही नापसन्द है कि कोई उससे माँगना छोड़ दे। उसके सामने अपनी ज़रूरतें पेश न करे। यह बेपरवाही न किसी बन्दे के लिए उचित है और न ईश्वर कभी इसको पसन्द कर सकता है।
3. अर्थात जिसे दुआ करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया उसके हिस्से में समस्त भलाइयाँ आ सकती हैं। दुआ के द्वारा मनुष्य ईश्वर की विशेष कृपा का पात्र हो जाता है। दुआ अथवा प्रार्थना अपनी वास्तविकता की दृष्टि से मानव-हृदय की विकलता और उसकी आत्मा की सुन्दर याचना का दूसरा नाम है। जब किसी बन्दे को सच्ची याचना, तड़प और मन की विकलता प्राप्त हो गई तो उसके लिए ईश-दयालुता के द्वार कभी बन्द नहीं हो सकते।
4. कुशलक्षेम में सांसारिक एवं पारलौकिक, वाह्य एवं आन्तरिक हर प्रकार की कुशलता और सुख-संपन्नता सम्मिलित है। जिस किसी ने ईश्वर से कुशलक्षेम की प्रार्थना की उसने वास्तव में ईश्वर से बड़ी चीज़ माँगी। कुशल-क्षेम की याचना करके मनुष्य इस बात का इक़रार करता है कि ईश्वर की रक्षा और उसकी कृपा के बिना मनुष्य कदापि शान्ति और कुशलता प्राप्त नहीं कर सकता। ईश्वर ही है जो मनुष्य को कष्ट और संकट से बचाता और सीधे मार्ग पर चलने का सौभाग्य प्रदान करता है। इस प्रकार की

6. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह से उसकी कृपा चाहो, क्योंकि अल्लाह को यह बात पसन्द है कि उससे माँगा जाए, और उत्तम इबादत तंगी दूर होने की प्रतीक्षा है।[1] —तिरमिज़ी

7. हज़रत उबादा बिन सामित (रजि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दुनिया में कोई भी मुसलिम अल्लाह से दुआ करता है तो या तो अल्लाह उसको वही चीज़ देता है (जिसकी वह दुआ करता है) या उस दर्जे की किसी बुराई (बला या मुसीबत) को उससे दूर कर देता है, शर्त यह है कि वह किसी गुनाह या नाते-रिश्ते के तोड़ने की दुआ न करे।[2] —तिरमिज़ी

8. हज़रत सलमान (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम्हारा रब बड़ा लज्जाशील और दाता है। उसको इससे लज्जा आती है कि जब उसका बन्दा दोनों हाथ उठाकर उससे दुआ करे तो वह उन्हें ख़ाली लौटा दे।[3] —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

9. हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०)

दुआओं से ईश्वर के समक्ष मनुष्य की पूर्ण विवशता, मुहताजी और दासता का प्रदर्शन होता है।

1. लोगों के माँगने और दुआ करने से अल्लाह की दयालुता को प्यार आता है। जो बंदा उससे नहीं माँगता ईश्वर उससे सख़्त नाराज़ होता। ईश्वर की कृपा की आशा करते हुए इसकी प्रतीक्षा करना कि वह कष्टों और दुःखों को निबारेगा और सुविधा प्रदान करेगा, उच्च कोटि की उपासना है, क्योंकि इसमें मनुष्य भय और विनयभाव के साथ ईश्वर की ओर झुका रहता है और उससे उसकी कृपा की आस लगाए रहता है।
2. अर्थात् बन्दे की दुआ किसी भी दशा में अकारथ नहीं जाती या तो उसकी माँगी हुई चीज़ ही उसे दे दी जाती है या उसके बदले में आनेवाली किसी बला और संकट को उससे दूर कर दिया जाता है। दुआ के क़बूल होने की एक बड़ी शर्त यह है कि दुआ किसी पाप और गुनाह के लिए न हो और न नाते-रिश्तेदारों में फूट और सम्बन्ध विच्छेद के लिए हो।
3. अर्थात बन्दे की दुआ नष्ट नहीं होती। ईश्वर अत्यन्त लज्जाशील और कृपालु है। वह ख़ाली हाथ किसी को कैसे लौटा सकता है। इंजील में है : "जबकि तुम बुरे होकर अपने बच्चों को अच्छी चीज़ें देना जानते हो तो तुम्हारा बाप जो आसमान पर है अपने माँगनेवालों को अच्छी चीज़ क्यों न देगा।" (मत्ती 7 : 11)

ने कहा : ईश्वरीय निर्णय को कोई चीज़ टाल नहीं सकती सिवाय दुआ के[1] और आयु को कोई चीज़ बढ़ा नहीं सकती सिवाय नेकी के।[2] —तिरमिज़ी

10. हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दुआ (प्रत्येक दशा में) लाभदायक है, उन बलाओं में भी जो आ चुकी हैं और उनके मामले में भी जो अभी नहीं आई हैं। अत: ऐ अल्लाह के बन्दो ! दुआ को अपने लिए ज़रूरी ठहरा लो।[3] —तिरमिज़ी, अहमद

11. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपने रब से माँगना चाहिए यहाँ तक कि जूती का तस्मा भी माँगे, यदि वह टूट जाए।[4] —तिरमिज़ी

---

1. मतलब यह है कि दुआ न करने पर ईश्वर का जो फ़ैसला लागू होनेवाला होता है, दुआ करने से अल्लाह अपनी दया से उसे बदल देता है। किसी में यह शक्ति नहीं है कि वह अल्लाह के फ़ैसले को बदल सके, परन्तु अल्लाह स्वयं अपने फ़ैसले को बदल सकता है और यह उस समय होता है जब मनुष्य उससे दुआ करे। यह बात सूरा नूह के इन शब्दों में भी सिद्ध होती है : "(नूह ने अपनी जातिवालों से कहा :) तुम लोग अल्लाह की बन्दगी करो और उसका डर रखो और मेरी आज्ञा का पालन करो। यदि तुम ऐसा करोगे तो अल्लाह तुम्हारे गुनाहों को क्षमा कर देगा और एक निश्चित समय तक तुम्हें मुहलत देगा।" (क़ुरआन, 71 : 3-4) इस आयत से मालूम हुआ कि कुफ़्र और शिर्क पर जमे रहने पर ईश्वर का यह फ़ैसला था कि इस जाति के लोगों को विनष्ट कर दिया जाए परन्तु यदि ये लोग अल्लाह की बन्दगी, ईश-भय और रसूल के आज्ञापालन को अंगीकार कर लेते तो उन्हें विनष्ट कर देने का फ़ैसला बदल जाता और उन्हें कर्म का और भी अवसर प्रदान किया जाता।
2. नेकी और शुभ कर्म से आदमी की आयु और कर्म में बरकत होती है।
   (दे० अध्याय तक़दीर पर ईमान।)
3. अल्लाह आनेवाली मुसीबत को आने से रोक सकता है और उस संकट को जो आ चुका हो, दूर कर सकता है, इसलिए आदमी को प्रत्येक दशा में उसको पुकारते रहना चाहिए।
4. अर्थात ऐसे मामले जो देखने में हमारे अपने अधिकार में होते हैं, उपाय के साथ-साथ ईश्वर से उसकी सहायता की प्रार्थना भी करनी चाहिए। इसलिए कि उसके सहयोग और समर्थन के बिना किसी मामले में भी हमारा कोई उपाय सफल नहीं हो सकता। 'दुआ' का अर्थ यह है कि मनुष्य प्रत्येक दशा में अपनी दुर्बलता और अधीनता और ईश्वर की शक्ति, सामर्थ्य और सर्वोच्चता को मान रहा है। अपनी अधीनता और

12. अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : एक मुस्लिम व्यक्ति जब भी दुआ माँगता है, शर्त यह है कि वह किसी गुनाह और रिश्ता-नाता तोड़ने की दुआ न हो, तो अल्लाह उसे तीन रूपों में से किसी भी रूप में क़बूल कर लेता है : या तो उसकी दुआ दुनिया ही में क़बूल कर ली जाती है या उसे आख़िरत के प्रतिफल के लिए सुरक्षित कर लिया जाता है या उसी दर्जे की किसी बुराई (बला, मुसीबत) को उसपर आने से रोक दिया जाता है। सहाबा ने कहा : अब तो हम बहुत दुआएँ करेंगे। आपने कहा : ईश्वर की कृपा भी बहुत अधिक है।[1] —अहमद

दुआ के कुछ नियम

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब तुममें से कोई व्यक्ति दुआ माँगे तो यूँ न कहे कि ऐ अल्लाह ! मुझे क्षमा कर दे यदि तू चाहे, मुझपर दया कर यदि तू चाहे, मुझे रोज़ी दे यदि तू चाहे; बल्कि उसे अवश्यंभावी रूप से अपनी माँग रखनी चाहिए। निस्संदेह वह करेगा, वही जो चाहेगा। कोई उसपर दबाव डालनेवाला नहीं है।[2]

—बुख़ारी

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह से दुआ माँगो तो इस विश्वास के साथ कि वह क़बूल करेगा और जान रखो कि अल्लाह ग़ाफ़िल और अनुपस्थित हृदय की

मुहताजी और ईश्वर की बड़ाई का इक़रार मनुष्य को अल्लाह की मदद का हक़दार बना देता है।

1. अर्थात दुआ करनेवाला किसी भी रूप में घाटे में नहीं रहता, या तो उसकी माँगी हुई चीज़ उसे दे दी जाती है या यदि किसी कारण उसकी माँगी हुई चीज़ उसे न दी गई तो उसकी दुआ को उसके लिए आख़िरत की सामग्री बना दी जाती है या उसकी दुआ के कारण उसपर आनेवाले किसी संकट को दूर कर दिया जाता है। तिर्मिज़ी में हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि आपने कहा : "जो व्यक्ति भी दुआ माँगता है अल्लाह या तो उसकी माँगी हुई चीज़ उसे दे देता है या उसके सदृश उससे कोई बुराई रोक देता है जब तक कि किसी गुनाह या नाते-रिश्ते के विच्छेद की दुआ नहीं माँगता।
2. अर्थात दुआ में किसी प्रकार की बेपरवाई नहीं होनी चाहिए। बन्दे को अपनी ज़रूरत अवश्यंभावी रूप से अपने रब के सामने पेश करनी चाहिए ताकि अल्लाह के सामने बन्दे की अधिक-से-अधिक विनम्रता और मुहताजी का प्रदर्शन हो सके।

दुआ स्वीकार नहीं करता ।[1] —तिरमिज़ी

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि तुममें से जब कोई दुआ करे तो यह न कहे कि ऐ अल्लाह! यदि तू चाहे तो मुझे क्षमा कर दे, बल्कि दुआ निश्चय रूप से और पूरी रुचि के साथ माँगे। इसलिए कि अल्लाह जो चीज़ प्रदान करता है उसका प्रदान करना उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं होता। —मुसलिम

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बन्दे की दुआ क़बूल की जाती है शर्त यह है कि वह किसी गुनाह और सम्बन्ध-विच्छेद की दुआ न करे, और जल्दबाज़ी से काम न ले। कहा गया : जल्दबाज़ी क्या है? ऐ अल्लाह के रसूल! कहा : यह है कि कोई कहे मैंने बहुत दुआ की, परन्तु देखता हूँ कि मेरी दुआ क़बूल ही नहीं होती। और इसके पश्चात वह थक जाए और दुआ माँगनी छोड़ दे।[2] —मुसलिम

5. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : लोगो! अल्लाह पवित्र एवं उत्तम है, वह केवल पवित्र और उत्तम वस्तु को स्वीकार करता है। और अल्लाह ने इस मामले में जो आदेश अपने रसूलों को दिया है वही ईमानवालों को भी दिया है। उसने कहा : "ऐ रसूलो! पाक चीज़ें खाओ और अनुकूल (अच्छे) कर्म करो, तुम जो कुछ करते हो मैं भली-भाँति जानता हूँ।" और कहा है : "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, खाओ पाक चीज़ें जो कुछ कि हमने तुम्हें दी हैं।" इसके बाद आपने एक ऐसे व्यक्ति का ज़िक्र किया जो लम्बा सफ़र करके (किसी पवित्र स्थान पर) इस दशा में जाता है कि उसके बाल बिखरे हुए हैं और धूल से अटा हुआ है। आकाश की ओर

---

1. अर्थात दुआ माँगते समय तुम्हें पूर्णरूप से अल्लाह की ओर ध्यान देना चाहिए। तुम्हें विश्वास हो कि अल्लाह दुआओं का क़बूल करनेवाला है। वह हमारी दुआओं को अकारथ नहीं जाने देगा। दुआ यदि दुविधा और सन्देह की दशा में माँगी गई तो वह बिलकुल बेजान होगी। ऐसी निष्प्राण 'दुआ' का क्या प्रभाव हो सकता है।
2. बन्दे को दुआ छोड़नी नहीं चाहिए। उसे क्या मालूम कि अल्लाह को उसकी दुआ कब और किस रूप में क़बूल करना अभीष्ट है। कभी बन्दे ही के हितों के लिए उसकी दुआ क़बूल नहीं की जाती। ऐसी दशा में उसे अपने अल्लाह से निराश नहीं होना चाहिए। जल्दबाज़ी से काम लेकर वह स्वयं अपना ही काम बिगाड़ देगा। निरन्तर अपने स्वामी के द्वार का भिक्षुक बना रहना क्या उसके लिए कम श्रेय की बात है।

हाथ उठाकर दुआ करता है : ऐ रब ! ऐ रब !. . . और हालत यह है कि उसका खाना हराम है, उसका पीना हराम है, उसका वस्त्र हराम है और हराम आहार से वह पला-बढ़ा है, फिर उसकी दुआ कैसे क़बूल हो सकती ।[1] —मुसलिम

6. हज़रत मआज़ (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो मुसलिम व्यक्ति पवित्रता की दशा में अल्लाह का ज़िक्र करता हुआ सो जाए, फिर रात को जब वह जागे और सर्वोच्च अल्लाह से दुनिया और आख़िरत की भलाई की याचना करे, तो अल्लाह उसकी इच्छित वस्तु उसे अवश्य प्रदान करता है ।[2] —अबू दाऊद

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हमारा रब हर रात को जब रात का अन्तिम तिहाई भाग शेष रहता है, तो दुनिया के आकाश[3] पर उतरता है[4] और कहता है : कौन व्यक्ति है जो मुझसे दुआ करे और मैं उसकी दुआ क़बूल करूँ ? कौन व्यक्ति है जो मुझसे माँगे और मैं उसे प्रदान करूँ ? कौन है जो मुझसे क्षमा की प्रार्थना करे और मैं उसे क्षमा कर दूँ ? —बुख़ारी, मुसलिम, अबू दाऊद, तिरमिज़ी, इब्ने माजा

8. हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल

---

1. आज भी हम देखते हैं कि एक व्यक्ति इस बात की शिकायत कर रहा है कि उसकी दुआएँ क़बूल नहीं हुईं और वह यह नहीं देखता कि वह जो कुछ खा-पी रहा है और जो कुछ पहन रहा है वह कहाँ तक हलाल है। ऐसी दशा में उसकी शिकायत को ठीक नहीं कहा जा सकता। पुरातन ग्रन्थों से भी यही मालूम होता है कि यदि कोई चाहता है कि उसकी बात सुनी जाए तो वह गुनाहों से बाज़ आ जाए। यसायाह (Isaih) में एक स्थान पर कहा गया है : "तुम्हारी बदकारी ने तुम्हारे और तुम्हारे ख़ुदा के बीच जुदाई कर दी है और तुम्हारे गुनाहों ने उसे तुमसे छिपा दिया ऐसा कि वह नहीं सुनता।" —59 : 2
2. रात का यह समय विशेष रूप से दुआ के क़बूल होने का समय होता है। इस तनहाई और शान्ति के वातावरण में यदि बन्दा अल्लाह की ओर रुजू होता है और उसके सामने अपनी ज़रूरतें पेश करता है तो अल्लाह की दयालुता निश्चय ही उसकी ओर आकृष्ट होकर रहेगी और उसकी दुआएँ क़बूल होंगी।
3. निकटतम आकाश जिसे संसार के लोग देखते हैं।
4. अर्थात विशेष रूप से दुनियावालों की ओर उसकी दयालुता आकृष्ट होती है। उस समय जो भी दुआ माँगी जाए उसके क़बूल होने की अधिक संभावना होती है।

(सल्ल०) से पूछा गया : कौन-सी दुआ ज़्यादा क़बूल होती है ऐ अल्लाह के रसूल ! आपने कहा: जो रात के अन्तिम घड़ियों में की जाए[1] और जो फ़र्ज़ नमाज़ों के पश्चात की जाए।[2]

—तिरमिज़ी

9. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अज़ान और इक़ामत के बीच में जो दुआ की जाती है वह कभी रद्द नहीं की जाती।[3] कहा गया : उस समय हम क्या माँगें ? ऐ अल्लाह के रसूल ! कहा : सर्वोच्च अल्लाह से दुनिया और आख़िरत का कुशलक्षेम माँगो।

—अबू दाऊद, तिरमिज़ी

10. हज़रत सह्ल बिन सअद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दो समय ऐसे हैं जिनमें दुआ रद्द नहीं की जाती। अज़ान के समय और युद्ध के समय जब लोग एक-दूसरे से चिमट जाएँ।[4]

—अबू दाऊद, मालिक

11. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा :

---

1. इसलिए कि उस समय बिस्तर का आराम छोड़कर अल्लाह को याद करना और उससे दुआएँ माँगना शुद्ध हृदयता के बिना संभव नहीं और जो दुआ मन की शुद्धता के साथ माँगी जाएगी अवश्य क़बूल होगी।
2. नमाज़ और विशेष रूप से फ़र्ज़ नमाज़ रब की प्रसन्नता का कारण बनती है। इसलिए नमाज़ के पश्चात दुआ के क़बूल होने की अधिक संभावना होती है। यह दुआ माँगने का एक उत्तम समय भी होता है। फ़र्ज़ अदा करने के बाद बन्दे को अल्लाह का विशेष सामीप्य प्राप्त होता है। अल्लाह की दयालुता उससे अत्यन्त निकट होती है। ऐसे अवसर पर दुआ का क़बूल होना एक स्वाभाविक बात है।
3. अबू दाऊद की एक रिवायत से मालूम होता है कि वर्षा के समय भी दुआ रद्द नहीं की जाती। मुवत्ता की एक रिवायत में आया है : "दो समय ऐसे हैं कि जिनमें आकाश के द्वार खुल जाते हैं और बहुत कम ऐसे दुआ माँगनेवाले होते हैं जिनकी दुआएँ इन अवसरों पर रद्द की जाती हैं, उस 'अज़ान' के समय जो नमाज़ के लिए दी जाए और जब अल्लाह की राह में लोग पंक्तिबद्ध हों।"

   रिवायतों में दुआओं के क़बूल होने के जिन समयों का उल्लेख किया गया है, वे विशिष्ट दयालुता के अवतरण के समय हैं। इन समयों में विशेष रूप से लोग अल्लाह की ओर ध्यान देते हैं इसलिए अल्लाह भी इन समयों में माँगी हुई दुआओं को रद्द नहीं करता।
4. अर्थात युद्ध छिड़ जाए।

पाँच दुआएँ ऐसी हैं कि वे (निश्चित रूप से) क़बूल कर ली जाती हैं : पीड़ित की दुआ जब तक कि वह (ज़ालिम से) बदला न ले ले, हज करनेवाले की दुआ जब तक कि वह घर वापस न आ जाए, जिहाद करनेवाले की दुआ जब तक कि जिहाद से निवृत न हो जाए, बीमार की दुआ जब तक कि अच्छा न हो जाए (या उसकी मृत्यु न हो जाए), भाई की अपने भाई के हक़ में परोक्ष दुआ। फिर आपने कहा कि इन दुआओं में सबसे जल्द क़बूल होनेवाली भाई की परोक्ष दुआ है।

—बैहक़ी : दावातुल कबीर

12. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : बन्दा सजदे की दशा में अपने रब से सबसे अधिक निकट होता है, अत: (सजदे की दशा में) अधिकतम दुआ किया करो।[1] —मुसलिम

13. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तीन दुआएँ ऐसी हैं जो क़बूल होकर रहती हैं, उनके क़बूल होने में कोई सन्देह नहीं : पीड़ित की दुआ, मुसाफ़िर की दुआ, वह दुआ जो बाप अपने बेटे के लिए करे।[2] —अबू दाऊद, नसई

---

1. सजदे की दशा में बन्दा अल्लाह से सबसे अधिक निकट होता है। सजदा सर्वथा सामीप्य है। यह बन्दे के लिए अपने रब से प्रार्थना और दुआ करने का सबसे उत्तम समय होता है।
2. इन दुआओं में हृदय की शुद्धता विद्यमान होती है, ये दुआएँ दिल से निकली हुई होती हैं इसलिए ये सीधे अर्श तक पहुँचती हैं। माता-पिता के दिलों में अपनी औलाद के लिए जो हित-कामना होती है वह सर्वविदित है। मुसाफ़िर और पीड़ित व्यक्ति के दिल टूटे हुए होते हैं। यह दिल की विनयशीलता अल्लाह की दयालुता को अपनी ओर आकृष्ट करने की बड़ी शक्ति रखती है। पीड़ित व्यक्ति काफ़िर ही क्यों न हो उसकी सुन ली जाती है। इसी लिए पीड़ित की आह से बचने की ताकीद की गई है। और कहा गया है कि पीड़ित की दुआ और अल्लाह के बीच कोई आवरण नहीं होता। फिर पीड़ित व्यक्ति जिस चीज़ की याचना करता है अल्लाह की सुन्नत (विधान, नियम) की माँग भी वही होती है। दोनों की अनुकूलता अपना नतीजा दिखाकर रहती है।

   तिरमिज़ी की एक रिवायत में है कि आपने कहा : तीन आदमी की दुआ रद्द नहीं होती : रोज़ेदार की दुआ जबकि वह रोज़ा इफ़तार करे। न्यायशील नायक (हाकिम) की दुआ और पीड़ित की दुआ। उस (उत्पीड़ित) की दुआ को अल्लाह बादल के ऊपर उठाता है और उसके लिए आकाश के द्वार खोले जाते हैं और रब कहता है : "क़सम है मेरी इज़्ज़त (प्रभुत्व) की, मैं अवश्य तेरी सहायता करूँगा।"

14. हज़रत इब्ने अम्र बिन आस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : कोई दुआ उस दुआ से ज़्यादा क़बूल नहीं होती जो अनुपस्थित व्यक्ति किसी अनुपस्थित व्यक्ति के लिए करता है।[1]

—अबू दाऊद, तिरमिज़ी

15. हज़रत उबैय बिन कअब (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) जब किसी व्यक्ति के लिए दुआ करते तो पहले अपने लिए दुआ करते।[2]

—तिरमिज़ी

16. हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुम अपने हक़ में या अपनी औलाद के हक़ में या अपने सेवकों के हक़ में या अपने माल और सम्पत्ति के हक़ में बद्दुआ (शाप) न करो, कहीं ऐसा न हो कि वह घड़ी दुआ के क़बूल होने की हो और तुम्हारी दुआ क़बूल हो जाए।[3]

—अबू दाऊद

एक दूसरी रिवायत से मालूम होता है कि पाँच व्यक्तियों की दुआ विशेष रूप से क़बूल होती है : पीड़ित की दुआ जब तक कि वह बदला न ले। हज करनेवाले की दुआ जब तक कि वह लौटकर वापस न आ जाए, जिहाद करनेवाले की दुआ जब तक कि वह शहीद होकर दुनिया से लापता न हो जाए। बीमार की दुआ जब तक कि वह स्वस्थ न हो जाए और एक भाई की दूसरे भाई के लिए परोक्ष रूप में हुआ। (बैहक़ी)

1. मुस्लिम और अबू दाऊद की एक रिवायत में हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : "जब भी कोई मुस्लिम बन्दा अपने भाई के लिए परोक्ष रूप से दुआ करता है तो फ़रिश्ता कहता है कि तेरे लिए भी ऐसा ही हो (जैसा तूने अपने भाई के लिए माँगा)।" परोक्ष रूप से माँगी हुई दुआ में मन की शुद्धता काम कर रही होती है इसलिए ऐसी दुआ में स्वीकृति और बरकत की विशेष गरिमा पाई जाती है।
2. अल्लाह को बन्दे की विनयशीलता, बन्दगी और दासता अत्यन्त प्रिय है। बन्दगी और विनम्रता का पूर्ण प्रदर्शन इस बात में है कि बन्दा दूसरों के लिए दुआ माँगने से पहले अल्लाह के सामने अपनी मुहताजी और ज़रूरत पेश करे।
3. जिसके परिणामस्वरूप तुम मुसीबत में पड़ जाओ और फिर पश्चाताप करो। इसके अतिरिक्त यूँ भी बद्दुआ या शाप कोई अच्छी चीज़ नहीं है। तिरमिज़ी की एक रिवायत में जो हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है, ये शब्द आए हैं : "जिस किसी ने उसपर बद्दुआ की जिसने उसपर ज़ुल्म किया हो उसने अपना बदला ले लिया।

17. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से कोई मृत्यु की कामना न करे और न शीघ्र आने की दुआ करे क्योंकि जब मृत्यु आ जाएगी तो उसके कर्म का सिलसिला टूट जाएगा और ईमानवाले व्यक्ति के लिए उसकी आयु भलाई ही में वृद्धि का कारण बनती है।[1] —मुसलिम

18. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मृत्यु की दुआ न करो और न उसकी कामना करो। यदि किसी व्यक्ति के लिए ऐसी दुआ ज़रूरी ही हो गई हो तो वह यूँ कहे : ऐ अल्लाह! मुझे जीवित रख जब तक मेरे लिए जीना अच्छा हो और मुझे (दुनिया से) उठा ले जब मरना मेरे लिए अच्छा हो। —नसई

19. हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) कहते हैं कि एक बार मैंने उमरा के लिए नबी (सल्ल०) से इजाज़त चाही।[2] आपने इजाज़त दी और कहा : मेरे छोटे भाई हमें भी अपनी दुआ में सम्मिलित करना और हमें भूल न जाना। हज़रत उमर (रज़ि०) कहते हैं कि इस बात के बदले सारी दुनिया मुझे दे दी जाए तो मुझे कोई प्रसन्नता नहीं हो सकती (मुझे आपकी यह बात सारी दुनिया से बढ़कर प्रिय है)। —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

20. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) व्यापक दुआएँ पसन्द करते थे और उसके अतिरिक्त को छोड़ देते थे।[3] —अबू दाऊद

---

1. कुछ लोग दुखों से तंग आकर मृत्यु की कामना और दुआ करने लगते हैं, इससे रोका जा रहा है। बुख़ारी और मुसलिम की एक रिवायत में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है : "तुममें से कोई किसी पेश आ जानेवाली तकलीफ़ के कारण मृत्यु की कामना न करे।"

   मृत्यु की दुआ और कामना करना एक तो ईमानवालों के धैर्य और सहनशीलता के प्रतिकूल है दूसरे जब मनुष्य जीवित है तो वह तौबा, मन के झुकाव और अनुकूल कर्मों के द्वारा आख़िरत के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा सामग्री जुटा सकता है जिसका मृत्यु के पश्चात अवसर नहीं रहता। मोमिन यदि वास्तव में मोमिन है तो जीवन की घड़ियाँ उसके लिए भलाई का ही कारण बनेंगी।
2. अर्थात उमरा करने के लिए मक्का जाने की इजाज़त चाही।
3. नबी (सल्ल०) की दुआओं की व्यापकता का अनुमान आपकी उन दुआओं से किया जा सकता है जो हदीस की किताबों में उल्लिखित हुई हैं। आपकी कुछ दुआएँ हम अगले अध्याय में दे रहे हैं।

21. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को तीन बार दुआ माँगना और तीन बार क्षमा-याचना करना बहुत पसन्द था।[1]

—अबू दाऊद

22. फ़ुज़ाला बिन उबैदुल्लाह (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सुना कि एक व्यक्ति नमाज़ के बाद दुआ माँग रहा है लेकिन उसने नबी (सल्ल०) पर दरूद नहीं भेजा। आपने कहा : इस व्यक्ति ने (दुआ माँगने में) जल्दी की। फिर आपने उस व्यक्ति को बुलाकर कहा : तुममें से जब कोई व्यक्ति नमाज़ पढ़ चुके तो पहले उसे अल्लाह की हम्द और प्रशंसा करनी चाहिए फिर नबी (सल्ल०) पर दरूद भेजना चाहिए, फिर इसके पश्चात जो दुआ चाहे माँगे।[2]

—तिरमिज़ी, अबू दाऊद, नसई, इब्ने माजा

23. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने दुआ में अपने दोनों हाथों को इतना उठाया कि मैंने आपकी बग़लों की सफ़ेदी देख ली।[3]

—बुख़ारी

24. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिसे यह बात पसन्द हो कि कठिनाइयों के समय अल्लाह

---

1. दुआओं को कई बार दोहराने में ख़ास फ़ायदा यह महसूस होता है कि इस प्रकार बन्दे की ओर से अधिक-से-अधिक विनयभाव का प्रदर्शन होता है जो बन्दगी का मूल तत्त्व है। इसके अतिरिक्त दुआ के शब्दों को एक से अधिक बार दोहराने से दिल अवश्य ज़बान के साथ हो जाता है और फिर दुआ शक्तिहीन नहीं रहती।
2. अर्थात आपने दुआ माँगने का तरीक़ा बताया कि आदमी दुआ माँगने से पहले अल्लाह की हम्द और गुणगान करे और उसके रसूल पर दरूद और सलाम भेजे, उसके बाद अल्लाह से दुआएँ करे। यह तो बहुत अशिष्टता की बात होगी कि मुँह खोलते ही कोई झट अपना मतलब पेश करने लग जाए। सभ्यता की बात यह है कि जिससे दुआ माँगी जा रही है पहले उसके गुणों का वर्णन हो और उसका आभार स्वीकार किया जाए फिर इस अवसर पर यह भी आवश्यक है कि आदमी अपने महान उपकारकर्ता नबी (सल्ल०) को न भूले। आपसे हार्दिक और आत्मिक सम्बन्ध की माँग है कि आपपर दरूद और सलाम भेजा जाए और आपके हक़ में अल्लाह से दुआ की जाए।
3. सहल बिन सअद (रज़ि०) की एक रिवायत से मालूम होता है कि आप दोनों हाथों की उँगलियों के सिरों को दोनों मोढों के बराबर करते, फिर दुआ माँगते थे। (बैहक़ी)

उसकी दुआ को क़बूल करे तो उसे चाहिए कि आराम और ख़ुशहाली में दुआ माँगे।[1] —तिरमिज़ी

25. हज़रत उमर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब दुआ में दोनों हाथ उठाते थे तो उनको उस समय तक न लौटाते जब तक अपने मुँह पर न फेर लेते।[2] —तिरमिज़ी

---

1. जो लोग केवल परेशानी और कठिनाई में अल्लाह से दुआ माँगते हैं उनका अल्लाह से सम्बन्ध कमज़ोर होता है। इसके विपरीत जो लोग ख़ुशहाली और तंगी प्रत्येक दशा में अल्लाह से दुआ करते रहते हैं उनका सम्बन्ध अपने रब से अत्यन्त दृढ़ होता है। उन्हें अपने रब पर विश्वास और भरोसा भी अधिक होता है इसलिए उनकी दुआएँ दूसरों की दुआओं के मुक़ाबले में ज़्यादा प्रभावकारी होती हैं।
2. दूसरी रिवायतों से मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) जब किसी आपत्ति और मुसीबत के समय दुआ करते तो हाथ फैलाकर माँगते जिस प्रकार कोई भिक्षुक किसी दाता के सामने हाथ फैलाता है। दुआ के बाद हाथों को अपने चेहरे पर फेरने में इस बात की ओर संकेत है कि अल्लाह के समक्ष फैले हुए ये हाथ ख़ाली नहीं लौटे हैं। अल्लाह की दयालुता और बरकतों का कुछ न कुछ अंश इन्हें अवश्य प्राप्त हुआ है।

   हदीस से यह भी मालूम होता है कि दुआ को आमीन (अर्थात ऐ अल्लाह मेरी यह दुआ क़बूल कर!) कहकर समाप्त करना चाहिए।

नमाज़ की कुछ दुआएँ

1. हज़रत अली (रज़ि०) से उल्लिखित है कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) नमाज़ के लिए खड़े होते और एक रिवायत में है कि जब आप नमाज़ आरंभ करते तो तकबीर (अल्लाहु अकबर अर्थात अल्लाह सबसे बड़ा है) कहते और फिर कहते :

وَجَّهْتُ وَجْهِيَ لِلَّذِي فَطَرَ السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضَ حَنِيفًا وَمَا أَنَا مِنَ الْمُشْرِكِينَ
إِنَّ صَلَاتِي وَنُسُكِي وَمَحْيَايَ وَمَمَاتِي لِلّٰهِ رَبِّ الْعَالَمِينَ. لَا شَرِيكَ لَهُ وَبِذٰلِكَ
أُمِرْتُ وَأَنَا مِنَ الْمُسْلِمِينَ. اَللّٰهُمَّ أَنْتَ الْمَلِكُ لَا إِلٰهَ إِلَّا أَنْتَ، أَنْتَ رَبِّي وَأَنَا
عَبْدُكَ ظَلَمْتُ نَفْسِي وَاعْتَرَفْتُ بِذَنْبِي فَاغْفِرْ لِي ذُنُوبِي جَمِيعًا إِنَّهُ لَا يَغْفِرُ
الذُّنُوبَ إِلَّا أَنْتَ، وَاهْدِنِي لِأَحْسَنِ الْأَخْلَاقِ لَا يَهْدِي لِأَحْسَنِهَا إِلَّا أَنْتَ وَ
اصْرِفْ عَنِّي سَيِّئَهَا لَا يَصْرِفُ عَنِّي سَيِّئَهَا إِلَّا أَنْتَ. لَبَّيْكَ وَسَعْدَيْكَ وَالْخَيْرُ
كُلُّهُ فِي يَدَيْكَ وَالشَّرُّ لَيْسَ إِلَيْكَ، أَنَا بِكَ وَإِلَيْكَ تَبَارَكْتَ وَتَعَالَيْتَ
أَسْتَغْفِرُكَ وَأَتُوبُ إِلَيْكَ

वज जह्तु वज्हि-य लिल्लज़ी फ़-त-रस्समावाति वल-अर-ज़ हनीफ़वँ व मा अना मिनल मुशरिकीन। इन्न सलाती व नुसुकी व मह्या-य व म-माती लिल्लाहि रब्बिल आलमीन। ला शरी-क लहू व बिज़ालि-क उमिरतु व अना मिनल मुसलिमीन। अल्लाहुम-म अन्तल मलिकु ला-इला-ह इल्ला अन-त, अन-त रब्बी व अना अब्दु-क ज़-लमतु नफ़सी वअ-त-रफ़तु बिज़ंबी फ़ग़फ़िरली ज़ुनूबी जमीअन इन्नहू ला यग़फ़िरुज़-ज़ुनू-ब इल्ला अन-त, वह्दिनी लि अहसनिल-अख़ला-क़ि ला यह्दी लि अह्सनिहा इल्ला अन-त वसरिफ़ अन्नी सय्यिअहा ला यस्‌रिफ़ अन्नी सय्यिअहा इल्ला अन-त, लब्बै-क व सअदै-क वल-ख़ैरु कुल्लुहू फ़ी यदै-क व शर्रु लै-स इलै-क, अना बि-क व इलै-क तबारक-त व तआलै-त अस्तग़फिरु-क व अतूबु इलैक।

"मैंने तो एकाग्र होकर अपना मुख उसकी ओर कर लिया जिसने आकाशों और धरती को पैदा किया और मैं मुशरिकों में से नहीं हूँ।[1]

---

1. देखें सूरा-6, अल-अनआम, आयत 79।

निश्चय ही मेरी नमाज़ और मेरी क़ुरबानियाँ और मेरा जीना और मेरा मरना अल्लाह—सारे संसार के रब—के लिए है। उसका कोई शरीक नहीं। मुझे तो इसी का हुक्म दिया गया है और मैं मुसलिमों (अल्लाह के आज्ञाकारी लोगों) में से हूँ।[1] ऐ अल्लाह ! तू सम्राट है, तेरे सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं, तू मेरा रब है, मैं तेरा बन्दा हूँ। मैंने अपने आपपर ज़ुल्म किया है, मुझे अपने गुनाह स्वीकार हैं, तू मेरे सारे गुनाहों को क्षमा कर दे। निस्संदेह तेरे सिवा कोई गुनाह को क्षमा करनेवाला नहीं।[2] और उत्तम स्वभाव की ओर मेरा मार्ग-प्रदर्शन कर, तेरे सिवा

---

1. देखें सूरा-6, अल-अनआम, आयत 162-163। अर्थात मैं अल्लाह ही को अपना इलाह (पूज्य-प्रभु) मानता हूँ, झूठे इलाहों से मेरा कोई नाता नहीं। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो अल्लाह के सिवा दूसरों को अपना आराध्य बनाते और दूसरों को प्रभुत्व में शरीक ठहराते हैं। इलाह और प्रभु तो वही एक है जो आकाश और धरती सबका सृष्टिकर्ता है। अतः मेरा सम्पूर्ण जीवन उसी एक प्रभु की सेवा में अर्पण है जो हम सबका स्वामी और पालनकर्त्ता है। मेरी नमाज़ और क़ुरबानियाँ भी उसी के लिए हैं और जीना और मरना भी। जीवन का यह मार्ग मैंने यूँ ही अटकल से नहीं ग्रहण किया है कि इसमें भूल-चूक की संभावना हो, बल्कि इस पथ का ज्ञान हमें स्वयं हमारे स्वामी ने दिया है। उसी के आदेशानुसार हमने शिर्क (अनेकेश्वरवाद) को छोड़कर तौहीद (एकेश्वरवाद) को अपनाया है।

   इस हदीस में नमाज़ के मुक़ाबले में जीना और क़ुरबानी के मुक़ाबले में मरना शब्द आया है। इसमें इस बात की ओर संकेत है कि नमाज़ हमारे जीवन और क़ुरबानी हमारी मृत्यु की व्याख्या है। नमाज़ इस बात की प्रतिज्ञा है कि हम अपने सम्पूर्ण जीवन में अल्लाह ही की बन्दगी करेंगे। हमारा पूरा जीवन उसी के आज्ञापालन में व्यतीत होगा। और क़ुरबानी इसका प्रत्यक्ष प्रदर्शन और इस बात की प्रतिज्ञा है कि हमारी जान अल्लाह की राह में क़ुरबान है। ऋग्वेद में भी आया है : "जिसने जीवन तथा शक्ति दी है तथा जिसकी आज्ञा का सारे देवता (फ़रिश्ते) पालन करते हैं, तथा अमरता जिसकी छाया एवं मृत्यु जिसकी दासी है उसके अतिरिक्त इस यज्ञ की बलि किसे अर्पित करेंगे।"

2. इसका अर्थ यह नहीं कि नबी (सल्ल०) से कोई गुनाह हो गया था जिसके लिए आप अल्लाह से क्षमा की प्रार्थना कर रहे हैं, बल्कि बात यह है कि दोष और क़ुसूर का सम्बन्ध आदमी के अपने पद से होता है। नबी (सल्ल०) से कोई गुनाह नहीं हुआ फिर भी आप (सल्ल०) अल्लाह के आगे गिड़गिड़ा रहे हैं और उससे क्षमा की प्रार्थनाएँ कर रहे हैं कि प्रभु ! मेरी ख़ताओं को क्षमा कर। मैं ख़ताकार हूँ। आप (सल्ल०) समझते थे

कोई उसकी ओर मेरा पथ-प्रदर्शन करनेवाला नहीं है।[1] और बुरे स्वभाव को मुझसे दूर रख; तेरे सिवा कोई बुरे स्वभाव को मुझसे दूर नहीं कर सकता।[2] मैं तेरी सेवा में उपस्थित हूँ, और तेरा हुक्म बजा लाने को तैयार हूँ। भलाई सबकी सब तेरे ही हाथ में हैं और बुराई तेरी ओर नहीं। मैं तेरे ही बल पर हूँ और तेरी ही ओर रुजू हूँ।[3] तू बरकतवाला

कि जो कुछ हमें करना चाहिए था वह हमसे नहीं हो सका, अल्लाह की राह में जितनी कोशिश करनी चाहिए थी वह हम नहीं कर सके। आप अपना तन-मन-धन सब कुछ अल्लाह की राह में लगाकर भी समझ रहे हैं कि अल्लाह का हक़ हमसे अदा नहीं हुआ। यह बन्दगी और दास्यभाव का सबसे उच्च सोपान है। अल्लाह की महानता और उसकी बड़ाई का जब आदमी को पूरा एहसास हो जाता है तो उसका यही हाल होता है कि सब कुछ करने के बाद भी उसे अपना क़ुसूर ही दीख पड़ता है। अल्लाह के आगे झुककर मनुष्य वास्तव में अपने को ऊँचा उठाता है। नबी (सल्ल०) बन्दगी के उच्च पद पर थे, इसका अनुमान भली-भाँति आपकी दुआओं और प्रार्थनाओं से होता है। अल्लाह के मार्ग में अपने को थकाकर भी समझते थे कि उसकी बन्दगी का हक़ अदा नहीं हो रहा है। जब मनुष्य का हृदय इतना शुद्ध और निर्मल हो जाता है तभी अल्लाह उसके बारे में कह सकता है कि अपने बन्दे का हमने सब कुछ क्षमा किया। नबी (सल्ल०) के बारे में क़ुरआन ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि अल्लाह ने आपका सब कुछ क्षमा कर दिया है (दे० सूरा अल-फ़तह, आयत 2) फिर भी आप अपने रब से ग़ाफ़िल नहीं हुए। आपको इसी की चिन्ता लगी रहती थी कि अपने रब से अपने गुनाहों और ईमानवालों के गुनाहों को क्षमा कराएँ। भक्ति एवं दास्यभाव के सरल एवं कोमल स्वभाव में कितना सौंदर्य पाया जाता है।

दूसरी 'हदीसों' से मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) प्रत्येक दिन सत्तर-सत्तर और सौ-सौ बार अल्लाह से क्षमा की प्रार्थना करते थे।

1. इस्लाम कहते ही इसे हैं कि आदमी अपने स्वभाव और चरित्र की दृष्टि से उत्तम और पूर्ण बन सके। इस्लाम में मनुष्य से किसी ऐसी बात की माँग नहीं की गई है जो उसकी प्रकृति के विरुद्ध या उसके वास्तविक स्वभाव के प्रतिकूल हो। यदि मनुष्य का स्वभाव ठीक हो और वह विकृत और दूषित न हो तो आदमी अल्लाह का भी हक़ अदा करेगा और अल्लाह के बन्दों के प्रति उसका जो दायित्व होता है उसे भी वह न भूलेगा, उसका व्यवहार सभी के साथ अच्छा होगा।
2. यदि तेरी कृपा न हो तो अच्छे स्वभाव और शालीनता की रक्षा न हो सके। फिर तो मनुष्य का सत्यानाश ही होकर रहे।
3. अर्थात मेरा भरोसा तुझी पर है और मैं तुझसे भलाई की ही आशा रखता हूँ।

और उच्च है। मैं तुझसे क्षमा की प्रार्थना करता हूँ और तेरे ही आगे तौबा करता हूँ।"

और जब आप (सल्ल०) रुकू में जाते तो कहते :

اَللّٰهُمَّ لَكَ رَكَعْتُ وَبِكَ اٰمَنْتُ وَلَكَ اَسْلَمْتُ خَشَعَ لَكَ
سَمْعِیْ وَبَصَرِیْ وَمُخِّیْ وَعَظْمِیْ وَعَصَبِیْ ———

अल्लाहुम-म ल-क र-कअतु व बि-क आमन्तु व ल-क अस्लम्तु ख़-श-अ ल-क समअी व ब-सरी व मुख़्ख़ी व अज़्मी व अ-सबी।

"ऐ अल्लाह! मैं तेरे आगे झुक गया, तुझपर ईमान ले आया, और अपने को तेरी सेवा में अर्पण किया। विनम्रतापूर्वक झुक गए तेरे आगे मेरे कान, मेरे नेत्र, मेरी मज्जा, मेरी हड्डियाँ और मेरे पट्ठे।"

और जब सिर उठाते तो कहते :

اَللّٰهُمَّ رَبَّنَا لَكَ الْحَمْدُ مِلْاَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَا بَيْنَهُمَا
وَمِلْاَ مَا شِئْتَ مِنْ شَیْءٍ بَعْدُ.

अल्लाहुम-म रब्बना ल-कल-हमदु मिलअस्समावाति वल-अरज़ि व मा बै-न-हु-मा व मिल-अ मा शिअ-त मिन शैइन बअ्द।

"ऐ अल्लाह! हमारे रब। तेरे ही लिए प्रशंसा (हम्द) है आकाशों और धरती को और जो कुछ इन दोनों के बीच है उसे भर देनेवाली[1], और इनके सिवा जो तू चाहे उसे भर देनेवाली।"

और जब सजदा करते तो कहते :

اَللّٰهُمَّ لَكَ سَجَدْتُّ وَبِكَ اٰمَنْتُ وَلَكَ اَسْلَمْتُ، سَجَدَ وَجْهِیَ لِلَّذِیْ
خَلَقَهٗ وَصَوَّرَهٗ وَشَقَّ سَمْعَهٗ وَبَصَرَهٗ تَبَارَكَ اللّٰهُ اَحْسَنُ الْخَالِقِيْنَ.

---

1. अर्थात समस्त प्रशंसा का एकमात्र अधिकारी तू ही है। आकाश और धरती तेरी ही प्रशंसा की ध्वनि से गूँज रहे हैं। तेरी जितनी भी प्रशंसा की जाए वह कम ही है।
   यहाँ यह बात भी सामने रहनी चाहिए कि अल्लाह ने हमपर जो उपकार किए हैं उनके प्रति आभार-प्रदर्शन का उत्तम ढंग भी उसका गुणगान अथवा उसकी प्रशंसा ही है।

अल्लाहुम-म ल-क स-जत्तु व बि-क आमन्तु व ल-क अस्लम्तु, स-ज-द वजहि-य लिल्लज़ी ख़-ल-क़-हू व सव्व-रहू व शक़-क़ सम-अहू व ब-स-रहू तबा-र-कल्लाहु अह्सनुल ख़ालिक़ीन।

"ऐ अल्लाह ! मैंने तेरे ही लिए सजदा किया, मैं तुझपर ईमान लाया और अपने को तेरी सेवा में अर्पण किया। मेरा चेहरा उसके आगे सजदे में गिरा जिसने उस (चेहरे को) पैदा किया, उसे रूप प्रदान किया और उसमें कान और नेत्र बनाए। बहुत बरकतवाला है अल्लाह उत्तम सृष्टिकर्त्ता !"

फिर 'तशह्हुद' और सलाम के बीच पढ़ते :

اَللّٰهُمَّ اغْفِرْ لِيْ مَا قَدَّمْتُ وَمَا اَخَّرْتُ وَمَا اَسْرَرْتُ وَمَا اَعْلَنْتُ وَمَا اَسْرَفْتُ
وَمَا اَنْتَ اَعْلَمُ بِهٖ مِنِّيْ، اَنْتَ الْمُقَدِّمُ وَاَنْتَ الْمُؤَخِّرُ لَا اِلٰهَ اِلَّا اَنْتَ۔

अल्लाहुम-मग़फ़िरली मा क़द्दमतु व मा अख़्ख़रतु व मा असरर्तु व मा अअ-लन्तु व मा अस्रफ़तु व मा अन-त अअ-लमु बिही मिन्नी, अन्तल मुक़द्दिमु व अन्तल-मुअख़्ख़िरु ला-इला-ह इल्ला अन-त।

ऐ अल्लाह ! क्षमा कर दे मेरा वह गुनाह जो मैंने पहले किया और जो बाद में किया, जिसे मैंने छिपकर किया और जिसे मैंने प्रत्यक्षतः किया, और जो कुछ मैंने ज़्यादती की और जिसे तू मुझसे ज़्यादा जानता है। तू ही आगे बढ़ानेवाला है और तू ही पीछे हटानेवाला है, कोई इलाह नहीं सिवाए तेरे।[1] —मुसलिम

---

1. इस हदीस में नबी (सल्ल०) की जिन दुआओं का उल्लेख हुआ है उनपर विचार करने से साफ़ मालूम होता है कि ये शब्द किसी पवित्र हृदय से ही निकले हैं। ये बोल उस आत्मा के हैं जिसे सत्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त है, जो ईश-प्रेम में डूबी हुई है, जिसे यह चिन्ता चैन लेने नहीं देती कि स्वामी की जैसी सेवा करनी चाहिए थी वह सेवा नहीं हो सकी, प्रभु का जैसा गुणगान होना चाहिए था वह हुआ नहीं। इस हदीस से जहाँ नबी (सल्ल०) की अन्तर्वेदना जाग्रत रूप में लक्षित होती है और हमें ज्ञान होता है कि हमारी मनोभावना और आन्तरिक दशा क्या होनी चाहिए वहीं इस हदीस से यह भी मालूम होता है कि इस्लाम में 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) का अर्थ कितना व्यापक है। इस हदीस से पता चलता है कि अल्लाह न केवल यह कि सारे संसार का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और पूज्य है बल्कि वही हमारा शासक और स्वामी भी है, हमें अपने जीवन में उसी के आदेशों का पालन करना है और यही जीवन की सफलता का एकमात्र साधन है। हृदय

2. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि एक रात (मेरी आँख खुली तो) मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को बिस्तर पर न पाया, मैं आपको ढूँढ़ने लगी। मेरा हाथ आप (सल्ल०) के पाँव के तलवों पर पड़ा, उस समय आप 'सजदे' में थे और आपके दोनों पाँव खड़े थे (जैसे कि सजदे की दशा में होते हैं) और आप कह रहे थे :

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَعُوْذُ بِرِضَاكَ مِنْ سَخَطِكَ وَبِمُعَافَاتِكَ مِنْ عُقُوْبَتِكَ
وَاَعُوْذُ بِكَ مِنْكَ لَا اُحْصِیْ ثَنَاءً عَلَيْكَ اَنْتَ كَمَا اَثْنَيْتَ عَلٰى نَفْسِكَ

अल्लाहुम-म इन्नी अऊज़ु बिरिज़ा-क मिन स-ख़-ति-क व बिमुआफ़ाति-क मिन उक़ूबति-क व अऊज़ु बि-क मिन-क ला उहसी सनाअन अलै-क अन-त कमा असनै-त अला नफ़सिक।

"ऐ अल्लाह! मैं तेरी अप्रसन्नता से तेरी प्रसन्नता की शरण लेता हूँ,

---

की कोमलता और हृदय में पाई जानेवाली प्रेरणाओं का कोई अर्थ ही नहीं बन पाता जब तक कि हम उन्हें अपने वास्तविक स्वामी की सेवा में अर्पण न कर दें। दास्यभाव और भक्ति-भावना से ही हमें आत्मिक तृप्ति मिल सकती है। हमारे जीवन को एक ऐसी अमर ज्योति की तलाश है जो उसके पथ को आलोकित कर सके। यह अमर ज्योति अपने को ईश्वर समक्ष समर्पण करने के बाद ही प्राप्त होती है। यह हमारी आत्मा का स्वभाव है कि वह अपनी ही सीमा में पूर्ण नहीं हो सकती। उसकी पूर्णता आत्मसमर्पण में है। ईश्वर के लिए मन में पाया जानेवाला दास्यभाव या विनयशीलता और दिल का झुकाव, ये जीवन की उच्चतम उमंगों का सार हैं और प्रिय एवं महान सत्ता के सामीप्य का वास्तविक अभिप्राय भी। हमारे जीवन में वास्तविक सौन्दर्य इन्हीं से आता है। नबी (सल्ल०) ने अपनी 'नमाज़' में विभिन्न समयों में विभिन्न चीज़ें पढ़ी हैं। किसी ने उनमें से किसी चीज़ को अपने लिए ख़ास कर लिया किसी ने किसी चीज़ को। यदि कोई व्यक्ति आपकी सभी दुआओं को याद कर ले और उन्हें बदल-बदलकर पढ़ता रहे तो ज़्यादा अच्छा है। जिस प्रकार विभिन्न समयों में लोग कुरआन की विभिन्न 'सूरतें' और 'आयतें' पढ़ते हैं उसी तरह यदि हम अपनी नमाज़ों में विभिन्न समयों में नबी (सल्ल०) की सिखाई हुई विभिन्न दुआएँ भी पढ़ें तो हमारी 'नमाज़ें' और अधिक स्वभाविक 'इबादत' बन सकती हैं। नमाज़ों के केवल प्रथा मात्र बन जाने का दूसरी बातों के साथ यही भी एक कारण है कि हमने नबी (सल्ल०) की दुआओं में से एक पर बस कर लिया है।

लम्बी दुआएँ नबी (सल्ल०) अधिकतर रात की नफ़्ल नमाज़ों में पढ़ते थे।

और तेरे दण्ड से तेरी क्षमा की शरण लेता हूँ, और तेरी पकड़ से तेरी शरण लेता हूँ। पूर्ण रूप से तेरी प्रशंसा करने का मुझे सामर्थ्य नहीं, तू वैसा ही है जैसा कि तूने अपनी प्रशंसा स्वयं की है।"[1] —मुसलिम

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तकबीर और तिलावत (क़ुरआन-पाठ) के बीच में कुछ मौन रहते थे। मैंने एक दिन कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! मेरे माता-पिता आपपर निछावर ! आप तकबीर और क़ुरआन पाठ के बीच में मौन रहकर क्या पढ़ते हैं? आपने कहा : मैं यह पढ़ता हूँ :

اَللّٰهُمَّ بَاعِدْ بَيْنِيْ وَبَيْنَ خَطَايَايَ كَمَا بَاعَدْتَ بَيْنَ الْمَشْرِقِ وَ
الْمَغْرِبِ اَللّٰهُمَّ نَقِّنِيْ مِنَ الْخَطَايَا كَمَا يُنَقَّى الثَّوْبُ الْاَبْيَضُ مِنَ
الدَّنَسِ، اَللّٰهُمَّ اغْسِلْ خَطَايَايَ بِالْمَآءِ وَالثَّلْجِ وَالْبَرَدِ

अल्लाहुम-म बाइद बैनी व बै-न ख़ताया-य क-मा बा अत-त बैनल मशरिक़ि वल-मग़रिबि। अल्लाहुम-म नक़्क़िनी मिनल ख़ताया कमा युनक़्क़स-सौबुल अब-यज़ु मिनद-द-नसि। अल्लाहुम-मग़सिल ख़ताया-य बिल-माइ वस-सलजि वल-ब-रद।

"ऐ अल्लाह[2] ! मेरे और मेरी ख़ताओं के बीच इतनी दूरी कर दे

---

1. यह हदीस बताती है कि नबी (सल्ल०) किसी हालत में भी बन्दगी के हक़ को नहीं भूलते थे। अल्लाह की महानता और बड़ाई की जो माँग होती है उसकी ओर से कभी असावधान नहीं होते थे।
2. नबी (सल्ल०) ने अपनी नमाज़ में विभिन्न समयों में विभिन्न दुआएँ पढ़ी हैं, साधारणतया लोग तकबीर और क़िरअत (क़ुरआन-पाठ) के बीच सुब्हा-न-क अल्लाहुम-म व बि हमदि-क व तबा-र-कसमु-क व तआला जद्दु-क व ला इला-ह ग़ैरुक। पढ़ते हैं : "हम तेरी तसबीह करते हैं ऐ अल्लाह ! तेरी हम्द (प्रशंसा) के साथ, बरकतवाला है तेरा नाम, उच्च है तेरा गौरव, तेरे सिवा कोई इलाह (इष्ट-पूज्य) नहीं।"

   यह भी उन्हीं ज़िक्रों में से है जो नबी (सल्ल०) अपनी 'नमाज़' में पढ़ते थे। यदि कोई आपकी पढ़ी हुई सारी दुआएँ याद कर ले और उन्हें बदल-बदलकर पढ़े तो ज़्यादा अच्छा है।

जितनी दूरी तूने पूर्व और पश्चिम के बीच रखी है।[1] ऐ अल्लाह ! मुझे ख़ताओं से इस तरह पाक कर दे जिस तरह सफ़ेद कपड़े को मैल से पाक किया जाता है। ऐ अल्लाह ! मेरी ख़ताओं को पानी, बर्फ़ और ओले से धो दे।"[2] —बुख़ारी, मुसलिम

4. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि नबी (सल्ल०) नमाज़ में यह दुआ पढ़ा करते थे :

اَللّٰهُمَّ إِنِّیْ أَعُوْذُ بِكَ مِنْ عَذَابِ الْقَبْرِ وَأَعُوْذُ بِكَ مِنْ فِتْنَةِ الْمَسِيْحِ الدَّجَّالِ وَأَعُوْذُ بِكَ مِنْ فِتْنَةِ الْمَحْيَا وَالْمَمَاتِ. اَللّٰهُمَّ إِنِّیْ أَعُوْذُ بِكَ مِنَ الْمَأْثَمِ وَمِنَ الْمَغْرَمِ.

अल्लाहुम-म इन्नी अऊज़ुबि-क मिन अज़ाबिल-क़बरि व अऊज़ुबि-क मिन फ़ित-नतिल-मसीहिद-दज्जालि व अऊज़ुबि-क मिन फ़ित-नतिल-महया वल-म-माति। अल्लाहुम-म इन्नी अऊज़ुबि-क मिनल मासमि व मिनल मग़रम।

"ऐ अल्लाह ! मैं तेरी पनाह लेता हूँ क़ब्र की यातना से और मैं तेरी पनाह लेता हूँ मसीह दज्जाल के फ़ितने से और मैं तेरी पनाह लेता हूँ जीवन और मृत्यु के सभी फ़ितनों से। ऐ अल्लाह ! मैं तेरी पनाह लेता हूँ गुनाह और क़र्ज़ से।"[3] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात जिस तरह पूर्व से पश्चिम दूर है और पश्चिम से पूर्व, उसी प्रकार मुझे भी ख़ताओं से दूर रख।
2. अर्थात जिस तरह कपड़े का मैल विभिन्न चीज़ों से धोया जाता है उसी तरह तू मेरी ख़ताओं और गुनाहों को अपनी विभिन्न प्रकार की रहमतों और दयालुताओं से धो दे। इसका यह अर्थ भी निकलता है कि ख़ताओं से आदमी जहन्नम का भागी बनता है और जहन्नम में आग और आँच है, तो इसी आँच के सम्बन्ध से पानी, बर्फ़ और ओले का ज़िक्र किया गया। अर्थात मेरी ख़ताओं को अपनी रहमतों से धो दे जो जहन्नम की आग को ठण्डी कर देनेवाली हैं।
3. मुसलिम की एक रिवायत में जिसके रावी हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) हैं, नबी (सल्ल०) ने कहा : "जब तुममें से कोई आख़िरी तशह्हुद पढ़कर निवृत हो तो उसको चार चीज़ों से अल्लाह की पनाह माँगनी चाहिए : जहन्नम की यातना से, क़ब्र की यताना से। ज़िन्दगी और मौत के फ़ितनों से और दज्जाल की बुराई से। इस रिवायत से मालूम हुआ कि इस दुआ के पढ़ने का ख़ास मौक़ा नमाज़ के अन्तिम क़अदा में तशह्हुद के बाद सलाम से पहले है। यह दुआ अत्यन्त व्यापक अर्थ लिए हुए है। इसमें दुनिया और आख़िरत

5. हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल ! मुझे कोई दुआ सिखाइए जिसको मैं अपनी नमाज़ में माँगू। आपने फ़रमाया, कहो :

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ ظَلَمْتُ نَفْسِیْ ظُلْمًا كَثِيْرًا وَّلَا يَغْفِرُ الذُّنُوْبَ اِلَّا اَنْتَ فَاغْفِرْ لِیْ مَغْفِرَةً مِّنْ عِنْدِكَ وَارْحَمْنِیْ اِنَّكَ اَنْتَ الْغَفُوْرُ الرَّحِيْمُ.

अल्लाहुम-म इन्नी ज़लम्तु नफ़सी ज़ुल्मन कसीरवँ वला यग़फ़िरुज़्ज़ुनू-ब इल्ला अन-त फ़ग़फ़िरली मग़फ़िरतम-मिन इन्दि-क वर-हमनी इन्न-क अन्तल ग़फ़ूरुर्रहीम।

"ऐ अल्लाह ! मैंने अपने आपपर बड़ा ज़ुल्म किया, गुनाहों को तेरे सिवा कोई क्षमा करनेवाला नहीं, अपनी विशेष कृपा से मुझे क्षमा कर दे और मुझपर दया कर, बेशक तू क्षमाशील और दयावान है।"[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

6. शद्दाद बिन औस (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) नमाज़ में कहते थे :

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَسْئَلُكَ الثَّبَاتَ فِی الْاَمْرِ وَالْعَزِيْمَةَ عَلَی الرُّشْدِ وَ اَسْئَلُكَ شُكْرَ نِعْمَتِكَ وَحُسْنَ عِبَادَتِكَ وَاَسْئَلُكَ قَلْبًا سَلِيْمًا وَّلِسَانًا صَادِقًا وَّاَسْئَلُكَ مِنْ خَيْرِ مَا تَعْلَمُ وَاَعُوْذُبِكَ مِنْ شَرِّ مَا تَعْلَمُ وَاَسْتَغْفِرُكَ لِمَا تَعْلَمُ.

अल्लाहुम-म इन्नी अस-अलु-कस्सबा-त फ़िल-अमरि वल अज़ीमति अलर्रूशदि व अस-अलु-क शुक-र नेअ्-म-ति-क व हुस-न इबादति-क व

के समस्त दुखों और आपत्तियों से सुरक्षा की अल्लाह से प्रार्थना की गई है।

1. नमाज़ में दुआ का ख़ास मौक़ा नमाज़ के अन्त में सलाम से पहले है। इसलिए अवश्य ही हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने इसी मौक़े के लिए दुआ सिखाने के लिए नबी (सल्ल०) से निवेदन किया होगा और नबी (सल्ल०) ने इसी मौक़े के लिए उन्हें यह दुआ सिखाई होगी। इस दुआ से मालूम हुआ कि आदमी अल्लाह का कितना ही आज्ञाकारी क्यों न हो उसे अपने आपको ख़ताकार ही समझना चाहिए और अल्लाह से क्षमा-याचना करते रहना चाहिए। बन्दा कितनी ही बन्दगी क्यों न करे बन्दगी का हक़ कहाँ अदा होता है।

अस-अलु-क क़ल्बन सलीमवँ व लिसानन सादिक़वँ व अस-अलुक मिन ख़ैरि मा तअ्लमु व अऊज़ु बि-क मिन शर्रि मा तअ्लमु व अस्तग़फ़िरु-क लिमा तअ्लम।

"ऐ अल्लाह! मैं माँगता हूँ तुझसे दीन (धर्म) में स्थिरता और भलाई और मार्गदर्शन पर दृढ़ता तथा साहस, और माँगता हूँ तुझसे तेरी (प्रदान की हुई) नेमतों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञप्ति और तेरी अच्छी इबादत और माँगता हूँ तुझसे चंगा दिल, सच्ची ज़बान, और माँगता हूँ तुझसे वह भलाई जिसका तुझे ज्ञान है, और तेरी पनाह लेता हूँ उस बुराई से जिसका तुझे ज्ञान है, और क्षमा-याचना करता हूँ तुझसे उन गुनाहों की जो तू जानता है।" —नसई

7. अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) तशह्हुद के बाद हमें यह दुआ सिखाते थे :

اَلِّفْ اَللّٰهُمَّ عَلَى الْخَيْرِ بَيْنَ قُلُوْبِنَا وَاَصْلِحْ ذَاتَ بَيْنِنَا وَاهْدِنَا سُبُلَ
السَّلَامِ وَنَجِّنَا مِنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ وَجَنِّبْنَا الْفَوَاحِشَ مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَمَا
بَطَنَ وَبَارِكْ لَنَا فِىْ اَسْمَاعِنَا وَاَبْصَارِنَا وَقُلُوْبِنَا وَاَزْوَاجِنَا وَذُرِّيَّاتِنَا
وَتُبْ عَلَيْنَا اِنَّكَ اَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ وَاجْعَلْنَا شَاكِرِيْنَ لِنِعْمَتِكَ
قَابِلِيْهَا وَاَتِمَّهَا عَلَيْنَا

अल्लिफ़ अल्लाहुम-म अ-लल-ख़ैरि बै-न क़ुलूबिना व असलिह ज़ा त बैनिना वह्दिना सुबुलस्सलामि व नज्जिना मिनज़्ज़ुलुमाति इलन्नूरि व जन्निबनल फ़वाहि-श मा ज़-ह-र मिन्हा व मा ब-त-न व बारिक-लना फ़ी अस्माइना व अबसारिना व क़ुलूबिना व अज़वाजिना व ज़ुर्रिय्यातिना व तुब अलैना इन्न-क अन्तत तव्वाबुर्रहीम व जअ्लना शाकिरी-न लिनिअ्-मति-क क़ाबिलीहा व अतिम्महा अलैना।

"जोड़ दे ऐ अल्लाह हमारे दिलों को भलाई पर और हमारे आपस के सम्बन्धों को ठीक कर। और हमें सलामती की राहों पर चला और हमें अँधेरों से मुक्ति देकर प्रकाश की ओर ले आ और खुले-छिपे अश्लील कर्मों से हमें दूर रख, और हमारे कानों, हमारी आँखों, हमारे

दिलों, हमारी पत्नियों और हमारी सन्तति में बरक़त दे और हमपर कृपा-दृष्टि बनाए रख, तू बड़ा कृपाशील, दयावान है। हमें तू अपनी नेमतों और एहसानों के प्रति कृतज्ञ और उचित रूप से उनका स्वागत करनेवाला बना और नेमतें हमपर पूरी कर।"[1] —अबू दाऊद

8. हज़रत ज़ैद बिन अरक़म (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) हर नमाज़ के बाद कहते थे :

اَللّٰهُمَّ رَبَّنَا وَرَبَّ كُلِّ شَيْءٍ اَنَا شَهِيْدٌ اَنَّكَ اَنْتَ الرَّبُّ وَحْدَكَ لَا
شَرِيْكَ لَكَ. اَللّٰهُمَّ رَبَّنَا وَرَبَّ كُلِّ شَيْءٍ اَنَا شَهِيْدٌ اَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُكَ وَ
رَسُوْلُكَ. اَللّٰهُمَّ رَبَّنَا وَرَبَّ كُلِّ شَيْءٍ اَنَا شَهِيْدٌ اَنَّ الْعِبَادَ كُلَّهُمْ اِخْوَةٌ. اَللّٰهُمَّ
رَبَّنَا وَرَبَّ كُلِّ شَيْءٍ اِجْعَلْنِيْ مُخْلِصًا لَّكَ وَاَهْلِيْ فِيْ كُلِّ سَاعَةٍ مِّنَ الدُّنْيَا
وَالْاٰخِرَةِ يَا ذَا الْجَلَالِ وَالْاِكْرَامِ اِسْمَعْ وَاسْتَجِبْ اَللّٰهُ اَكْبَرُ الْاَكْبَرُ
اَللّٰهُ نُوْرُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ.

अल्लाहुम-म रब्बना व रब-ब कुल्लि शैइन अना शहीदुन अन्न-क अन्तर्रब्बु वह-द-क ला शरी-क ल-क। अल्लाहुम-म रब्बना व रब-ब कुल्लि शैइन अना शहीदुन अन-न मुहम्मदन अब्दु-क व रसूलुक। अल्लाहुम-म रब्बना व रब-ब कुल्लि शैइन अना शहीदुन अन्नल इबा-द कुल्लहुम इख़्वतुन। अल्लाहुम-म रब्बना व रब ब कुल्लि शैइन इजअलनी मुख़लिसल्ल-क व अहली फ़ी कुल्लि साअतिन मिनद्दनया वल आख़ि-रति या ज़ल-जलालि वल इकरामि इस्मअ वस्तजिब अल्लाहु अकबरुल-अकबरु अल्लाहु नूरुस्समावाति वल अर्ज़।

"ऐ अल्लाह ! ऐ हमारे रब ! और हर चीज़ के रब ! मैं इस बात की गवाही देता हूँ कि अकेला तू ही रब है, तेरा कोई सहभागी नहीं। ऐ अल्लाह ! हमारे रब ! और हर चीज़ के रब ! मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) तेरे बन्दे

1. अर्थात हम तुझसे हर भलाई के अभिलाषी हैं। हमें बाह्य एवं आन्तरिक हर प्रकार की नेमतें प्रदान कर; हमें अपना कृतज्ञ बन्दा बना। ऐसा न हो कि तेरी ओर से तो उपकारों की वर्षा हो और हमारी ओर से कृतघ्नता का प्रदर्शन हो। इससे बढ़कर अन्धता और पथभ्रष्टता की बात और क्या हो सकती है कि बन्दा अपने वास्तविक उपकारकर्ता के उपकारों को भुला दे और उसके हक़ का कुछ आदर न करे।

और तेरे रसूल हैं। ऐ अल्लाह ! हमारे रब ! और हर चीज़ के रब ! मैं गवाह हूँ सब बन्दे भाई-भाई हैं। ऐ अल्लाह ! हमारे रब ! और हर चीज़ के 'रब' ! मुझे और मेरे घरवालों को दुनिया और आख़िरत की एक-एक घड़ी के लिए (सदैव के लिए) अपना विश्वासपात्र और वफ़ादार बना ले[1]। ऐ प्रतापवान और उदार ! मेरी प्रार्थना सुन ले और स्वीकार कर। अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह आकाशों और धरती का प्रकाश है।[2] —अबू दाऊद

9. हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मेरा हाथ पकड़कर कहा : ऐ मआज़ ! अल्लाह की क़सम मुझे तुमसे प्रेम है। मैं तुम्हें वसीयत करता हूँ[3] कि हर नमाज़ के बाद यह दुआ अवश्य पढ़ो :

اَللّٰهُمَّ اَعِنِّیْ عَلٰی ذِکْرِكَ وَشُکْرِكَ وَحُسْنِ عِبَادَتِكَ.

अल्लाहुम-म अ-इन्नी अला ज़िकरि-क व शुक्रि-क व हुस्नि इबा-दतिक।

"ऐ अल्लाह ! अपने ज़िक्र, अपने शुक्र और अपनी अच्छी इबादत के सिलसिले में मेरी सहायता कर।"[4] —अहमद, अबू दाऊद, नसई

10. हज़रत सौबान (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सलाम फेरते तो तीन बार इस्तिग़फ़ार (क्षमा याचना) करते[5] फिर प्रार्थना करते :

اَللّٰهُمَّ اَنْتَ السَّلَامُ وَمِنْكَ السَّلَامُ تَبَارَكْتَ وَتَعَالَیْتَ
یَاذَا الْجَلَالِ وَالْاِکْرَامِ.

---

1. अर्थात हमें अपना, केवल अपना और हमेशा के लिए अपना बना ले। मेरी निष्ठा और वफ़ादारी में कभी कोई अन्तर न हो।
2. अर्थात सम्पूर्ण विश्व अल्लाह ही के प्रकाश से प्रकाशमान और स्थिर है। इस विस्तृत विश्व में जहाँ-कहीं कोई सुन्दरता और प्रकाश पाया जाता है, वह किसी भी रूप में क्यों न हो, उसका वास्तविक स्रोत और उदगम अल्लाह के अतिरिक्त और कोई नहीं है। —कुरआन, 24 : 35
3. अर्थात विशेष रूप से मैं उस प्रेम के कारण जो मुझे तुमसे है तुमको यह वसीयत और ताकीद करता हूँ।
4. यह दुआ अत्यन्त संक्षिप्त होने के बावजूद बड़ी महत्वपूर्ण और मनोरम है। इस दुआ में अल्लाह से उन चीज़ों की प्रार्थना की गई है जो जीवन का सार हैं, जिनके बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं रहता और न उसमें कोई आकर्षण शेष रहता है। एक रिवायत में "ऐ अल्लाह !" के बजाय "ऐ रब !" आया है।
5. अर्थात तीन बार "मैं क्षमा का इच्छुक हूँ" कहते।

अल्लाहुम-म अनतस्सलामु व मिन-कस्सलामु तबारक-त व तआलै-त या ज़ल-जलालि वल-इकराम।

"ऐ अल्लाह! तू सलाम (शान्ति-स्वरूप) है और तेरी ही ओर से सलामती है। तू बरकतवाला और उच्च है, ऐ प्रतापवान उदारतावाले!"

—मुसलिम, अबू दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा

11. हज़रत मुग़ीरा बिन शोबा (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) हर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद दुआ करते थे :

لَآ إِلٰهَ إِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ لَهُ الْمُلْكُ وَلَهُ الْحَمْدُ وَهُوَ عَلٰى
كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ. اَللّٰهُمَّ لَا مَانِعَ لِمَا اَعْطَيْتَ وَلَا مُعْطِيَ لِمَا مَنَعْتَ وَ
لَا يَنْفَعُ ذَا الْجَدِّ مِنْكَ الْجَدُّ.

ला-इला-ह इल्लल्लाहु वह-दहू ला-शरी-क-लहू लहुल-मुल्कु व लहुल-हमदु व हु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर। अल्लाहुम-म ला मानि-अ लिमा अअतै-त व ला मुअति-य लिमा मनअ-त व ला यन-फ़उ ज़ल-जद्दि मिन-कल-जद्द।

"अल्लाह के सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं, वह अकेला है कोई उसका सहभागी नहीं, उसी का राज्य है। वही प्रशंसा का अधिकारी है और उसे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है। ऐ अल्लाह! तू जो कुछ प्रदान करे उसे कोई रोक नहीं सकता, और जिस चीज़ के न देने का तू फ़ैसला करे उसे कोई दे नहीं सकता। और किसी प्रतापशाली को उसका प्रताप तेरे मुक़ाबले में कुछ लाभदायक नहीं हो सकता।"[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

12. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि जब नबी (सल्ल०) रात में तहज्जुद पढ़ने खड़े होते तो यह दुआ करते :

اَللّٰهُمَّ لَكَ الْحَمْدُ اَنْتَ قَيِّمُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَنْ فِيْهِنَّ وَلَكَ الْحَمْدُ

1. अमीर मुआविया (रज़ि०) ने हज़रत मुग़ीरा बिन शोबा (रज़ि०) को पत्र लिखा था कि आप मुझे कोई ऐसी बात लिखें जो आपने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुनी हो। इसके उत्तर में हज़रत मुग़ीरा (रज़ि०) ने उपरोक्त दुआ लिखकर भेजी। एक रावी (उल्लेखकर्त्ता) का बयान है कि मैंने अमीर को मिंबर पर बैठकर लोगों को इस दुआ की शिक्षा देते और उन्हें इसकी ओर प्रेरित करते सुना।

اَنْتَ نُوْرُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَنْ فِيْهِنَّ، وَلَكَ الْحَمْدُ اَنْتَ مَلِكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَنْ فِيْهِنَّ. وَلَكَ الْحَمْدُ اَنْتَ الْحَقُّ وَوَعْدُكَ الْحَقُّ وَلِقَاۤؤُكَ حَقٌّ وَّقَوْلُكَ حَقٌّ وَّالْجَنَّةُ حَقٌّ وَّالنَّارُ حَقٌّ وَّالنَّبِيُّوْنَ حَقٌّ وَّمُحَمَّدٌ حَقٌّ وَّ السَّاعَةُ حَقٌّ، اَللّٰهُمَّ لَكَ اَسْلَمْتُ وَبِكَ اٰمَنْتُ وَعَلَيْكَ تَوَكَّلْتُ وَاِلَيْكَ اَنَبْتُ وَبِكَ خَاصَمْتُ وَاِلَيْكَ حَاكَمْتُ فَاغْفِرْ لِيْ مَا قَدَّمْتُ وَمَا اَخَّرْتُ وَمَا اَسْرَرْتُ وَمَا اَعْلَنْتُ وَمَا اَنْتَ اَعْلَمُ بِهٖ مِنِّيْ: اَنْتَ الْمُقَدِّمُ وَاَنْتَ الْمُؤَخِّرُ لَا اِلٰهَ اِلَّا اَنْتَ وَلَا اِلٰهَ غَيْرُكَ.

अल्लाहुम-म ल-कल-हम्दु अन-त क़य्यिमुस्समावाति वल-अरज़ि व मन फ़ीहिन-न, व ल-कल-हम्दु अन-त नूरुस्समावाति वल-अरज़ि व मन फ़ीहिन-न, व ल-कल-हम्दु अन-त मलिकुस्समावाति वल-अरज़ि व मन फ़ीहिन-न व ल-कल- हम्दु अनतल हक़्क़ु व वअ़दु-कल-हक़्क़ु व लिक़ाउ-क़ हक़्क़ुँ व क़ौलु-क हक़्क़ुँ वल-जन्नतु हक़्क़ुँ वन्नारु हक़्क़ुँ वन-नबिय्यू-न हक़्क़ुँ व मुहम्मदुन हक़्क़ुँ वस्साअ़तु हक़्क़ुन। अल्लाहुम-म ल-क अस्लम्तु व बि-क आमनतु व अ़लै-क त-वक्कलतु व इलै-क अ-नबतु, व बि-क ख़ासमतु, व इलै-क हाकम्तु फ़ग़फ़िरली मा क़द्दमतु व मा अख़्ख़रतु व मा अस्ररतु व मा अअ़लनतु व मा अन-त अअ़लमु बिही मिन्नी, अनतल मुक़द्दिमु व अनतल मुअख़्ख़िरु, ला इला-ह इल्ला अन-त व ला-इला-ह ग़ैरुक।

"ऐ अल्लाह ! प्रशंसा (हम्द) तेरे ही लिए है, तू ही क़ायम रखनेवाला है आकाशों और धरती का और उन सबका जो उनमें हैं और प्रशंसा का अधिकारी तू ही है। तू ही प्रकाश है आकाशों और धरती का और उन सबका जो उनमें हैं और प्रशंसा तेरे ही लिए है। तू ही आकाशों और धरती का सम्राट है और जो उनमें हैं उन सबका, प्रशंसा तेरे ही लिए है, तू हक़ (सत्य) है, तेरा वादा हक़ है, (मरने के पश्चात) तेरी मुलाक़ात हक़ है, तेरा कहा हुआ हक़ है, जन्नत हक़ है, (जहन्नम की) आग हक़ है। सारे नबी हक़ हैं, मुहम्मद (सल्ल०) भी हक़ हैं, और वह घड़ी (क़ियामत) हक़ है। ऐ अल्लाह ! मैंने अपने-आपको तुझे सौंपा, तुझपर ईमान लाया, तुझपर भरोसा किया, तेरी ओर रुजू किया, और तेरे ही बल पर मैं (सत्य के विरोधियों से) लड़ा और तुझसे ही फ़ैसला चाहता हूँ। अतः तू क्षमा

कर दे वे सब गुनाह जो मुझसे पहले हुए हों और जो पीछे हुए, जो मैंने छिपकर किए, जो मैंने खुलकर किए और जिनके बारे में तू मुझसे अधिक जानता है। तू ही आगे बढ़ानेवाला है, और तू ही पीछे डालनेवाला है। तू ही इलाह (पूज्य) है तेरे सिवा कोई इलाह नहीं।"[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

13. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) का बयान है कि नबी (सल्ल०) दुआ किया करते थे :

اَللّٰهُمَّ اغْفِرْ لِيْ خَطِيْئَتِيْ وَجَهْلِيْ وَإِسْرَافِيْ فِيْ أَمْرِيْ وَمَا أَنْتَ أَعْلَمُ بِهٖ مِنِّيْ. اَللّٰهُمَّ اغْفِرْ لِيْ جِدِّيْ وَهَزْلِيْ وَخَطَائِيْ وَعَمَدِيْ وَكُلَّ ذٰلِكَ عِنْدِيْ. اَللّٰهُمَّ اغْفِرْ لِيْ مَا قَدَّمْتُ وَمَا أَخَّرْتُ وَمَا أَسْرَرْتُ وَمَا أَعْلَنْتُ وَمَا أَنْتَ أَعْلَمُ بِهٖ مِنِّيْ. أَنْتَ الْمُقَدِّمُ وَأَنْتَ الْمُؤَخِّرُ وَأَنْتَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ.

अल्लाहुम-मग़फ़िरली ख़तीअती व जहली व इसराफ़ी फ़ी अमरी व मा अन-त अअलमु बिही मिन्नी। अल्लाहुम-मग़फ़िरली जिद्दी व हज़ली व ख़ताई व अ-मदी व कुल-ल ज़ालि-क इनदी। अल्लाहुम-मग़फ़िरली मा क़द्दमतु व मा अख़्ख़रतु व मा असर्रतु व मा अअलनतु व मा अन-त अअलमु बिही मिन्नी, अनतल-मुक़द्दिमु व अनतल-मुअख़्ख़िरु व अन-त अला कुल्लि शैइन क़दीर।

"ऐ अल्लाह! क्षमा कर मेरी ख़ता को, नादानी को, कामों में ज़्यादती को और उस (गुनाह) को जिसका ज्ञान तुझे मुझसे बढ़कर है। ऐ अल्लाह! क्षमा कर मेरी उस ख़ता को जिसे मैंने गंभीरता से किया हो और जिसको मैंने हँसी-मज़ाक़ में किया हो और जिसको भूल-चूक

---

1. इमाम नव्वी बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) की रात की दुआओं की विशेषता यह होती थी कि आप उसमें अल्लाह के हक़ों को स्वीकार करते, उसके सच्चा होने का इक़रार करते और उसकी शुभ-सूचनाओं और डरावों को याद करते, मृत्यु के पश्चात जीवित होने को और जन्नत और जहन्नम के सत्य होने की पुष्टि करते थे। इस तरह की एक दुआ मोजम कबीर और मुस्तदरक में हज़रत ज़ैद बिन साबित से भी उल्लिखित है। हज़रत ज़ैद (रज़ि०) का बयान है कि नबी (सल्ल०) ने यह दुआ सिखाई थी और उन्हें हुक्म दिया था कि उसे अपने घरवालों को सिखाओ और प्रत्येक दिन उन्हें इसकी ओर प्रेरित करते रहो।

में किया हो और जिसे जानते-बूझते किया हो, और ये सब ख़ताएँ मेरे पास हैं। ऐ अल्लाह ! क्षमा कर वे सब गुनाह जो मैंने पहले किए और जो बाद में किए, जो मैंन छिपकर किए और जो मैंने खुलकर किए, और जिसके बारे में तू मुझसे ज़्यादा जानता है। तू ही आगे बढ़ानेवाला है और तू ही पीछे डालनेवाला है, और तुझे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।"
—बुख़ारी, मुसलिम

प्रातः समय और सायंकाल की दुआएँ

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अपने असहाब (साथियों) को सिखाते थे कि जब तुममें से किसी की सुबह हो तो उसे कहना चाहिए :

اَللّٰهُمَّ بِكَ اَصْبَحْنَا وَبِكَ اَمْسَيْنَا وَبِكَ نَحْيَا وَبِكَ نَمُوْتُ وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُ

अल्लाहुम-म बि-क अस बहना व बि-क अम सैना व बि-क नह्या व बि-क नमूतु व इलैकल मसीर।

"ऐ अल्लाह तेरी सहायता से हमने सुबह की, और तेरी ही सहायता से हमने शाम की, और तेरी ही सहायता से हम जीवित हैं और तेरे ही आदेश के अधीन हमारी मृत्यु है और तेरी ही ओर पहुँचना है।"

और इसी तरह जब वह शाम करे तो कहे :

اَللّٰهُمَّ بِكَ اَمْسَيْنَا وَبِكَ اَصْبَحْنَا وَبِكَ نَحْيَا وَبِكَ نَمُوْتُ وَاِلَيْكَ النُّشُوْرُ

अल्लाहुम-म बि-क अमसैना व बि-क अस् बहना व बि-क नह्या व बि-क नमूतु व इलैकन्नुशूर।

"ऐ अल्लाह ! तेरी ही मदद से हमने शाम की, और तेरी ही मदद से हमने सुबह की, और तेरी ही सहायता से हम जीवित हैं और तेरे ही फ़ैसले के अधीन हमारी मृत्यु है और तेरे ही पास फिर उठकर हाज़िर होना है।"[1]
—अबू दाऊद, तिरमिज़ी

---

1. मानव-जीवन में सुबह और शाम का आना बड़ा महत्व रखता है। समय की विभिन्नता जीवन को उकताहट से छुटकारा दिलाती है। मानव को अल्लाह की इस कृपा की

2. हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि०) का बयान है कि नबी (सल्ल०) जब रात को अपने बिछौने पर जाते तो अपना हाथ कपोल के नीचे रख लेते फिर कहते :

اَللّٰهُمَّ بِاسْمِكَ اَمُوْتُ وَاَحْيٰى.

अल्लाहुम-म बिसमि-क अमूतु व अह्या।

"ऐ अल्लाह ! तेरे ही नाम से मेरी मृत्यु भी सम्बद्ध है और जीवन भी"

और जब सोकर उठते तो कहते :

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِىْ اَحْيَانَا بَعْدَ مَا اَمَاتَنَا وَاِلَيْهِ النُّشُوْرُ.

अल्हम्दु-लिल्लाहिल्लज़ी अहयाना बअ़-द मा अमातना व इलैहिन्नुशूर।

" 'हम्द' (प्रशंसा) उस अल्लाह के लिए है जिसने हमें मृत्यु में ग्रस्त लेने के पश्चात हमें जीवन दिया और उसी की ओर (मरने के पश्चात) दोबारा उठकर उपस्थित होना है।"[1] —बुख़ारी, मुसलिम

अनुभूति होनी आवश्यक है। फिर इसी के साथ ध्यान को इस ओर भी जाना चाहिए कि सुबह और शाम की तरह हमारे जीवन की सुबह और शाम भी अल्लाह के हुक्म के अधीन है। एक दिन दुनिया से हमें प्रस्थान करना है और अल्लाह के पास हाज़िर होना है। कहने के लिए तो यह एक छोटी-सी दुआ है, जिसे सुबह और शाम पढ़ने की शिक्षा नबी (सल्ल०) ने दी है, लेकिन देखिए किस प्रकार जीवन की वास्तविकताओं को इसमें समेट लिया गया है। जीवन को सही दिशा पर रखने के लिए इस दुआ का पढ़ते रहना एक उत्तम उपाय है। यही विशेषता नबी (सल्ल०) की सिखाई हुई सभी दुआओं में पाई जाती है।

1. अर्थात जिस तरह अल्लाह हमें सोते से जगाता है उसी तरह वह हमें मृत्यु के पश्चात दोबारा जीवन प्रदान करेगा। अंततः हमें उसके समक्ष अपने भले-बुरे कर्मों के साथ उपस्थित होना है। क्योंकि मृत्यु और निद्रा में बड़ा साम्य पाया जाता है, इसी लिए निद्रा को मृत्यु कहा गया।

बुख़ारी और मुस्लिम में हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि हर रात को नबी (सल्ल०) जब बिस्तर पर आते तो दोनों हथेलियों को जोड़ लेते और क़ुरआन की सूरा अल-इख़लास, अल-फ़लक़ और अन-नास पढ़कर उनको फूंकते और अपने शरीर पर जहाँ तक हो सकता उन्हें फेर लिया करते थे। इसका आरंभ सिर, चेहरे और शरीर के अगले भाग से करते। ऐसा आप तीन बार करते थे।

3. हज़रत बरा बिन आज़िब (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझसे कहा : जब तुम अपने बिस्तर पर जाओ तो पहले वुज़ू करो जिस तरह नमाज़ के लिए वुज़ू करते हो, फिर अपने दाहिने पहलू लेट जाओ और कहो :

اَللّٰهُمَّ اَسْلَمْتُ نَفْسِىْ اِلَيْكَ وَوَجَّهْتُ وَجْهِىْ اِلَيْكَ فَوَّضْتُ اَمْرِىْ
اِلَيْكَ وَاَلْجَاْتُ ظَهْرِىْ اِلَيْكَ رَهْبَةً وَّرَغْبَةً اِلَيْكَ لَامَلْجَاَ وَلَامَنْجَاَ
مِنْكَ اِلَّا اِلَيْكَ، اٰمَنْتُ بِكِتَابِكَ الَّذِىْ اَنْزَلْتَ وَنَبِيِّكَ الَّذِىْ اَرْسَلْتَ.

अल्लाहुम-म अस्लम्तु नफ़सी इलै-क व वज्जहतु वजही इलै-क फ़व्वज़्तु अमरी इलै-क वल-जातु ज़हरी इलै-क रह-बतन व रग़-बतन इलै-क ला मल-ज अ व ला मन-ज अ मिन-क इल्ला इलै-क, आमनतु बि किताबि-कल्लज़ी अनज़ल-त व नबिय्यि कल्लज़ी अरसल-त।

"ऐ अल्लाह मैंने अपने आपको बिलकुल आपके समक्ष समर्पण कर दिया, अपने मुख को आपकी ओर प्रवृत किया, अपने सब कार्य आपको सौंपे, आप ही को अपना पृष्टपोषक बनाया आपसे डरते और आशा करते हुए। आपके सिवा कोई शरणागार और बचाव नहीं जहाँ आप (की पकड़) से बचकर कोई निकल सके। मैं ईमान लाया आपकी किताब पर जिसे आपने अपने नबी पर उतारा और (ईमान लाया) आपके नबी पर जिसे आपने भेजा।"[1] सो यदि तुम्हारी मृत्यु आ गई तो वह दीने फ़ितरत (स्वाभाविक धर्म) पर होगी। इन शब्दों को (सोने से पहले) अपना अन्तिम बोल बनाओ।[2] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. नबी (सल्ल०) की इस शिक्षा ने आराम और विश्राम को भी किस प्रकार नमाज़ की तरह पवित्र बना दिया। नमाज़ के लिए वुज़ू ज़रूरी है। बिस्तर पर जाने के लिए वुज़ू की शिक्षा दी जा रही है। जिस तरह नमाज़ की आत्मा और वास्तविकता अल्लाह की ओर प्रवृत्ति और अल्लाह की याद है उसी तरह इस दुआ में निद्रा और विश्राम को भी अल्लाह की ओर ध्यान और आत्म-समर्पण से अभिव्यंजित किया गया है।
2. किसी व्यक्ति ने यदि अपने आपको एक अल्लाह के आगे डाल दिया और उसी को अपना संरक्षक और शरणदाता बना लिया और उसके उतारे हुए मार्गदर्शन पर ईमान लाया, तो वास्तव में उसने उस दीन (धर्म) को अपना लिया जो सही और उसका स्वाभाविक दीन है, जिससे विमुख होना वास्तव में अपनी प्रकृति और स्वभाव से

मजलिस की दुआ

1. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) कहते हैं कि बहुत कम ऐसा होता था कि नबी (सल्ल०) किसी मजलिस से उठें और अपने असहाब (साथियों) के लिए यह दुआ न करें :

اَللّٰهُمَّ اَقْسِمْ لَنَا مِنْ خَشْيَتِكَ مَا تَحُوْلُ بِهٖ بَيْنَنَا وَبَيْنَ مَعْصِيَتِكَ وَمِنْ طَاعَتِكَ مَا تُبَلِّغُنَا بِهٖ جَنَّتَكَ وَمِنَ الْيَقِيْنِ مَا تُهَوِّنُ بِهٖ عَلَيْنَا مُصِيْبَاتِ الدُّنْيَا وَمَتِّعْنَا بِاَسْمَاعِنَا وَاَبْصَارِنَا وَقُوَّتِنَا مَا اَحْيَيْتَنَا وَاجْعَلْهُ الْوَارِثَ مِنَّا وَاجْعَلْ ثَارَنَا عَلٰى مَنْ ظَلَمَنَا وَانْصُرْنَا عَلٰى مَنْ عَادَانَا وَلَا تَجْعَلْ مُصِيْبَتَنَا فِىْ دِيْنِنَا وَلَا تَجْعَلِ الدُّنْيَا اَكْبَرَ هَمِّنَا وَلَا مَبْلَغَ عِلْمِنَا وَلَا تُسَلِّطْ عَلَيْنَا مَنْ لَّا يَرْحَمُنَا.

अल्लाहुम-म अक़सिम लना मिन ख़श-यति-क मा तहूलु बिही बै-नना व बै-न मअ्सियति-क व मिन ता-अति-क मा तुबल्लिग़ु-न बिही जन्न-त-क व मिनल-यक़ीनि मा तुहव्विनु बिही अलै-ना मुसीबातिद्दुनया व मत्तिअ्ना बिअस्मा- इना व अबसारिना, व क़ुव्वतिना मा अह्यैतना वजअलहुल-वारि-स मिनना वजअल सा-रना अला मन-ज़-ल-मना वनसुरना अला मन आदाना व ला तजअल मुसीब-तना फ़ी दीनिना व ला तजअलिद्दुनया अक-ब-र हम्मिना व ला मब-ल-ग़ इलमिना व ला तुसल्लित अलैना मल्ला यरहमुना।

"ऐ अल्लाह हमें नसीब कर अपना डर इतना कि जिससे तू हमारे और अपनी अवज्ञा के बीच आड़े आए और अपना आज्ञापालन इतना कि जिससे तू हमें अपनी जन्नत में पहुँचा दे और विश्वास इतना कि जिससे तू दुनिया की मुसीबतों को हमारे लिए तुच्छ बना दे। और जब तक हमें

विमुख होना है, इस हदीस में जिस दुआ की शिक्षा दी गई है उसमें उस हृदय-स्थिति और मनोभाव का प्रदर्शन हुआ है जो एक ईश-भक्त व्यक्ति का मनोभाव होना चाहिए। यदि उसी पर मनुष्य की मृत्यु आ जाए तो निश्चय ही उसकी मृत्यु उसके अपने स्वाभाविक धर्म पर होगी।

जीवित रख हमें हमारे कानों, हमारी आँखों, और हमारी शक्ति से सम्पन्न रख और इन्हें अन्त तक बाक़ी रख। और हमारे बदला लेने के आवेश के रुख को उन्हीं की ओर रख जो हमपर ज़ुल्म करें। और जो हमारी दुश्मनी पर तत्पर हों उनपर हमें प्रभुत्व प्रदान कर और हमारे दीन (धर्म) को हानि पहुँचानेवाली चीज़ों से हमें सुरक्षित रख और संसार को हमारी सबसे बड़ी चिन्ता और हमारे ज्ञान की पहुँच न बना। और हमपर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त न कर जो हमपर दया न करे।"[1] —तिरमिज़ी

सफ़र की दुआ

1. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) जब सफ़र पर जाते समय ऊँट पर सवार होते तो तीन बार "अल्लाहु अकबर" (अल्लाह सबसे बड़ा है)[2] कहते, इसके पश्चात कहते :

سُبْحَانَ الَّذِىْ سَخَّرَ لَنَا هٰذَا وَمَا كُنَّا لَهٗ مُقْرِنِيْنَ وَاِنَّا اِلٰى رَبِّنَا لَمُنْقَلِبُوْنَ،
اَللّٰهُمَّ اِنَّا نَسْئَلُكَ فِىْ سَفَرِنَا هٰذَا الْبِرَّ وَالتَّقْوٰى وَمِنَ الْعَمَلِ مَا تَرْضٰى. اَللّٰهُمَّ

1. एक रिवायत में है कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) किसी मजलिस से उठने का इरादा करते तो अन्त में कहते थे :
सुब्हा-न-क अल्लाहुम-म व बि-हमदि-क, अश-हदु अल्ला-इला-ह इल्ला अन-त, अस्तग़फ़िरु-क व अतूबु इलैक।
"महिमावान है तू ऐ अल्लाह! हम्द (प्रशंसा) है तेरे लिए। मैं गवाही देता हूँ कि तेरे सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं। मैं तुझसे क्षमा का इच्छुक हूँ और तेरे आगे तौबा करता हूँ।"
किसी मजलिस से उठने पर आदमी यदि लम्बी दुआ न पढ़ सके तो यह संक्षिप्त दुआ ही पढ़ ले। नबी (सल्ल०) की सिखाई हुई दुआएँ यदि कोई समझ-बूझकर पढ़े तो वे उसके जीवन को बदलने और सुधारने के लिए काफ़ी हैं।
2. इसमें इस बात की ओर संकेत मिलता है कि मनुष्य को हर ऊँचाई पर अल्लाह की उच्चता और उसकी बड़ाई का ध्यान होना चाहिए। ऊँट क्या इस समय तो कितने ही लोग तेज़ रफ़्तार वायुयान में सवार होकर आकाश में तैरते हैं लेकिन ऐसे लोग बहुत कम हैं जो इस अवसर पर अल्लाह की बड़ाई और उसकी उच्चता का स्मरण करते हों।

هَوِّنْ عَلَيْنَا سَفَرَنَا هٰذَا وَاطْوِ لَنَا بُعْدَهُ. اَللّٰهُمَّ اَنْتَ الصَّاحِبُ فِى السَّفَرِ وَ الْخَلِيْفَةُ فِى الْاَهْلِ وَالْمَالِ. اَللّٰهُمَّ اِنِّىْ اَعُوْذُ بِكَ مِنْ وَعْثَاءِ السَّفَرِ وَكَآبَةِ الْمَنْظَرِ وَسُوْءِ الْمُنْقَلَبِ فِى الْمَالِ وَالْاَهْلِ.

सुब्हानल्लज़ी सख़्ख़-र-ल-ना हाज़ा व मा कुन-ना लहू मुक़रिनी-न व इन्ना इला रब्बिना ल-मुंक़लिबू-न। अल्लाहुम-म इन्ना नस्अलु-क फ़ी स-फ़-रिना हाज़ल बिर-र वत्तक़्वा व मिनल अ-मलि मा तरज़ा। अल्लाहुम-म हव्विन अलैना स-फ़-रना हाज़ा व अतवि-लना बुअदहू। अल्लाहुम-म अन-तस्साहिबु फ़िस्स-फ़रि वल-ख़लीफ़तु फ़िल-अहलि वल-माल। अल्लाहुम-म इननी अऊज़ुबि-क मिन वअसाइस्स-फ़-रि व कआ बतिल मंज़रि व सूइल-मुंक़-ल-बि फ़िल-मालि वल-अहलि।

"महिमावान है वह जिसने हमारे लिए इस (सवारी) को काम में लगाया, और हम इसे बस में करने की शक्ति नहीं रखते थे; और निश्चय ही हम अपने रब की ओर लौटनेवाले हैं।[1] ऐ अल्लाह! अपने इस सफ़र में हम तुझसे नेकी, तक़्वा (ईश-भय) और उस कर्म के लिए प्रार्थना करते हैं जो तेरी प्रसन्नता का कारण हो। ऐ अल्लाह! इस सफ़र को हमारे लिए आसान कर दे और इसकी दूरी को कम कर दे। ऐ अल्लाह! तू ही इस सफ़र में साथी है और हमारे पीछे तू ही हमारे घरवालों और माल के लिए हमारा स्थानापन्न है।[2] ऐ अल्लाह! मैं सफ़र की मशक़्क़त और कष्ट से और दुखद दृश्य से और इस बात से कि लौटकर मैं माल और परिवार को बुरी दशा में देखूँ, तेरी पनाह चाहता हूँ।"

और जब आप (सफ़र से) वापस होते उस समय भी ये शब्द कहते और इनमें इतना और बढ़ाते :

آئِبُوْنَ. تَائِبُوْنَ، عَابِدُوْنَ لِرَبِّنَا حَامِدُوْنَ.

आइबू-न, ताइबू-न, आबिदू-न, लिरब्बि-न हामिदून।

---

1. अर्थात जिस प्रकार आज हम सफ़र कर रहे हैं उसी तरह एक दिन हमें एक दूसरा सफ़र भी करना है और वह है संसार से अल्लाह की ओर हमारा प्रस्थान। इस महत्वपूर्ण सफ़र से आदमी को किसी हाल में भी ग़ाफ़िल नहीं रहना चाहिए।
2. अर्थात तू ही उनका संरक्षक है।

"हम वापस लौटनेवाले हैं, तौबा करनेवाले हैं, इबादत करनेवाले हैं और अपने रब की हम्द (प्रशंसा) करनेवाले हैं।"[1] —मुसलिम

2. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) जब किसी व्यक्ति को रुख़सत करते तो कहते :

أَسْتَوْدِعُ اللّٰهَ دِيْنَكَ وَأَمَانَتَكَ وَاٰخِرَ عَمَلِكَ.

अस्तौदिउल्ला-ह दी-न-क व अमा-न-त-क व आख़ि-र अ़-म-लि-क।

---

1. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) का बयान है कि नबी (सल्ल०) जब किसी युद्ध या हज और उमरा के सफ़र से वापस होते तो मार्ग के प्रत्येक उच्च स्थान पर से गुज़रते हुए तीन बार अल्लाहु अकबर (अल्लाह सबसे बड़ा है) कहते और उपरोक्त दुआ पढ़ते थे (बुख़ारी, मुसलिम)। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि एक व्यक्ति ने आकर कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! मैं सफ़र के लिए बिलकुल तैयार हूँ। आप मुझे कुछ वसीयत कर दें। आपने कहा : "अल्लाह का डर रखना और जब किसी ऊँचे स्थान पर चढ़ना तो तकबीर (ईश-महानता का वर्णन) कहना।" (अहमद, तिरमिज़ी)

हज़रत कअब बिन मालिक की एक रिवायत से मालूम होता है कि आप (सफ़र से) वापस आकर मसजिद में दो रक्अत नफ़्ल नमाज़ अदा करते थे। सफ़र में साधारणतया आदमी बेइतमिनानी की हालत में होता है, लेकिन सफ़र में नबी (सल्ल०) की जो हृदय-स्थिति होती थी उसका अनुमान किसी हद तक उन शब्दों के द्वारा लगाया जा सकता है जो सफ़र में आपके मुख से निकले हैं—

हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जब किसी लड़ाई से या हज या उमरा से वापस होते तो हर ऊँची ज़मीन पर तीन बार अल्लाहु अकबर (अल्लाह सबसे बड़ा है) कहते और फिर कहते :

ला-इला-ह इल्लल्लाहु वह-दहू ला शरी-क लहू लहुल-मुल्कु व लहुल-हम्दु व हु-व अ़ला कुल्लि शैइन क़दीर। आइबू-न, ताइबू-न, आबिदू-न, साजिदू-न, लिरब्बिना हामिदून। स-द-क़ल्लाहु वअ़-दहू व न-स-र अ़ब-दहू व ह-ज़-मल अहज़ा-ब व-ह-दहू।

"अल्लाह के सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं। वह एक है, उसका कोई सहभागी नहीं। राज्य उसी का है, प्रशंसाएँ उसी के लिए हैं और उसे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है। हम लौटनेवाले हैं, तौबा करनेवाले हैं, इबादत (बन्दगी) करनेवाले हैं, सजदा करनेवाले हैं, अपने रब की हम्द (प्रशंसा) करनेवाले हैं। अल्लाह ने अपना वादा सच्चा कर दिखाया और अपने बन्दे की मदद की और अकेले ही जत्थों को परास्त किया।"

(बुख़ारी, मुसलिम)

"मैंने तुम्हारे दीन (धर्म), तुम्हारी अमानत, और तुम्हारे अन्तिम कर्म को अल्लाह को सौंपा।"[1] —तिरमिज़ी, अबू दाऊद, इब्ने माजा

खाने की दुआ

1. हज़रत अबू सईद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) जब कुछ खाते-पीते तो कहते :

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِیْ اَطْعَمَنَا وَسَقَانَا وَجَعَلَنَا مِنَ الْمُسْلِمِیْنَ۔

अल्हम्दु लिल्लाहिल-लज़ी अत-अ-मना व सक़ाना व ज-अ-लना मिनल मुस्लिमीन।

"हम्द (प्रशंसा) का अधिकारी वह अल्लाह है जिसने हमें खिलाया-पिलाया और हमें फ़रमाँबरदारों में से बनाया।"[2]

—अबू दाऊद, तिरमिज़ी

दुख के समय की दुआ

1. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) परेशानी (दुख) के समय यह कहते थे :

لَآ اِلٰہَ اِلَّا اللّٰہُ الْعَظِیْمُ الْحَلِیْمُ. لَآ اِلٰہَ اِلَّا اللّٰہُ رَبُّ الْعَرْشِ الْعَظِیْمِ
لَآ اِلٰہَ اِلَّا اللّٰہُ رَبُّ السَّمٰوٰتِ وَرَبُّ الْاَرْضِ رَبُّ الْعَرْشِ الْکَرِیْمِ.

ला-इला-ह इल्लल्लाहुल-अज़ीमुल-हलीम, ला-इला-ह इल्लल्लाहु-रब्बुल अरशिल अज़ीम, ला-इला-ह इल्लल्लाहु रब्बुस्समावाति व रब्बुल अर्ज़ि व रब्बुल अर्शिल करीम।

"कोई इलाह (इष्ट-पूज्य) नहीं अल्लाह के सिवा जो महिमावान और

---

1. एक रिवायत में आता है कि नबी (सल्ल०) जब किसी मुसाफ़िर को रुख़सत करते तो उसका हाथ अपने हाथ में ले लेते और उस समय तक न छोड़ते जब तक स्वयं वह व्यक्ति न छोड़ता। (तिरमिज़ी)
2. ज़ाहिरी नेमतों के साथ सबसे बड़ी आत्मिक नेमत को भी याद किया कि अल्लाह ने इस्लाम जैसी दौलत प्रदान की है। इस नेमत पर अल्लाह के आगे कृतज्ञतायुक्त भावनाएँ प्रस्तुत न की जाएँ तो यह सबसे बड़ी अकृतज्ञता है।

सहनशील है, कोई इलाह (इष्ट-पूज्य) नहीं अल्लाह के सिवा जो महान सिंहासन का स्वामी है, कोई इलाह नहीं अल्लाह के सिवा जो आकाशों का रब है, धरती का रब है और प्रतिष्ठित सिंहासन का स्वामी है।"[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

कुछ व्यापक दुआएँ

1. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) अधिकतर यह दुआ करते थे :

اَللّٰهُمَّ اٰتِنَا فِي الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّفِي الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّقِنَا عَذَابَ النَّارِ.

अल्लाहुम-म आतिना फ़िद्दुनया ह-स-न-तवँ व फ़िल आख़ि-रति ह-स-न-तवँ व क़िना अज़ाबन्नार।

"ऐ अल्लाह ! हमें प्रदान कर दुनिया में भलाई और आख़िरत में भलाई, और हमें (जहन्नम की) आग की यातना से बचा।"[2]

—बुख़ारी, मुसलिम, अबू दाऊद

2. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) कहते थे :

اَللّٰهُمَّ اِنِّيْ اَعُوْذُ بِكَ مِنَ الْعَجْزِ وَالْكَسَلِ وَالْجُبْنِ وَالْهَرَمِ وَالْبُخْلِ وَ اَعُوْذُ بِكَ مِنْ عَذَابِ الْقَبْرِ وَاَعُوْذُ بِكَ مِنْ فِتْنَةِ الْمَحْيَا وَالْمَمَاتِ.

---

1. ग़म और परेशानी की हालत में अल्लाह की बड़ाई और महिमा को याद करना समयानुकूल है। एक दूसरी रिवायत में भी आया है कि जब आपको कोई चिन्ता होती थी तो आकाश की ओर सिर उठाकर कहते : **सुब्हानल्लाहिल अज़ीम** "महिमावान है अल्लाह बड़ाईवाला।" और जब दुआ और रुदन में तल्लीनता बढ़ जाती तो कहते : **या हैयु या क़य्यूम**। "ऐ सजीव ! ऐ चिरस्थायी" — तिरमिज़ी
एक रिवायत में है कि विकलता और दुख की दशा में कहते : **या हैयु या क़य्यूमु बिरहमति-क अस्तग़ीसु**
"ऐ सजीव ! ऐ जगत को सँभालनेवाले तेरी रहमत (दयालुता) से मेरी फ़रियाद है।"
2. यह दुआ क़ुरआन मजीद से उद्धृत है। (दे० सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-201) यह दुआ अत्यन्त व्यापक है, इसमें दुनिया और आख़िरत की समस्त भलाइयों को समेट लिया गया है।

अल्लाहुम-म इन्नी अऊज़ुबि-क मिनल-इ़जज़ि वल-कसलि वल-जुबुनि वल-ह-र-मि वल-बुख़लि व अऊज़ु बि-क मिन अज़ाबिल क़बरि व अऊज़ु बि-क मिन फ़ित-नतिल महया वल-ममात।

"ऐ अल्लाह! मैं तेरी पनाह लेता हूँ असमर्थता और आलस्य, कायरता और अत्यन्त बुढ़ापे और निर्बलता से और कृपणता से और तेरी पनाह माँगता हूँ क़ब्र की यातना से और तेरी पनाह माँगता हूँ जीवन और मृत्यु के फ़ितने से।"[1] —बुख़ारी, मुसलिम

3. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कहा करते थे :

اَللّٰهُمَّ اَصْلِحْ لِيْ دِيْنِيَ الَّذِيْ هُوَ عِصْمَةُ اَمْرِيْ وَاَصْلِحْ لِيْ دُنْيَايَ الَّتِيْ
فِيْهَا مَعَاشِيْ وَاَصْلِحْ لِيْ اٰخِرَتِيَ الَّتِيْ فِيْهَا مَعَادِيْ وَاجْعَلِ الْحَيٰوةَ
زِيَادَةً لِّيْ فِيْ كُلِّ خَيْرٍ وَّاجْعَلِ الْمَوْتَ رَاحَةً لِّيْ مِنْ كُلِّ شَرٍّ.

अल्लाहुम-म असलिहली फ़ी दीनियल्लज़ी हु-व इ़स्मतु अमरी व असलिह ली दुनया-यल्लती फ़ीहा मआशी व असलिह ली आख़िरति-यल्लती फ़ीहा मआदी वज-अ़लिल-हया-त ज़िया-द-तल्ली फ़ी कुल्लि ख़ैरिवँ वज अ़लिल मौ-त रा-ह-तल्ली मिन कुल्लि शर्र।

"ऐ अल्लाह! ठीक कर दीन (धर्म) को जो मेरे कामों और मामलों का संरक्षक है[2], और ठीक कर मेरी दुनिया को जिसमें मेरा रहना-सहना है, और ठीक कर मेरी आख़िरत को जहाँ मुझे लौटकर जाना है, और मेरे जीवन को हर नेकी में बढ़ा और मृत्यु के लिए प्रत्येक बुराई से

---

1. मतलब यह है कि हर फ़ितना और परीक्षा में तू मेरी सहायता कर और मुझे गुमराही और विनाश से बचा।
2. दीन के द्वारा हमारे अस्तित्व, माल आदि हर चीज़ की रक्षा होती है। हमारा दीन स्वयं हमारा रक्षक है। दीन ने हर एक के हक़ निर्धारित किए हैं। दीन (धर्म) के ठीक होने से आदमी हर प्रकार की तबाही और बरबादी से सुरक्षित रहता है। किसी का यह कथन कितना सही है कि जितनी रक्षा मुसलमानों ने इस्लाम की की है उससे कहीं अधिक स्वयं इस्लाम ने उनकी की है।

आराम का कारण बना।"[1] —मुसलिम

4. हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आप कहा करते थे :

اَللّٰهُمَّ اِنِّيْ اَسْئَلُكَ الْهُدٰى وَالتُّقٰى وَالْعَفَافَ وَالْغِنٰى.

अल्लाहुम-म इन्नी अस-अलु-कलहुदा वत्तुक़ा वल अफ़ा-फ वल-ग़िना

"ऐ अल्लाह! मैं तुझसे माँगता हूँ—मार्गदर्शन, तक़वा (ईश-भय) संयम और निरपेक्षता।" —मुसलिम

5. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) इस प्रकार दुआ किया करते थे :

رَبِّ اَعِنِّيْ وَلَا تُعِنْ عَلَيَّ وَانْصُرْنِيْ وَلَا تَنْصُرْ عَلَيَّ وَامْكُرْ لِيْ وَلَا تَمْكُرْ عَلَيَّ وَاهْدِنِيْ وَيَسِّرِ الْهُدٰى لِيْ وَانْصُرْنِيْ عَلٰى مَنْ بَغٰى عَلَيَّ رَبِّ اجْعَلْنِيْ لَكَ شَاكِرًا لَكَ ذَاكِرًا لَكَ رَاهِبًا لَكَ مِطْوَاعًا لَكَ مُخْبِتًا اِلَيْكَ اَوَّاهًا مُنِيْبًا رَبِّ تَقَبَّلْ تَوْبَتِيْ وَاغْسِلْ حَوْبَتِيْ وَاَجِبْ دَعْوَتِيْ وَثَبِّتْ حُجَّتِيْ وَ سَدِّدْ لِسَانِيْ وَاهْدِ قَلْبِيْ وَاسْلُلْ سَخِيْمَةَ صَدْرِيْ.

रब्बि अ-इन्नी व ला तुइन अलै-य वनसुरनी व ला तनसुर अलै-य वम कुरली व ला तम्कुर अलै-य वहदिनी व यससिरिल-हुदा ली, वनसुरनी अला मम-बग़ा अलै-य, रब्बिज-अलनी ल-क शाकिरल-ल-क ज़ाकिरल-ल-क राहिबल-ल-क मितवाअल-ल-क मुख़बितन इलै-क अव्वाहम-मुनीबन रब्बि तक़ब्बल तौबती वग़सिल हौबती व अजिब दअ्वती व सब्बित हुज्जती व सद्दिद लिसानी वहदि क़लबी वस्लुल सख़ी-म-त सदरी।

"ऐ रब! मेरी सहायता कर, मेरे विरुद्ध किसी की सहायता न कर, मुझे विजय प्रदान कर और मेरे विरुद्ध किसी को विजय प्रदान न कर। मेरे लिए गुप्त उपाय कर और मेरे विरुद्ध किसी के लिए गुप्त उपाय न

1. अर्थात मेरी मृत्यु मेरे हक़ में अच्छी सिद्ध हो। मृत्यु मेरे लिए हर प्रकार के फ़ितनों और बुराइयों से बचने का साधन बने और वह हमें शाश्वत सुख और शान्ति से परिचित करा सके।

कर, और मुझे मार्ग दिखा और सीधे मार्ग पर चलना मेरे लिए सुगम कर दे, और उसके विरुद्ध मेरी सहायता कर जिसने मुझपर ज़्यादती की है। ऐ रब ! बना मुझे अपना कृतज्ञ, अपना ज़िक्र करनेवाला, अपने (रब) से डरनेवाला, अपना आज्ञाकारी, अपनी विनम्रता प्रकट करनेवाला और अधिक आहें भरनेवाला और प्रवृत होनेवाला। रब मेरी तौबा क़बूल कर, मेरे गुनाह को धो डाल, मेरी दुआ क़बूल कर, मेरी दलील और हुज्जत (तर्क) को बाक़ी रख, मेरी जिह्वा को ठीक रख और मेरे हृदय को मार्ग दिखा और मेरे सीने (दिल) की कालिमा को निकाल दे।"[1]

—तिरमिज़ी, अबू दाऊद, इब्ने माजा

6. हज़रत इब्ने अम्र बिन आस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) दुआ करते थे :

اَللّٰهُمَّ اِنِّىٓ اَعُوْذُ بِكَ مِنْ قَلْبٍ لَّا يَخْشَعُ وَمِنْ دُعَآءٍ لَّا يُسْمَعُ وَمِنْ نَّفْسٍ لَّا تَشْبَعُ وَمِنْ عِلْمٍ لَّا يَنْفَعُ اَعُوْذُ بِكَ مِنْ هٰٓؤُلَآءِ الْاَرْبَعِ.

अल्लाहुम-म इन्नी अऊज़ु बि-क मिन क़लबिल-ला यख़-शउ। व मिन दुआइल ला यस-म-उ व मिन नफ़सिल ला-तश-ब-उ व मिन इ़लमिल ला-यन-फ़-उ, अ-ऊज़ु बि-क मिन हाउ-लाइल अर-ब-अ।

"ऐ अल्लाह ! मैं तेरी पनाह माँगता हूँ ऐसे दिल से जिसमें विनम्रता न हो और ऐसी दुआ से जो सुनी न जाए और ऐसे जी से जो तृप्त न हो और ऐसे ज्ञान से जो लाभदायक न हो, मैं इन चारों से तेरी पनाह माँगता हूँ।"[2]

—तिरमिज़ी, नसई

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कहते थे :

---

1. अर्थात मुझमें वे समस्त वाह्य और आन्तरिक गुण पैदा कर दे जो तुझे प्रिय हैं। मुझे जीवन की वह सभी पावनता प्राप्त हों जो तेरे आज्ञाकारी बन्दों की सबसे मूल्यवान निधि हैं।
2. मालूम हुआ कि सफल व्यक्ति वही है जो व्यर्थ बातों से दूर रहता है, जो व्यर्थ कामों में अपना समय नष्ट नहीं करता, जिसका दिल नर्म, अल्लाह के आगे झुका हुआ हो, जिसका मन अधीर न हो और जो धैर्यवान और अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी हो।

اَللّٰهُمَّ إِنِّيْ أَعُوْذُ بِكَ مِنَ الشِّقَاقِ وَالنِّفَاقِ وَسُوْءِ الْأَخْلَاقِ.

अल्लाहुम-म इन्नी अ-ऊज़ु बि-क मिनश-शिक़ाक़ि वन-निफ़ाक़ि व सूइल-अख़लाक़।

"ऐ अल्लाह! मैं तेरी पनाह माँगता हूँ विरोध से, निफ़ाक़ (कपट नीति) से और बुरे स्वभाव से।" —अबू दाऊद, नसई

8. हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : दाऊद—उनपर (अल्लाह की) दयालुता और सलामती हो—की दुआओं में से एक दुआ यह है :

اَللّٰهُمَّ إِنِّيْ أَسْأَلُكَ حُبَّكَ وَحُبَّ مَنْ يُّحِبُّكَ وَالْعَمَلَ الَّذِيْ يُبَلِّغُنِيْ حُبَّكَ. اَللّٰهُمَّ اجْعَلْ حُبَّكَ أَحَبَّ إِلَيَّ مِنْ نَّفْسِيْ وَمَالِيْ وَ أَهْلِيْ وَمِنَ الْمَاءِ الْبَارِدِ.

अल्लाहु-म इन्नी अस-अलु-क हुब-ब-क व हुब-ब मैंयुहिब्बु-क वल-अ-म-लल्लज़ी युबल्लिग़ुनी हुब-ब-क। अल्लाहुम्मज-अल हुब-ब-क अ-हब-ब इलै-य मिन-नफ़सी व माली व अहली व मिनल माइल-बारिद।

"ऐ अल्लाह! मैं इच्छुक हूँ तेरे प्रेम का और उनके प्रेम का जो तुझसे प्रेम करते हैं और उस कर्म का जो मुझे तेरे प्रेम तक पहुँचाए। ऐ अल्लाह! तू अपने प्रेम को मेरे लिए प्रिय बना दे मेरे अपने प्राण से बढ़कर, मेरे माल से बढ़कर, मेरे अपने लोगों से बढ़कर और शीतल जल से बढ़कर।[1]

---

1. बन्दे का अल्लाह से नाता केवल शासक और शासित का नहीं है बल्कि अल्लाह की सत्ता बन्दे के लिए एक पूज्य और प्रिय और अभीष्ट सत्ता भी है। क़ुरआन में भी ईमानवालों की यह विशेषता बयान की गई है कि वे अल्लाह से अत्यन्त प्रेम करते हैं। कहा गया : "और जो ईमानवाले हैं, उन्हें तो सबसे बढ़कर प्रेम अल्लाह ही से होता है" (क़ुरआन, 2 : 165)। एक दूसरी जगह कहा गया है : "ऐ ईमान लानेवालो! जो कोई तुममें से अपने दीन से फिरेगा तो वह (जान ले कि) जल्द ही अल्लाह ऐसे लोगों को लाएगा जिनसे उसे प्रेम होगा और उससे उन्हें प्रेम होगा। वे ईमानवालों के लिए नम्र और असत्य मार्गगामियों' के लिए सख़्त होंगे। अल्लाह की राह में जिहाद करेंगे और

और नबी (सल्ल०) जब हज़रत दाऊद (अलै०) की चर्चा करते थे तो कहते थे कि वे बहुत ही बड़े इबादतगुज़ार (उपासक) व्यक्ति थे ।[1] —तिरमिज़ी

9. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने यज़ीद ख़तमी कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) दुआ करते थे :

اَللّٰهُمَّ ارْزُقْنِىْ حُبَّكَ وَحُبَّ مَنْ يَّنْفَعُنِىْ حُبُّهٗ عِنْدَكَ، اَللّٰهُمَّ مَا
رَزَقْتَنِىْ مِمَّا اُحِبُّ فَاجْعَلْهُ قُوَّةً لِّىْ فِيْمَا تُحِبُّ، اَللّٰهُمَّ مَا زَوَيْتَ
عَنِّىْ مِمَّا اُحِبُّ فَاجْعَلْهُ فَرَاغًا لِّىْ فِيْمَا تُحِبُّ.

अल्लाहुम्मर-ज़ुक़्नी हुब-ब-क व हुब-ब मैंयन-फ़उनी हुब-बुहू इन-द-क, अल्लाहुम-म मा र-ज़क़-तनी मिम-मा उहिब्बु फ़ज-अलहु क़ुव्वतल्ली फ़ीमा तुहिब्बु, अल्लाहुम-म मा ज़वै-त अन्नी मिम्मा उहिब्बु फ़ज-अलहु फ़राग़ल्ली फ़ीमा तुहिब्बु ।

किसी मलामत करनेवाले की मलामत से न डरेंगे" (क़ुरआन, 5 : 54) । ईमान और इस्लामी शिक्षा का अन्तिम अभिप्राय अल्लाह से प्रेम है । यही वह चीज़ है जिसे इंजील और क़ुरआन में 'जीवन' कहा गया है । हम हृदय से अल्लाह से प्रेम करें जीवन वास्तव में यही है । हज़रत मसीह (अलै०) से पूछा गया कि तौरात के आदेश में सबसे उच्च आदेश क्या है ? कहा : "अल्लाह का प्रेम सम्पूर्ण हृदय, सम्पूर्ण प्राण, सम्पूर्ण बुद्धि से करना यही सबसे प्रथम और महान आदेश है ।" (मत्ती : 22)

इंजील बरनाबास में है : "तो उस समय युहन्ना ने कहा : हमने जान लिया कि ईमान क्या है ? अल्लाह से प्रेम करना" (89 : 19) ।

1. ज़बूर में उनके जो गीत दिए गए हैं उनसे भी यही बात ज़ाहिर होती है कि हज़रत दाऊद (अलै०) को अपने रब से अत्यन्त प्रेम था और वे बड़े इबादतगुज़ार थे । उदाहरणार्थ ज़बूर (Psalms) के इन वाक्यों को देखिए : "ऐ ख़ुदा तू मेरा ख़ुदा है । मैं दिल से तेरा इच्छुक हूँगा । शुष्क और प्यासी भूमि में जहाँ पानी नहीं मेरी जान तेरी प्यासी और मेरा शरीर तेरा लालायित है । इस तरह मैंने मक़दिस में तुझपर निगाह की, ताकि तेरे सामर्थ्य और वैभव को देखूँ क्योंकि मेरी अनुकम्पा जीवन से उत्तम है । मेरे होंठ तेरी प्रशंसा करेंगे । इसी तरह मैं जीवन भर तुझे मुबारक कहूँगा और तेरा नाम लेकर अपने हाथ उठाया करूँगा । मेरे प्राण मानो मज्जा और चरबी से तृप्त होंगे और मेरा मुख प्रसन्न होंठों से तेरी प्रशंसा करेगा जब मैं बिस्तर पर तुझे याद करूँगा और रात के एक-एक पहर में तुझपर ध्यान करूँगा" (ज़बूर 63 : 1-6) ।

"ऐ अल्लाह ! मुझे अपना प्रेम और उस व्यक्ति का प्रेम प्रदान कर जिसका प्रेम तेरी दृष्टि में मेरे लिए लाभदायक हो। ऐ अल्लाह ! जो कुछ तूने मेरी प्रिय चीज़ों में से दिया है उसे अपने प्रिय कार्यों में मेरा सहायक बना दे। ऐ अल्लाह ! जो कुछ तूने मेरी प्रिय चीज़ों में से रोक रखा है उसे तू मेरे हक़ में उन चीज़ों के लिए निवृति का कारण बना जो तुझे प्रिय हैं।[1] —तिरमिज़ी

10. हज़रत अता बिन साइब (रज़ि०) अपने पिता से रिवायत करते हैं कि उन्होंने कहा कि हज़रत अम्मार विन यासिर (रज़ि०) ने हमें नमाज़ पढ़ाई। उन्होंने नमाज़ को संक्षिप्त किया। कुछ लोगों ने उनसे कहा कि तुमने नमाज़ हल्की पढ़ी और नमाज़ को संक्षिप्त कर दिया। उन्होंने कहा : मुझे इससे कुछ भी हानि नहीं क्योंकि मैंने इस नमाज़ में ऐसी दुआएँ की हैं जिनको मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सुना है। फिर जब वे खड़े हुए तो लोगों में से एक व्यक्ति उनके पीछे हो लिया और वह मेरे पिता थे उन्होंने हज़रत अम्मार (रज़ि०) से वह दुआ पूछी और फिर आए और लोगों को उससे सूचित किया (वह दुआ यह है)।

اَللّٰهُمَّ بِعِلْمِكَ الْغَيْبَ وَقُدْرَتِكَ عَلَى الْخَلْقِ اَحْيِنِيْ مَا عَلِمْتَ الْحَيٰوةَ خَيْرًا لِّيْ وَتَوَفَّنِيْ اِذَا عَلِمْتَ الْوَفَاةَ خَيْرًا لِّيْ. اَللّٰهُمَّ وَاَسْئَلُكَ خَشْيَتَكَ فِي الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ وَاَسْئَلُكَ كَلِمَةَ الْحَقِّ فِي الرِّضَا وَالْغَضَبِ وَاَسْئَلُكَ الْقَصْدَ فِي الْفَقْرِ وَالْغِنٰى وَاَسْئَلُكَ نَعِيْمًا لَا يَنْفَدُ وَاَسْئَلُكَ قُرَّةَ عَيْنٍ لَا تَنْقَطِعُ وَاَسْئَلُكَ الرِّضَاءَ بَعْدَ الْقَضَاءِ وَاَسْئَلُكَ بَرْدَ الْعَيْشِ بَعْدَ الْمَوْتِ وَاَسْئَلُكَ لَذَّةَ النَّظَرِ اِلٰى وَجْهِكَ وَالشَّوْقَ اِلٰى لِقَائِكَ فِيْ غَيْرِ ضَرَّاءَ مُضِرَّةٍ وَّلَا فِتْنَةٍ مُّضِلَّةٍ. اَللّٰهُمَّ زَيِّنَّا بِزِيْنَةِ الْاِيْمَانِ وَاجْعَلْنَا هُدَاةً مُّهْتَدِيْنَ.

अल्लाहुम-म बिइलमिकल-ग़ैबि व क़ुद-र-ति-क अलल-ख़ुलक़ि अहयिनी मा अलि-म-तल हया-त ख़ैरल्ली व त-वफ़्फ़नी इज़ा अलिम तल-वफ़ा-त

1. अर्थात इस दूरी का यह प्रभाव हो कि तेरी इच्छाएँ मुझे प्रिय हो जाएँ। जो तुझे पसन्द है वही मैं भी पसन्द करने लगूँ।

ख़ैरल्ली। अल्लाहुम-म व अस-अलु-क ख़श-य-त-क फ़िल-ग़ैबि वश्शहा-दति व अस-अलु-क कलि-म-तल हक़्क़ि फ़िर्रिज़ा वल-ग़-ज़बि व अस-अलुकल क़स-दफ़िल फ़क़्रि वल-ग़िना व अस-अलु-क नईमल-ला यन-फ़दु व अस-अलु-क क़ुर्र-त ऐनिल्ला तन-क़तिउ व अस-अलुकर्रिज़ा-अ बअदल क़ज़ाइ व अस-अलु-क बरदल-ऐशि बअदल मौति व अस-अलु-क लज़्ज़-तन-न ज़ रि इला वजहि-क वश्शौ-क़ि इला लिक़ाइ-क फ़ी ग़ैरिज़्ज़र्रा-अ मुज़िर्रतिवँ वला फ़ित-नतिम मुज़िल्लह। अल्लाहुम-म ज़ैयिन्ना बिज़ीनतिल ईमानि वज-अलना हु-दा-तम- महदिय्यीन।

"ऐ अल्लाह ! अपने परोक्ष ज्ञान के वसीले से और अपनी सामर्थ्य के वसीले से जो तुझे अपनी सृष्टि पर प्राप्त है मुझे उस समय तक जीवित रख जब तक जीवन तेरे ज्ञान में मेरे लिए अच्छा हो और मुझे मृत्यु दे जब मृत्यु तेरे ज्ञान में मेरे लिए अच्छी हो। ऐ अल्लाह ! मैं तुझसे खुले-छिपे हर दशा में तेरा भय माँगता हूँ और मैं तुझसे इसका सवाल करता हूँ कि मुझे सत्य बात कहने का सुयोग प्राप्त हो ख़ुशी में भी और क्रोध की दशा में भी। और मैं तुझसे इसका इच्छुक हूँ कि मध्य मार्ग (सन्तुलित नीति) पर क़ायम रहूँ निर्धनता में भी और सम्पन्न एवं निरपेक्ष अवस्था में भी।[1] और मैं तुझसे ऐसी नेमत का इच्छुक हूँ जो कभी समाप्त न हो और मैं तुझसे आँखों की ऐसी ठंडक का इच्छुक हूँ जो कभी ख़त्म होनेवाली न हो और मैं तुझसे तेरे फ़ैसले के बाद (तेरी) रज़ामन्दी का इच्छुक हूँ[2], मैं तुझसे मृत्यु के पश्चात जीवन-शीतलता का इच्छुक हूँ[3], तुझसे दर्शनानन्द का इच्छुक हूँ कि तेरे मुख की ओर देखूँ और मुझे तुझसे मिलने की ऐसी उत्कट अभिलाषा हो जो हानिकारक न हो और न फ़ितनों में डालनेवाली हो[4], ऐ

1. अर्थात तंगी और ख़ुशहाली प्रत्येक अवस्था में मेरा जीवन सन्तुलित रहे। मैं अनुचित नीति किसी दशा में भी न अपनाऊँ।
2. अर्थात तेरे हुक्म और फ़ैसले पर मैं हर हाल में राज़ी रहूँ। वास्तव में जिसकी मुझे चाह हो वह तेरी ख़ुशी और प्रसन्नता के अतिरिक्त और कुछ न हो।
3. अर्थात मृत्यु के पश्चात वह आराम और आनन्द मेरे हिस्से में आए जिसका तूने अपने ईमानवाले बन्दों से वादा किया है।
4. अर्थात यह उत्कट अभिलाषा ऐसा न हो कि मुझे किसी फ़ितना और गुमराही में डाल

अल्लाह ! हमें ईमान की शोभा से सुशोभित कर[1] और हमें उन लोगों की सीधी राह पर लगा जो (सीधा) मार्ग पाए हुए हैं।"

तौबा और क्षमा याचना

हज़रत अअज़्ज़ मुज़नी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : मेरे दिल पर एक परदा-सा आ जाता है यहाँ तक कि मैं अल्लाह से प्रत्येक दिन सौ बार क्षमा की प्रार्थना करता हूँ। मुसलिम और अबू दाऊद इसके रावी (उल्लेखकर्त्ता) हैं। मुसलिम की एक रिवायत में है कि आपने कहा :

"तौबा करो। मैं अपने रब के आगे अल्लाह की क़सम अपने बरकतवाले और उच्च रब की सेवा में सौ बार तौबा करता हूँ।"[2]

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : अल्लाह की क़सम मैं दिन में सत्तर बार से अधिक अल्लाह से क्षमा-याचना करता हूँ और उसके सामने सेवा में तौबा करता हूँ।[3] —बुख़ारी

दे और मैं तेरे आदेशों से ग़ाफ़िल हो जाऊँ। मुझे वह उत्सुकता और इच्छा चाहिए जिसके कारण मैं ज़्यादा-से-ज़्यादा तेरे आदेशों का पालन कर सकूँ।

1. मालूम हुआ कि ईमान जीवन की शोभा है। ईमान को एक नीरस और शुष्क धारणा वही लोग कह सकते हैं जिन्होंने कभी ईमान का रसास्वादन न किया हो। क़ुरआन से भी इसकी पुष्टि होती है कि ईमान दिलों की शोभा और सौन्दर्य है। एक जगह कहा गया है : "लेकिन अल्लाह ने तुम्हारे लिए ईमान को प्रिय बना दिया और उसे तुम्हारे दिलों में रचा-बसा दिया और कुफ़्र और पापाचार और अवज्ञा को तुम्हारे लिए अप्रिय बना दिया। यही लोग सीधे मार्ग पर चलनेवाले हैं" (क़ुरआन 49 : 6)।
2. इससे मालूम हुआ कि तौबा और क्षमायाचना में आत्मा की घुटन और मलिनता दूर करने की शक्ति पाई जाती है। मनुष्य कितनी ही कोशिश क्यों न करे सांसारिक सम्पर्कों और कार्यों में मन की स्थिति एक समान नहीं रहती। तौबा और क्षमायाचना द्वारा क्षतिपूर्ति की जाती है और वह बादल जो हृदय-आकाश पर आ जाता है, छँट जाता है।
3. मनुष्य जितना ज़्यादा अल्लाह का क़रीबी होता है उतना ही अधिक उसे अल्लाह की बड़ाई का ध्यान रहता है और उतना ही अधिक उसे अपने में त्रुटियाँ दिखाई देती हैं। अपने समस्त अच्छे कर्मों और शुद्ध हृदयता के बावजूद वह अल्लाह के सामने अपने को ख़ताकार ही समझता है।

3. हज़रत इब्ने मसऊद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि जिसने कहा :

اَسْتَغْفِرُاللهَ الَّذِىْ لَآاِلٰهَ اِلَّاهُوَالْحَيُّ الْقَيُّوْمُ وَاَتُوْبُ اِلَيْهِ.

अस्तग़फ़िरुल्लाहल-लज़ी ला-इला-ह इल्ला हुवल-हय्युल-क़य्यूमु व अतूबु इलैहि।

"मैं अल्लाह से क्षमा चाहता हूँ कि उसके सिवा कोई इलाह (इष्ट पूज्य) नहीं वह सजीव एवं शाश्वत है, और उसी के आगे तौबा करता हूँ।"

उसके गुनाह क्षमा कर दिए गए यद्यपि वह युद्ध से (पीठ फेरकर) भागा हो।[1]

—अबू दाऊद, तिरमिज़ी, हाकिम

4. हज़रत अबू हुरैरा रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : क़सम है उसकी जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं! यदि तुम गुनाह न करो तो सर्वोच्च अल्लाह तुम्हें विनष्ट कर दे और (तुम्हारी जगह) ऐसे लोगों को पैदा करे जो गुनाह करके अल्लाह से क्षमा चाहें और अल्लाह उन्हें क्षमा कर दे।[2]

---

1. सच्चे दिल से जब कोई व्यक्ति अपने गुनाहों पर लज्जित होता है और अल्लाह से क्षमा चाहता है तो अल्लाह उसके बड़े-से-बड़े गुनाहों को भी क्षमा कर देता है। एक हदीस में तो यहाँ तक कहा गया है : "गुनाह से तौबा करनेवाला ऐसा है जैसे उसने कोई गुनाह किया ही न था।" (तिरमिज़ी, बैहक़ी : शोबुल ईमान)। गुनहगारों के लिए इस हदीस में बड़ी तसल्ली है। यहाँ यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि यदि किसी ने किसी व्यक्ति को किसी प्रकार की हानि पहुँचाई है तो तौबा और क्षमायाचना के साथ-साथ उसने जो हानि पहुँचाई है उसकी क्षतिपूर्ति की भी पूरी-पूरी कोशिश करे।
2. इस हदीस से ऊपर की हदीस की पुष्टि होती है। इस हदीस में उन लोगों के लिए बड़ी तसल्ली है जो मानवीय दुर्बलता के कारण कोई गुनाह कर बैठें हों और अपने किए पर पश्चात्ताप कर रहे हों। इस हदीस से विदित होता है कि मनुष्य के लिए उच्चता की बात यह नहीं है कि उससे कभी गुनाह न हो, यह विशेषता तो अल्लाह ने फ़रिश्तों को प्रदान की है। मनुष्य के लिए ज़ो चीज़ अभीष्ट है वह यह कि जब कभी उससे कोई भूल हो जाए तो उसे पछतावा हो और वह जल्द से जल्द सँभल जाए। उससे जो हानि स्वयं उसे या दूसरों को पहुँची हो वह उसकी क्षतिपूर्ति की कोशिश करे और अपने को सुधारने में लग जाए। मनुष्य यदि अपनी ग़लती पर सँभल जाता है और अपने को सुधारने और अपनी आत्मा को निखारने की कोशिश में लगा रहता है तो यह इस बात

5. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति क्षमायाचना को अपने ऊपर अनिवार्य कर ले तो अल्लाह उसके लिए हर तंगी से निकलने का मार्ग निकाल देता है और हर ग़म और परेशानी से उसे मुक्ति देता है और उसे ऐसी जगह से और इस तरह रोज़ी पहुँचाता है जिसके बारे में वह सोच नहीं सकता।[1]

—अहमद, अबू दाऊद, इब्ने माजा

6. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हर मनुष्य ख़ताकार है और उत्तम ख़ताकार तौबा करनेवाले हैं।[2]

—तिरमिज़ी, इब्ने माजा, दारमी

7. हज़रत बिलाल इब्ने यसार कहते हैं कि मुझसे मेरे पिता ने बयान किया और उनसे उनके दादा ने बयान किया कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना कि जो व्यक्ति कहे :

अस्तग़फ़िरुल्लाहल-लज़ी ला-इला-ह इल्ला हुवल-हय्युल-क़य्यूमु व अतूबु इलैहि।

का प्रमाण है कि उसकी मूल प्रकृति गन्दी नहीं हुई है। गन्दगी यदि लगी है तो ऊपर ही लगी है। मनुष्य के लिए विनाश और मृत्यु तो यह है कि उसकी प्रकृति और उसके स्वभाव को ही गन्दगी लग जाए और सैकड़ों गुनाहों और अवज्ञा के बावजूद उसे इसका एहसास भी न हो कि वह कितना गिर चुका है।

मनुष्य को अल्लाह ने नेकी और गुनाह दोनों की क्षमता के साथ पैदा किया है। विदित है ऐसे प्राणी से जिसमें नेकी और गुनाह दोनों की सामर्थ्य पाई जाती हो, बेगुनाही (Sinlessness) अभीष्ट नहीं हो सकती। ऐसे प्राणी के लिए बड़ा स्थान यही है कि जब मानवीय दुर्बलता के कारण उससे कोई ग़लती हो जाए तो वह उसपर अड़ा न रहे बल्कि लज्जित हो और अल्लाह से क्षमा की प्रार्थना करे।

1. मालूम हुआ कि क्षमायाचना बहुत-सी परेशानियों और मुसीबतों से मुक्ति पाने का साधन है। कितनी ही परेशानियों का कारण मनुष्य के अपने कर्म ही होते हैं। क्षमायाचना से अल्लाह उसके गुनाहों को क्षमा कर देता है। और इसके परिणामस्वरूप उसकी परेशानियाँ भी दूर हो जाती हैं।
2. ख़ता और ग़लती मनुष्य से होती ही रहती है लेकिन सबसे अच्छे लोग वे हैं जो अपनी ख़ताओं को स्वीकार करते रहते हैं और सदैव अल्लाह से अपनी ख़ताओं की माफ़ी माँगा करते हैं।

> "मैं क्षमायाचना करता हूँ उस अल्लाह से जिसके सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं जो सजीव एवं शाश्वत है और सारे संसार का क़ायम रखनेवाला है, और मैं उसी की ओर पलटता हूँ।"

उसके गुनाह क्षमा कर दिए जाते हैं यद्यपि वह जिहाद से भागा हुआ हो।[1]

—तिरमिज़ी, अबू दाऊद

8. हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) कहते हैं कि हम गिनते थे कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) एक-एक बैठक में सौ बार कहते :

> "ऐ रब! मुझे क्षमा कर दे और मुझपर मेहरबानी कर। निस्संदेह तू सबसे बढ़कर तौबा क़बूल करनेवाला और क्षमा करनेवाला है।"

—अहमद, तिरमिज़ी, अबू दाऊद, इब्ने माजा

---

1. तौबा यदि दिल से की जाए, तो बड़े-से-बड़े गुनाह भी क्षमा हो सकते हैं, यहाँ तक कि उस व्यक्ति की भी माफ़ी हो सकती है जो जिहाद के मैदान से शत्रु को पीठ दिखाकर भागा हो।

   (अबू दाऊद की रिवायत में बिलाल इब्ने यसार की जगह हिलाल बिन यसार आया है।)

अल्लाह का ज़िक्र

अल्लाह की याद और उसका ज़िक्र वास्तव में इस्लाम का मूल आधार है, इसके बिना मनुष्य को वह जीवन प्राप्त ही नहीं होता जो इस्लाम को अभीष्ट है। अल्लाह का स्मरण और उसका ख़याल ही है जो मानव-जीवन को स्थायी रूप से अल्लाह और उसकी बन्दगी के साथ जोड़े रखता है। जिस प्रकार शारीरिक अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि साँस लेने की क्रिया का क्रम निरन्तर चलता रहे, ठीक उसी प्रकार हमारे नैतिक और आध्यात्मिक अस्तित्व के लिए आवश्यक है कि हम हर क्षण अल्लाह की ओर प्रवृत रहें। हमारी जिह्वा सदैव उसके नाम से पावन होती रहे। अल्लाह का ख़याल मन में कुछ इस तरह बस जाए कि वह हमारी चेतना से आगे अचेतना और अचेतन मन तक में उतर जाए। और फिर हमारी गतिविधि, हमारी चाल-ढाल, हमारी बातचीत और हमारी ख़ामोशी, तात्पर्य यह कि हमारी हर चीज़ से इस बात का संकेत हो कि हम एक अल्लाह के बन्दे और उसके ग़ुलाम हैं। उसकी महानता का एहसास हमें ग़ाफ़िल और बेपरवा होने से बाज़ रखे और उसकी ख़ुशी पाने की कामना हर क्षण हमें इस बात का जिज्ञासु बनाए रखे कि किस प्रकार से हम ज़्यादा-से-ज़्यादा अच्छे कर्म कर सकते हैं। हम कोई अच्छा कर्म करें तो हम अल्लाह के आभारी हों और कृतज्ञता दिखलाएँ। दुख और संकट के समय हम उसकी दयालुता के अभिलाषी हों। हर मुसीबत के समय उसी की ओर रुजू करें, गुनाह और बुराई का कोई मौक़ा सामने आए तो हम अल्लाह से डर जाएँ। हमसे कोई अपराध हो जाए तो तुरन्त उससे क्षमा चाहें। हर आवश्यकता और ज़रूरत के समय उससे दुआ माँगें। हर काम अल्लाह के नाम से करें। खाना खाएँ तो अल्लाह का नाम लेकर खाएँ, सोने जाएँ तो अल्लाह को याद करके सोएँ, सोकर उठें तो अल्लाह का नाम लेते हुए उठें। साधारण अवस्था में भी किसी न किसी बहाने से अल्लाह का नाम ज़बान पर आता रहे। यही वास्तव में इस्लामी ज़िन्दगी की जान है।

इस्लामी जीवन की यह माँग है कि अल्लाह की याद आदमी की रग-रग में रच-बस गई हो। इस चिर-स्मरण के बिना हमारी वे इबादतें और उपासनाएँ भी जो विशेष समय में अदा की जाती हैं, कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखा सकतीं। इसलिए क़ुरआन में केवल ज़िक्र की नहीं, बल्कि 'ज़िक्रे कसीर' (अधिक स्मरण)

की ताकीद की गई है । कहा गया है :

"ऐ ईमान लानेवालो ! अल्लाह को अधिक याद करो ।"

—क़ुरआन, 33 : 41

एक दूसरी जगह कहा :

"और अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद करते रहो ताकि तुम सफल हो ।"

—क़ुरआन, 62 : 10

अल्लाह के ज़िक्र के इसी महत्व के कारण पूरे दीन (धर्म) को ज़िक्रे रब कहा गया है :

"और यह कि यदि वे मार्ग पर ठीक-ठीक लग जाते तो हम उन्हें भली-भाँति जलसम्पन्न कर देते ताकि हम उसमें उनकी परीक्षा करें, और जो कोई अपने रब के ज़िक्र से मुँह मोड़ेगा तो वह उसे यातना में चढ़ाता चला जाएगा ।"

—क़ुरआन, 72 : 16-17

ज़िक्र के इसी महत्व के कारण क़ुरआन में ईमानवालों को हुक्म दिया गया है कि वे अल्लाह को याद करते रहें :

"और अपने रब को प्रातःकाल और सन्ध्या समय याद करते रहो, अपने जी में गिड़गिड़ाते और डरते हुए और धीमी आवाज़ के साथ और उन लोगों में से न हो जाओ जो ग़ाफ़िल हैं ।" —क़ुरआन, 7 : 205

अल्लाह के ज़िक्र से ग़ाफ़िल होने को हानि एवं घाटे का कारण बताया गया :

"ऐ ईमानवालो ! तुम्हारे माल तुम्हें अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल न करें, और न तुम्हारी औलाद । और जो कोई ऐसा करेगा, तो ऐसे ही लोग घाटा उठानेवाले हैं ।"

—क़ुरआन, 63 : 9

ईमानवालों के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया :

"और अल्लाह का बहुत अधिक ज़िक्र करनेवाले पुरुष और बहुत अधिक 'ज़िक्र' करनेवाली स्त्रियाँ, —अल्लाह ने उनके लिए क्षमा और बड़ा प्रतिदान तैयार कर रखा है ।"

—क़ुरआन, 33 : 35

कहा गया कि जो बन्दे मुझको याद करेंगे मैं भी उनको याद रखूँगा :

"(मेरे बन्दो !) मुझे याद करो मैं तुमको याद करूँगा, और मेरे कृतज्ञ बनो और कृतघ्नता न दिखाओ ।"

—क़ुरआन, 2 : 152

ज़िक्र को हृदय-परितोष का कारण बताया गया कि जो ईमानवाले हैं

उनकी आत्मा को अल्लाह के ज़िक्र से ही शान्ति और सन्तुष्टि प्राप्त होती है : "ये वे लोग हैं जो ईमान लाए और जिनके दिलों को अल्लाह के ज़िक्र से इतमीनान हासिल होता है। सुन रखो ! अल्लाह की याद से ही दिलों को शान्ति मिलती है।" —क़ुरआन, 13 : 28

इबादत से निवृत्ति के पश्चात विशेष रूप से अल्लाह के ज़िक्र की ताकीद की गई। इसमें इस बात की ओर संकेत है कि अल्लाह का ज़िक्र एक ऐसी इबादत है जिससे किसी दशा में निवृत्ति या अवकाश अपेक्षित नहीं। यह इबादत हर समय जारी रहनी चाहिए और इसे स्थायी रूप से जीवन का जाप बना लेना चाहिए।

"जब तुम नमाज़ अदा कर लो तो अल्लाह का ज़िक्र करो (हर दशा में) खड़े, बैठे और अपने पहलुओं के बल लेटे।"

—क़ुरआन, 4 : 103

जुमा की नमाज़ के बारे में कहा गया :

"फिर जब (जुमा) की नमाज़ समाप्त हो जाए तो धरती में फैल जाओ और अल्लाह का फ़ज़्ल (रोज़ी) तलाश करो, और अल्लाह को अधिक याद करो ताकि तुम सफल हो जाओ।" —क़ुरआन, 62 : 10

हज के बारे में कहा गया :

"फिर जब तुम अपने हज सम्बन्धी कर्मों से निवृत्त हो जाओ, तो अल्लाह का ज़िक्र करो जैसा कि तुम (गर्व से) अपने बाप-दादा का ज़िक्र करते थे बल्कि उससे भी अधिक अल्लाह का ज़िक्र करो।"

—क़ुरआन 2 : 200

क़ुरआन की कतिपय आयतों से ज्ञात होता है कि ऊँचे-से-ऊँचे कर्म और इबादतों का मूल तत्त्व और अभिप्राय अल्लाह का ज़िक्र और उसकी याद ही है। उदाहरणार्थ नमाज़ के बारे में कहा :

"मेरी याद के लिए 'नमाज़' क़ायम करो।" —क़ुरआन, 20 : 14

हज सम्बन्धी इबादतों और कर्मों के बारे में नबी (सल्ल०) कहते हैं :

"अल्लाह के घर (काबा) की तवाफ़ और सफ़ा और मरवा के बीच सई और जमरात की रमी, ये सब चीज़ें अल्लाह के 'ज़िक्र' के लिए निश्चित हुई हैं।" —अबू दाऊद, तिरमिज़ी

जिहाद के बारे में क़ुरआन करीम में कहा गया :

"ऐ ईमान लानेवालो ! जब तुम्हारी मुठभेड़ किसी (दुश्मन के)

गिरोह से हो जाए तो (लड़ाई में) जमे रहो और अल्लाह को अधिक याद करो ताकि तुम सफल हो।" —8 : 45

सूझ-बूझवालों के बारे में बताया गया है कि उनका सोच-विचार अल्लाह की याद से ख़ाली नहीं होता। वे किसी दशा में अल्लाह से ग़ाफ़िल नहीं होते, ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु उन्हें अल्लाह की महानता और उसके न्याय की याद दिलाती रहती है :

"निस्संदेह आकाशों और धरती की बनावट में और रात-दिन के एक-दूसरे के लिए बारी-बारी से आने में बुद्धि रखनेवालों के लिए निशानियाँ हैं। वे (बुद्धि रखनेवाले) जो खड़े, बैठे और लेटे (प्रत्येक दशा में) अल्लाह को याद करते हैं और आकाशों और धरती की बनावट में सोच-विचार करते हैं, (और कहते हैं) : हमारे रब! तूने ये सब व्यर्थ नहीं बनाया है। महिमा हो तेरी! अतः (ऐ रब!) तू हमें आग (जहन्नम) की यातना से बचा ले।" —क़ुरआन, 3 : 190-191

अल्लाह का ज़िक्र और उसकी याद सारे कर्मों की जान है, इसके बिना सारे अमल बेजान हो जाते हैं। इसी बात को एक हदीस में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :

"मआज़ बिन अनस जुहनी कहते हैं कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल०) से पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! जिहाद करनेवालों में सबसे बढ़कर बदला पानेवाला कौन है? आपने कहा : जो उनमें सबसे ज़्यादा अल्लाह को याद करनेवाला है। उसने कहा : रोज़ा रखनेवालों में सबसे ज़्यादा बदला पानेवाला कौन है? कहा : जो उनमें सबसे अधिक अल्लाह को याद करनेवाला है। फिर उस व्यक्ति ने इसी प्रकार नमाज़, हज और सदक़ा अदा करनेवालों के बारे में पूछा और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हर एक का यही उत्तर दिया कि जो उनमें सबसे अधिक अल्लाह को याद करनेवाला हो।" —मुसनद अहमद

अल्लाह के ज़िक्र का महत्व

1. हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा गया कि कौन-सा बन्दा अल्लाह की दृष्टि में क़ियामत के दिन श्रेष्ठ और उच्च होगा? आपने कहा : अल्लाह का अधिक ज़िक्र करनेवाले पुरुष और अधिक ज़िक्र करनेवाली स्त्रियाँ। कहा गया : ऐ अल्लाह के रसूल! क्या

उस व्यक्ति से भी उनका दर्जा बढ़ा हुआ होगा जो अल्लाह के मार्ग में जिहाद करे? आपने कहा : (हाँ) यद्यपि कोई अपनी तलवार काफ़िरों और मुशरिकों में चलाए यहाँ तक कि उसकी तलवार टूट गई और वह स्वयं रक्त से रंजित हो गया फिर भी अल्लाह का ज़िक्र (स्मरण) करनेवाला उससे दर्जे में बढ़कर है।[1]

—अहमद, तिरमिज़ी

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मक्का के रास्ते पर जा रहे थे, आप एक पर्वत पर से गुज़रे जिसे जुमदान[2] कहते थे,

---

1. ज़िक्र या अल्लाह की याद वास्तव में इस्लाम की आत्मा और उसका अन्तिम अभिप्राय है। यही कारण है कि किसी भी बड़े से बड़े कर्म में यदि अल्लाह की याद, उसका प्रेम और उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने की भावना सम्मिलित न हो तो उस कर्म का अल्लाह की दृष्टि में कुछ भी महत्व नहीं है। इसके विपरीत थोड़ा अमल भी यदि पूर्णतः अल्लाह के लिए हो और उसका वास्तविक प्रेरक अल्लाह की याद और उसका प्रेम हो तो इस्लामी दृष्टि से उस अमल का बड़ा महत्व है। अल्लाह के ज़िक्र को हर चीज़ के मुक़ाबले में श्रेष्ठता प्राप्त है। क़ुरआन में कहा गया है : अल्लाह की याद बड़ी चीज़ है (29 : 45)। इस्लाम में ऊँचे से ऊँचे कर्मों का सार और अभिप्राय अल्लाह का ज़िक्र ही है। उदाहरणार्थ नमाज़ के बारे में कहा गया है : "मेरी याद के लिए नमाज़ क़ायम करो" (क़ुरआन, 20 : 14)। जिहाद के बारे में कहा गया है : "ऐ ईमानवालो! जब किसी गिरोह से तुम्हारी मुठभेड़ हो तो (लड़ाई में) जमे रहो और अल्लाह को अधिक याद करो कदाचित तुम सफल हो जाओ" (क़ुरआन, 8 : 45)।
   हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) कहते हैं कि आप (सल्ल०) ने कहा : क्या मैं तुम्हें बताऊँ तुम्हारे वे कर्म जो उत्तम और पवित्रतम हैं तुम्हारे बादशाहों की दृष्टि में और उच्च हैं तुम्हारे दर्जों में और तुम्हारे लिए उत्तम हैं सोना और चाँदी ख़र्च करने से और तुम्हारे लिए उत्तम हैं इससे कि तुम्हारी अपने दुश्मन से मुठभेड़ हो और तुम उनकी गरदनें मारो और वे तुम्हारी गरदनें मारें। सहाबा ने कहा : हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल! आपने कहा : वह अल्लाह का ज़िक्र है। —मालिक, अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने माजा
   अर्थात सदक़ा, ज़िहाद आदि से अल्लाह की याद और ज़िक्र का दर्जा बढ़ा हुआ है।
2. यह एक पहाड़ी का नाम है जो मदीना के निकट एक दिन की दूरी पर है। इसके निकट कोई दूसरा पहाड़ नहीं है। इस पहाड़ी को देखकर आप (सल्ल०) ने एक बड़ी चीज़ की ओर उत्प्रेरित किया, यानी जिस प्रकार यह पहाड़ है, उसी प्रकार अल्लाह को याद करनेवाले लोग भी अकेले होते हैं, जब वे रात के एकांत में अल्लाह को याद कर रहे होते हैं।

आपने कहा : चलो यह जुमदान है, "मुफ़र्रिदून" अग्रसर रहे। लोगों ने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! ये मुफ़र्रिदून कौन लोग हैं? आपने कहा : अल्लाह को अधिक याद करनेवाले पुरुष और अधिक याद करनेवाली स्त्रियाँ।[1] —मुसलिम

3. हज़रत अब्दुल्लाह इब्न बुस्र (रज़ि०) कहते हैं कि एक 'आराबी' (ग्रामीण) नबी (सल्ल०) की सेवा में आया और कहा : कौन-सा आदमी उत्तम है? आपने कहा : आनन्द (और शुभ सूचनाएँ) उसके लिए जिसने लम्बी आयु पाई और अच्छे कर्म किए। उसने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! कौन-सा कर्म उत्तम है? आपने कहा : यह कि तू संसार से इस दशा में विलग हो कि तेरी ज़बान अल्लाह के ज़िक्र से तर हो।[2] —अहमद, तिरमिज़ी

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि अल्लाह कहता है : मैं अपने बन्दे के साथ हूँ जब वह मुझे याद करता है और उसके दोनो होंठ मेरे ज़िक्र से हिलते हैं।[3] —बुख़ारी

5. अबू हुरैरा (रज़ि०) और अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जब भी लोग अल्लाह का ज़िक्र करते हैं तो अवश्य ही फ़रिश्ते उन्हें घेर लेते हैं[4] और रहमत (ईश-दयालुता) उनपर छा जाती

---

1. मुफ़र्रिदून का शाब्दिक अर्थ है अपने आपको सबसे अलग, अकेला और हल्का-फुलका कर लेनेवाले। इससे अभिप्रेत वे लोग हैं जिनकी आत्मा का आहार अल्लाह की याद है। जो सब ओर से कटकर एक अल्लाह के हो गए हों। जिनका उद्देश्य अपने रब की प्रसन्नता के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ नहीं। व्यर्थ कामों से जिन्होंने अपने को आज़ाद कर लिया हो। यही तफ़रीद का सोपान है। इसी को क़ुरआन ने तबत्तुल की संज्ञा दी है। क़ुरआन में है : "और अपने रब का नाम लो और सब कुछ छोड़कर उसी की ओर लग जाओ।" —73 : 8

   'तिरमिज़ी' में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया : "मुफ़र्रिदून वे हैं जो अल्लाह की याद के अभिलाषी और उसपर फ़िदा हैं। अल्लाह की याद उनके दोषों और गुनाहों के भार को उतार डालेगी और वे परलोक में हलके-फुलके होकर आएँगे।
2. अर्थात तू अल्लाह की याद और उसके ज़िक्र से कभी ग़ाफ़िल न हो यहाँ तक कि तेरी मृत्यु आ जाए।
3. अर्थात कोई बन्दा मुझे याद करता है तो उसे मेरा प्रेम, मेरा सामीप्य और मेरा सहयोग प्राप्त होता है। मैं अपने ऐसे बन्दे की ओर से ग़ाफ़िल नहीं होता।
4. कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि अल्लाह की ओर से कुछ फ़रिश्ते इसी काम के

है और उनपर शान्ति अवतरित होती है[1], और अल्लाह उन फ़रिश्तों में उनका ज़िक्र करता है जो उसके निकट है।[2] —मुसलिम

6. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह के ज़िक्र के बिना अधिक बात न किया करो क्योंकि बिना अल्लाह के ज़िक्र के बातचीत की अधिकता कठोर हृदयता है और लोगों में अल्लाह से अधिक दूर वह व्यक्ति है जो हृदय का कठोर है।[3] —तिरमिज़ी

7. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जिस व्यक्ति ने एक बैठक ऐसी गुज़ारी जिसमें उसने अल्लाह

लिए नियुक्त हैं कि वे उन लोगों की खोज में रहें जो अल्लाह का ज़िक्र करते हों। जब वे किसी जगह ज़िक्र करनेवालों को पा लेते हैं तो अपने साथियों को पुकारते हैं कि आओ जिस चीज़ की हमें तलाश थी वह यहाँ मौजूद है। फिर वे जिक्र करनेवालों को अपने परों से ढक लेते हैं और दुनिया के आकाश (निकटवर्ती आकाश) तक फैल जाते हैं।

1. अल्लाह की दयालुता उन्हें घेर लेती है, वे अल्लाह की विशेष दयालुता के अधिकारी हो जाते हैं और अल्लाह उन्हें शान्ति, परितोषनिधि प्रदान करता है। सन्देह और मन की खटक आदि उनके दिल से निकल जाते हैं। यह अल्लाह की ओर से उनके लिए विशेष उपहार होता है। क़ुरआन में भी इस विशेष उपहार का उल्लेख हुआ है। देखिए सूरा 9 : 26, और 48 : 4, 26।
2. यह बन्दे के लिए कितने श्रेय की बात है कि उसका रब उसका ज़िक्र अपने क़रीबी फ़रिश्तों के बीच करे।
3. नम्रता, कोमलता, वेदनशीलता, अनुभूति की सूक्ष्मता आदि वास्तव में हृदय के मौलिक गुण हैं। इन गुणों की सुरक्षा और विकास के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अल्लाह की याद से कभी ग़ाफ़िल न हो। उसकी बातचीत अल्लाह के ज़िक्र से वंचित न हो। मनुष्य के हृदय पर उसके प्रत्येक कथन और कर्म का प्रभाव पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति अल्लाह से ग़ाफ़िल होकर उसके ज़िक्र के बिना ज़बान चलाता रहेगा तो उसके हृदय पर अवश्य ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। उसका हृदय कठोर और प्रकाशहीन हो जाएगा। विदित है कि ऐसा हृदय जो कठोर और शून्य हो जाए अल्लाह की कृपा का कैसे अधिकारी हो सकता है। मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह अपनी बातचीत में अल्लाह के ज़िक्र को सम्मिलित कर ले।

को याद न किया, उसपर अल्लाह की ओर से तबाही छा गई और जो व्यक्ति कहीं लेटा और उसमें उसने अल्लाह को याद न किया, उसपर अल्लाह की ओर से तबाही छा गई।[1] —अबू दाऊद

8. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : जो लोग किसी ऐसी मजलिस से उठें जिसमें उन्होंने अल्लाह को याद नहीं किया तो मानो ये लोग मुरदार गदहे का शव छोड़कर उठे हैं और यह उनके लिए क़ियामत के दिन सन्ताप होगा।[2] —अबू दाऊद, हाकिम

9. हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी सल्ल०) ने कहा : जो व्यक्ति अपने रब को याद करता है और जो याद नहीं करता, उनकी मिसाल ज़िन्दा और मुरदा की-सी है।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात अल्लाह की ओर से असावधान और ग़ाफ़िल होना वास्तव में आदमी के लिए तबाही और बरबादी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जो व्यक्ति अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल हो गया वह मानो लुट गया। 'मुस्लिम' के जीवन की सारी शोभा और बहार अल्लाह के ज़िक्र और उसकी याद से है। अल्लाह के भय, उसकी याद और प्रेम से वह अपने दिल की दुनिया को आबाद रखता है। अल्लाह की महानता के एहसास से उसे इस बात की प्रेरणा मिलती रहती है कि वह हर समय ईश्वर के आगे झुका रहे और उसके आदेशों का आदर करे। उसके प्रभु की प्रियता उसे हर समय अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। अल्लाह को भूल जाने का अर्थ इसके सिवा और क्या हो सकता है कि मनुष्य ने अपना सब कुछ नष्ट कर दिया। उसने अपने उद्यान को उजाड़ डाला। आज यदि उसे इसका एहसास नहीं होता है तो कल क़ियामत में उसे इसका एहसास अवश्य होगा। उस समय वह कहेगा कि क्या अच्छा होता कि जीवन के किसी क्षण को भी नष्ट न करता।
2. मतलब यह कि अल्लाह की याद और उसके ज़िक्र के बिना यदि कोई मजलिस समाप्त हो गई तो मानो मनुष्य अशुभ और अमंगलकारी स्थान से उठा है। उसने वहाँ से अपने लिए सन्ताप ही संचित किया है। आनन्द की सामग्री नहीं जुटाई है।
3. इस हदीस में एक महान वास्तविकता का उल्लेख हुआ है। इस हदीस से मालूम हुआ कि अल्लाह की याद और उसका स्मरण ही वास्तविक जीवन है। अल्लाह से ग़ाफ़िल मनुष्य वास्तव में जीवन से वंचित है। अल्लाह ही जीवन का उद्गम है, उसकी याद से मनुष्य को वास्तविक जीवन प्राप्त होता है। वास्तविक जीवन इसके सिवा और क्या है कि आदमी अपने ख़ुदा को पा ले और पूर्णतः उससे प्रेम करने लगे। नबी जिस ज्ञान

10. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सब समयों में अल्लाह को याद करते थे (किसी समय भी आप अल्लाह को भूलते नहीं थे)। —अबू दाऊद

ज़िक्र के कुछ पवित्र शब्द

1. हज़रत समुरा बिन जुनदुब (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : समस्त बोलों में चार सर्वश्रेष्ठ हैं :

और धर्म से सम्मानित होते हैं उससे इसी जीवन का मार्गदर्शन मिलता है। तौरात में है : "मनुष्य केवल रोटी से नहीं जीवित रहता बल्कि उस कलिमा से जीवित रहता है जो अल्लाह की ओर से आता है।" अर्थात् अल्लाह के उतारे हुए आदेश के द्वारा ही मनुष्य को वास्तविक जीवन का आभास हो सकता है। इंजील बरनाबास का यह वाक्य कितना मूल्यवान है : "शरीर भोजन से जीवित रहता है और आत्मा को ज्ञान और प्रेम से जीवन मिलता है" (11 : 106)। यूहुन्ना की इंजील में है : "अल्लाह की रोटी वह है जो आकाश से उतरकर संसार को जीवन प्रदान करती है" (27 : 6)। हज़रत मसीह (अलै०) दुआ करते हैं : "हमारी प्रतिदिन की रोटी (Daily bread) हमें प्रतिदिन प्रदान कर" (मत्ती 6 : 12)। हज़रत मसीह उपमाओं में बातें करते थे। रोटी से अभिप्रेत यहाँ वही चीज़ है जिससे मनुष्य को वास्तविक जीवन प्राप्त होता है।

क़ुरआन में है : "क्या वह व्यक्ति जो मुरदा था फिर हमने उसे जीवन प्रदान किया और उसके लिए प्रकाश कर दिया, जिसे लिए हुए वह लोगों में चलता-फिरता है, वह उस व्यक्ति की तरह हो सकता है जो अँधेरों में पड़ा हुआ हो, उनसे निकलनेवाला ही न हो" (6 : 122)। इस आयत से भी मालूम हुआ कि ईमानवालों को जो जीवन प्राप्त होता है ईमान रहित लोग उससे वंचित होते हैं।

अल्लाह का ज़िक्र, उसकी तसबीह और हम्द वास्तविक जीवन का कारण बल्कि सर्वथा जीवन की हैसियत रखते हैं। इसी लिए जन्नत में विशेष रूप से यह चीज़ जन्नतवालों को आत्मिक आहार के रूप में ठीक उसी प्रकार प्राप्त होगी जिस प्रकार बिना किसी कठिनाई और तकलीफ़ के हम साँस लेते हैं। साँस लेने की क्रिया में दूसरी कोई चीज़ रुकावट नहीं बनती। हम कोई भी काम कर रहे होते हैं साँस की क्रिया चलती रहती है। ठीक इसी प्रकार तसबीह और तहमीद (ईश्वर का गुणगान) में कोई भी चीज़ बाधक नहीं होगी। हदीस में है : "जन्नतवालों को तसबीह और तहमीद (गुणगान एवं ईश प्रशंसा) का इलहाम (दैवी प्रेरणा) होता रहेगा, जैसे साँस का इलहाम होता है।" —मुसलिम, अबू दाऊद

'सुबहानल्लाह'[1], 'अलहम्दुलिल्लाह'[2], 'ला इला-ह इल्लल्लाह'[3], और 'अल्लाहु

---

1. "सुबहानल्लाह" (महिमावान है अल्लाह!) तसबीह का कलिमा है। इससे अभिप्राय अल्लाह की बड़ाई और उच्चता को स्वीकार करना है। कुरआन मजीद ने अपनी सात सूरतों को तसबीह के कलिमे से आरंभ किया है। उदाहरणार्थ सूरा अल-हदीद इस आयत से शुरू होती है : "अल्लाह की तसबीह की हर उस चीज़ ने जो आकाशों और धरती में है और वह प्रभुत्वशाली और तत्वदर्शी है।" ऐसा कलिमा जिससे अल्लाह की बड़ाई और महानता का प्रदर्शन होता हो श्रेष्ठ और उत्तम 'कलिमा' ही होगा।
2. "अलहम्दुलिल्लाह" (हम्द अल्लाह के लिए है) कलिम-ए-तहमीद अर्थात अल्लाह की प्रशंसा और गुणगान और उसके आगे कृतज्ञता प्रकाशन का कलिमा है। कुरआन करीम का प्रारंभ तहमीद ही के कलिमे से हुआ है। किसी बन्दे के लिए इससे बढ़कर श्रेष्ठता की बात और क्या हो सकती है कि उसकी ज़बान पर अपने रब की 'हम्द' और प्रशंसा का कलिमा हो। अल्लाह की दी हुई नेमतों और उसके उपकारों के प्रति कृतज्ञताप्रकाशन का भी इससे अच्छा उपाय दूसरा नहीं हो सकता कि हम दिल और ज़बान से उसके गुणों को स्वीकार करें। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने कहा है : "हम्द कृतज्ञा का आधार है।" फिर तहमीद के कलिमे को दुआ भी कहा गया है। हदीस में 'अलहम्दु लिल्लाह' को श्रेष्ठतम दुआ क़हा गया है। प्रत्यक्ष रूप में इसमें याचना नहीं पाई जाती, लेकिन कुरआन से ज्ञात होता है कि अल्लाह हम्द और कृतज्ञता-विज्ञप्ति पर बन्दे को और अधिक प्रदान करेगा (दे० कुरआन, 14 : 7)। इसलिए इस कलिमा को श्रेष्ठतम दुआ भी कह सकते हैं। फिर जिस प्रकार केवल अल्लाह की याद को ज़िक्र नहीं कहते जब तक इसके साथ अल्लाह का प्रेम सम्मिलित न हो; ठीक उसी प्रकार केवल अल्लाह की प्रशंसा को हम्द नहीं कहा जा सकता। इसमें अल्लाह का प्रेम भी सम्मिलित होना अनिवार्य है (दे० इब्न क़ैयिम की किताब अलफ़वाइद, पृ० 183)। और प्रेम-याचना के उच्चतम प्रकारों में से है।

   हम्द के कलिमे की श्रेष्ठता और महत्व का अनुमान इससे भी किया जा सकता है कि जगत् की प्रत्येक वस्तु अल्लाह की हम्द और गुणगान में लगी हुई है (दे० कुरआन, 15 : 44)। विश्व के निर्माण और विश्व के प्रत्येक नियम से अल्लाह के सौन्दर्य और प्रताप का ही प्रदर्शन होता है। जन्नतवालों की भी अन्तिम पुकार तहमीद (गुणगान) का कलिमा ही होगा। (दे० कुरआन, 10 : 10)
3. "ला इला-ह इल्लल्लाह" (अल्लाह के सिवा कोई 'इलाह' नहीं)। यह 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) का कलिमा है। यह कलिमा इस बात को व्यक्त करता है कि अल्लाह के सिवा और कोई ईश्वर नहीं है और न ईश्वरत्व के गुणों से सम्पन्न है। उसके सिवा जो हैं उसी के पैदा किए हुए और उसी के दास हैं। अल्लाह के सिवा कोई नहीं जिसे

शासक और पूज्य एवं उपास्य स्वीकार किया जाए। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह एक अल्लाह का बन्दा बनकर रहे। अपनी बन्दगी की उमंगों को उसी की सेवा में प्रस्तुत करे। अल्लाह के सिवा कोई ऐसी सत्ता नहीं है जिसे मनुष्य अपना आराध्य, अपनी समस्त कामनाओं का केन्द्र और अपना हाकिम और स्वामी बनाए।

तौहीद की शिक्षा अगले धर्मग्रन्थों में भी मिलती है। उदाहरणार्थः "सुन ऐ इसराईल की सन्तान! हमारा प्रभु एक ही प्रभु है। तू अपने सारे दिल और सारे प्राण और सारी शक्ति से प्रभु अपने ईश्वर से प्रेमभाव रख। और ये बातें जिनका आदेश आज मैं तुझे देता हूँ तेरे हृदय पर अंकित रहें। और तू इन्हें अपनी सन्तान के हृदयांकित करना और घर बैठे और राह चलते और लेटे और उठते समय इनका ज़िक्र किया करना" (व्यवस्था विवरण, 6 : 4-9)। एक दूसरी जगह आया है : "तुझको किसी दूसरे पूज्य की उपासना नहीं करनी होगी। इसलिए कि ख़ुदावन्द (प्रभु) जिसका नाम ग़ैयूर (स्वाभिमानी) है वह ग़ैयूर (स्वाभिमानी) प्रभु है भी" (निर्गमन 34 : 14)। एक दूसरी जगह कहा गया है : "तू अपने लिए कोई गढ़ी हुई मूर्ति न बनाना, न किसी चीज़ का रूप बनाना जो आकाश में या धरती पर या धरती के नीचे जल में है। तू उनके आगे सजदा न करना और न उनकी इबादत करना क्योंकि मैं ख़ुदावन्द तेरा ग़ैयूर (स्वाभिमानी) ख़ुदा हूँ। (निर्गमन 20 : 4-5)

वेद में है : य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीना विचर्षणिः।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ (ऋग्वेद, 6/45/6)

"जो ईश्वर एक ही है तू उसी की स्तुति कर, वह सब मनुष्यों का सर्वद्रष्टा सर्वज्ञ है, सुख की वर्षा करनेवाला सम्पूर्ण संसार का एकमात्र अधिपति है।"

अयमेक इत्थ पुरूरु चष्टे वि विश्पतिय
तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि। (ऋ० 8/25/16)

"वह एक ही ईश सारी प्रजा का स्वामी है। वही सबका कुशल निरीक्षक है। हम अपने कल्याण के लिए उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।"

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥
न पञ्चमो न षष्टः सप्तमो नाप्युच्यते ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक-एक वृदेक एव ॥
सर्वे अस्मिवन् देवा एक व तो भवन्ति ॥ —अथर्व० 13/4/14-21

अकबर'[1] । —मुसलिम

2. हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) एक वृक्ष के पास से गुज़रे जिसके पत्ते शुष्क थे, आपने उसपर अपनी लाठी मारी तो पत्ते झड़ पड़े, आपने कहा : अलहम्दुलिल्लाह, सुबहानल्लाह ला इला-ह इल्लल्लाह और अल्लाहु अकबर गुनाहों को इस तरह झाड़ देते हैं जिस तरह इस वृक्ष के पत्ते झड़ते हैं ।[2] —तिरमिज़ी

जो ईश्वर को एकमात्र एक जानता है, उसे कीर्ति, यश, जल, आकाश और ब्राह्मतेज, अन्न और खान-पान के सब भोग प्राप्त होते हैं। वह द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ट, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम है—ऐसा नहीं कहा जाता है। वह सबको देखता है—जो जीवित हैं और जो नहीं। वह यह इकट्ठा हुआ सामर्थ्य है, वह एक है, एकमात्र व्यापक प्रभु केवल एक ही है। समस्त देव उसमें वर्तमान होते हैं।

तौहीद का प्रभाव वेदों के अतिरिक्त दूसरे हिन्दू ग्रन्थों में भी मिलता है। उदाहरणार्थ शतपथ ब्राह्मण में है :

योन्यां देवतामूपास्ते न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम् ।" (14/4/2/22)

"जो दूसरे में ईश्वर बुद्धि करके उपासना करता है वह कुछ भी नहीं जानता इसलिए वह विद्वानों के बीच में पशु के समान है।"

1. **अल्लाहु अकबर** (अल्लाह सबसे बड़ा है)। यह तकबीर (ईश-महानता) का कलिमा है। इस कलिमे से अल्लाह की बड़ाई व्यक्त करते हैं। सब ईश्वर के पैदा किए हुए हैं। ईश्वर से बढ़कर किसी की सत्ता नहीं है। ये चारों कलिमे सुबहानल्लाह, **अलहम्दुलिल्लाह, ला इला-ह इल्लल्लाह, अल्लाहु अकबर** वास्तव में ईशगुणगान हैं। इनके द्वारा अल्लाह की महानता उसके प्रताप और उसके एक होने की उद्घोषणा होती है। यही विशेष कारण है कि हदीसों में इन कलिमों की श्रेष्ठता का वर्णन हुआ है बल्कि यहाँ तक कहा गया है कि जन्नत चटियल मैदान है उसके वृक्ष और उद्यान यही कलिमे हैं।

   एक रिवायत में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : "मेरा सुबहानल्लाह, अल-हम्दुल्लिाह, ला इला-ह इल्लल्लाह और अल्लाहु अकबर कहना मेरी दृष्टि में उन सब चीज़ों से अधिक प्रिय है जिनपर सूर्य उदय होता है (अर्थात संसार और उसकी सारी वस्तुओं से अधिक प्रिय मुझे ये कलिमे हैं)।"

2. मनुष्य यदि समझ-बूझकर चेतनावस्था में इन कलिमों को पढ़े तो उसके विचारों और कर्मों में क्रान्ति आ सकती है और उसके गुनाह क्षमा हो सकते हैं। गुनाहों और खताओं के कारण जो भी उसे आध्यात्मिक और नैतिक हानि पहुँची होगी इन कलिमों

3. हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा गया कि कौन-सा कलाम (वाणी) सर्वश्रेष्ठ है? आपने कहा : जिसको अल्लाह ने अपने फ़रिश्तों के लिए चुना है :

سُبْحَانَ اللّٰهِ وَبِحَمْدِهٖ۔

"सुबहानल्लाहि व बिहम्दिही"[1] —मुसलिम

4. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि दो 'कलिमे' (शब्द) हैं ज़बान पर हल्के-फुल्के, मीज़ान (तुला) में बहुत भारी, कृपानिधान (ईश्वर) को अत्यन्त प्रिय :

سُبْحَانَ اللّٰهِ وَبِحَمْدِهٖ سُبْحَانَ اللّٰهِ الْعَظِيْمِ۔

"सुबहानल्लाहि व बिहम्दिही सुब्हानल्लाहिल अज़ीम"[2]

—बुख़ारी, मुसलिम, तिरमिज़ी

5. हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने अम्र (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : हम्द आधार है कृतज्ञता का, जिस बन्दे ने अल्लाह की हम्द (प्रशंसा) नहीं की उसने उसके आगे कृतज्ञता नहीं दिखलाई। —अल-बैहक़ी

के द्वारा उनकी क्षतिपूर्ति हो सकती है। मनुष्य के जीवन को बदलने और उसे निर्मल्यता प्रदान करने के लिए ये कलिमे काफ़ी हैं।

1. सुबहानल्लाहि व बिहम्दिही—हम अल्लाह की तसबीह और हम्द करते हैं, का अर्थ वही है जो सुबहानल्लाह व अलहम्दुलिल्लाह का है। इस कलिमे के महत्व और इसकी महानता के कारण इसकी गणना उत्तम कलिमों में की गई है और इसे विशेष रूप से फ़रिश्तों का जाप ठहराया गया है। एक रिवायत में तो यहाँ तक आया है कि जिस व्यक्ति ने प्रतिदिन सौ बार 'सुबहानल्लाहि व बिहम्दिही' कहा उसकी ख़ताएँ माफ़ कर दी जाएँगी, यद्यपि वह सुमद्र के झाग के बराबर हों। समझकर चेतनावस्था में जो व्यक्ति दिन में कई बार यह पवित्र कलिमा पढ़ेगा, संभव नहीं कि उसके जीवन पर इसका प्रभाव न पड़े और यह कलिमा उसके चरित्र को बदल न डाले।
2. ये कलिमे अल्लाह को बहुत ही पसन्द हैं। ये कलिमे नेकी के पलड़े को अधिक झुकानेवाले होंगे। फिर इन समस्त विशेषताओं के बावजूद न इन 'कलिमों' का पढ़ना कुछ मुश्किल है और न इन्हें याद रखना कठिन है।

6. हज़रत मआज़ इब्ने अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि अल्लाह ऐसे बन्दे से प्रसन्न रहता है जो खाना खाकर अल्लाह की हम्द (प्रशंसा) करे और पानी पीकर अल्लाह की हम्द करे। —मुसलिम, तिरमिज़ी

7. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि मैं तुम्हें वह कलिमा बताऊँ जो जन्नत के ख़ज़ानों में से है? मैंने कहा : हाँ, अवश्य बताइए। आपने कहा :

لَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ إِلَّا بِاللّٰهِ

"ला हौ-ल व ला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाह"[1] —मुसलिम, बुख़ारी

8. हज़रत अबू अय्यूब अनसारी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि जिसने दस बार पढ़ा :

لَا إِلٰهَ إِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهُ لَا شَرِيكَ لَهُ لَهُ الْمُلْكُ وَلَهُ الْحَمْدُ وَ
هُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ

ला इला-ह इल्लल्लाहु वह्दहू ला शरी-क लहू, लहुल मुल्कु व लहुल हम्दु वहु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर

"अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं, वह अकेला है, उसका कोई सहभागी नहीं, राज्य उसी का है, वह हम्द (प्रशंसा) का अधिकारी है और उसे हर चीज़ की

---

1. ला हौ-ल वला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाह (कोई उपाय और शक्ति अल्लाह के बिना प्रभावकारी नहीं हो सकती)। अल्लाह सहायक न हो तो किसी तरह मनुष्य गुनाहों से बच नहीं सकता। और यदि अल्लाह उसे शक्ति न दे तो मनुष्य के बस में नहीं कि वह अल्लाह की बन्दगी और आज्ञापालन का कर्तव्य निभा सके। इस कलिमा का अभिप्राय यह है कि मनुष्य सारी शक्तियों का स्रोत अल्लाह ही को समझे। केवल अपने बल से मनुष्य किसी चीज़ पर भी क़ाबू नहीं पा सकता। इस कलिमे को यदि समझकर पढ़ा जाए तो इससे आदमी को अपनी विवशता का ज्ञान होगा। गर्व और अभिमान उससे जाता रहेगा या किसी दूसरे पर भरोसा करने के बदले वह सदैव एक अल्लाह पर भरोसा करेगा। एक रिवायत में है कि जब बन्दा यह कलिमा पढ़ता है तो अल्लाह कहता है : "मेरा बन्दा आज्ञाकारी बन गया, उसने इस्लाम का मार्ग ग्रहण कर लिया।" (अल-बैहक़ी)

सामर्थ्य प्राप्त है।"

वह उस व्यक्ति जैसा होगा जिसने हज़रत इसमाईल की औलाद के चार गुलाम आज़ाद किए।[1] —बुख़ारी, मुसलिम

9. हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : स्वच्छता एवं शुद्धता आधा ईमान है[2], अलहम्दुलिल्लाह मीज़ान (तुला) को भर देता है और सुबहानल्लाह और अलहम्दुलिल्लाह आकाश और धरती दोनों के बीच को भर देते हैं।[3] —मुसलिम

10. हज़रत सअद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि एक ग्रामीण अरब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ और कहा : (ऐ अल्लाह के रसूल !) मुझे किसी ऐसे कलाम की शिक्षा दीजिए जिसे मैं पढ़ा करूँ, आपने कहा, कहो :

لا إله إلا الله وحده لا شريك له، الله أكبر كبيرا والحمد
لله كثيرا، وسبحان الله رب العالمين، ولا حول ولا قوة
إلا بالله العزيز الحكيم

ला इला-ह इल्लल्लाहु वह्दहू ला शरी-क लहू, अल्लाहु-अक्बरु कबीरा, वल हम्दुलिल्लाहि कसीरा, व सुब्हानल्लाहि रब्बिल आलमीन, वला हौ-ल वला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाहिल अज़ीज़िल हकीम।

"अल्लाह के सिवा कोई इलाह (इष्ट पूज्य) नहीं, वह अकेला है

---

1. गुलाम आज़ाद करना यूँ भी पुण्य-कार्य है और यदि वे ग़ुलाम किसी पैग़म्बर की औलाद में से हों तो उन्हें स्वतंत्र करने का जो बदला अल्लाह के यहाँ होगा वह अत्यन्त उत्कृष्ट होगा।
2. अर्थात सफ़ाई-सुथराई ईमान के तक़ाज़ों में से है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने वस्त्र और शरीर ही को नहीं बल्कि अपने अन्तर को भी शुद्ध और स्वच्छ रखे। जिसने हर प्रकार के बुरे विचारों और ग़लत धारणाओं से अपने को बचाए और जिसने अपने वाह्य को स्वच्छ रखा उसने मानो ईमान की आधी माँग को पूरी किया। जिसने अपने वाह्य और अन्तर दोनों को स्वच्छ रखने की कोशिश की उसने अपने ईमान को पूर्ण कर लिया।
3. अर्थात इन पवित्र कलिमों की बरकतों की और इनके प्रतिदान का कोई अन्त नहीं है।

उसका कोई सहभागी नहीं। अल्लाह सबसे बड़ा है। ज़्यादा-से-ज़्यादा हम्द (प्रशंसा) का अधिकारी अल्लाह है। महान है, सारे संसार का पालनकर्त्ता स्वामी ! किसी के पास कोई उपाय और कोई शक्ति नहीं है, यह चीज़ केवल अल्लाह के सहारे मिलती है जो प्रभुत्वशाली और हिकमतवाला (तत्वदर्शी) है।"

ग्रामीण ने कहा : ये सब तो मेरे रब के लिए हुए, मेरे लिए क्या है? आपने कहा (कि यह दुआ) :

اَللّٰھُمَّ اغْفِرْلِیْ وَارْحَمْنِیْ وَاھْدِنِیْ وَارْزُقْنِیْ.

अल्लाहुम मग़फ़िरली वर हमनी वह्दिनी वर-ज़ुक़्नी।

"ऐ अल्लाह! मुझे क्षमा कर दे, मुझपर दया कर, मेरा मार्गदर्शन कर और मुझे रोज़ी दे।"[1] —मुसलिम

1. अभिप्राय यह है कि तुम अल्लाह की हम्द और गुणगान के साथ-साथ उससे अपने लिए दयालुता, क्षमा और हलाल रोज़ी की दुआ भी कर सकते हो। उससे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, वाह्य और आन्तरिक हर प्रकार की भलाई तलब की जा सकती है।

सन्तुलित मार्ग

1. अब्दुल्लाह बिन सरजिस से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : अच्छा चरित्र, सहनशीलता और सन्तुलित नीति, 'नुबूवत' का चौबीसवाँ भाग है।[1] —तिरमिज़ी

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा : दीन (सत्य धर्म) सहज है और दीन से जब भी किसी ने ज़ोर आज़माई की और उसमें सख़्ती अपनाई, दीन ने उसे पराजित कर दिया। अतः सन्तुलित नीति अपनाओ और बीच का मार्ग ग्रहण करो, शुभ-सूचना सुनो और प्रातःकाल और सन्ध्या समय और कुछ रात के भाग से सहायता प्राप्त करो।[2] —बुख़ारी

---

1. अर्थात ये गुण साधारण और कम दर्जे के नहीं हैं। इन गुणों को नबियों के चरित्र में स्पष्ट स्थान प्राप्त रहा है। जो व्यक्ति जितना अधिक अपने जीवन में इन गुणों को स्थान देगा, वह उतना ही अधिक नुबूवत की बरकतों से प्रकाश ग्रहण करेगा।
   सन्तुलित नीति जीवन के प्रत्येक मामले में अभीष्ट है। बुद्धिमान वही है जो जीवन के हर मामले में बीच की नीति अपनाए।
2. अर्थात दीन (धर्म) मनुष्य के लिए संकट बनकर नहीं उतरा है। दीन वास्तव में जीवन के वास्तविक और स्वाभाविक नीति का नाम है। जीवन के स्वाभाविक मार्ग पर चलना ही मनुष्य के लिए सहज है, यह और बात है कि कोई अपने स्वभाव और प्रकृति का ही बैरी हो जाए। बुद्धिहीनता, परिणाम की ओर से दृष्टि हटा लेने और दूसरी अनुचित प्रेरणाओं के कारण अधिकतर ऐसा हुआ है कि सहज और स्वाभाविक धर्म को लोगों ने अपने लिए दुस्साध्य बना लिया और अपनी गढ़ी हुई मुसीबतों को धर्म और मज़हब से जोड़ दिया।
   इस हदीस से जो बात मन में बैठानी अभीष्ट है वह यही है कि दीन में तुम्हारे लिए वही मार्ग पसन्द किया गया है जिसे तुम अपना सको। इसलिए दीन में अतिशयोक्ति से काम न लो। ऐसा न हो कि तुम अपनी ओर से कोई ऐसी असन्तुलित नीति अपना लो, जिसके कारण तुम्हारा जीवन एक बोझ बनकर रह जाए। प्रत्येक ज़िम्मेदारी को समझो। सुबह-शाम अल्लाह की इबादत करो और रात के कुछ भाग में भी उसके सामने खड़े हो। इस प्रकार अपने लिए वह शक्ति संचित करते रहो जिसके द्वारा जीवन-यात्रा की सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाएँ और तुम सानन्द सफलता प्राप्त कर सको। क़ुरआन में है : "अल्लाह तुम्हारे लिए आसानी चाहता है, और तुम्हारे लिए सख़्ती नहीं चाहता है।" —2 : 185

3. हज़रत अबू अब्दुल्लाह जाबिर बिन समुरा (रज़ि०) कहते हैं कि मैं नबी (सल्ल०) के साथ नमाज़ में शरीक था, आपकी नमाज़ भी सन्तुलन के साथ थी और आपका ख़ुतबा (भाषण) भी सन्तुलन के साथ था।[1] —मुसलिम

4. हज़रत अम्मार (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते सुना : किसी व्यक्ति की नमाज़ का लम्बी होना और उसके ख़ुतबे का संक्षिप्त होना उसके फ़क़ीह (दीन की समझ रखनेवाला) होने का प्रमाण है। अतः नमाज़ को लम्बी करो और ख़ुतबे को संक्षिप्त रखो। निस्संदेह कुछ ख़ुतबे जादू होते हैं।[2] —मुसलिम

5. हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ख़ुतबा दे रहे थे तो आपने देखा कि एक व्यक्ति खड़ा हुआ है। आपने उसके बारे में पूछा। लोगों ने कहा : ये अबू इसराईल हैं। उन्होंने नज़्र मानी है कि वे धूप में खड़े रहेंगे, न बैठेंगे और न छाया लेंगे, न बातचीत करेंगे और रोज़ा रखेंगे। आपने कहा : उनसे कहो कि बातचीत करें, छाया लें, बैठें और रोज़ा पूरा करें।[3]

—बुख़ारी

6. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह की दृष्टि में उत्तम कर्म वह है जो सदैव किया जाए, यद्यपि वह

---

1. अर्थात न तो आपने लम्बी नमाज़ पढ़ाई और न बहुत संक्षिप्त। यही हाल आपके भाषण का भी था। ख़ुतबा ऐसा लम्बा न था कि सुननेवाले घबरा जाएँ।
2. मतलब यह है कि ख़ुतबा बहुत लम्बा नहीं होना चाहिए। ख़ुतबा के मुक़ाबले में नमाज़ लम्बी होनी चाहिए। यह बड़ी नासमझी की बात होगी कि आदमी नमाज़ तो बहुत छोटी पढ़ाए परन्तु ख़ुतबा उसका बहुत लम्बा हो। कुछ ख़ुतबे ऐसे मन में उतर जानेवाले होते हैं जिनमें जादू का-सा असर होता है। ख़ुतबा का छोटा होना उसके प्रभाव को कम नहीं करता बल्कि इससे उसका प्रभाव और बढ़ सकता है।
3. मतलब यह है कि दीन और शरीअत को अभीष्ट मनुष्य की शारीरिक यातना और मनोदमन कदापि नहीं है। इस्लाम में जो चीज़ अभीष्ट है वह मनोनिग्रह और मन का नियंत्रण है न कि मनोदमन। मन की इच्छा पर क़ाबू पाने के लिए रोज़ा काफ़ी है।

   इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि यदि किसी ने ग़लत और धर्म-विरुद्ध कोई नज़्र या मन्नत मानी है तो उसका पूरा करना कदापि अनिवार्य नहीं है बल्कि उसे न करना ही श्रेष्ठ है।

थोड़ा ही क्यों न हो ।[1] —मुसलिम, बुख़ारी

7. हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) कहा करते थे कि अपने आपपर सख़्ती न करो अन्यथा फिर अल्लाह भी तुमपर सख़्ती करेगा। एक जाति ने अपने आप पर सख़्ती की थी तो अल्लाह ने भी उसपर सख़्ती की। ये जो लोग सौमओं पर दैरों में पाए जाते हैं ये उन्हीं के स्मारक और अवशेष हैं। रहबानियत (वैराग्य) उन्होंने स्वयं निकाली थी। हमने (अल्लाह ने) उसे उनपर अनिवार्य नहीं किया था ।[2]

8. हज़रत आइशा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि उनके पास एक स्त्री बैठी थी, इतने में नबी (सल्ल०) आए। आपने कहा : ये कौन हैं? कहा : ये अमुक स्त्री है और इनकी नमाज़ की बड़ी चर्चा है (कि ये नमाज़ें ज़्यादा पढ़ती हैं)। आपने कहा : रुक जाओ, तुमपर उतना ही दायित्व है जितना तुममें शक्ति हो। अल्लाह न उकताएगा जब तक तुम न उकताओ। अल्लाह को वही दीन और आज्ञापालन अधिक प्रिय है जिसपर उसका ग्रहण करनेवाला निरन्तर जमा रहे ।[3] —बुख़ारी, मुसलिम

---

1. किसी कर्म पर निरन्तर जमे रहने का बड़ा महत्व है। मुस्लिम का प्रत्येक कर्म उस सम्बन्ध को व्यक्त करता है जो उसे अपने रब से होता है। किसी नेक काम को ग्रहण करके उसे छोड़ देने का अर्थ केवल उस कर्म को छोड़ देना नहीं है बल्कि इससे उस सम्बन्ध को आघात पहुँचाना है जो मनुष्य को अपने रब से होता है। ज़ाहिर है कि यह चीज़ कभी भी प्रिय नहीं हो सकती कि मनुष्य के उस सम्बन्ध और सम्पर्क में किसी प्रकार की कमी पैदा हो जो उसने अपने रब से स्थापित किया हो। कर्म पर निरन्तर दृढ़ रहना उस समय संभव है जबकि मनुष्य की चेतना जाग्रत हो और वह 'इबादत' और कर्म में सन्तुलित नीति अपनाए। उतना ही बोझ उठाए जितना वह उठा सकता हो। सन्तुलित नीति के द्वारा ही वह अपने जीवन में भी सन्तुलन पैदा कर सकता है।
2. दे० क़ुरआन, सूरा-57, अल-हदीद, आयत 27। मतलब यह है कि अल्लाह ने जितने भी आदेश दिए हैं वे स्वाभाविक और व्यवहार में लाने योग्य हैं। तुम स्वयं अपने लिए पाबन्दियाँ और कठिनाइयाँ न पैदा करो। इससे पहले एक जाति (यहूद और नसारा) ने स्वाभाविक धर्म की अवहेलना की और अपने लिए तरह-तरह के दुस्साध्य कर्म और मशक़्क़तें गढ़ लीं, तो अल्लाह ने भी उसके साथ सख़्ती की। यह वैराग्य की रीति ईसाइयों ने स्वयं निकाली थी। इसका आदेश उन्हें अल्लाह ने कदापि नहीं दिया था।
3. मनुष्य की वही बन्दगी, उपासना, इबादत और कर्म अल्लाह को प्रिय और वास्तविकता की दृष्टि से विश्वास करने योग्य है जो जीवन में सम्मिलित हो चुका हो, जो क्षणिक और सामयिक न हो।

9. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : तुममें से किसी को केवल उसका कर्म छुटकारा न दिलाएगा। लोगों ने कहा : क्या आपको भी नहीं? ऐ अल्लाह के रसूल! आपने कहा : मुझे भी नहीं, सिवाय इसके कि अल्लाह मुझे अपनी दयालुता से ढक ले। अत: बीच का मार्ग ग्रहण करो और सन्तुलित नीति अपनाओ और प्रात:काल और सन्ध्या समय और कुछ रात के भाग में बीच की चाल चलते रहो, अभीष्ट स्थान पर पहुँच-जाओगे।[1]

—बुख़ारी, मुसलिम

---

1. अर्थात मनुष्य को यह धोखा कदापि न होना चाहिए कि वह अपने कर्मों के बल पर जन्नत में प्रवेश करेगा। बन्दगी का हक़ किससे अदा हो सका है। मनुष्य के लिए उचित नीति यही हो सकती है कि वह जीवन में सन्तुलित नीति अपनाए और अल्लाह की दया और उसकी कृपा पर भरोसा रखे। निश्चय ही उसपर ईश्वर की कृपा होगी और वह अपने अभीष्ट स्थान को पा लेगा।

हदीस-शास्त्र का परिचय

हदीसों की जाँच-परख, संकलन, सुरक्षा आदि के लिए 'मुहद्दिसों' (हदीस-शास्त्रियों) ने विभिन्न शास्त्रों की रचना की है, उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है :

1. **इल्मु अस्माउर्रिजाल (नामशास्त्र, Biography and Criticism of the Narrators of Hadith.)**—इसमें रावियों (हदीस के उल्लेखकर्त्ताओं) के वृत्तान्त का उल्लेख होता है। यह एक प्रकार से हदीस के रावियों की जीवनी है। इस शास्त्र के द्वारा लाखों रावियों की जीवनियाँ सदा के लिए सुरक्षित हो गईं । इस शास्त्र के द्वारा यह मालूम किया जा सकता है कि कौन-सा रावी किस दर्जे या श्रेणी का है और किसी रिवायत अथवा हदीस में उसपर कहाँ तक भरोसा किया जा सकता है।

2. **इल्मुर्रिवायत** (उल्लेख एवं वर्णन-शास्त्र)—इसमें हदीस की 'रिवायत' और उसे सुरक्षित रखने के विषय पर विवेचन होता है।

3. **इल्मुद्दिरायत** (मीमांसा-शास्त्र)—इसमें हदीस के मूल शब्दों (Text) के बारे में छानबीन और उसके परखने के नियमों का वर्णन होता है। इसके अतिरिक्त रावी के वृत्तान्त और उसकी हैसियत का ज्ञान भी 'इल्मुद्दिरायत' में सम्मिलित है।

4. **तदवीनुल हदीस** (संकलन-शास्त्र)—इसमें हदीसों के संगृहीत करने के विषय का वर्णन एवं विवेचन होता है।

5. **अन-नासिख़ु वल मनसूख़** (निवर्तन एवं निरसन-शास्त्र)—इसमें इसपर तर्क-वितर्क प्रस्तुत किया जाता है कि कौन-सी हदीस नासिख़ (मनसूख़ करनेवाली) है और कौन मनसूख़ (निरस्त) है और उसे किन कारणों से मनसूख़ निर्धारित किया जा रहा है। अगर किसी हदीस का किसी दूसरी हदीस से टकराव हो और दोनों का दर्जा समान हो तो इस स्थिति में अगर दोनों में अनुकूलता लाना और पाए जानेवाले विरोध को दूर करना संभव हो तो उसे 'मुख़तलफ़ुल हदीस' कहेंगे। और अगर यह संभव न हो तो जो हदीस बाद की होगी उसे 'नासिख़' और पहली को 'मंसूख़' कहा जाएगा।

6. **शाने नुज़ूल** (अवतरण-शास्त्र)—इसमें इसका उल्लेख होता है कि कौन-सी हदीस किस समय और किस अवस्था की है। नबी (सल्ल०) ने कौन-सी बात किस

अवसर पर कही है।

7. **इलमुन्नज़र फ़िल इसनाद** (माध्यम व्यक्तियों की पड़ताल)—इसमें हदीस की सनद के सिलसिले का उल्लेख होता है और उसपर बहस की जाती है।

8. **कैफ़ीयतुर्रिवायत** (कथन-स्थिति)—इसमें इसका उल्लेख होता है कि 'रावी' ने हदीस किस तरह रिवायत की है और इसके दरजे क्या हैं ?

9. **अलफ़ाज़ुल हदीस** (हदीस के शब्द)—हदीस-विशेषज्ञों के पारिभाषिक शब्द क्या हैं और जिन शब्दों में कोई हदीस बयान हुई है वे शब्द नबी (सल्ल०) के ही हो सकते हैं या नहीं ? इसमें इसी विषय पर बहस की जाती है।

10. **तबक़ातुल हदीस** (हदीस की श्रेणियाँ)—इसमें इसपर विचार होता है कि कौन-सी हदीस किस दरजे या श्रेणी की है और उसके रावी (उल्लेखकर्त्ता) किस तबक़े से सम्बन्ध रखते हैं ?

11. **ग़रीबुल हदीस** (अपरिचित हदीस)—अपरिचित शब्द यदि किसी हदीस में आए हैं तो उनका क्या अर्थ है और हदीस में वे किस उद्देश्य से प्रयुक्त हुए हैं ?

12. **अल-जर्ह वत्तादील** (विवाद एवं न्याययुक्त निष्कर्षण)—इसमें रावियों के विश्वसनीय होने या न होने के क़ारणों पर विचार किया जाता है।

13. **तुरुक़ुल अहादीस** (हदीस के विभिन्न सिलसिले)—कुछ हदीसें सनद के कई एक सिलसिले से रिवायत की गई हैं और विषय के अनुसार उनके टुकड़े हदीस के ग्रन्थों के विभिन्न प्रकरणों एवं अध्यायों में उद्धृत किए जाते हैं। 'तुरुक़ुल अहादीस' में इसका विस्तृत उल्लेख होता है। बुख़ारी में इस प्रकार की रिवायतें बहुत मिलती हैं।

14. **अल-मौज़ूआत** (मनगढ़न्त हदीसें)—मनगढ़न्त हदीसों के पहचानने का क्या उपाय है ? इसमें इसी विषय पर विचार किया जाता है।

15. **इल्मे इलले हदीस** (हदीस सम्बन्धी कुछ विशेष ध्यान रखनेवाली बातें)—यह अत्यन्त कठिन शास्त्र है। इसमें इसका विस्तृत वर्णन होता है कि किसी हदीस के रावी कब पैदा हुए ? उनका देहान्त कहाँ हुआ ? जन्म से मृत्यु तक क्या हालत रही ? कहाँ निवास ग्रहण किया ? उनके नाम, उपाधि, उपनाम और कुन्यत क्या थी ? उनकी स्मरण शक्ति कैसी थी ? सूझ-बूझ और बुद्धि की दृष्टि से वे किस दरजे के थे ?

16. **तसहीफ़ुल असमा** (नाम-उच्चारण की अशुद्धता)—इसमें परस्पर मिलते-जुलते नामों का स्पष्टीकरण और व्याख्या की जाती है ताकि उनमें अन्तर किया जा

सके और नामों की एकरूपता के कारण (रावी) के समझने में किसी प्रकार का भ्रम न हो।

17. मुतशाबिह (नामों का सादृश्य)—कभी ऐसा होता है कि रावियों के नाम और उनके उच्चारण में एकरूपता पाई जाती है लेकिन उनके पिता के नाम लिपि में एक होने के बावजूद उच्चारण में भिन्न होते हैं या इसके विपरीत रावियों के नामों में एकरूपता हो और उनके पिता के नाम एक हों। इसे 'मुतशाबिह' कहते हैं। इस विषय पर ख़तीब बग़दादी का एक ग्रन्थ है।

इस सिलसिले में 'मुहद्दिसों' ने अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर की जाँच-पड़ताल की है और सन्देह एवं संदिग्धता से सम्बन्धित हर छोटी-बड़ी संभावनानों को दूर करने का सफल प्रयास किया है।

18. मोतलिफ़ व मुख़्तलिफ़ (अनुरूप और भिन्न)—इसमें उन रावियों में अन्तर करते हैं जिनके नाम लिपि की दृष्टि से एक हों लेकिन उच्चारण में भिन्न हों। इस विषय पर कई ग्रन्थ लिखे गए हैं जिनमें सबसे प्रसिद्ध और उपयोगी 'तबसीरुल मुन्तबिह बि तहरीलिल मुश्तबिह' है।

19. मुत्तफ़िक़ व मुतफ़र्रिक़ (एकरूप और विभिन्न)—विभिन्न रावियों के नाम, कुन्यत और वंश एक हों तो उनमें अन्तर करने के लिए विस्तार के साथ बताया जाता है कि इस नाम, कुन्यत और वंश के कितने रावी हैं? किन तबक़ों (श्रेणियों) में हैं और हर एक ने किस-किस से रिवायत की है? परिभाषा में इसे 'मुत्तफ़िक़ व मुतफ़र्रिक़' कहते हैं। इस विषय पर ख़तीब बग़दादी का एक ग्रन्थ है।

20. इल्मुल-वहदान (अल्प रिवायतकर्त्ता)—इसमें उन रावियों का उल्लेख किया जाता है जिनकी रिवायत की हुई हदीसें बहुत थोड़ी हैं।

21. रिवायतुल आबाअ् अनिल अबनाअ् (पिता की रिवायत पुत्र से)—इसमें बेटे से पिता के रिवायत करने के सिलसिले में बहस की जाती है।

22. रिवायतुस्सहाबा अनित्ताबिईन (सहाबा की रिवायत ताबिईन से)—इसमें 'सहाबा' (रज़ि०) के 'ताबिईन' से रिवायत करने के सिलसिले में बहस की जाती है और इसके कारण आदि पर प्रकाश डाला जाता है।

23. इल्मुल-जमअ् वत्तफ़रीक़ (एकता एवं अनेकता)—इसमें अपरिचित रावियों के वृत्तान्त पर प्रकाश डाला जाता है।

24. मारिफ़तुल हदीस (हदीस का ज्ञान)—इसमें हदीस से सम्बद्ध शास्त्रों की वास्तविकता पर प्रकाश डाला जाता है।

30. मारिफ़तु तवारीख़िर्रुवात फ़िल वफ़ियात वग़ैरहा (रावियों का जन्म एवं देहान्त-तिथि आदि)—इसमें रावियों के जन्मस्थान और देहान्त-तिथि आदि के सम्बन्ध में विचार होता है।

31. मारिफ़तुस्सिक़ात वज़्ज़ुअफ़ा मिनर्रुवात (विश्वसनीय एवं अविश्वसनीय रावी)—इसमें विश्वसनीय और अविश्वसनीय या ज़ईफ़ (कमज़ोर) रावियों का उल्लेख होता है। हदीस-शास्त्र का यह विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

32. मारिफ़तु तबक़ातिर्रुवाति वल उलमा (रावियों और विद्वानों के दरजे या वर्ग)— हदीस का कौन-सा रावी किस तबक़े (वर्ग, श्रेणी) से सम्बन्ध रखता है? उसका सम्बन्ध सहाबा (रज़ि०) के तबक़े से है या 'ताबिईन' के तबक़े से उसका सम्बन्ध है या किसी अन्य तबक़े से ? इसमें इसी पर विचार किया जाता है।

33. मारिफ़तुल मवाली मिनर्रुवाति वल उलमा (रावियों और विद्वानों के नाते-रिश्ते) इसमें रावी (उल्लेखकर्त्ता) के वंश और क़बीलों के सम्बन्ध में विचार होता है।

34. मारिफ़तु मुब्हमात (संदिग्ध एवं अस्पष्ट नाम)—इसमें उन अस्पष्ट एवं संदिग्ध नामों पर विचार होता है जो हदीस में आए हों।

35. अतराफ़ुल हदीस—इससे हदीस की रिवायतों के उद्धरण-स्रोतों और रावियों को मालूम किया जाता है।

36. अत्तौफ़ीक़ु बैनल अहादीस या तत्बीक़े हदीस (हदीसों के मध्य संगतीकरण)—इसे 'इल्मु मुख़्तलफ़िल हदीस' या 'तलफ़ीक़े हदीस' भी कहते हैं। इसका उद्देश्य उन रिवायतों का सही स्पष्टीकरण है जिनके बीच देखने में विरोध और टकराव मालूम होता है।

25. मुख़्तलफ़ुल हदीस—इसमें उन हदीसों के सम्बन्ध में विचार किया जाता है जिनमें ऊपरी तौर पर परस्पर विरोध पाया जाता है। इस शास्त्र के द्वारा ऐसी हदीसों के बीच अनुकूलता लाने और उनके मध्य पाए जानेवाले विरोध को दूर करने की कोशिश की जाती है। इसको 'जमा व तत्बीक़' कहते हैं। 'जमा व तत्बीक़' का तरीक़ा यह है कि ऐसी हदीसों को सीमित अर्थों में लिया जाए जो देखने में अत्यन्त व्यापक दीख पड़ती हों। इसी प्रकार हदीस में लक्षित होनेवाले सामान्य अर्थ और आशय को विशिष्ट अर्थ और निश्चित आशय में लिया जाए या उनको विशेष संदर्भ में देखा जाए। हदीस विज्ञान की इस शाखा को 'ततबीक़ुल हदीस' भी कहते हैं।

26. इल्मुल-असबाब (कारण-शास्त्र)—इसमें हदीस के कारणों का उल्लेख होता है।

27. तबक़ातुल मुदल्लिसीन (मुदल्लिसो की श्रेणियाँ)—'दल्स' का अर्थ है क्रय- विक्रय में ऐब को छिपाना। प्रकाश और अन्धकार के परस्पर मिले-जुले होने को भी 'दल्स' कहते हैं। 'मुदल्लस' रिवायत वह रिवायत है जिसका रावी (उल्लेखकर्त्ता) ऐसे शब्द प्रयोग करता है जिससे यह भ्रम होता है कि वह जिसके माध्यम से रिवायत कर रहा है उससे उसने प्रत्यक्ष रूप से सुना है, हालाँकि रिवायत प्रत्यक्ष रूप से उसकी सुनी हुई नहीं होती बल्कि रिवायत उस तक किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा पहुँची हुई होती है। हदीस के विशेषज्ञों ने केवल झूठी हदीसें गढ़नेवालों का ही पता नही लगाया बल्कि उन्होंने अपने असाधारण परिश्रम से 'मुदल्लिसों' पर भी ग्रन्थों की रचना की है। इब्न हजर की भी इसपर एक किताब है जिसमें 152 'मुदल्लिसों' का उल्लेख किया गया है। जिनको पाँच तबक़ों (श्रेणियों) में विभक्त किया है। पहले तबक़े में कुल 33 व्यक्ति हैं, दूसरी श्रेणी में भी 33, तीसरे में 50, चौथे में 12 और पाँचवे तबक़े में 24 व्यक्ति हैं।

28. मारिफ़तुल मुसलसल (निरन्तरता सम्बन्धी ज्ञान)—इसमें उन हदीसों का उल्लेख होता है, जिनकी सनदों में आनेवाले व्यक्तियों में गुण, हालत आदि की दृष्टि से साम्य पाया जाता है। इसके कई भेद हैं। इसका एक उदाहरण यह है कि किसी हदीस के सभी 'रावी' (उल्लेखकर्त्ता) उसकी रिवायत 'समेअ्तु फ़ुलानुन' (मैंने सुना अमुक व्यक्ति से) से करते हों या इसी प्रकार वे सब के सब 'हद्दसना' (हदीस बयान की हमसे) अथवा 'अख़बरना' (ख़बर दी हमें) से करते हों।

29. मारिफ़तुल असमा वल कुनी (नाम और कुन्यत का ज्ञान)—इसमें रावियों के नाम और उनकी कुन्यत पर विचार होता है।

हदीस की पारिभाषिक शब्दावली

हदीस—यूँ तो 'हदीस' का शाब्दिक अर्थ होता है बात, परन्तु यह शब्द अत्यन्त व्यापक है। किसी के कथन अभिप्राय, वृत्तान्त, घटना आदि सबके लिए इसका प्रयोग होता है। पारिभाषिक रूप में नबी (सल्ल०) के कथन, कर्म और 'तक़रीर'[1] को हदीस कहते हैं।

विद्वानों ने 65 प्रकार की हदीसों की चर्चा की है। उनमें से केवल ज़ईफ़ (कमज़ोर) हदीसों के 49 प्रकार का उल्लेख अबू हातिम बिन हिब्बान ने किया है।[2]

सहाबी—उस सौभाग्यशाली व्यक्ति को सहाबी कहते हैं जिसे 'ईमान' की हालत में नबी (सल्ल०) से भेंट का श्रेय प्राप्त हुआ हो और ईमान ही की हालत में उसका देहान्त हुआ हो।

ताबिई—वह सौभाग्यशाली व्यक्ति जिसे ईमान की दशा में किसी सहाबी से मिलने का श्रेय प्राप्त हुआ हो और 'ईमान' ही की दशा में संसार से उसने प्रस्थान किया हो।

तबा-ताबिईन—वे आदरणीय जन जिन्होंने 'ईमान' की हालत में किसी ताबिई से भेंट की हो और ईमान ही की दशा में उनका देहान्त हुआ हो।

असर—साधारणतया सहाबा (रज़ि०) के कर्म और कथन को 'असर' कहा जाता है। इसका बहुवचन आसार है।

सनद—हदीस की 'रिवायत' करनेवालों के सिलसिले को सनद कहते हैं।

मत्न—हदीस के मूल शब्दों (Text) को 'मत्न' कहते हैं।

रावी—जो अपनी सनद के साथ हदीस की रिवायत करता हो, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, उसे 'रावी' कहते हैं। रावी का बहुवचन 'रुवात' है।

मर्वी—रिवायत (बयान) की हुई हदीस या क़ौल को 'मर्वी' कहते हैं, क़ौल चाहे नबी (सल्ल०) का हो या 'सहाबा' या 'ताबिईन' का।

---

1. तक़रीर का मूल अर्थ है किसी चीज़ को ज्यों की त्यों बाक़ी रखना। नबी (सल्ल०) के सामने कोई कार्य किया गया, या आप (सल्ल०) ने कोई रीति प्रचलित देखी और उसे रोका नहीं, परिभाषा में इसे तक़रीर (Silent Approval) कहते हैं।
2. फ़त्हुल मुग़ीस, पृष्ठ 39, इतहाफ़ुल नब्ला, पृष्ठ 112

मौलिक रूप से हदीस के दो भेद किए जाते हैं :

1. **सरीही**—वह हदीस जिसमें स्पष्ट रूप से इसका उल्लेख हो कि वह नबी (सल्ल०) का कथन या किया हुआ कार्य या 'तक़रीर' है।

2. **हुक्मी**—वह हदीस जिसका सम्बन्ध नबी (सल्ल०) से तो स्थापित न किया गया हो लेकिन उसमें जिन बातों का 'सहाबी' ने उल्लेख किया हो वे ऐसी हों कि नबी (सल्ल०) के सिवा कोई उन्हें बता नहीं सकता। जैसे 'क़ियामत' के लक्षण, क़ियामत से सम्बन्धित घटनाएँ, 'नबियों' के वृत्तान्त जिनमें इस बात का कोई संकेत न पाया जाता हो कि वे बनी इसराईल से उद्धृत हैं।

हदीस क़ुदसी—जिस हदीस को नबी (सल्ल०) अल्लाह के माध्यम से बयान करें, उसे हदीस क़ुदसी कहते हैं।

सनद की दृष्टि से हदीस के भेद :

सनद की दृष्टि से हदीस के निम्नलिखित भेद हैं :

1. **मरफ़ूअ्**—वह क़ौल या अमल या 'तक़रीर' जो नबी (सल्ल०) से सम्बद्ध हो चाहे आप (सल्ल०) से उसे किसी सहाबी ने सम्बद्ध किया हो या किसी ताबई या दूसरे व्यक्ति ने और चाहे उसकी सनद 'मुत्तसिल' हो या न हो। यदि हदीस मुत्तसिल नहीं है तो ज़ईफ़ ठहरेगी। यदि मुत्तसिल है तो उसके रावियों के अनुसार उसे सही या 'हसन' कहा जाएगा।

'मरफ़ूअ्' के तीन भेद हैं :

(अ) **मरफ़ूअ् क़ौली**—इसमें नबी (सल्ल०) का क़ौल उल्लिखित होता है।

(आ) **मरफ़ूअ फ़ेली**—इसमें रावी यह बयान करता है कि मैंने आप (सल्ल०) को यूँ करते देखा या किसी दूसरे ने मुझे बताया कि आप (सल्ल०) इस तरह अमुक कार्य कर रहे थे।

(ई) **मरफ़ूअ् तक़रीरी**—इसमें रावी यह कहता है कि मैंने नबी (सल्ल०) की मौजूदगी में अमुक काम किया या अमुक व्यक्ति ने इस तरह अमुक कार्य किया और आप (सल्ल०) ने उसपर कोई आपत्ति न की।

2. **मौक़ूफ़**—जिस हदीस की रिवायत का सिलसिला 'सहाबी' पर पहुँचकर समाप्त हो जाता हो।

3. **मक़तूअ्**—जिस हदीस की सनद 'ताबिई' तक पहुँचकर समाप्त हो जाती हो।

कुछ लोग मौक़ूफ़ और मक़्तूअ् को असर कहते हैं अर्थात वे 'सहाबा' और 'ताबिईन' के क़ौल और अमल (कथन एवं कर्म) को क्रमशः मौक़ूफ़ और मक़्तूअ् कहते हैं।

4. **मुस्नद**—वह मरफ़ूअ् हदीस जिसकी सनद 'मुत्तसिल' (अविच्छिन्न) हो। मुस्नद का यही आशय प्रसिद्ध है।

5. **सुलासियात**—उन हदीसों को कहते हैं जिनमें 'रावी' और नबी (सल्ल०) के बीच केवल तीन वास्ते (माध्यम व्यक्ति) पाए जाते हों।

रावियों (हदीस के उल्लेखकर्त्ताओं) के लिहाज से हदीसें पाँच प्रकार की हैं :

1. **मुत्तसिल या मौसूल**—वह हदीस जिसकी सनद के सिलसिले में आरंभ से अन्त तक कहीं कोई रावी साक़ित अर्थात विलुप्त न हो।

2. **मुन्कते**—मुत्तसिल के विपरीत अर्थात वह हदीस जिस की सनद के सिलसिले में कहीं एक या अधिक 'रावी' साक़ित (विलुप्त) हों या कोई मुबहम अर्थात अपरिचित एवं संदिग्ध व्यक्ति बीच में हो।

3. **मोअ्ज़ल**—वह 'हदीस' जिसकी सनद के सिलसिले में निरन्तर दो या दो से ज़्यादा रावी ग़ायब हों।

4. **मुअल्लक़**—वह हदीस जिसकी सनद के आरंभ से एक या कई रावी छोड़ दिए गए हों या पूरी सनद ही का विलोप (हजफ़) कर दिया गया हो। पारिभाषिक रूप में इस विलोप (Omit) को 'तालीक़' कहते हैं।

5. **मुरसल**—वह हदीस जिसकी सनद के सिलसिले में 'ताबिई' और नबी (सल्ल०) के बीच 'सहाबी' का ज़िक्र न हो।

विद्वानों का मत है कि 'मुरसल' हदीस के बारे में तवक़्क़ुफ़ करना चाहिए अर्थात ख़ामोश रहना चाहिए। क्योंकि मालूम नहीं साक़ित (विलुप्त) रावी सिक़ह (विश्वसनीय) है या ग़ैर सिक़ह (अविश्वसनीय)। यह आवश्यक नहीं है कि 'ताबिई' ने 'किसी सहाबी' से ही रिवायत की हो। इसकी संभावना है कि उसने किसी 'ताबिई' से रिवायत ली हो। लेकिन इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) और इमाम मालिक (रह०) की दृष्टि में मुरसल हदीस को निःसंकोच स्वीकृति प्राप्त है, क्योंकि 'इरसाल' करनेवाले (मुरसल ढंग से बयान करनेवाले) ने पूर्ण विश्वास के कारण ही 'इरसाल' किया होगा। यदि उसकी दृष्टि में रिवायत विश्वास के योग्य न होती तो

वह 'इरसाल' क्यों करता और उसका सम्बन्ध नबी (सल्ल०) से क्यों जोड़ता? इमाम शाफ़ई (रह०) की दृष्टि में यदि उसकी पुष्टि दूसरी किसी 'रिवायत' से होती हो—यद्यपि वह दूसरी रिवायत भी मुरसल ही क्यों न हो—तो उसे स्वीकृति प्राप्त होगी।

यदि रावी (उल्लेखकर्त्ता) के बारे में यह मालूम हो कि वह 'सिक़ह' (विश्वसनीय) और ग़ैर सिक़ह (अविश्वसनीय) दोनों प्रकार के व्यक्तियों को साक़ित (विलुप्त) कर देता है तो सभी की दृष्टि में उस रिवायत के बारे में ख़ामोश रहा जाएगा।

6. **सनद आली**—जो नबी (सल्ल०) से क़रीब हों उनकी सनद आली (उच्चतम) समझी जाती है। इसकी दो शक्लें हैं :

(अ) सनद आली मुतलक़—वह सनद आली है जिसके रावी थोड़े होने के कारण नबी (सल्ल०) से क़रीब हों और इसी हदीस की दूसरी सनद में रावियों की संख्या अधिक पाई जाती हो। ऐसी सनद को अजल्लुल असानीद अर्थात श्रेष्ठतम सनद समझा जाता है, लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि सनद सही हो।

(आ) सनद आली नसबी—वह सनद आली है जिसके रावी हदीस के इमाम से क़रीब हों या उस सनद के रावी हदीस की विश्वसनीय किताबों में से किसी किताब के क़रीब हों।

इब्न हजर ने सनद आली नसबी के चार भेद किए हैं :

(क) मुवाफ़िक़त—मुवाफ़िक़त का मतलब यह है कि हदीस की किसी किताब के संकलनकर्त्ता के शैख़ (गुरु) तक किसी दूसरी सनद से पहुँच जाते हों। उदाहरणार्थ इमाम बुख़ारी की एक हदीस क़ुतैबह से और वे मालिक से रिवायत करते हैं और कोई दूसरा व्यक्ति किसी दूसरी सनद से यही रिवायत क़ुतैबह से रिवायत करे और इस सनद में बुख़ारी की अपेक्षा रावियों की संख्या कम हो।

(ख) बदल—कोई व्यक्ति संकलनकर्त्ता की किताब के शैख़ के शैख़ (गुरु के गुरु) तक किसी सनद के माध्यम से पहुँच जाता हो तो उसे बदल कहेंगे। उदाहरणार्थ उपर्युक्त सनद को कोई व्यक्ति 'क़अ्‌बनी' से रिवायत करे और क़अ्‌बनी मालिक से रिवायत करते हों, तो इस रूप में क़अ्‌बनी मानों क़ुतैबह का बदल होगा।

(ग) मसावात—किताब के संकलनकर्त्ता ने एक हदीस को एक सनद से रिवायत किया है, दूसरा उसे किसी दूसरी सनद से रिवायत करे और दोनों में

रावियों की संख्या समान हो।

(घ) मुसाफ़हा—किताब के संकलनकर्त्ता के शिष्य के साथ मसावात को मुसाफ़हा कहा जाता है। उदाहरणतया संकलनकर्त्ता के शिष्य ने ज़ैद के शैख़ (गुरु) की बराबरी की, तो मानो ज़ैद ने किताब के संकलनकर्त्ता से मुसाफ़हा किया और उनसे रिवायत की। और यदि मसावात ज़ैद के शैख़ुश्शैख़ (गुरु के गुरु) के साथ हुई, तो मुसाफ़हा करनेवाला ज़ैद का शैख़ (गुरु) हुआ। और यदि इससे आगे बढ़कर मसावात ज़ैद के शैख़ के शैख़ुश्शैख़ (गुरु के गुरु) के साथ पाई जाती है, तो मुसाफ़हा करनेवाला ज़ैद का शैख़ुश्शैख़ (गुरु का गुरु) हुआ।

उलूए नसबी को प्रधानता सिमाअ् (सुनने) के आधार पर भी प्राप्त होती है।

सनद आली को सनद नाज़िल के मुक़ाबले में जो प्रमुखता प्राप्त है वह प्रत्येक दशा में नहीं है, यदि सनद नाज़िल के रावी अधिक विश्वसनीय, सूझ-बूझवाले और याद रखने में बढ़े हुए हों या उसके लेने और रिवायत करने की शक्ल सुनने की दृष्टि से निकटतम हो तो वह आली से श्रेष्ठ समझी जाएगी।

दर्जे और मरतबे की दृष्टि से हदीस के भेद

1. **सहीह** (Genuine)—वह हदीस जिसमें निम्नलिखित बातें मौजूद हों :

(अ) सनद की दृष्टि से मुत्तसिल (क्रमबद्ध) हो।

(आ) रावी आदिल (न्यायशील) और चरित्र की दृष्टि से विश्वसनीय हो।

(इ) स्मरण-शक्ति क्षीण न हुई हो और साथ ही विवेकशील भी हो।

(ई) रिवायत 'शाज़' (अपवाद) न हो।

(उ) 'मुअल्लल' भी न हो।

'शाज़' और 'मुअल्लल' से अभिप्रेत क्या है? आगे इसे स्पष्ट किया जा रहा है। यदि ये सभी शर्तें पूरी होती हों तो रिवायत को 'सहीह लिज़ातिही' कहा जाएगा; लेकिन रावीमें यदि कोई त्रुटि या कमी हो और वह कमी 'तुरुक़' (सिलसिलों) की अधिकता से पूरी हो जाती हो तो उसकी रिवायत की हुई हदीस को 'सहीह लिग़ैरिही' कहेंगे।

2. **हसन** (The Fiar)—वह रिवायत जिसमें सहीह हदीस की सभी शर्तें पूरी होती हों, केवल स्मरण-शक्ति या ज़ब्त (सुरक्षा) की दृष्टि से हल्कापन हो। यदि इस तरह की 'हसन' रिवायत को दूसरी इसी प्रकार की रिवायतों का समर्थन प्राप्त हो तो उसे 'सहीह लिग़ैरिही' कहेंगे।

जिस हदीस के रावी 'हसन' के रावी से कम दर्जे के हों परन्तु वह कई एक 'सनदों' से पहुँचती हो तो उसे 'हसन लिग़ैरिही' कहेंगे।

3. ज़ईफ़ (The Weak)—ऐसी रिवायत जिसमें सहीह हदीस के समस्त गुणों और शर्तों में या कुछ में स्पष्टत: कमी पाई जाती हो।

कई 'ज़ईफ़' हदीसों के परस्पर मिलने से उनकी गणना 'हसन लिग़ैरिही' की श्रेणी में होती हैं; किन्तु शर्त यह है कि यह 'जोअ्फ़' (कमज़ोरी) चरित्र की न हो।

सही हदीस आदेश की दृष्टि से हुज्जत (दलील) है, इससे सभी सहमत हैं। 'हसन लिज़ातिही' का हुक्म भी अधिकतर विद्वानों के विचार में सही हदीस जैसा है यद्यपि मरतबे में उससे कम है। 'ज़ईफ़ हदीस' यदि कई तुरुक़ (सनद के सिलसिलों) के कारण 'हसन लिग़ैरिही' के दर्जे को पहुँच जाए तो आदेश में उसके हुज्जत (दलील) होने पर सभी सहमत हैं।

रावियों की अनेकता की दृष्टि से हदीस के भेद

रावियों की अनेकता की दृष्टि से हदीसें तीन प्रकार की मानी जाती है :

1. मुतवातिर—वह हदीस है जिसके रावी हर युग में इतने अधिक पाए जाते हों कि उनका झूठ पर एका करना संभव न हो। मुतवातिर का अर्थ होता है निरंतरता। अर्थात जिस हदीस के रावी तवातुर (निरंतरता) के साथ पाए जाते हों।

'तवातुर' (निरन्तरता) के कई भेद हैं :—

(अ) तवातुरे तबक़ा या तवातुरे लफ़्ज़ी—एक युग से दूसरे युग तक पूर्ण फैलाव के साथ रिवायत का सिलसिला पाया जाता हो, जैसे कुरआन मजीद अक्षरश: इसी ढंग से हम तक पहुँचा है।

(आ) तवातुरे अमल—नबी (सल्ल०) के समय से लेकर अब तक मुसलमानों का बड़ा गिरोह निरन्तर किसी धार्मिक विषय में अमल करता आ रहा हो जिसका झूठ पर एका करना असंभव हो। उदाहरणार्थ पाँच वक़्त की नमाज़, अज़ान, नमाज़ का मौलिक रूप, 'ज़कात', रोज़ा, हज, क़ुरबानी आदि।

(ई) तवातुरे मानवी या तवातुरे क़द्रे मुश्तरक—रावियों के शब्द यद्यपि विभिन्न हों परन्तु शब्दों का आशय और अर्थ एक हो और यह एक 'तवातुर' के दर्जे को पहुँचा हुआ हो। उदाहरणार्थ नबी (सल्ल०) के 'मोजज़े' (चमत्कार), दुआ में हाथ उठाना, ग़ज़वात (वे युद्ध जिनमें नबी सल्ल० स्वयं शरीक हुए), नबी (सल्ल०) की जीवनी, इस्लाम के आवश्यक आदेश, वैधानिक और निषेधात्मक आदेशों से

सम्बन्ध रखनेवाली रिवायतें।

2. **ख़बर वाहिद या आहाद**—जिसके रावी संख्या की दृष्टि से 'तवातुर' के दर्जे को न पहुँचे हों।

हदीस-विशेषज्ञों ने 'आहाद' के तीन भेद बताए हैं :

(अ) मशहूर—वह हदीस जिसके रावी सहाबा के बाद किसी युग में भी तीन से कभी कम न हों बल्कि हर तबक़े में 'रावियों' की संख्या तीन या तीन से अधिक हो। यदि इन रावियों की संख्या रिवायत के आरंभ और अन्त में समान रहती है तो उसे 'मुस्तफ़ीज़' कहते हैं।

(आ) अज़ीज़—वह हदीस जिसके रावी हर युग में दो से कम न हों। मशहूर, मुस्तफ़ीज़ और अज़ीज़ का सम्बन्ध 'मुतवातिर' की अपेक्षा 'ग़रीब' या ख़बरे वाहिद से अधिक होता है, इसलिए कि उनकी वार्ताओं का सम्बन्ध 'सनद' से होता है।

(इ) ग़रीब—ऐसी हदीस जिसकी सनद के सिलसिले में किसी युग में एक ही रावी हो। 'ग़रीब' को 'फ़र्द' भी कहते हैं।

'फ़र्द' अथवा 'ग़रीब' के दो भेद किए गए है :

(क) फ़र्दे मुतलक़—'सहाबी' से रिवायत करनेवाला रावी केवल एक हो तो उस हदीस को 'फ़र्दे मुतलक़' कहते हैं।

(ख) फ़र्दे नसबी—'सहाबी' से रिवायत करनेवाले दो या कई हैं, लेकिन उनके बाद के तबक़े में रावी केवल एक है तो उसे फ़र्दे नसबी कहेंगे।

मुताबेअ्—'फ़र्दे' हदीस के रावी के बारे में गुमान था कि उसकी रिवायत केवल एक रावी ने की है। उसका कोई दूसरा रावी मिल जाए तो उस हदीस को 'मुताबेअ्' कहेंगे।

मुताबेअ् के दो भेद होते हैं :

1. **मुताबेअ् ताम्म**— जिसमें एक रावी दूसरे रावी का समर्थन कर रहा हो।

2. **मुताबेअ् क़ासिर**—मुताबेअ् क़ासिर वह है जो रावी के शैख़ (गुरु) या शैख़ुश्शैख़ (गुरु के गुरु) का समर्थक हो।

'मुताबेअ्' से मिलता-जुलता एक पारिभाषिक शब्द 'शाहिद' है।

शाहिद—एक हदीस किसी 'सहाबी' ने रिवायत की है, ऐसी दूसरी हदीस किसी दूसरे सहाबी से मिल जाए जिससे पहली हदीस की पुष्टि होती हो तो उसे शाहिद कहते हैं।

मुताबेअ् की तरह शाह्दि के भी दो भेद होते हैं :

(अ) शाहिदे लफ़्ज़ी—जिससे हदीस के मूल शब्दों (Text) की शाब्दिक पुष्टि होती है, उसे शाहिदे लफ़्ज़ी कहते हैं।

(आ) शाहिदे मानवी—जिससे किसी हदीस के आशय एवं अर्थ का समर्थन हो रहा हो।

कुछ 'मुहद्दिसीन' (हदीस के विशेषज्ञ) 'मुताबेअ्' और 'शाहिद' को समानार्थक समझते और एक को दूसरे के स्थान पर प्रयोग करते हैं, इसलिए कि इन दोनों ही से 'फ़र्दे नसबी' अर्थात 'ग़रीब हदीस' की पुष्टि होती है। किन्तु इन दोनों में सूक्ष्म और बारीक अन्तर पाया जाता है। 'शाहिद' मुताबेअ् की अपेक्षा अधिक सामान्य पहलू रखता है। 'शाहिद' शब्द और अर्थ दोनों ही का समर्थन करता है। इसके विपरीत 'मुताबेअ्' में केवल शब्दों की पुष्टि अभीष्ट होती है। 'मुताबेअ्' वह है जिसके रावी का दूसरा रावी समर्थन कर रहा हो और समर्थन करनेवाला इस योग्य हो कि उसकी रिवायत स्वीकार की जा सके। समर्थन करनेवाला पहले रावी के गुरु या गुरु के गुरु से ऐसे शब्दों के साथ रिवायत करे जो पहले रावी के बयान किए हुए शब्दों से मिलते-जुलते हों। 'शाहिद' वह है कि दूसरा रावी उसके रावी का समर्थन तो कर रहा हो लेकिन वह अन्य सहाबी से रिवायत करता हो और उसकी यह रिवायत शब्द एवं अर्थ दोनों में या केवल अर्थ में पहले रावी की रिवायत से मिलती-जुलती हो।

जिन हदीसों को मौलिक स्थान प्राप्त है उनकी छान-बीन में मुहद्दिस जितनी सख़्ती से काम लेते हैं, 'शाहिद' और 'मुताबेअ्' रिवायतों में वे उतनी सख़्ती से काम नहीं लेते। 'शाहिद' और 'मुताबेअ्' रिवायतों में यदि कुछ कमज़ोरी भी मौजूद हो तो उसे अंगीकार कर लेते हैं।

एतिबार—'एतिबार' रिवायत की इस जाँच-पड़ताल को कहा जाता है कि कोई दूसरा रावी रिवायत करने में शरीक है या नहीं। इस तरह 'एतिबार' मुताबेअ् और 'शाहिद' रिवायतों तक पहुँचने के साधन की हैसियत रखता है।

विरोध की दृष्टि से हदीस के भेद

विरोध की दृष्टि से हदीसें चार प्रकार की मानी जाती हैं :

1. शाज़—वह हदीस जिसमें 'सिक़ा' (विश्वसनीय) रावी अपने से उत्कृष्ट रावी का विरोध करता हो।

2. **महफ़ूज़**—वह हदीस जिसका रावी 'सिक़ा' हो लेकिन उसका विरोध एक ऐसा 'सिक़ा' (विश्वसनीय व्यक्ति) करता हो जिससे वह उत्कृष्ट हो।

3. **मुनकर**—वह हदीस जिसका रावी (उल्लेखकर्ता) ज़ईफ़ (कमज़ोर) हो और वह 'सिक़ह' या उत्कृष्ट रावी का विरोध करता हो।

4. **मारूफ़**—ऐसी हदीस जिसका रावी उत्कृष्ट हो, उसका विरोध कमज़ोर रावी ने किया हो।

हदीस से सम्बद्ध कुछ विशेष पारिभाषिक शब्द

1. **मक़बूल**—वह हदीस जिसे रिवायत और 'दिरायत' (मीमांसा) की दृष्टि से हदीस के इमामों (आचार्यों) ने हुज्जत (प्रमाण) के योग्य समझा हो।

2. **मरदूद**—वह हदीस जिसे 'रिवायत 'और 'दिरायत' की दृष्टि से हदीस के विशेषज्ञों ने दलील के योग्य न समझा हो।

3. **मुहकम**—ऐसी मक़बूल हदीस जिसका विरोध किसी अन्य हदीस से न होता हो।

4. **मुख़्तलिफ़ुल हदीस**—किसी 'मक़बूल' हदीस के विरुद्ध कोई दूसरी 'मक़बूल' हदीस आ जाए लेकिन सोच-विचार के पश्चात दोनों में अनुकूलता की प्रतीति हो तो उसे 'मुख़्तलिफ़ुल हदीस' कहेंगे।

5. **नासिख़ और मनसूख़**—'मक़बूल' हदीस के मुक़ाबले में कोई दूसरी मक़बूल हदीस आ जाए और दोनों में अनुकूलता स्थापित करनी संभव न हो तो जो हदीस मुक़द्दम (पहले की) होगी वह मनसूख़ (निरस्त) ठहरेगी और जो मुअख़्ख़र (बाद की) होगी उसे नासिख़ (मनसूख़ करेनेवाली) ठहराएँगे। शर्त यह है कि दोनों के उल्लेखकर्त्ता एक ही दरजे के हों।

6. **मुतवक़्क़फ़ फ़ीह**—जिन दो हदीसों में टकराव पाया जाता हो और दोनों में अनुकूलता स्थापित करनी असंभव हो और 'शाने नुज़ूल' की दृष्टि से उनमें से किसी को 'नासिख़' या 'मनसूख़' ठहराना भी संभव न हो तो दोनों में अमल करने में 'तवक़्क़ुफ़' किया जाएगा अर्थात रुका जाएगा।

7. **मुअल्लल**—वह हदीस जिसमें कोई ऐसी गुप्त त्रुटि पाई जाती हो जिसे हदीस के विशेषज्ञ ही भाँप सकते हों। उदाहरणार्थ किसी भ्रम के कारण 'मरफ़ूअ्' को 'मौक़ूफ़' ठहरा लिया हो। या एक हदीस दूसरी में दाख़िल हो गई हो जिससे ऐसा लग रहा हो कि यह हदीस सही नहीं है आदि।

'इल्लत' (त्रुटि एवं दोष) अधिकतर उस सनद में पाई जाती है जिसे देखने में ऐसा लगता है कि उसमें उसके सही होने की समस्त शर्तें पाई जा रही हैं। इस हालत में 'इल्लत' की पहचान रावी (उल्लेखकर्त्ता) के एकाकी होने से होती है या इस बात से कि दूसरा रावी उसका विरोध कर रहा है।

8. मौज़ू (Forged)—वह हदीस जो मनगढ़न्त हो। जिसकी सनद के सिलसिले में ऐसा व्यक्ति मौजूद हो जो हदीसें गढ़कर बयान करता हो।

9. मतरूक—जिसे किसी झूठे व्यक्ति ने रिवायत की हो।

10. मुदरज—वह हदीस जिसमें कोई परिवर्तन हो गया हो।

मुदरज के दो भेद हैं :

(अ) मुदरजुल इस्नाद—वह हदीस जिसकी सनद में परिवर्तन कर दिया गया हो।

(आ) मुदरजुल मत्न—हदीस के 'मत्न' अर्थात मूल शब्दों (Text) में 'सहाबी' या 'ताबिई' का क़ौल (कथन) सम्मिलित कर दिया हो, चाहे किसी शब्द का अर्थ बयान करने के लिए सम्मिलित किया गया हो या किसी अर्थ को स्पष्ट करने के लिए या 'मुतलक़' अर्थात व्यापक एवं अनिश्चित आशय को निश्चित रूप देने के उद्देश्य से मिलाया गया हो, वह हदीस 'मुदरज' होगी।

11. मक़लूब—वह हदीस जिसमें रावी आगे-पीछे हो गए हों या हदीस के शब्द आगे-पीछे हो गए हों। अर्थात 'इस्नाद' (सनदों) या 'मत्न' (Text) में उलट-फेर हुआ हो।

12. मुज़्तरिब—हदीस की सनदों के सिलसिले में रावियों में अन्तर पाया जाता हो। यह अन्तर नामों के उलट-पलट के कारण भी हो सकता है। उदाहरणार्थ एक 'रावी' के स्थान पर दूसरा 'रावी' हो या सनदों के सिलसिले के 'रावियों' के नामों में 'तसहीफ़' (अनुरूपता), संक्षेप या विलोप हो या हदीस के मत्न (Text, मूल शब्दों) में उलट-फेर हुआ हो। अर्थात एक 'मत्न' के स्थान पर दूसरा 'मत्न' हो। इसी प्रकार की दूसरी चीज़ों के कारण भी हदीस 'मुज़्तरिब' हो सकती है। और यदि उनमें अनुकूलता संभव हो तो हदीस 'मक़बूल' है, अन्यथा उसके बारे में मौन रहेंगे।

13. मुसह्हफ़ या मुहर्रफ़—'रावियों' (हदीस के उल्लेखकर्त्ताओं) के नाम में जिनके लिपि-रूप में समानता पाई जाती हो परिवर्तन कर दिया गया हो।

'तसहीफ़' (मुसह्हफ़ होने का कारण) सनद के अतिरिक्त मूल शब्दों (Text)

में भी पाई जा सकती है। कुछ लोग विद्वानों से शिक्षा प्राप्त न करके किताबों के माध्यम से ज्ञान अर्जित करते हैं, इसलिए उनकी ली हुई रिवायतों में कभी-कभी शब्दों में परिवर्तन हो जाता है। पश्चाद्कालीन विद्वान 'मुसह्हफ़' और 'मुहर्रफ़' को पर्यायवाची न समझकर इनमें थोड़ा अन्तर करते हैं। यदि केवल शब्दों या कुछ एक अक्षरों का अन्तर हो गया हो, किन्तु बाह्य रूप में कोई अन्तर न पड़ा हो, तो उसे 'मुसह्हफ़' कहते हैं और यदि रूप ही बदल गया हो तो उसे 'मुहर्रफ़' कहते हैं।

14. **मुबहम**—वह हदीस जिसके 'रावी' का नाम बयान न किया गया हो।

15. **मस्तूर**—वह हदीस जिसे किसी ऐसे रावी ने रिवायत की हो जिसकी स्मरण-शक्ति क्षीण हो गई हो और यह मालूम न हो सके कि यह 'हदीस' किस समय की है। उस समय की जब उसकी स्मरण-शक्ति ठीक थी या उस समय की जब उसकी स्मरण-शक्ति क्षीण हो गई थी।

16. **मुख़्तलत**—जिसके रावी से भूल या ग़लती हो जाती हो।

17. **मुसलसल**—वह हदीस जिसकी सनद 'मुत्तसिल' हो और वह तदलीस से सुरक्षित हो (तदलीस का बयान आगे आ रहा है) और उसकी रिवायत में एक विशेष इबारत (वर्णन) या कार्य की पुनरावृत्ति हो। रावी ऊपर के रावी से उस कार्य या इबारत को नक़ल कर रहा हो यहाँ तक कि यह सिलसिला नबी (सल्ल०) तक पहुँच जाए।

'हदीसे मुसलसल' की व्याख्या इन शब्दों में भी की गई है—जिसके रावी किसी गुण या दशा या स्थिति के बयान करने में एक ही बात की पुनरावृत्ति करते हों।

ख़बरों और हालतों के बयान करने में इस प्रकार की निरन्तरता दुर्लभ होती है। यही कराण है कि अधिकांश हदीसों के मूल शब्द (Text) यद्यपि सही होते हैं किन्तु निरन्तरता की रीति से रिवायत की जाती हैं तो फिर उनके सही होने में सन्देह पैदा हो जाता है। इस सिलसिले में उनकी 'शाहिद' रिवायतों की रौशनी में उनपर विचार करना आवश्यक है। और सनद और मत्न (Text) की जाँच-पड़ताल में परिश्रम करना चाहिए, क्योंकि किसी हदीस का ग़लती से सुरक्षित होना उसकी सनद और मत्न (Text) की छान-बीन पर निर्भर करता है।

18. **मुदल्लस**—'रावी' जिससे 'रिवायत' करे उससे उसकी मुलाक़ात तो हो परन्तु रिवायत उसने उससे स्वयं न सुनी हो किन्तु शब्द ऐसे प्रयोग करे जिससे भ्रम

यह हो कि उसने उसे स्वयं सुना है। 'रावी' के ऐसे शब्दों के प्रयोग करने को जिससे यह गुमान हो कि उसने स्वयं रावी से रिवायत ली है, हालाँकि रिवायत उसने किसी दूसरे के द्वारा ली है, 'तदलीस' कहते हैं। तदलीस करनेवाले को 'मुदल्लस' कहा जाता है।

'मुदल्लस' की रिवायत स्वीकार की जाए या स्वीकार न की जाए इसमें मतभेद है। हदीस के विशेषज्ञों और 'फ़क़ीहों' (धर्म-शास्त्रियों) की एक जमाअत की दृष्टि में 'तदलीस' ऐब है। जिस किसी के बारे में यह मालूम हो कि वह 'तदलीस' करता है उसकी हदीस क़बूल न की जाए, लेकिन बाक़ी सभी के विचार में ऐसे व्यक्ति की 'तदलीस' को स्वीकार किया जाएगा जिसके बारे में यह मालूम हो कि वह 'सिक़ाहत' (विश्वसनीय व्यक्तियों) की ही 'तदलीस' करता है जैसे इब्न उयैनह। उस व्यक्ति की 'तदलीस' स्वीकार नहीं की जाएगी जो 'ज़ईफ़' और ग़ैर ज़ईफ़, सिक़ह (विश्वसनीय व्यक्ति) और ग़ैर सिक़ह (अविश्वसनीय) सबकी तदलीस करता है। जब तक वह 'समेअतु' (मैंने सुना) या 'हद्दसना (हमसे बयान किया) या 'अख़बरना' (हमें ख़बर दी) जैसे शब्दों के द्वारा 'सिमाअ' (सुनने) को स्पष्ट न करे उसकी रिवायत स्वीकार नहीं की जाएगी।

'तदलीस' के विभिन्न कारण थे। कभी तो किसी बुरे ध्येय से मनुष्य 'तदलीस' करता है। कभी रावी 'तदलीस' राजनैतिक कारणों से करता है। कुछ लोग मज़ाक़ के तौर पर तदलीस करते थे। कुछ महान व्यक्तियों ने तदलीस इसलिए भी की है कि उन्हें हदीस के सत्य होने पर पूर्ण विश्वास प्राप्त था।

हदीस मुदल्लस के दो भेद हैं :

(अ) **मुदल्लसुल इस्नाद**—यह वह हदीस है जिसे रावी ऐसे व्यक्ति से रिवायत करता है (अर्थात ऐसे व्यक्ति के माध्यम से बयान करता है) जो उसका समकालीन हो और उससे मुलाक़ात भी कर चुका हो, किन्तु उससे सुनने का प्रमाण न मिलता हो। या ऐसे समकालीन व्यक्ति से रिवायत करे जिससे उसकी मुलाक़ात न हो, किन्तु आभास यह कराए कि वह अपने समकालीन से सुनकर रिवायत कर रहा है। यह निकृष्टतम प्रकार की 'तदलीस' समझी जाती है। कूफ़ा 'तदलीस' करनेवालों का केन्द्र था। बाग़न्दी वह पहला व्यक्ति था जिसने 'तदलीस' को रिवाज दिया।

(आ) **तदलीसुश्शुयूख़**—इसमें रावी बढ़ा-चढ़ाकर अपने शैख़ (गुरु) के अल्क़ाब (उपाधियाँ) बयान करता है या कुन्यत (कुलनाम) के बिना उसका नाम

लेता है । उद्देश्य यह होता है कि उसकी पहचान न हो सके । इब्नुस्सलाह के विचार में ख़तीब बग़दादी की किताबों में इस तरह की 'तदलीस' मिलती है ।

कुछ विद्वानों ने 'तदलीस' के अन्य भेद किए हैं :

(अ) तदलीसुल अत्फ़—रावी कहे 'हद्दसना फ़ुलानुन व फ़ुलानुन' (हदीस बयान की हम से अमुक और अमुक व्यक्ति ने), हालाँकि उसने जिन व्यक्तियों का नाम लिया है उनमें से किसी एक ही व्यक्ति से सुना हो ।

(आ) तदलीसुस्सकूत—रावी कहे 'समेअतु' (मैंने सुना) या 'हद्दसना' या 'हद्दसनी' (हदीस बयान की हमसे या हदीस रिवायत की मुझसे), इसके बाद थोड़ी देर चुप रहे, फिर कहे 'फ़ुलानुन' (अमुक व्यक्ति ने), इससे सुननेवालों को यह आभास होगा कि उसने अमुक व्यक्ति से सुना है हालाँकि उससे सुना न हो ।

(इ) तदलीसे तस्वियह—किसी रावी के शैख़ (गुरु) के नाम का उल्लेख इसलिए न किया जाए कि वह 'ज़ईफ़' (कमज़ोर) या अल्पायु है । ज़ाहिर यह किया जाए कि हदीस विश्वसनीय व्यक्तियों से उल्लिखित है ताकि उसे सही और मक़बूल (स्वीकृत) ठहराया जाए । यह निकृष्टतम प्रकार की 'तदलीस' है ।

(ई) तदलीसुल बिलाद—इसकी मिसाल यह है जैसे एक मिस्री कहे कि 'हद्दसनी फ़ुलानुन बिल अन्दलस' (मुझे अन्दुलस के अमुक व्यक्ति ने हदीस सुनाई) और अंदलस से अभिप्रेत वह स्थान हो जो अल-क़ुराफ़ह में है । या जैसे कोई कहे कि रिक़्क़ा (एक नगर का नाम) में मुझे हदीस सुनाई और इससे अभिप्रेत दजला नदी के किनारे का एक बाग़ हो तो इससे सुननेवाले के मन में यह ख़्याल पैदा होता है कि रावी हदीस की तलाश में काफ़ी भ्रमण कर चुका है । यह एक प्रकार का धोखा देना है । इब्न हजर ने इसे तदलीसुल बिलाद का नाम दिया है जो 'तदलीसुश्शैख़' से मिलता-जुलता पारिभाषिक शब्द है ।

19. मुर्सले ख़फ़ी—'मुदल्लस' और 'मुर्सले ख़फ़ी' में सूक्ष्म अन्तर है । तदलीस में तो 'रावी' से उस व्यक्ति की मुलाक़ात होती है जिससे वह रिवायत करता है अर्थात जिसके माध्यम से वह हदीस बयान करता है लेकिन 'मुर्सले ख़फ़ी' में इरसाल करनेवाला यद्यपि उसका समकालीन होता है जिससे वह 'रिवायत' करता है परन्तु उससे उसकी मुलाक़ात साबित नहीं होती ।

20. मुअन्निन—वह हदीस जिसकी सनद में 'हद्दसना फ़ुलानुन अन्न फ़ुलानन' (हदीस बयान की हमसे अमुक व्यक्ति ने यह कि अमुक व्यक्ति) के शब्द हों ।

इमाम मालिक ऐसी रिवायतों को 'मुअन्अन' की तरह ख़याल करते हैं, अर्थात दोनों प्रकार की रिवायतों को समान समझते हैं। 'मुअनअन' का बयान आगे आ रहा है। इमाम बरवीजी ऐसी रिवायतों को 'मुनक़तेअ्' समझते हैं। यदि किसी अन्य सनद से 'सिमाअ' (सुनने) का प्रमाण मिल जाए, तो बात दूसरी है। सच्ची बात यह है कि रावी जो भी विभिन्न शब्द इस सिलसिले में प्रयोग करते हैं भाषा के मर्मज्ञ उसका आशय 'सुनना' ही समझेंगे। सामान्य बोल-चाल और आदत के अनुसार आलोचकों के यहाँ इनमें अन्तर पाया जाता है।

21. रिवायते मुअन्अन—'मुअन्अन' उस रिवायत को कहते हैं जिसमें एक 'रावी' ऊपर के रावी से 'अन' (से, By) शब्द द्वारा रिवायत करता है अर्थात वह कहता है कि यह रिवायत (हदीस) मुझ तक अमुक व्यक्ति से पहुँची। इससे यह बात स्पष्ट नहीं होती कि उसने यह हदीस स्वयं सुनी है या बीच में कोई रावी और भी है जिसको उसने छोड़ दिया। इसी लिए 'मुअन्अन' में 'तदलीस' या 'इरसाल' आर्थात् हदीस के 'मुदल्लस' या मुर्सल होने का सन्देह होता है। लेकिन इससे इनकार नहीं कि 'अन' (से, By) या 'क़ाल' (कहा) शब्द का प्रयोग अधिकतर हदीस-शास्त्रियों की दृष्टि में सामान्यतः अनुज्ञा (मुतलक़ इजाज़त) और 'इत्तसाल' (प्रत्यक्ष सम्पर्क) के लिए होता रहा है। किन्तु 'सिमाअ' (सुनन) से इसका दरजा कम ही समझा जाएगा।

हदीस-विशेषज्ञों के कुछ अपने निजी पारिभाषिक शब्द भी हैं। उदाहरणार्थ इमाम तिरमिज़ी रिवायतों में साधारणतया यह स्पष्ट कर देते हैं कि यह हदीस 'हसन सहीह' है या 'ग़रीब हसन' है। कोई रिवायत 'हसन लि ज़ातिही' और 'सहीह लि ग़ैरिही' हो सकती है। इस प्रकार उसका हसन सहीह होना समझ में आता है। इस प्रकार किसी रिवायत का एक साथ 'ग़रीब' और 'सहीह' होना भी संभव है। लेकिन किसी रिवायत का एक साथ 'हसन' और 'ग़रीब' दोनों होना समझ में नहीं आता, क्योंकि जब इमाम तिरमिज़ी ने 'हसन' में 'तुरुक़' (सनद के सिलसिलों) की अनेकता को दृष्टि में रखा है, तो कोई रिवायत (हदीस) 'हसन' और 'ग़रीब' दोनों कैसे हो सकती है। हदीस-विशेषज्ञों ने कहा है कि इमाम तिरमिज़ी ने केवल एक प्रकार के 'हसन' में 'तुरुक़' की अनेकता का विचार किया है, समस्त 'हसन' रिवायतों में उन्होंने इसका विचार नहीं किया है। कुछ लोगों का कहना है कि 'हसन ग़रीब' से अभिप्रेत यह है कि हदीस जिन सनदों से उल्लिखित हुई है उनमें एक सनद की दृष्टि से उसे 'हसन' कहा जाएगा और दूसरी सनद की दृष्टि से उसे 'ग़रीब' कहेंगे।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पारिभाषिक शब्द जो विद्वानों में प्रसिद्ध हैं, वे ये हैं :

1. **मशहूर सहीह**—जो 'मशहूर' के दर्जे में हो और सनद की दृष्टि से सहीह हो।

2. **मशहूर हसन**—जो 'मशहूर' के दर्जे में हो और सनद की दृष्टि से 'हसन' हो।

3. **मशहूर ज़ईफ़**—जो 'मशहूर' के दर्जे में हो किन्तु सनद की दृष्टि से 'ज़ईफ़' हो।

4. **मशहूर बातिल**—जो 'मशहूर' तो हो किन्तु बेबुनियाद हो।

शब्दार्थ

अल्लाह—ईश्वर, ख़ुदा।

अंसार— सहायक। मदीना नगर के मुसलमान जिन्होंने हर तरह से हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आपके उन साथियों की सहायता की जो मक्का से मदीना पहुँचे थे।

अज़ान—नमाज़ के लिए पुकार जो मस्जिदों में पाँच वक़्त होती है। जिन शब्दों में यह पुकार होती है उनसे इस्लामी धारणाएँ अभिव्यक्त होती हैं।

अतबाए ताबिईन—वे मुसलमान जिन्होंने ताबिइन को देखा। ताबिईन वे मुसलमान हैं जिन्होंने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को तो नहीं देखा किन्तु उन्हें आपके साथियों (सहाबा) को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अमीरुल मोमिनीन—मुसलमानों के अमीर (अध्यक्ष), इस्लामी राज्य का शासक।

असानीद—सनद का बहुवचन, दे० 'सनद'।

आमिल—कर्मचारी, हाकिम।

आयत—निशानी, संकेत, प्रमाण। क़ुरआन का कोई भी वाक्य।

इंजील—मूल यूनानी शब्द Euanggliow है। इसका शाब्दिक अर्थ है शुभ-सूचना। वह ग्रन्थ जो पैग़म्बर हज़रत ईसा (अ०) पर अवतरित हुआ।

इजमाअ (Unanimity)— किसी विषय में मुस्लिम विद्वानों का मतैक्य।

इजमाए उम्मत (Unanimity of Community)—किसी विषय में मुस्लिम समुदाय का मतैक्य, सर्वसम्मति।

इजतिहाद (Initiation)—नए मामलों में क़ुरआन, सुन्नत (हदीस) और धर्म के मौलिक-सिद्धान्तों के प्रकाश में सोच-विचार करके धार्मिक आदेश का निर्धारण करना।

इद्दत—वह अवधि जिसे व्यतीत करने से पहले विधवा या तलाक़ पाई हुई स्त्री को दूसरा विवाह करने की इजाज़त नहीं।

इबादत (Worship)—पूजा, उपासना, भक्ति, बन्दगी, सेवा, आदि।

इमाम— नायक, धर्माचार्य।

इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन—'बेशक हम अल्लाह ही के हैं और

निश्चय ही हमें उसी की ओर पलटना है।' यह क़ुरआन का वाक्य है। किसी के मरने या किसी प्रकार की क्षति होने पर इस आयत को पढ़ते हैं।

इलल—इल्लत का बहुवचन। दे० इल्लत ।

इल्लत—हदीस में पाई जानेवाली कोई अस्पष्ट और सूक्ष्म त्रुटि अथवा दोष जिसे साधारण व्यक्ति नहीं भाँप पाता। 'इल्लत' अधिकतर सनद में पाई जाती है, दे० 'हदीस सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली।'

इलहाम—दैवी संकेत, ईश्वर की ओर से मन में आई हुई बात।

इस्लाम—विनम्रता, आज्ञाकारिता (Obedience), ईश्वर के समक्ष आत्मसमर्पण (Complete Submission), ईश्वर के आदेशानुसार जीवन व्यतीत करना।

ईमान—मानना, आस्था, विश्वास (Blief or Faith)।

ईमानवाले—माननेवाले, आस्थावान, मुसलमान।

अन्दलस—स्पेन।

एतज़ाल—एक असन्तुलित सम्प्रदाय 'मोतज़लह' की धारणा एवं पद्धति।

कलाम—वाणी, कथन, बोली।

कलामे रसूल—रसूल की वाणी अथवा कथन।

क़ाज़ी—'क़ज़ायह' अर्थात मुक़द्दमों का फ़ैसला करनेवाला। न्यायकर्त्ता (A judge, Majistrate)।

काबा—मक्का नगर में स्थित अल्लाह का वह घर जिसका निर्माण हज़रत इबराहीम (अ०) और उनके बेटे हज़रत इसमाईल (अ०) ने किया था। जिसकी हैसियत मानव जाति के लिए धर्म-केन्द्र की है। इसी की ओर मुख करके मुसलमान नमाज़ अदा करते हैं।

काफ़िर—'कुफ्र' अर्थात् इनकार करनेवाला विधर्मी, कृतघ्न।

क़िबला—वह चीज़ जो मनुष्य के सामने हो जिसकी ओर उसका ध्यान आकर्षित रहे। परिभाषा में इससे अभिप्रेत वह दिशा है जिसकी ओर मुँह करके 'नमाज़' पढ़ी जाए।

क़ियामत—प्रलय (Annihilation), पुनरुत्थान (Resurrection)। एक समय ऐसा आएगा कि वर्त्तमान संसार नष्ट-भ्रष्ट (Devastation) हो जाएगा। सारे जीवधारी मर जाएँगे। इसके पश्चात ईश्वर पुन: सबको जीवित करके उनके कर्मों का बदला देगा।

क़ियास (Comparing Analogy)—क़ुरआन, सुन्नत (हदीस) आदि के प्रकाश में किसी विषय में स्वयं विचार करके उसके सम्बन्ध में धार्मिक आदेश निर्धारण करना।

कुन्यत— वह नाम जिसमें अरबी परम्परा के अनुसार अपने पिता, माता या लड़के या पुत्री का सम्बन्ध प्रकट किया जाए, जैसे उम्मे कुलसूम अर्थात कुलसूम की माता।

क़ुरआन—क़ुरआन का अर्थ है पढ़ना। इससे अभिप्रेत वह ग्रन्थ है जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर अवतरित हुआ। यह ग्रन्थ इसलिए उतारा गया कि पढ़ा जाए और अधिक से अधिक पढ़ा जाए।

ख़लीफ़ा—प्रतिनिधि, नायब, उत्तराधिकारी। ख़लीफ़ा मालिक नहीं होता उसे केवल प्रतिनिधित्व करना होता है।

ग़ज़वह—वह संग्राम जिसमें हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) स्वयं सम्मिलित हुए हों।

ग़ज़वात—ग़ज़वह का बहुवचन । दे० ग़ज़वह।

ज़कात—पाक और शुद्ध होना, पाक और विकसित होना। परिभाषा में ज़कात उस धन को कहते हैं जिसे अपने माल में से निकालकर अल्लाह के बताए हुए नेक कामों में ख़र्च करना ज़रूरी है।

जन्नत—बाग़, स्वर्ग (Paradise)।

ज़िंदीक़—नास्तिक, अग्निपूजक।

जिज़या— रक्षा कर, वह टैक्स जो इस्लामी राज्य में बसनेवाले ग़ैर मुस्लिमों से उनकी जान, माल आदि की रक्षा करने के बदले में लिया जाता है। जिज़या इस बात की पहचान भी है कि जिज़या देनेवाले को राज्य की अधीनता स्वीकार है। ग़रीब या निर्धन ग़ैर मुस्लिम से जिज़या नहीं लिया जाता। उसकी रक्षा करना सरकार का कर्त्तव्य है।

मुसलमानों को भी ज़कात, फ़ौजी सेवा आदि के रूप में शासन के साथ सहयोग करना होता है। निर्धन और विवशताग्रस्त मुसलमान से भी न ज़कात ली जाएगी और न सेना सम्बन्धी सेवा, बल्कि सरकार का कर्त्तव्य है कि वह उसकी सेवा करे।

जिब्रील—एक विशेष फ़रिश्ता का नाम। हज़रत जिबरील (अ०) नबी (सल्ल०) के पास अल्लाह का सन्देश लाते थे।

जिहाद—किसी उद्देश्य के लिए यथाशक्ति प्रयास करना। यह केवल युद्ध का नाम

नहीं है। युद्ध के लिए क़ुरआन में 'क़िताल' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'जिहाद' शब्द 'क़िताल' की अपेक्षा व्यापक है। प्रत्येक कोशिश चाहे वह धन से हो या क़लम और वाणी से हो, यदि वह सत्य-धर्म और ईश्वर के लिए हो तो वह जिहाद में सम्मिलित है। धर्म के मार्ग में युद्ध की भी नौबत आ सकती है, किन्तु यह संग्राम केवल ईश्वर के नाम की प्रतिष्ठा और उसके धर्म के लिए ही हो सकता है।

तकबीर—बड़ाई करना, बड़ा बनाना, 'अल्लाहु अकबर' (अल्लाह सबसे बड़ा है) कहना।

ततबीक़ (Congruity)—संगति, सामंजस्य, एक चीज़ को दूसरे के मुताबिक़ (अनुकूल) दिखाना।

तबा-ताबिईन—वे मुसलमान जिन्होंने 'ताबिईन' को देखा। दे० 'ताबिईन'।

तरका— मृतक सम्पत्ति, मरनेवाले ने अपने पीछे जो सम्पत्ति छोड़ी हो।

तवाफ़—परिक्रमा, 'हज' करनेवाले 'काबा' के चारों ओर चक्कर लगाते हैं, इसे 'तवाफ़' कहा जाता है। 'तवाफ़' वास्तव में अल्लाह की सेवा में अपने को दे देने और अल्लाह के प्रति अपने प्रेम-भाव के प्रकट करने का नाम है।

ताबिई (Follower)—वे मुसलमान जिन्होंने 'सहाबा' (रज़ि०) को देखा। दे० सहाबा।

ताबिईन (Followers)—'ताबिई' का बहुवचन। दे० ताबिई।

तुरुक़—परिभाषा में हदीस की 'सनदों' के सिलसिलों को तुरुक़ कहते हैं। यह 'तरीक़' का बहुवचन है। तरीक़ का अर्थ होता है—मार्ग, रास्ता। दे० 'सनद'।

तूर— पर्वत, पहाड़। एक विशेष पहाड़ का नाम। मूसा पर्वत। इस पर्वत की ऊँचाई 7359 फ़ीट है। यह पर्वत प्रायद्वीप सीना के दक्षिण में स्थित है।

तौरात—यह इबरानी शब्द है। इसका मूल अर्थ है—आदेश, नियम या क़ानून। तौरात वह प्रसिद्ध ईश्वरीय ग्रन्थ है जो पैग़म्बर हज़रत मूसा (अ०) पर अवतरित हुआ। इसमें अधिकतर क़ानून और नियमों का उल्लेख हुआ है।

तशहहुद— एक विशेष मौलिक वाक्य का उच्चारण करना जिसमें इसका उल्लेख होता है कि हम गवाही देते हैं कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं, वह अकेला है। हम गवाही देते हैं कि मुहम्मद (सल्ल०) उसके बन्दे और उसके 'रसूल' हैं।

दियत—ख़ून की क़ीमत, यदि कोई किसी की हत्या कर दे और मरनेवाले के वारिस

प्राणदण्ड के बदले कुछ रुपया लेकर उसे क्षमा करना चाहें तो इस प्रकार जो धनराशि हत्यारे से दिलाई जाती है उसे दियत कहते हैं।

दीन—धर्म, जीवन प्रणाली, 'दीन' का मौलिक अर्थ है अधीन होना, अधीन करना। इस्लाम एक 'दीन' है; इसलिए कि उसमें मनुष्य अपने को पूर्णतः ईश्वरीय आदेशों के अधीन कर देता है और सम्पूर्ण जीवन में ईश्वर ही के आदेशों का पालन करता है।

दोज़ख़—नरक, जहन्नम। परलोक में अल्लाह के अवज्ञाकारियों के प्रवेश करने की जगह, जहाँ उन्हें नाना प्रकार की यातनाएँ दी जाएँगी।

नुबूवत—पैग़म्बरी, ईश-दूतत्व। नबी होने का भाव। देखिए 'नबी'।

नबी—पैग़म्बर, ईश-दूत। वह व्यक्ति जिसे अल्लाह ने इस कार्य के लिए चुन लिया हो कि वह (ईश्वर) उस व्यक्ति के माध्यम से अपना सन्देश लोगों तक पहुँचाए।

नबी (सल्ल०)— इससे अभिप्रेत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) हैं।

नफ़्ल—अनिवार्य कर्त्तव्य और निर्धारित कार्य के अतिरिक्त दूसरे धार्मिक कार्य या उपासना।

नमाज़—उपासना, अल्लाह के आगे झुकना और सजदा करना। ईश्वरोपासना का वह तरीक़ा जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने हमें सिखाया।

फ़क़ीह (A Theologian)— समझ रखनेवाले और धार्मिक क़ानून के ज्ञाता।

फ़तवा—किसी विषय में धार्मिक शास्त्रवेत्ता का आदेश, धर्मादेश।

फ़रायज़—निश्चित हिस्सा। वह शास्त्र जिसमें वारिसों के हिस्से बयान किए जाते हैं।

फ़रिश्ता (Angel)—देवदूत। एक विशेष प्रकार की मख़लूक़ जो गुनाहों से दूर रहती, अल्लाह के आदेशों के पालन में लगी रहती और उसका गुणगान करती है। फ़रिश्तों से अल्लाह विभिन्न काम लेता है।

फ़ासिक़—आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला, अवज्ञाकारी, मर्यादाहीन।

फ़िक़्ह (Knowledge of Religion and Law) – इस्लामी धर्मशास्त्र।

बनी इसराईल (Israelites) – इसराईल की सन्तान, यहूदी। इसराईल इबरानी (Hebrew) शब्द है जिसका अर्थ है 'अल्लाह का बन्दा'। इसराईल, पैग़म्बर हज़रत याक़ूब (अ०) का नाम था। हज़रत याक़ूब हज़रत इसहाक़ (अ०) के

बेटे और हज़रत इबराहीम (अ०) के पोते थे।

बलाग़त—वाग्मिता, वाक्पटुता (Eloquence), साहित्य की अलंकारिक शैली।

बिदअत—नई बात, इस्लाम धर्म में ऐसी बात सम्मिलित करनी जिसकी शिक्षा रसूल ने न दी हो। 'बिदअत' को नबी (सल्ल०) ने गुमराही कहा है।

बैतुल मक़दिस— पवित्र घर, मस्जिदे अक़सा। अल्लाह का वह पवित्र घर जो यरुशलम में है, जिसके निर्माण का इरादा हज़रत दाऊद (अ०) ने किया था और जिसका निर्माण उनके बेटे पैग़म्बर हज़रत सुलैमान (अ०) के द्वारा हो सका।

बैतुल हराम—प्रतिष्ठित घर। इससे अभिप्रेत वह मस्जिद है जिसके बीच 'काबा' स्थित है।

मज़हब— मत, पद्धति।

मत्न—मूल-पाठ (Text)।

मन्क़बत—महापुरुषों का गुणगान, यशोगान।

मसला —प्रसंग, विषय, समस्या, धर्मशास्त्र सम्बन्धी आदेश।

मसमूअ— सुनी हुई, वह हदीस जो सुन रखी हो।

मसलक—रास्ता, धर्मपद्धति, मत।

मस्जिदे हराम (Inviolable Place of Worship)—आदर और इज़्ज़तवाली मस्जिद, वह मस्जिद जिसके बीच 'काबा' स्थित है।

मुख़ाबिरह—बटाई पर मामला करना।

मुअज़्ज़िन—'अज़ान' देनेवाला। देखिए 'अज़ान'।

मुहद्दिस—हदीस-विशेषज्ञ।

मुहाजिर—हिजरत करनेवाला। अल्लाह के लिए अपना घरबार छोड़नेवाला। मक्का के वे लोग जो हिजरत करके मदीना पहुँचे।

मोमिन— ईमानवाला, माननेवाला। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का अनुयायी और अन्य सभी पैग़म्बरों को माननेवाला।

रसूल—पैग़म्बर, सन्देशवाहक, दूत, ईशदूत, वह व्यक्ति जिसे ईश्वर ने इस कार्य पर नियुक्त किया हो कि वह लोगों को ईश्वर के आदेशों और उसकी इच्छा से सूचित करे और उन्हें सत्य की ओर लाने का प्रयास करे।

रावी (Narrator)—उल्लेखकर्त्ता, हदीस बयान करने और पहुँचानेवाला।

रिवायत (A narrative,Narration)— कथन, वर्णन, हदीस का बयान करना ।

रिवायत करना—बयान करना, उल्लेख करना, हदीस बयान करना या पहुँचाना ।

रिसालत—'रसूल' का पद, ईश-दूतत्व । दे० 'रसूल' ।

रुवात—'रावी' का बहुवचन । दे० 'रावी' ।

रोज़ा (A fast)—व्रत । आत्मा और हृदय की शुद्धता और आत्मिक विकास के लिए रोज़ा अत्यन्त आवश्यक है ।

वसीक़ह (A written agreement)— अधिकार-पत्र ।

वह्य (Revelation)—दैवी प्रकोशन, ईश्वरीय संकेत, ईश्वर की ओर से किसी 'नबी' या 'रसूल' की ओर वाणी का अवतरित होना ।

शरीअत (Revealed law)—खुला हुआ मार्ग, राजमार्ग, धर्म एवं धार्मिक क़ानून, धर्मशास्त्र ।

शाज़ (An omalous)—अपवाद ।

शाम—सीरिया (Syria) ।

शिर्क (Polytheism)— अनेकेश्वरवाद, बहुदेववाद । किसी को अल्लाह का साझी या सहभागी समझना ।

सनद—'हदीस' को 'रिवायत' (बयान) करनेवालों के सिलसिले (श्रंखला) को सनद कहते हैं । उदाहरणार्थ 'मालिक द्वारा नाफ़ेअ् द्वारा इब्न उमर (रज़ि०) द्वारा नबी (सल्ल०), यह एक सनद है । किसी हदीस की यदि यह सनद है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उस हदीस को बयान किया मालिक ने जिसको उनसे हज़रत नाफ़े ने और हज़रत नाफ़े से वह हदीस हज़रत इब्न उमर (रज़ि०) ने बयान की थी और इब्न उमर (रज़ि०) ने प्रत्यक्षत: वह हदीस नबी (सल्ल०) से सुनी ।

सहाबी (Companion)—वह मुसलमान जिसने नबी (सल्ल०) को देखा ।

सहाबा —सहाबी का बहुवचन है । दे० सहाबी

सहाबियात—वे मुस्लिम स्त्रियाँ जिन्होंने नबी (सल्ल०) को देखा या उनसे सुना ।

सहीफ़ा —पुस्तक, ईश्वरीय पुस्तक ।

सिमाअ—सुनना, श्रवण करना, 'हदीस' का सुनना ।

सिहाह—सहीह का बहुवचन । संकेत है हदीस की सहीह (Genuine) ग्रन्थों की ओर । ऐसे ग्रन्थ जिनमें सहीह और पक्की हदीसें संगृहीत की गई हैं ।

सिहाह सित्तह— छः सहीह ग्रन्थ। इससे अभिप्रेत हदीस के विख्यात छः सही ग्रन्थ हैं, अर्थात बुख़ारी, मुस्लिम, अबू दाऊद, तिरमिज़ी, नसई और इब्न माजह।

सुन्नत (Tradition of the Holy Prophet)– रीति, प्रथा, तरीक़ा, वे कार्य जो नबी (सल्ल०) ने किए। वे शुभ कार्य जो यद्यपि अनिवार्य न हों, लेकिन नबी (सल्ल०) ने उनको किया हो।

सुबहानल्लाह (God be Glorified)—महान है अल्लाह!

सुलासियात—वे हदीसें या रिवायतें जो नबी (सल्ल०) से केवल तीन ही व्यक्तियों के माध्यम से पहुँची हों।

सूरा—क़ुरआन का एक प्रकरण या विशेष भाग। हर सूरा का एक मध्यबिन्दु या केन्द्रीय विषय होता है। प्रत्येक सूरा अपनी जगह पूर्ण होती है यद्यपि क़ुरआन की हर सूरा अपने आगे और पीछे की सूरा से गहरा सम्पर्क भी रखती है।

हज—हज का अर्थ है इरादा करना, ज़ियारत (तीर्थ-दर्शन) का इरादा करना। परिभाषा में हज एक इबादत है जिसमें आदमी अल्लाह के घर 'काबा' के दर्शन का इरादा करता है। हज के द्वारा अल्लाह की महानता और उसका प्रेम स्थायी रूप से मन में बैठ जाता है और प्रेम की यह छाप जीवन भर मिटती नहीं।

हज्जतुल विदाअ—अन्तिम हज जो नबी (सल्ल०) ने किया।

हदीस—किसी के कथन, आशय, समाचार, घटना आदि को हदीस कह सकते हैं। यह शब्द अत्यन्त व्यापक है। पारिभाषिक रूप में नबी (सल्ल०) के कथन, कर्म और 'तक़रीर' को हदीस कहते हैं। तक़रीर का अभिप्राय है किसी चीज़ को यथावत बाक़ी रखना। नबी (सल्ल०) के सामने कोई कार्य किया, या आपने कोई रीति या तरीक़ा प्रचलित पाया किन्तु आपने उससे रोका नहीं तो इसे तक़रीर कहेंगे।

हब्शह (Abyssinia)— अबीसिनिया, इथोपिया।

हराम (Forbidden)—वर्जित, अवैध, जिसे अल्लाह या रसूल ने नाजायज़ ठहराया हो।

हलाल (Lawful)— अवर्जित, वैध, धर्मसंगत। जिसे अल्लाह या उसके रसूल ने जायज ठहराया हो।

हिकमत (Wisdom)—तत्वज्ञान। हिकमत का मूल अर्थ है 'फ़ैसला करना' सूझ-बूझ की शक्ति के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त होता है जिसके द्वारा मनुष्य

फ़ैसले करता है। उस शक्ति को भी हिकमत कहा जाता है जो विशुद्ध एवं उचित निर्णयों का मूल स्रोत है। इसके अलावा पवित्रता की गणना भी हिकमत के लक्षणों में होती है। अरब के लोग बुद्धि और सम्मति की पूर्णता और सज्जनता की मिली जुली शक्ति को हिकमत और बुद्धिमान एवं शिष्ट व्यक्ति को हकीम कहते थे। जब विवेक में पूर्णता आ जाती है और वह प्रतिभा एवं विलक्षणता का रूप धारण कर लेता है तो उसे हिकमत कहते हैं।

हिजरत—स्वदेश-त्याग। अल्लाह के मार्ग में धार्मिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कभी मानव को अपना घर-बार छोड़ना पड़ता है, यह हिजरत है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का मक्का छोड़कर मदीना जाना हिजरत कहलाता है।

हिदायत (Guidence)— मार्गदर्शन, राह दिखाना। जीवन-यापन का सही तरीक़ा। क़ुरआन में यह शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है :

1. अन्तर्दृष्टि, हृदय-ज्योति।
2. निशानी, स्पष्ट प्रमाण और वह चीज़ जिसके द्वारा मार्ग मिल सके।
3. स्पष्ट मार्ग, मंज़िल, गंतव्य स्थान (Destination)
4. हिदायत क्रिया की संज्ञा का रूप। कभी किसी चीज़ के स्पष्ट गुण ही को उसका नाम दे देते हैं। इसी नियम के अन्तर्गत क़ुरआन को अल-हुदा (हिदायत) कहा गया। देखिए सूरा अल-जिन्न आयत न० 13

संकेताक्षर

इस पुस्तक में जो संकेताक्षर प्रयोग में लाए गए हैं वे ये हैं। कृपया इन्हें इस प्रकार पढ़ें:

अ०—'अलैहिस्सलाम' अर्थात उनपर सलामती हो।

दे०—देखिए।

रज़ि०—'रज़ियल्लाहु अन्हु' अर्थात उनसे अल्लाह राज़ी रहे।

रह०—'रहमतुल्लाहि अलैहि' अर्थात उनपर अल्लाह की रहमत (दयालुता) रहे।

सल्ल०—'सल-लल-लाहु अलैहि व सल्लम' अर्थात उनपर अल्लाह की रहमत (दयालुता) और सलामती हो।

हि०—सन् हिजरी।